श्री १०८ दिगम्बर जैनाचार्य देशभूषण महाराज के

आशीर्वाद सहित

भारत को परतंत्रता की शृंखलाओं से मुक्त कराने वाली

तथा

स्वतंत्रता का स्वर्णमयी प्रभात दिखाने वाली

एक मात्र प्रतिनिधि संस्था

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस

के

मनोनीत निर्वाचित अध्यक्ष

श्री उच्छरंगराय नवलशंकर ढेबर

के कर कमलों में

सर्व भाषामयी अपूर्व ग्रन्थराज सिरि भूवलय

सा द र स म र्पि त है।

श्री भूवलय प्रकाशन समिति
(जैन मित्र मंडल) धर्मपुरा देहली

पौष शुक्ला १, सं० २०१४
वीर निर्वाण सम्वत २४८४

प्रकाशकीय वक्तव्य

महान ग्रन्थराज श्री भूवलय का परिचय जब भारत के राष्ट्रपति महामहिम डा० राजेन्द्रप्रसाद जी को दिया गया तो उन्होंने इसको संसार का आठवां आश्चर्य बताया। इस महान ग्रन्थ की रचना आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ कुमुदेन्दु स्वामी ने की थी। आचार्य श्री कुमुदेन्दु नन्दी-पर्वत के समीप, बेंगलौर से ३८ मील दूर यल्लावल्ली स्थान के रहनेवाले थे। वे मान्यखेट के राष्ट्रकूट राज के सम्राट अमोघवर्ष के राजगुरु थे। यह अपूर्व ग्रन्थ अन्य ग्रन्थों से विलक्षण ६४ अङ्कों में है जिससे कन्नड़ भाषा के ह्रस्व, तथा दीर्घ आदि अक्षर बनते है। यह ग्रन्थराज जैन धर्म की विशेषतया तथा अन्य धर्मो की संस्कृति का पूर्ण परिचय देता है। यह विज्ञान का भी एक अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थराज में १८ महान भाषाएँ तथा ७०० कनिष्ठ भाषाएँ गर्भित हैं। यदि इस ग्रन्थराज को भली प्रकार समझा जाए तो इसके द्वारा मनुष्य का ज्ञान बहुत अधिक उन्नति कर सकता है। इस ग्रन्थ का कुछ भाग माइक्रो फिल्म कराया जा चुका है और इसे भारत के राष्ट्रीय संग्रहालय में राष्ट्रपति के आदेशानुसार रखा गया है।

गत वर्ष जैन प्रदर्शनी तथा सेमिनार के आयोजन पर इस ग्रन्थराज की प्रदर्शनी की गयी थी। जनता इसको देखकर आश्चर्य चकित तथा मुग्ध हो गयी थी। जनता की पुकार थी कि इसे शीघ्र प्रकाश में लाया जाए।

यह ग्रन्थराज स्वर्गीय श्री पं० यल्लप्पा शास्त्री, ३५६ विश्वेश्वरपुर सर्किल बेंगलौर के पास था। वे भी गत वर्ष देहली मे थे। इस ग्रन्थराज के प्रति उनकी अपूर्व श्रद्धा तथा भक्ति थी। वे प्रातः स्मरणीय विद्यालंकार आचार्य रत्न श्री १०८ देश भूषण जी महाराज के जोकि गत वर्ष देहली में चतुर्मास कर रहे थे सम्पर्क में आये। आचार्य श्री के हृदय में जैन धर्म तथा जैन ग्रन्थों की प्रभावना की तो एक अपूर्व लगन है ही। आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ की उपयोगिता देखकर इस ग्रन्थराज को प्रकाश में लाने का निश्चय किया। गत वर्ष इस विषय में काफी प्रयत्न किया गया। चतुर्मास समाप्ति पर आचार्य श्री ने देहली से विहार किया अतः ग्रन्थराज के प्रकाशन का कार्य स्थगित सा हो गया। आचार्य श्री सदैव इस ग्रन्थ को प्रकाश मे लाने के लिए पूछते रहे परन्तु हम अपनी विवशताएं बताते रहे। अन्त में जब आचार्य श्री गुड़गावे मे थे तो देहली के प्रमुख सज्जनों ने आचार्य श्री से प्रार्थना की—कि वे जबतक देहली न पधारेंगे इस कार्य का आरम्भ होना असम्भव है। आचार्य श्री पहले दो चतुर्मास देहली में कर चुके थे अतः देहली नही आना चाहते थे। परन्तु देहली निवासी लगातार आचार्य श्री को इस महान ग्रन्थराज के प्रकाश मे लाने के हेतु देहली आने के लिए आग्रह करते रहे। अन्त में आचार्य श्री ने इस कार्य की महानता तथा उपयोगिता को दृष्टि में रखते हुए इस वर्ष देहली आना स्वीकार किया।

आचार्य श्री अप्रैल १९५७ में देहली पधारे। तत्काल ही तार आदि देकर श्री यल्लप्पाजी शास्त्रीको बेंगलौरसे बुलाया गया। भाग्यवश भारतके प्रमुख उद्योगपति धर्मवीर दानवीर, गुरु भक्त श्री युगल किशोर जी बिडला—जोकि आचार्य श्री को अपना धर्म गुरु ही मानते है। इस ग्रन्थ से बहुत प्रभावित हुए उन्होंने भी यह प्रेरणा की कि इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाया जाए और उन्होंने क्रियात्मक रूप से सहयोग के नाते इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जो विद्वानों पर व्यय हो वह देना स्वीकार किया। उनके इस महान दान से हमको और भी प्रेरणा मिली। ग्रन्थ के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक नियमित समिति देहली की प्रमुख साहित्यिक संस्था जैन मित्र मण्डल धर्मपुरा देहली के तत्वावधान मे ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति के नाम से स्थापित की गयी जिसमे देहली नगर के प्रमुख सज्जनों ने अपना सहयोग दिया। समिति वर्तमान मे निम्न प्रकार है।

संस्थापक—दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज।

सरक्षक—श्री सर्वार्थसिद्धि संघ बेंगलौर।

सभापति—ला० अजितप्रसाद जी ठेकेदार।

उपसभापति—ला० मनोहरलाल जी जौहरी ।

„ ला० मुन्शीलाल जी कागजी

मन्त्री—श्री महतावसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० ।

„ „ आदीश्वरप्रसाद जी एम० ए० ।

„ „ पन्नालाल जी प्रकाशक तेज ।

कोषाध्यक्ष—श्री नेमचन्द जी जौहरी ।

संशोधक स्वर्गीय श्री यल्लप्पा शास्त्री ।

प्रकाशन प्रबन्धक—ला० छुट्टनलाल जी कागजी ।

„ „ श्री मुनीन्द्रकुमार जी एम० ए० जे० डी०

„ „ „ रघुवरदयाल जी ।

सदस्य—ला० श्यामलाल जी ठेकेदार ।

„ जोतिप्रसाद जी टाइप वाले ।

„ प्रेमचन्द जी जैनावाच कम्पनी

„ शान्तिकिशोर जी ।

„ रणजीतसिंह जी जौहरी ।

„ रामकुमार जी ।

ग्रन्थराजके संशोधन तथा भाषानुवाद का कार्य आचार्य श्री की छत्रछाया में क्षुल्लिका विशालमती माताजी,स्वर्गीय श्री यल्लप्पाशास्त्री, प० अजितकुमार जी शास्त्री तथा पं०रामशंकरजी त्रिपाठी द्वारा शुरू किया गया । मुद्रण का कार्य श्री देशभूषण मुद्रणालय को दिया गया। कार्य सुचारु रूपसे चलता रहा। आचार्य श्री लगभग ८ घण्टे प्रतिदिन इस ग्रन्थराज के लिए देते रहे हैं। इसी प्रकार यल्लप्पा शास्त्री जी भी दिन रात इस कार्य में संलग्न रहे । इसी बीच मे एक महान दुर्घटना हो गयी जैसा कि सदैव होता ही है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शीघ्र ही देश को राष्ट्र पिता महात्मा गाधी की आहुती देनी पड़ी उसी प्रकार इस ग्रन्थ के प्रकाश मे आने से पहिले ही इस ग्रन्थ के सरक्षक श्री यल्लप्पा शास्त्री, अपने घर बेंगलौर से दूर इसो देहली मे २३ अक्टूबर १९५७ को स्वर्गवास कर गये । आप केवल एक दिन ही बीमार रहे। आपका निधन एक महान वज्रपात है, और आज भी समझ नही आती कि उनकी अनुपस्थिति मे यह समिति क्या कर सकेगी । हम तो स्वर्गीय के प्रति श्रद्धा के दो फूल ही चढा सकते हैं । केवल इतना और कह सकते हैं कि हम अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न करेगे कि जो कार्य हम स्वर्गीय के जीवन मे न करसके वह उनके निधन के बाद अवश्य पूरा करे ।

इस ग्रन्थराज का आरम्भ मे इस समय केवल मंगल प्राभृत ही २५० पृष्ठो मे प्रकाशित किया जा रहा है। ग्रन्थराज बहुत विशाल है और इसको पूर्णतया प्रकाश मे लाने के लिए सहस्रों पृष्ठ प्रकाशित करने पड़ेंगे । आर्य धर्म शिरोमणि श्री युगलकिशोर जी बिड़ला ने इस कार्य में अपना पूरा सहयोग देने की स्वीकारता दी है। गत सप्ताह जैन जाति शिरोमणि दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी तथा उनकी सौभाग्यवती पत्नी रमारानी जी देहली में थीं । वे दोनो आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनके पास आये थें । वे इस ग्रन्थ से तथा इस ग्रन्थ के प्रति आचार्य श्री की लगन से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने यह आश्वासन दिया है कि इसके भविष्य के कार्य-क्रम की रूप रेखा आदि उनके पास भेज देने पर वे पूर्ण रूप से इस ग्रन्थ के उद्धार तथा प्रकाशन मे सहयोग देगे । हमे आशा है कि उनके तथा बिडला जी के सहयोग से तथा आचार्य श्री के आशीर्वाद से हम इस कार्य को भविष्य मे भी प्रगति दे सकेंगे ।

हमे इस कार्य मे देहली जैन समाज के अतिरिक्त दिगम्बर जैन समाज गुडगावा, गोहाना, रिवाड़ी, फरुखनगर तथा रोहतक आदि से भी आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है । ग्रन्थ के मुद्रण मे जो कागज लगा है उसका अधिकतर भार देहलो के माननीय सज्जनो ने उठाया है जिनमे निम्न नाम विशेष उल्लेखनीय है । ला० सिद्धोमल जी कागजो, ला० मनोहरलाल जी जौहरी, ला० मुन्शीलाल जो कागजी, ला० नेमचन्द जो जौहरी, ला० नन्नूमल जी कागजी, ला० जयगोपाल जो आदि ।

इस ग्रन्थ की आरम्भ मे २००० प्रतिया मुद्रण की जा रही है । इनमें से १००० प्रतियो का समस्त व्यय देहलो जैन समाज के प्रमुख धर्मनिष्ठ दानी स्वर्गीय ला० महावीर प्रसाद जी ठेकेदार ने अपने जीवन मे ही देना स्वीकार किया था। ग्रन्थ के मुद्रण को अधिक से अधिक सुन्दर बनाने मे

देशभूषण मुद्रणालय के समस्त कर्मचारी गण तथा उसके प्रवन्धक श्रीचन्द जी जैन ने विशेष प्रयत्न किया है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

अन्त में हम आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते है। आचार्य श्री के ही सतत प्रयत्नो तथा लगन के फलस्वरूप आज हम इस महान ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए अपने को धन्य मान रहे हैं। हमे स्वर्गीय श्री यल्लप्पा शास्त्री के दोनों पुत्र श्री धर्मपाल तथा शान्तिकुमार के सहयोग की भी अत्यन्त आवश्यकता है तथा हमें विश्वास है कि वे भी अपने पूज्य पिता की भांति इस कार्य में सहयोग देते रहेंगे। अन्त में हमारा समस्त जैन समाज से निवेदन है कि वह इस कार्य में हमें अपना पूर्ण सहयोग तन-मन-धन से दें। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जैन संस्कृति की प्राचीनता तथा उसका महत्व संसार मे सूर्य के समान प्रसरित होगा।

हम हैं आचार्य श्री के आशीर्वाद के अभिलाषी—

सभापति अजितप्रसाद जैन ठेकेदार।
मन्त्री महताबसिंह जैन बी० ए० एल० एल० बी०।
मन्त्री आदीश्वरप्रसाद जैन एम० ए०।
,, पन्नालाल (तेज अखबार)।

ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति
जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा देहली।

ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति

जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा देहली।

खड़े हुए— (बायें से दायें) श्री रामकुंवर जैन, सदस्य; श्री नेमचन्द जैन जौहरी, कोषाध्यक्ष; श्री महतावसिंह जैन, B A, L-L B मंत्री; श्री शान्तिकिशोर जैन, सदस्य; श्री आदीश्वर प्रशाद जैन, M A मन्त्री; श्री पन्नालाल जैन तेज प्रेस, मन्त्री

कुर्सी पर बैठे हुए- श्री मुन्शीलाल जैन कागजी, उपसभापति; श्री जगाधरमल जैन, प्रधान, दि० जैन मन्दिरान कमेटी देहली, सदस्य; श्री अजितप्रशाद जैन, ठेकेदार सभापति; श्री मनोहरलाल जैन जौहरी, उपसभापति; श्री जोतिप्रशाद टाइपवाले, सदस्य; श्री श्यामलाल जैन ठेकेदार सदस्य

बैठे हुए— श्री रघुबरदयाल जैन, (प्रकाशन प्रबन्धक) श्री जिनेन्द्र कुमार जैन, श्री होशियारसिंह जैन कागजी।

नोट:—अन्य सदस्य जो फोटो में सम्मिलित न हो सके:-(१) ला० रणजीतसिंह जैन जौहरी, (२) श्री मुनीन्द्र कुमार जैन M.A.I.D., (३) श्री छुट्टनलाल जैन कागजी, (४) श्री प्रेमचन्द जैन, जैनावाच कम्पनी, (५) श्री रामकुमार जी।

श्रीभूवलय-परिचय

श्रीकुमुदेन्दु आचार्य और उनका समय

श्रीकुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र (इन्दु शब्दका अर्थ 'चन्द्र' है) नाम के अनेक आचार्य हुए है। एक कुमुदुचन्द्र आचार्य कल्याणमन्दिर स्तोत्रके कर्ता है। एक कुमुदचन्द्र आचार्य महान वादी वाग्मी विद्वान हुए है जिन्होने श्वेताम्बरों के साथ शास्त्रार्थ किया था। एक कुमुदेन्दु सन् १२७५ में हुए है जो श्री माघनन्दि सिद्धांत चक्रेश्वर के शिष्य थे उन्होने **रामायण** ग्रंथ लिखा है। किन्तु इस ग्रन्थ राज भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य इन सबसे भिन्न प्रतीत होते है।

श्री देवप्पा का पिरिया पट्टन में लिखा हुआ **कुमुदेन्दु शतक** नामक कानड़ा पद्यमय पुस्तक है उसमें भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य का उल्लेख है। देवप्पा ने कवि माला तथा काव्यमाला का विचार करते हुए सगीत मय कविता लिखी है, उसमें भूवलय कर्ता कुमुदेन्दु आचार्य का आलकारिक वर्णन है। कुमुदेन्दु शतक के कुछ कानड़ी पद्य यहाँ बतौर उदाहरण के दिये जाते है— कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने माता पिता का नामका उल्लेख तो नही किया परन्तु मुनि होने के बाद इस भूवलय नामक विश्व काव्य की रचना करते समय अपना कुछ परिचय दिया, वह निम्न पद्यों से प्रकट है :

श्रीदिसिदेनु कर्माटकद जनरिगे । श्री दिव्यवाणिय क्रमदे ।।
श्रीदया धर्म समन्वय गणितद । मोदद कथेयनालिपुदु ।।
वरद मंगलद प्राभृतद महाकाव्य । सरणियोळ्गुरुवीरसेन ।।
गुरुगळमतिज्ञान दरिविगेसिलेक्हि । अरहत केवलज्ञान ।
जनिसलु सिरिवीरनेर शिक्षपन घनवाद काव्यदकथेय ।।
जिनसेन गुरुगळ तनुविनजन्मद घनपुण्यवरधर्म नवस्त ।।
नाना जनपद वेल्लदरोळुधर्म । तानु क्षीणिसि बपगि ।।
तानल्लि मान्यखेटददोरे जिन भक्त । तानुअमोघ वर्षांक ।

'कवि कर्नाटक जनता को सम्बोधन करते हुए कहते हैं :—

अर्थ—श्री कुमुदेन्दु आचार्य का ध्येय विशालकीर्ति है, मुनिचर्यांका पालन करना उनका गौरव (गुरुत्व) है, वे नवीन नवीन कीर्ति उत्पन्न करते थे, वे अवतारी महान पुरुष थे। सेनगण की कीर्ति फैलाने वाले थे। उनका गोत्र **सद्धर्म** है सूत्र वृषभ है, शाखा द्रव्यांग है, वंश इक्ष्वाकु है, सर्वस्वत्यागी सेन है। नवीन गण गच्छ के आनन्ददायक नेता थे। नव्य भारत में शुद्ध रुचिकार कर्माट राजा को उन्होंने भारत के निर्माण में अहिंसा धर्म की परिपाटी को बढ़ाने रूप आशीवाद दिया। समस्त भाषाओं और समस्त मतों का समन्वय और एकीकरण करने वाले भुवन विख्यात **भूवलय** ग्रन्थ की रचना की।

इस तरह देवप्पा ने भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु (कुमुदचन्दु) आचार्य का परिचय दिया है। भूवलय ग्रन्थ से प्रतीत होता है कि कर्माटक चक्रवर्ती मान्य-खेट के राजा राष्ट्रकूट अमोघवर्ष को भूवलय द्वारा कुमुदेन्दु आचार्य ने व्याख्या के साथ करणसूत्र समझाया था।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य के दिये हुए विवरण को परशीलन करके देखा जाय तो वे सेनगण, ज्ञातवंश, सद्धर्म गोत्र, श्री वृषभ सूत्र, द्रव्यानुयोग शाखा, और इक्ष्वांकु वंश परम्परा में उत्पन्न हुए तथा सेनगण में से प्रगट हुए नव गण-गच्छों की व्यवस्था की।

श्री कुमुदेन्दु को सर्वज्ञ देव की सम्पूर्ण वाणी अवगत थी अतः वे महान ज्ञानी, धुरन्धर पंडित थे लोग इन्हें सर्वज्ञ तुल्य समझते थे। और इनके पहले के मगल प्राभृत भूवलय को गणित पद्धति के अनुसार जाननें वाला श्री वीरसेनाचार्य को बतलाया है। तथा श्री जिनसेन आचार्य का "शरोर जन्म से उत्पन्न हुआ घनपुण्यवर्द्धन वस्तु" विशेषण द्वारा स्मरण करके वीरसेन के बाद श्री जिन-सेन, आचार्य को गौरव प्रदान किया है।

जहां तक हमको ज्ञात है। अंक राशि से निर्मित अन्य कोई ऐसा साहित्य ग्रन्थ अभी तक प्रकाश मे नही आया। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने परम गुरु वीर सेन आचार्य की सम्मति से वनाये गये इस "सव भाषामय कर्नाटक काव्य" मे वीरसेन आचार्य से पहले की गुरु परम्परा का निम्न रूप मे उल्लेख किया है—

वृषभ सेन, केसरिसेन, वज्रचामर, चारुसेन, वज्रसेन अदत्तसेन, जलजसेन, दत्तसेन, विदर्भसेन, नागसेन, कुथुसेन, धर्मसेन मंदरसेन जयसेन, सद्धर्मसेन, चक्रबंध, स्वयंभूसेन, कुंभसेन, विशालसेन, मल्लिसेन, सोमसेन, वरदत्तमुनि स्वयंप्रभारती, और इद्रभूति (२४ तीर्थंकरो के आदि गणधरो) के अनन्तर "वायु भूति, अग्निभूति सुधर्मसेन, आर्यसेन मुडिपुत्र, मैत्रेय सेन अकपसेन, आंध्र गुरु [भग० महावीर के] गणधर हुए। इनके वाद श्री प्रभावसेन, ने हरि-शिव शंकर गणित के एक महान ज्ञाता बनारस [काशीपुरी] मे वाद विवाद करके जीता और गणिताक रूप **पाहुड ग्रंथकी रचना** करके दूसरे गणधर पदकी प्रशस्ति प्राप्त की। [अ०, १३, ५०, ८७, ९८, ११९]

गुरु परम्परा—

गुरु परंपरा के इस भूवलय, आगे **"पसरिपकन्नाडिनोडेयर पिसुण तेयळिद कन्नडिगरक सवरनाडिनोळ्चनिपर"**

इस प्रकार कर्नाटक सेन गण के द्वारा संरक्षण तथा सवृद्धि को प्राप्त कर "हरि, हर, सिद्ध, सिद्धांत, अरहन्ताशा भूवलय" [६, १८६–१९०] धरसेन गुरु के निलय [७, १९] इस गाथा नम्वर से उद्धृत होकर धरसेनाचार्य से, अर्थात् धरसेन आचार्य करुणा के पाच गुरु की परम भक्ति से आने वाले अक्षरांक काव्य की रचना करके प्राकृत, संस्कृत, और कानडी इन तीनो का मिश्रित करके पद्धति ग्रन्थ का ईस १३–२१२ अन्तर श्रेणी के ४० श्लोक तक सस्कृत, प्राकृत, कर्नाटक रूप तीन भापाओ के शास्त्रों का निर्माण हुआ तथा इस सरलमार्ग कोष्ठक काव्य [५-१-७७] को धरसेन आचार्य के पश्चात् भूतवली ने इस कोष्ठक बन्ध अंक [८-५१] रूप में भूवलय का नूतन प्राकृत दो संधि रूप मे रचना कर गुरु उसे परम्परा तक लाये, इतना ही नही किन्तु इसके अतिरिक्त भूवलय के कर्नाटक भाग मे ही शिवकोटि [४-१०-१०२] शिवाचार्य [४-१०-१०५] शिवायन [१०७] समन्तभद्र [४-१०-१०१] पूज्यपाद [१९-१०] इनके नामो को और भूवलय के प्राकृत सस्कृत भाग श्रेणियो मे इन्द्रभूति गौतम गणधर नागहस्ति, आर्यमक्ष और कुंद कुंदाचार्यादिक को स्मरण किया है। इस समय अक राशि चक्र मे छिपे हुए साहित्य में नवीन संगति के वाहर निकल आने के वाद इसके विषय मे नये नये विचार प्रगट होंगे। हम इस समय जितना प्रगट करना चाहते थे। उतने ही, विपय को यहाँ दे रहे हैं।

श्री भूवलय को देख कर एव समझकर, प्रभावित हुआ प्रिया पट्टन के जैन ब्राह्मण अत्रेय गोत्र का देवप्पा अपने कुमुदेन्दु शतक के प्रथम अंश मे महावोर स्वामी से लेकर कुछ आचार्य का स्मरण कर उनको नमस्कार कर कुमुदेन्दु के विपय को कहा है। कि श्री वासुपूज्य त्रिविद्याधर देव के पुत्र उदय चन्द्र, इनके पुत्र विश्व विज्ञान कोविद् कीर्ति किरण प्रकाश कुमुदचन्द्र गुरु को स्मरण करते समय उद्धृत हुआ आदि गद्य—

श्री देशीगणपालितो बुधनुतह। श्री नंदिसंघेश्वरह।
श्री तर्कागमवार्धिहिम (म) गुरु श्री कुंद कुंदान्वयह॥
श्री भूमंडल राजपूजित सज्छ्री पादपद्मद्वयो।
जीयात् सो कुमुदेंदु पडित मुनिहि श्रीवक्रगच्छाधिपह॥

इस पद्य मे देवप्पा ने इसी भूवलय के कर्ता कुमुदेन्दु को देशी गण नंदिसंघ कुंद कुदाम्नाय का बतलाया है। नये गण गच्छ को निर्माण करके उन्ही को उपदेश देने के कारण सेनगण मे इन्ही को उल्लेखित किया है, और देशी-गण का भी उसी मे से विकास हुआ हो, ऐसा जान पड़ता है। इस समय भी सेन.गण के कर्नाटक प्रान्त मे जैन परम्परा के सपालक एव अनुयायी अनेक जेन विद्यमान है। और भूवलय ग्रन्थ के कर्ता कुमुदेन्दु गंग रस की विरदावली मे दिये हुए कोडवडे ग्राम तलेकात् अथवा तलेकाड नंदिगिरि को विश्व-वद्य जैनधर्म के पवित्र पर्वतो का वर्णन करते समय उनके सम्पूर्ण भाव जो नंदि पर्वत के ऊपर आदिनाथ तोर्थंकर का 'नदि' चिन्ह जो वन गया है, वह रूप उनकी प्रशान्त भावना से ओत–प्रोत है। यह वात उनके वचनों से स्पष्ट होती है।

इहके नंदियु लोक पुज्य ॥८-५५॥ महति महावीर नन्दि ।५६।
इहलोकदादियगिरिय । ६-५६। सुहुमानन्द गणितदबेट्टा ।
महसीदुमहाव्रत भरत ।६१। वहिदनुव्रत नन्दि ।७२।
सहनेय गुरुगळ वेट्ट ।७३। सहचर मूरारुमूरू ।७४।

इसका गंगराज के संस्थापक सिंह नन्दि मुनीन्द्र के द्वारा शक सं० १ ईस्वी सन् [७८] में निर्माण हुआ था। पहली राजधानी इनकी नंदिगिरि होनी चाहिए। हम ऐसा निश्चयतः कह सकते है कि प्रस्तुत कुमुदेन्दु उन्ही सिंहनंदि वंश के है। इन्ही की परम्परा का एक मठ सिंहणगद्य में है जहां जहां सेनगण है वहाँ वहाँ सब इन्हीके धर्म का क्षेत्र है। इस प्रकार संपूर्ण विषय का विचार करके दिये गए वर्णन को, जो कि देवप्पा ने दिया है, ठीक प्रतीत होता है।

भूवलय काव्य को देवप्पा ने विशेष रीति से समझ कर जनता के प्रति जो उपकार किया है वह उपकार विश्व का दसवां आश्चर्य है। इस भूवलय काव्य को, जो विश्व की समस्त भाषाओं को लिये हुए है। उनकी रचना कर उन्होंने अपने पिता को लोक में महान गौरव प्रदान किया हैं। इससे सिद्ध होता है कि कुमुदेन्दु के पिता वासु पूज्य और उनके पिता उदयचन्द थे।

कुमुदेन्दु के समय का परिचय कराने के लिये अभी तक हमें जितने भी साधन प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर हम कह सकते है कि ग्रन्थ कर्ता के द्वारा उल्लिखित पूर्व पुरुषों के नामों का उल्लेख और उनका संक्षिप्त परिचय, तथा समकालीन व्यक्तियों के नाम, समकालीन राजाओं का परिचय, श्री कुमुदेन्दु का समय निर्द्धारण मे सहायता करते है।

श्री कुमुदेन्दु से पूर्व होने वाले आचार्य धरसेन, भूतबली पुष्पदन्त, नागहस्ति, आर्य मंक्षु और कुंदकुंदादि, एवं अन्य रीति से उल्लिखित शिवकोटि, शिवायन, शिवाचार्य, पूज्यपाद, नागार्जुन ये सब विद्वान आठवी शताब्दी से पूर्ववर्ती है। उनकी परम्परा के ग्रन्थ न मिलने पर भी संस्कृत प्राकृत और कर्नाटक भाषा में लिखा हुआ विपुल साहित्य, तथा विश्वसेन भूतबली पुष्पदन्तादि की रचनाएं विद्यमान है। पर उनमें कुमुदेन्दु के काव्य समान समस्त भाषाओं को समाविष्ट कर वस्तु तत्व दिखलाने का काव्य कौशल नहीं हैं।

श्री कुमुदेन्दु के विनीत शिष्य राजा अमोघ वर्ष ने अपने 'कविराज मार्ग' में कवियों के नामों का जो उल्लेख किया है वह इस प्रकार है:—

विमलोदय नागर्जुन । समेत जय वंधुदुर्विनीतादिगळी ॥
क्रमरोळ्चिगद्या । श्रम पद गुरु प्रतीतियंके यकोन्डर् ॥

विमल, उदय, नागार्जुन, जयबंधु, दुर्विनीति कवियों में से नागार्जुन द्वारा रचित कक्षपुट तंत्र को समझा फिर नागार्जुन का 'कक्ष पुट तंत्र' जो पहले कानडी भाषा मे था वह बाद में संस्कृत में परिवर्तन कर दिया गया इस तरह इस उल्लेख से अनुमान किया जाता है कि यह दुर्विनीत के शासन समय का साहित्य ही उपलब्ध है। विमल जयबंधु का काव्य हमें उपलब्ध नहीं हुआ है तो भी नृपतुंग अमोघवर्ष के ग्रन्थ में आने वाले कर्नाटक गद्य कवि प्रिया पट्टन के देवप्पा द्वारा कहे जाने वाले कुमुदेन्दु के पिता उदयचन्द्र का नाम ही 'उदय' है ऐसा कहने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। और इस भूवलय ग्रन्थ में आनेवाले पूज्यवाद आचार्य ने कल्याण कारक ग्रन्थ को बनाया ऐसा स्पष्ट होता है। क्योंकि कुमुदेन्दु से जो पूर्ववर्ती कवि थे उनका समय सन् ६०० से बाद का नहीं है। इस ग्रंथ से हमने जो कुछ समझा है वह प्रायः अस्पष्ट है, पूरा ग्रन्थ हमें देखने को नही मिला है। किन्तु हमने जो कुछ देखा है उससे यह भली भाँति विदित है कि कुमुदेन्दु आचार्य के लिखे अनुसार वाल्मीकि नाम के एक संस्कृत कवि हो गए है। ['कवि' बाल्मीकि रस दूत अणि सूबा'] इस प्रकार कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय ग्रंथ मे शुद्ध रामायण अंक के कर्ता बाल्मीकि ऋषि के नामका उल्लेख किया है। परन्तु इनके विषय में अभी तक कुछ निर्णय नही हो सका है। कोई कहता है कि वह छठो शताब्दी के है कोई कहता है कि उसके बाद के है। इस तरह उनके समय सम्बन्ध का ठीक निर्णय नही हो सका है कि वे कब हुए हैं।

अमोघ वर्ष की सभा में वाद विवाद करके शिव-पार्वती गणित को कह कर चरक वैद्य के हिसात्मक आयुर्वेद का खण्डन किया। इस तरह कुमुदेन्दु आचार्य के द्वारा कहा गया उक्त उल्लेख अभी तक अस्पष्ट है। श्री समन्तभद्र का उल्लेख भी अभी विचारणीय है। इस कथन से स्पष्ट है कि

देन्दु के द्वारा उल्लेखित सभी कविजन छठी शताब्दी से पूर्ववर्ती है। कुमुदेन्दु के समकालीन व्यक्तियो मे से एक वीरसेनाचार्य दूसरे जिनसेनाचार्य, वीरसेनाचार्य के द्वारा पट् खण्डागम की धवला टीका बनाई गई है। और जिनसेन महा पुराण के कर्ता है। उन्होने अपनी जयधवला टीका शक सं० ७५६ मे बना कर समाप्त की है और महा पुराण भी लगभग उसी समय वे अधूरा छोडकर स्वर्गवासी हुए है जिसे उनके शिष्य गुणभद्र ने पूरा किया था अत बाद मे उस समय उनके शिष्य कुमुदेन्दु मौजूद थे ऐसा अनुमान किया जाता है।

३—कुमुदेन्दु आचार्य ने राष्ट्र कूट राजा अमोघ वर्ष को अपना यह ग्रंथ सुनाया था, ऐसा कहा जाता है। मान्यखेट के अमोघ वर्ष का समय इस से निश्चित रूप मे कहा जा सकता है। कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने ग्रन्थ मे अमोघ वर्ष के नाम का कई वार उल्लेख किया है। जैसे कि—

भारतदेशद मोघवर्षन राज्य। सारस्वतबेंबंग।८१२६।
तनल्लि मान्यखेटददोरेजिनभक्त। तानुअमोघवर्षाक।६-१४६।
सिहियखंडदकर्माटकचक्रिय। महिमेमंडलभेज्ञरांतु।६-१७२।
गुरुविनचरणधूळिय होमोघांक। दोरेयराज्य 'ळ' भूवलय॥
जानरमोघवर्षाकनसभेयोळु। क्षोणिशसर्वज्ञमतदिं॥
इह वे स्वर्गवीएंबंतेरदिम्।६१७६। वहिसि अमोघवर्षनृप॥
ऋषिगळेल्लरुएरगुबतेरदिंदळि। ऋषिरूपधरकुमुदेन्दु॥
हसनादमनदिंदमोघवर्षाकगे। हेसरिट्टुपेळ्द श्री गीतं।४५।
ऊनविल्लद काव्यदक्षरांकद काव्य। काणिपवैकुंठ काव्य।४६।
ऊनविल्लद श्री कुरुवंशहरिवश। आनंदमय वंशगळलि।
तानेतानागि भारतवाळ्दराज्यद। श्री निवासन दिव्य काव्य।
सिरि भूवलयम्नाम सिद्धांतनु। दोरे अमोघ वर्षाक नृपम्।
ईयुत कर्माट जनपदरेल्लर्गे। श्रेयोमपिलधर्मम।१६-२कु४,५।

इस प्रकार अमोघ वर्ष का अनेक प्रकार से सम्बोधन करते हुए जो उद्धरण दिये गये हैं। अमोघ वर्ष का समय ईस्वी सन् ८१४ से ८७७ तक उसने राज्य किया है, इसमे किसी प्रकार का संदेह नही है। इनके गुरु का समय ईस्वी सन् की ८ वी शताब्दी होना चाहिये ऐसा अनुमान किया जाता है। कुमुदेन्दु आचार्य ने गंग रस और उनके शंका कास्मरण किया है। और गोट्टिक नामक शैवट्ट शिवमार्ग के नामका उल्लेख भी किया गया है जैसे कि—

महदादिगांगेयपूज्य।५६। महियगन्गरसगणित।६६।
महिय कळ्वप्पुकोवळला।७१। मवरितलेकाच गंग।७२।
अरसराळिदगंगवंश।१२। त् रसोत्तिगेयवर मंत्र।१३।
एरडुवरेयद्विपदंद।१४। गरुवगोट्टिगरेलुरंद।१५।
अरसुगळाळ्दकळ्वप्पु।२०। ट्रदंगदनुभवकाव्य।२३।
आदि योळुमत्त वर्णदसेनर। नादियगंगर राज्य।
सादि अनादिगळुभयनसाधिप। गोदम निम्बद वेद।२३।

इन समुल्लेखो से यह स्पष्ट है कि आचार्य कुमुदेन्दु ने जो अमोघ वर्ष का 'शैवह' शिवमार्ग' नाम से उल्लेखित किया है वे उनके प्रारम्भिक नाम ज्ञात होते है। "शिवमार देवम् सैगोट्टनेबेरडेनये ऽपेसरमृताल्दिः, शिवमार मत तथा गजशास्त्र की रचना कर और पुनः एनेलूवदो शिवमारम। हो वलयाधिपन "सुभग कविता गुणमय' ॥ भूवलय दोल्" गजाष्टक। योगवनिगेयु "मोने के वाडु" मादुदे पेलगुम्।

इस तरह पर कानडी गद्य में गजाष्टक नाम के काव्य की रचना की है।

यह शैवट्ट वट्टिग–शुभ कविता बनाने मे प्रवीण थे। भूवलय मे गजाष्टक वणिके वास इत्यादि काव्य कूटने और पीसने के विषय मे कविता कर्नाटक भाषा मे चत्तान्न वेदन्न' ऐसे दो प्रकार के पुराने पद्य पद्धति में पाये जाते है। जो कि पुरातन काव्य की रचना शैली को व्यक्त करते है। जहां तक अमोघवर्ष के काव्य का सम्बंध है, उसमे उल्लिखित उक्तदोनों काव्य हैं। उनको इन्होने निश्चय से उपयोग किया है।

शिवमार्ग वट्टि ने दक्षिण कर्नाटक का राज्य ईस्वी सन् ८०० से ८२० तक किया हैं। इसके पश्चात् गंगरस राजा नंदगिरि, ने (लाल पुराधीश्वर) (राजा) शासन किया है। इतना ही नही, किन्तु इसके अलावा इस भूवलय में

'कडवप्पु' 'कल्ल वप्पु' (श्रवणबेलगोल) का पुरना नाम है यह ७ वीं शताब्दी के पहले के शासन में 'वड्ढारक' नामक प्राचीन ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लिखित मिलता है। यह स्थान गंग राजा के एक प्रान्त की राजधानी था ऐसा मालूम होता है। जैसे अन्य पुण्य तीर्थ है, उसी तरह इसे भी पुण्य क्षेत्र माना जाता है इस विषय का अनुशीलन किया जाय तो कुमुदेन्दु गुरु का और उनके समकालीन राजा का क्रिश्चियनशक ८१३ से ८१४ के मध्यवर्ती में सिद्ध होगा। इसे हम स्थूल रूपमें कह सकते हैं। भूवलय के आगे के अध्याय को जहां तक हो अंक पद से निकाल कर देखने के बाद मिलने वाले जितने चाहें उतने साहित्य से क्रिश्चियन शक ८१३ से ८१४ के बीच एक निश्चत समय हमें मिल जाता है। इससे कुमुदेन्दु आचार्य, क्रिश्चियन शक ८ वीं शताब्दी में हुए हैं।

वादी कुमुदचन्द्र–(ईसवी सन् ११६०) में इन्होंने जिन-संहिता नामक प्रतिष्ठाकल्प की कानडी टीका लिखी है। यह "इति माघनंदी सिद्धांत चक्रवर्ती के पुत्र चतुर्विध पंडित चक्रवर्ती श्री वादी कुमुदचन्द्र पंडित देव विरचिते" इस प्रकार उनकी स्तुति की गयी है।

पार्श्व पंडित–(सन् १२०५) यह अपनी गुरु परम्परा को कहते हुए वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, सोमदेव, वादिराज, मुनिचन्द्र, श्रुतकीर्ति, नेमिचन्द्र वासुपूज्य, शिष्य, श्रुतकीर्ति, मुनिचन्द्र, पुत्र वीरनंदि, नेमिचन्द्र सैद्धांतिक। बलात्कारगण के उदयचन्द्र मुनि, नेमिचन्द्र भट्टारक के शिष्य वासुपूज्य मुनि, रामचन्द्र मुनि, नंदियोगी, शुभचन्द्र, कुमुदचन्द्र, कमलसेन, माघवेंदु, शुभचन्द्र शिष्य, ललितकीर्ति, विद्यानंदि, भावसेन, कुमुदचन्द्र के पुत्र वीरनंदि इत्यादि मुनियों की स्तुति की है। इनमें से कोई भी कुमुदेन्दु आचार्य से सम्बन्ध नहीं रखते।

कुमुदेंदु– (ई० सन् १२७५) कुमुदचन्द्र की इस गुरु परम्परा में वीरसेन, जिनसेन (७ विद्वानों के वाद) वासु पूज्य के शिष्य अभयेन्दु के पुत्र "कुमुदेन्दु" माधवचन्द्र अभयेंदु, कुमुदेन्दु व्रति पुत्र, "माघनंदि मुनि, बालेन्दु जिनचन्द्र" यह कुमुदेन्दु मुनि भी भूवलय के कर्ता नही हैं।

महाबल कवि–(ई० सन् १२५४) इनको गुरु परम्परा में जिनसेन वीरसेन, समंतभद्र, कवि परमेष्ठी, पूज्यपाद, गृद्धपिच्छ, जटासिंहनंदी अकलंक शुभचन्द्र "कुमुदेन्दु मुनि" विनयचन्द्र, माधवचन्द्र, राजगुरु, मुनिचंद्र, बालचंद, भावसेन, अभयेंदु, माघनंदियति, 'पुष्पसेन' यह कुमुदेंदु भी भूवलय के कर्ता नही हैं।

समुदायके माघनंदी–(ई० सु० १२६०) इनकी गुरुपरम्परा में मूल संघ बलत्कार गण के वर्धमान (अनेक तले मारु के शिष्य होने के वाद) श्रीधर शिष्य वासु पूज्य, शिष्य उदयचंद्र, शिष्य कुमुदचंद्र, शिष्य माघनंदि कवि, यह कुमुदचंद्र, भी भूवलयके कर्ता नहीं है।

कमल भव–(ए० सु० १२७५) इनके द्वारा बतलाई हुई गुरु परम्परा में कोंडकुन्द, भूतवलि, पुष्पदन्त, जिनसेन, वीरसेन, (आगे २३ व्यक्तियों के और नाम कह कर) पद्मसेन व्रति, जयकीर्ति, कुमुदेन्दु योगो, शिष्य माघनंदी मुनि इस तरह छह विद्वा नों के बाद" स्वगुरु माघनंदी पंडित मुनि आदि है, इस गुरु परम्परा में तीन माघनंदी का नाम आया है। यह कुमुदेन्दु भी भूवलय के कर्ता नहीं हैं।

इसी तरह कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र नाम के और भी अनेक विद्वान हो गए है उनकी गुरु परम्परा प्रस्तुत कुमुदेन्दु से भिन्न है, और समय अर्वाचोन है, ऐसी स्थिति में अन्य नामधारी कुमुदेन्दु नाम के विद्वानों के सम्बन्ध में यहाँ विशेष विचार करने का कोई अवसर नहीं है। क्योकि उनका प्रस्तुत ग्रंथकर्ता से सम्बन्ध भी नही ज्ञात होता, अस्तु।

भाषा और लिपि

श्री कुमुदेन्दु आचार्य केकहने के अनुसार श्री आदि तीर्थंकर वृषभदेव के गणधर वृषभसेन से लेकर महावीर के गणधर इन्द्रभूति तक सभी गणधर कर्णाटक प्रान्त वाले ही थे इसलिये सभी तीर्थंकरों का उपदेश सर्व भाषात्मक उस दिव्य वाणी में हुआ था और उसी का प्रसार समस्त लोक में किया गया था। सर्व भाषात्मक उस दिव्य वाणी को प्रमाण संबद्ध रूप से व्यक्त करने की शक्ति केवल कर्नाटक भाषा मे ही है। ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के द्वारा अपनी दोनो पुत्रियों को दिया हुआ ज्ञान, कनाडी भाषा मे ही था और यह भी कहा जाता है कि उनके मोक्ष जाने के पूर्व उन्होंने बड़ी रानी यशस्वती के पुत्र भरत को साम्राज्य पद और लघु रानी सुनन्दा के पुत्र गोमट देवको पोदनपुरका राज्य प्रदान किया।

पश्चात् उनकी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी देवी ने मिलकर पिता से निवेदन किया कि हे तात ! ऐसी कोई शाश्वत वस्तु हमे भी प्रदान कीजिये। इस तरह प्रार्थना करने पर, पिता ने कहा कि ठीक है, परन्तु सभी लौकिक वस्तुएं पहले ही वे अपने पुत्रों को दे चुके थे।

भगवान् वृषभदेव ने मन में सोचा कि इनको कोई लौकिक वस्तु देने से क्या फायदा, कोई ऐसी चीज देनी चाहिए कि जो परलोकमें भी इनकी कीर्ति को कायम रखे। इस तरह सोचकर भगवान् वृषभदेवने अपनी दोनो पुत्रियों को बुलाकर संपूर्ण ज्ञान साधन के आधारभूत वस्तु इन्हे देना चाहिए, ऐसा सोचकर बुलाया और ब्राह्मी देवी को अपने जंघा पर बिठाकर उनके बायी हथेली मे अपने दायें हाथ के अंगुष्ट से संपूर्ण भाषाओं को पूर्ण करने के लिए जितना अंक चाहिए उतने ही अंक को अ से लेकर अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ- इन नौ अक्षर को ह्रस्व, दीर्घ प्लुत के सत्ताईस स्वरों तथा पुनः क, च, ट, त, प, इस वर्गके पच्चीस वर्गित के अक्षरो को य, र, ल, व, श, ष, स, ह, इन आठ व्यंजनों को तथा आगे ः, ०, ००, १०००, १०००ये चार अयोग वाहुओं को मिलाकर ६४ चोसठ अक्षर रूप, वर्णमालाओ की रचना कर उनके हाथ मे लिखा और उनको कहा कि ये अक्षर आपके नाम से यह अक्षय होकर रहे। और यह सम्पूर्ण भाषाओं को इतने ही पर्याप्त है ऐसा कहकर उनको आशीर्वाद दिया।

दूसरी अपनी सुन्दरी नामक छोटी पुत्री को दायी जंघा पर बिठाकर उनकी बाया हथेली से अपने दाये हाथ की अंगुष्ट से एक बिंदी ० इस तरह लिखकर उसी के समस्त रूप से दो छेद करके उसे ही आधा आधा छेदकर १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, लिख दिया। पुनः इसको एक मे मिला देने से पहले के समान बिंदी रूप होता है और इन छेद को एक मेकमे मिलाकर इस अंक को ही वर्ग पद्धति के अनुसार मिलाते जाने से विश्व के समस्त अणु परमाणु ग्रहण करने के लिए जितने अंक आवश्यक हो उतने ये अंक पर्याप्त है। ऐसा भगवान ने इस अंक विद्याको, पुत्री सुन्दरी देवी को समझा दिया। और तदनुसार प्रत्येक वस्तुओ को दोनो का बटवारा करके देते समय एक को एक दिया और दूसरो पुत्री को दूसरा दिया ऐसा उनके मन मे भाव न हो और उनको पता भी न पड़े इस तरह एक ही वस्तु मे दोनो को भिन्न भिन्न रूप मे बतलाकर उन दोनो को भी संतुष्ट कर दिया।

इस पद्धति के अनुसार समस्त शब्द समूह को प्रत्येक ध्वनि और प्रतिध्वनि रूप अक्षर संज्ञा को परिवर्तन करके इस अंक अक्षर को चक्रबंध रूप मे पहले ही गोम्मट देव के द्वारा अर्थात् बाहुबली के द्वारा "समस्त शब्दागम शास्त्र-रूपमें रचना किया गया है। उस दिनसे परम्परा रूपसे ही वह श्रीकुमुदेन्दुआचार्य तक चला आया है इस तरह इसमें उल्लेख किया गया है। उस समय आदि तीर्थंकर के द्वारा दिया हुआ अंक लिपिके अक्षर लिपि अलावा और भी उस समय वृषभदेव सर्वज्ञ पद (केवल ज्ञान) प्राप्त करने के बाद कहा हुआ दिव्य उपदेश भी कर्णाटक भाषामे ही कहा था श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते है। कि इस गणित भाषा मे विश्व की ७१८ भाषाओ को अपने अन्दर खींचकर समावेश करने वाले अंक भाषा शास्त्र मे उपलब्ध है ऐसा बतलाया है।

इरुव भूवलय दोळन्नुरु हदिनेन्दु। सरस भाषेगवतार।४-१७७।
वरद वादेळन्नूरहदिनेन्दु भाषेय। सरमाले यागलुम् विद्या।१०-२१०
साविर देकु भाषघळिरलिवनेल्ल। पावन यह वीर वाणी।
काव धर्मान्कवु ओंबत्तागियगि। तावु एळन्नूरकं भाषे।५०-१२६।
इदरोळु हुदगिद हदनेन्दु भाषेय। पदगळ गुणिसुत बरुवर।
वासवरेल्लाडुव दिव्य भाषेय। राशिय गणितदे कट्टिर।।
आशाधर्मामृत कुम्भदोळडगिह। श्री ज्ञानेळन्नूरक भाषे।५-१२३।
मिक्किह एळनूरु कक्षर भाषेयम्। दक्किय द्रव्यागमर।
तक्क ज्ञानव मु दकरियुव आशेय। चोक्क कन्नडद भूवलय।५-१७५
प्रकटित सर्व भाषाँक (६-१४) घनवोदळनूर हदिनेदु।

वर्तमान भाषायें (६-४५-४६) सात सौ अठारह हैं। (६-१६४) उनमें सात सो क्षुल्लक भाषायें और अठारह भाषायें कुल मिलाकर सात सौ अठारह (६-१९१) होती है।

वशवाद कर्माट दंदु भागद । रस भग दंकक्षरदसर्व ।
रसभावगळनेल्लव कुडलु वंदु । वशवेळ्तर हृदिनेंटु भाषे ॥
॥११-१७१॥

इस प्रकार ७१८ भाषाओं को गर्भित करके सरल तथा प्रौढ़ रीति से श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विश्व काव्य की रचना की है।

इस तरह अपने काव्य ग्रन्थ को सर्व भाषामय कर्नाटक भाषा में रचा है, इसमें पुरातन और नूतन दोनों भाषाओं को गर्भित किया गया है। कुमुदचन्द्राचार्य ने संयुक्त भाषा को इस तरह विवरण किया है कि संस्कृत, मागधी, पैशाची, सूरसेनी, विविध देशभेदवाली अपभ्रंश पांच ने, (५-१०-६-७-६) इन भाषाओं को तीन से गुणा करने पर अठारह होता है।

कर्नाटक, मागध, मालव, लाट, गौड, गुर्जर प्रत्येकत्र मित्यष्टादश, महाभाषा (५-६-७-६-५) इस प्रकार उल्लेख किया गया है।

सर्व भाषामयी भाषा विश्व विद्यावभासने ।
त्रिषष्टि चतुर्षष्टिर्वा वर्णाद शुभनते मता ।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ता स्वयंभुव ।
अकारादि हकारान्तां शुद्धां मुक्तावलिमिव ।
सर्व व्यंजन भेदेन द्विधा भेदमुपयुषम् ।
अयोगवाह पर्यन्तां सर्व विद्या सुसंगताम् ।
अयोगाक्षर संभूतिं नैक बीजाक्षरश्चिताम् ।
समवादिदधत् ब्राह्मी मेधा विन्धति सुंदरी गणितं ।
स्थानंक्रमः सम्यक् दारयत् ततो भगवतो वक्तार मिह श्रुताक्षरावलि, दभः इति व्यक्त सुमंगला सिद्ध मातृकं से भूवलय ।
(५,१,२,२,१,४,५)

इस संस्कृत गद्य में आचार्य कुमुदेन्दु ने सर्व भाषामयी भाषा का निरूपण किया है। और अंक लिपि में सात सौ अठारह भाषाओं में से प्रत्येक का नामोल्लेख किया गया है। ब्राह्मी, पवन, उपरिका, वराटिका, वजीद, खरसायिका प्रभृतुका, उच्चतारिका, पुस्तिका, भोगवता, वेदनतिका, नियंतिका, अंक गणित गन्धर्व, आदर्श, माहेश्वरी, द्रामा, बोलधो, इस प्रकार के विचित्र नामादि का उल्लेख कर विवेचन किया गया है। आचार्य कुमुदेन्दु ने अपने भूवलय में सात सौ अठारह भाषाओं में से निम्न भाषाओं का उल्लेख किया है, कर्नाटक मे प्राकृत, संस्कृत, द्रविड़, अन्ध्र, महाराष्ट्र मलयालम, गुर्जर, अंग, कलिंग, काश्मीर कम्बोज, हमीर, शौरसेनी वाली, तिब्बति, व्यंग; बंग, ब्राह्मी, विजयार्ध, पद्म, वैदर्भ, वैशाली, सौराष्ट्र, खरोष्ट्री, निरोष्ट्र, अपभ्रंश, पैशाचिक, रक्ताक्षर, अरिष्ट, अर्धमागधी, (५-१०-२८-१०-५८) इनके अलावा और भी बतलाते हैं—

आरस, पारस सारस्वत, वारस, वस, मानव, लाट, गौड, मागध, विहार उत्कल कान्यकुब्ज, वराह, वैस्रमण, वेदान्त, चित्रकर और यक्ष राक्षस, हंस, भूत, ऊइया, यव, नानी तुर्की, द्रमिल, सैन्धव, मालवणिया, किरिय, देव नागरी, लाड, पारसी अमित्रिक, चाणिक्य, मूलदेवी इत्यादि (५-२८-१२०) इस प्रकार आने वाली भाषा लिपियों को इस नवमांक समंज्ञ नामक कोष्टक को एक ही अंक लिपि मे ही बांधकर उन सम्पूर्ण भाषाओं को इस कोष्टक रूप बंधाक्षर के अन्तर्गत समाविष्ट करके सभी कर्माटकके अनुराशिमे मिश्रित कर छोड़ दिया है। कुमुदेन्दु के समान अन्य किसी महापुरुष मे सम्पूर्ण भाषाओ को एक ही अंक में गर्भित कर काव्य रूप मे गुंफित करने की शक्ति नही है ऐसा मै निश्चय से कह सकता हू।

भूवलय ग्रन्थ की परम्परा इतिहास

भूवलय नामक विश्व काव्य की परम्परा को कुमुदेन्दु आचार्य ने इस प्रकार बताया है कि प्राचीन काल में आदिनाथ तीर्थंकर ने अपने राज्य को, अपने पुत्र भरत और बाहुबली को बटवारा करके देते समय उनकी पुत्रि ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनों पुत्रियों को सम्पूर्ण ज्ञान के मूल ऐसे अक्षरांक को पढाया था इस बात का हमने उपर्युक्त प्रकरण मे ही समझा दिया है। दोनों बहिनों को पढाया हुआ अक्षरांक गणित-ज्ञान-विद्याको भरत ने सीखने की इच्छा व्यक्त नहीं की।

विचार पराप्त गोमट देव—

रुणनु दोर्बलियवरक्क व्राह्मोयु । किरिय सौंदरि अरितिर्द
अररत्नाल्काक्षर नवमांक सोन्नेय। परिहर काव्य भूवल

मनविट्टु कलितनाद कारणदिंद। मन्मथ नेनिसिदे देव।।

इस अक्षर अंक गणितको मनःपूर्वक सीखने वाले होने के कारण बाहुवली का नाम मन्मथ भी इसी तरह पड़ा है ऐसा इस श्लोक से प्रतीत होता है। इसलिए इसके निमित्त से इस अंक गणितके कर्ता बाहुवली को माना है। इस अंक चक्र का उपदेश बाहुवली ने जब बड़ा भाई भरत के साथ आठ प्रकार का युद्ध हुआ था उस समय अपने भाई का अपमान करने के प्रति उनके मन में वैराग्य हुआ था उस वैराग्यमें अंत समयमें भरत चक्रवर्तीने समझा कि ये तो अब मुनि होकर कर्म का क्षय करके मोक्ष चला जायगा। इस लिए इन से कुछ दान मांगना चाहिये। इस तरह उनको उन्होने कहा। तब बाहुवली पूर्णतया विरक्त होने के कारण उनके पास कुछ चीज देने योग्य नहीं थी। और आहार दान, शास्त्र दान, औषध दान और अभय दान के अतिरिक्त और कोई दान देने योग्य नही था। परन्तु मन में यह विचार किया कि मेरे पिता ने जो मुझे शास्त्र दान दिया है। उसी को मेरे भाई को देना उचित है। अन्य तीन दान मेरे द्वारा देने योग्य नहीं। ऐसा विचार करके अपने पिता के द्वारा अपनो दोनो बहिनो से समझी हुई "अक्षरांक समन्वय पद्धति" का आदीश्वर भगवान ने अपने को उपदेश किया था वैसा ही सम्पूर्ण ज्ञान को सर्व भाषामयी ज्ञानमे जैसे अन्तर्मुहूर्त क कहा था उसी तरह इस संदर्भ को जैसा कि श्री कुमुदेन्दु आचार्य नें भूवलय के पहले अध्याय के उन्नीसवें श्लोक मे कहा है कि—

लावण्य दंग मेय्याद गोमट देव। आवागतन्न अण्णनिगे।
ईवाग चक्रबंधद कट्टिनोळ् कट्टि। दाविश्वकाव्य भूवलय।।

इस प्रकार कहे हुए समस्त कथन पर से और कुमुदेन्दु आचार्य के मतानुसार इस भूवलयके आदि कर्ता गोमटदेव ही हैं। इस काव्यको भरत बाहुबली युद्धके बाद जब बाहुबली को वैराग्य हो गया, तब उन्होंने ज्ञान भंडार से भरे हुए इस काव्य को अन्तमुंहूर्त मे भरत चक्रवर्ती को सुनाया था। वही काव्य परम्परा से आता हुआ गणित पद्धति अनुसार अंक दृष्टि से कुमुदचन्द्राचार्य द्वारा चक्रबंध रूप में रचा गया है।

यशस्वति देविय मगळाद ब्राह्मीगे। असमान कर्माटकद।
'रिसियु' नित्यवु अरवत्नाल्कक्षर। होसेद अंगय्य भूवलय।
करुणेयम् बहिरग साम्राज्य लक्ष्मिय। अरुहनु कर्माटकद।
सिरिमातायतंते ओंदरिंपेळिद। अरवत्नाल्क भवलय।।
'धर्म ध्वज' वदरोळु केतिदचक्र। निर्मलदष्टु हूगळम।
सर्व मनदगल' केवत्तोंदु सोन्नेय। धर्मद कालुलक्षगळे।।
आपाटियंक दोळ् ऐदुसाविर कूडे। श्रीपाद पद्म दंगदल।।

१-२३-३०-६५-६

यह चक्र ५१०२५०००+५०००=५१०,३०००० दल अंक रूप में अक्षर होकर गणित पद्धति के अनुसार रचना की है इस काव्य को ही कुमुदेन्दु आचार्य ने स्पष्ट रूप में कहा है।

अनादि काल से यह चक्रवद्ध काव्य आदि तीर्थंकर से लेकर महावीर तक इस की परम्परा बराबर चली आई है। जब भगवान महावीर को केवलज्ञान हो गया तब महावीर की वह दिव्य वाणी (दिव्य ध्वनि) सर्व भाषा स्वरूप होने लगी। उस समय महावीर के सबसे प्रथम गणधर इन्द्रभूति ब्राह्मण कर्नाटक, संस्कृत, प्राकत आदि अनेक भाषाओ के विद्वान थे, उन्होने ही महावीर की वाणी का अवधारण कर भव्य जीवों को वस्तु स्वरूप समझाया था। गणधर के विना महावीर की वाणी ६६ दिन तक बन्द रही, क्योकि यह नियम है कि तीर्थङ्कर की वाणी विना गणधर के नही खिर सकती। भगवान महावीर के मोक्ष जाने से पूर्व तक गौतम इन्द्रभूति ने उनकी वाणी का समस्त संकलन करके राजा श्रेणिक और चेलना रानी एवं अन्य सभा के लोगों को उसका भान कराया था। इसके बाद आचार्य परम्परा से जो पुराण चरित एवं कथा साहित्य तथा सिद्धांत ग्रन्थ रचे गए वे सब महावीर की वाणी के अनुरूप थे ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय ग्रन्थ मे प्रकट किया है।

आचार्य कुमुदेन्दु ने नवमांक से जो गणित मे काव्य रचना की है उसे 'करण सूत्र' नामसे प्रकट किया हैं। इसके सम्बन्ध मे दो तीन श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

नवकार मंतर दोळादिय सिद्धांत । अवयव पूर्वेय ग्रंथ ।
दवतार दादिमद् 'अ' क्षरमङ्गल । नव अअअअअअअअअ ।
वशगोंड 'आदि मङ्गल प्राभृत' । रसद् 'अ' अक्षरवदु तानु ।२-१३१।
अष्ट कर्म गळम् निर्मूल माळ्प । शिष्टरोरेद पूर्वकाव्य ।३-१५२।
तारुण्य होंदि 'मङ्गल प्राभृत' दारदंददे नवनमन ।४-१३२।
परम मंगल प्राभृत दोळु अकंव । सरिगूडि बरुव भावेगळम्।५-७६
वेदद हदिनाल्कु पूर्व श्री दिव्यकरण सूत्रांक ।१०-१०.११।
श्री गुरु 'मंगल पाहुडदिम् पेळ्द। राग विराग सद्ग्रंथ।१०-१०५
रस वस्तु पाहुड मंगलरूपद । असदृश वैभव भाषे ।१०-१९५।

इस पाहुड ग्रन्थमें आगे भी कहा है । कि (१०-२१२) जिनेन्द्र वाणी के प्राभृत (१००-२३७) रसके मंगल प्राभृत मंगल पर्याय को पढ़कर (११-४३) मंगल पाहुड (११-९२-९२) इत्यादि

तुसु वाणिय सेविसि गौतम ऋषियु । यशद भूवलयादि सिद्धांत ।
सुसत गळभरके कावें ब हन्नेरड् । ससमांगवनु तिरहस्तद।१४-५।

इस प्रकार गौतम गणधर द्वाराही सबसे पहले यह भूवलय ग्रन्थ ५ भागों में द्वादशांग रूपसे रचना किया गया था और उसे 'मंगल पाहुड' के रूपमें उल्लेखित भी किया था। इस कारण इस ग्रन्थ की रचना महावीर के निर्वाण से थोड़े समय बाद में ही हो गई थी। इस समय भगवान महावीर के निर्वाण समय को २४८४ वर्ष व्यतीत हो गए। महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष बाद विक्रम संवत् शुरू हो जाता है। यद्यपि गौतम बुद्ध और भगवान महावीर समकालीन है, दोनों का उपदेश राजगृह में दो भिन्न स्थानों पर होता था, परन्तु वे अपने जीवन में परस्पर मिले हो ऐसा एक भी प्रसग परिज्ञात नही है। और न उसका कोई समुल्लेख ही मिलता है। परन्तु यह ठीक है कि महावीर का परिनिर्वाण गौतम बुद्ध से पूर्व हुआ था। इस चर्चा का प्रस्तुत विषय से कोई विशेष सम्बन्ध नही है, अतः यहां प्रकृत विषय मे विचार किया जाता है—आचार्य कुमुदेन्दु ने भगवान महावीर के समय के सम्बन्ध मे 'प्राणवायुपूर्व' मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

साविर दोंडुवरे वर्षगळिंद । श्री वीर देव निम्बद ।
पावन सिद्धांत चक्रेश्वर रागि । केवलिगळ परंपरेयिम् ।३।
हूविना युर्वेद दोळु महाव्रत मार्ग । काव्यवुसुखदायकवेन् ।
दाव्यक्तदस्युदय वनयशरेयव । श्री व्यक्तदिद सेबिसिद ।४।

यह विश्व काव्य भगवान महावीर के निर्वाण से लेकर आचार्य परम्परा द्वारा डेढ हजार वर्षों से बराबर चला आ रहा था। उसी के आधारसे की गई कुमुदेन्दुको यह रचना विक्रम की नौवीं शताब्दी की मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

भूवलय के छंद

कुमुदेन्दु आचार्य के समय मे भारत मे जो काव्य रचना होती थी उसमें विभिन्न छन्दों का उपयोग किया जाता था। कुमुदेन्दुने, दक्षिण उत्तर श्रेणी को मिलाकर अपने शिष्य अमोघ वर्ष के लिए अनेक उदाहरणो के साथ नयी और पुरानी कानडी मिलाकर प्रौढ़ और मूर्खजनों के हित के लिए उक्त रचना की थी, क्योकि पूर्व समय में पुरानी कानड़ी का प्रचार उत्तर भारत के प्रायः सभी स्थानों पर होता था, और दक्षिण में तो था ही। कुमुदेन्दु आचार्य ने ग्रन्थ रचना करते समय इस बात का ध्यान जरूर रक्खा था कि किसी को भी उससे बाधा न पहुंचे। इसलिये सर्व भाषामय बनाने का प्रयत्न किया है। अतएव उभय कर्नाटक भाषाओ में ही सर्व भाषाओं के गर्भित करने का प्रयत्न किया गया है। भूवलय के कानडी श्लोक के विषय मे ग्रन्थकर्ता ने यह दर्शाया है कि जनता के आग्रह से उन्होने कर्नाटक भाषा में रचने का प्रयत्न किया है और उसे सुगम बनाने के लिये ताल और क्रम के साथ सांगत्य छन्द में लिखा है, तथा श्लोक १२३-१२४ का उल्लेख किया है।

लिपियु कर्माटक वागलेवेकेंव । सुपवित्र दारिय तोरि ।
सपताळ लयगूडि 'दारु साविर सूत्र'। दुपसवहार सूत्रदलि ।।
वरद बागिसि अति सरल बनागि । गौतमरिंद हरिसि ।
सर्वाकदरवत्नाल्क्षरदिंद । सारि श्लोक 'आरुलक्षगळोळ्

कुमुदेन्दु आचार्य ने इस काव्य-ग्रन्थकी ताल और लय से युक्त छह हजार तथा छह लाख श्लोको मे रचना की है ऐसा उन्होंने स्वयं उल्लेखित किया है

कुमुदेन्दुके शिष्य नृपतुङ्गने अपने कविराजमार्ग मे तथा पूर्व कवि लोग अपनी कविता मे 'चत्तन्न वेदडा' नाम की पद्धति मे रचना की है। कुमुदेन्दु ने अपने काव्य को 'चत्तन्न वेदडा' पूर्व कवि कथित मार्ग से मिश्रित करके आगे बढा दिया है। चत्तन्न को चार भाग मे—और वेदंड को १२ अध्याय से १२ वे अध्याय के अत तक अन्तर्गत रूप दडक रूप गद्य साहित्य मे रचना करके नृप तु ग के पहले कर्नाटक छन्द को दर्शाया है। कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने काव्य मे कहा है कि :—

मिगिलादतिशय देळ्नूर हदिनेंटु । अगणित दक्षरभाषे ।६-१९८।
शगणादि पद्धति सोगसिम् रचिसिहे । मिगुवभाषेयु होरगिल्ल ।
चरितेयसांगत्य वेने मुनि नाथर । गुरु परंपरेय विरचित।६-१९६।
चरितेय सांगत्य रागदोळउगिसि । परतंद विषय गळेल्ल।७१९२।
वशवागदेल्लर्गि कालदोळेंव । असदृश ज्ञानद् सॉगत्य ।
उसहसेनरु तोरुवदु असमान। असमान सॉगत्य वहुदु।६-१२३-१२२।

यह काव्य 'चत्तन्न' होने के कारण इसका विशेप निरूपण करने की जरूरत नही रही। उसका उदाहरण थोडा-सा यहाँ दिया जाता है।

स्वति श्री मद्रामराज गुरू भूमडलाचार्य एकत्वभावनाभावितरु उभय नय समग्ररु गुप्तरू चतुष्कपाय रहितरु पचव्रत समय तरु सप्त तत्व सरोजिनी राजहंसरु अष्टमद भजतरु, नव विधावालवह्मचर्यालकृतरु-दशधर्म समेत द्वादश द्वादशॉग श्रुतरु पारावारु चतुर्दश पूर्वादिगुरुरलं।

इस प्रकार १२ [अ] और ३१ अध्याय से ५० श्रेणी मे उसका विभाजन किया है।

भूवलय की काव्यवद्ध रचना

कुमुदेन्दु ने अपने काव्य को अक्षरो मे नही लिखा है, किन्तु पूर्व मे कहे हुए गौतम गणधर के मंगल प्राभृत के समान इसी पाहुड ग्रन्थ को आचार्य विश्व सेन के लिखे हुए के समान, इनके सभी साहित्य का आधार रखते हुए कन्नड़, सस्कृत, प्राकृत मे भूतवली आचार्य द्वारा लिखे हुए समान, अथवा नागार्जुन आचार्य द्वारा लिखे हुए कक्षपुट गणित के समान अंको मे गणित पद्धति से गणना कर गुणन करके अंकों मे लिखा है।

ओदिनोळत मुहूर्तदि सिद्धांत । दादि अंत्य बनेल्ल चित्त ॥
साधिप राज अमोघ वर्षनगुरु । साधिपश्रमसिद्ध काव्य ।६-१९५।

पूर्वाचार्यो के समान इन्होने ४६ मिनट मे ग्रन्थ को रचना की है, ऐसा उल्लेख किया गया हे। यह सर्व भापामयी, काव्य मूढ और प्रौढ़ सभी लोगो को लक्ष्य मे रखकर सरल भाषा मे रचा गया है। सात सो अठारह भाषाओं को काव्य मे निहित करते हुए कही-कही चक्रबद्ध और कही-कही चिन्हवद्ध काव्यो से अलंकृत किया गया है पहले यह ग्रन्थ मूल कानड़ी भापा में छपा है उसमे मुद्रित ग्रन्थ के पद्यो मे श्रेणिवद्ध काव्य है। उस काव्य वध मे आने वाले कन्नड काव्य के आदि अक्षरो को ऊपर से लेकर नीचे पढते जाय तो प्राकृत काव्य निकलता है और मध्य मे २७ अक्षर वाद ऊपर से नीचे को पढ़ने पर संस्कृत काव्य निकलता हे। इस तरह पद्यवद्ध रचना का अलग-अलग रीति से अध्ययन किया जाय तो अनेक वध मे अनेक भापा निकलती है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।

बधों के नाम

चक्रवध, हसवध, पद्म, शुद्ध, ववमाकवध, वर पद्मवध, महापद्म, द्वीप सागर, पल्लव, अम्बुवध, सरस, सलाक, श्रेणी, अक, लोक, रोम कूप, क्रौंच मयूर, सीमातीतादि वध, काम के पद्म वध, नख, चक्रवंध, सीमातीत गणित वंध, इत्यादि वधो से काव्य रचा गया है। यह काव्य आगे चलकर अंक बंध से निकल कर इसमे क्रम से सभी विपय पल्लवित हो सकेगे। आचार्य कुमुदेन्दु की धार्मिक दृष्टि का इससे अधिक दिग्दर्शन कराने की जरूरत नही है। इस भूवलय में—वेदंड मे—तर्क व्याकरण, छंद-निघंटु अलंकार काव्य धर, नाटकाष्टाँग, गणित, ज्योतिप सकल शास्त्रीय विद्यादि सम्पन्न नदी के समान गम्भीर महानुभाव, लोकत्रय मे अग्रसर गारव विरोध रहित, सकल महीमंडलाचार्य तार्किक चक्रवर्ती शत विद्या चतुर्मुख, पट्तर्क विनोदर, नैयायिक वादि, वैशेषिक भापा प्राभृतक, मीमांसक विद्याधर सामुद्रिक भूवलय सम्पन्न। इस तरह वेदड की गद्य मे रचना की गई है।

इस प्रकार कह कर अपने और अपनी विद्वत्ता के विषय मे भी विवेचन किया गया है। इस कारण लोक मे उन्हे, समतावादी, सकलज्ञानकोविद रूप-

से भी किन्हीं ने उल्लेख किया है। आचार्य कुमुदेन्दु ने जैन मत-सूत्रों के अभिमान से इतर मतों के अभिप्रायों को ठुकराया नहीं। इतर मतों का बहुत दिनों तक पूर्वजों की निधि समझकर उस साहित्य को एक प्रकार से तुलनात्मक रीति से सिद्ध करके बतलाया है। तुलना करते हुए कही भी विषमता को स्थान नही दिया है। किन्तु अगाध प्रमाणों को सामने रखते हुए उस उपकार को उपयोग मे लाकर केवल वस्तु तत्व का विवेचन मात्र किया गया है और इसके सिवाय उन्होंने अन्य किसी तरह का कोई आक्षेप प्रत्याक्षेप रूप में कोई कथन नही ही किया है और आगे या पीछे होने वाले विपर्यास को ध्यान मे रखते हुए मोती के समान निर्मल बुद्धिरूपी धागे मे उसे पिरोया गया है।

जहां तक मै जानता हूँ यह काव्य अत्यन्त प्राचीन है और भारतीय साहित्य में ऐसा अनुपम काव्य (ग्रन्थ) अभी तक कोई उपलब्ध नही हुआ है। अतः इसे सबसे महान् काव्य कहने में कोई आपत्ति नही है।

मूल ग्रन्थ

कुमुदेन्दु आचार्य द्वारा स्वयं हस्त द्वारा लिखी हुई इस ग्रन्थ की मूल प्रति उपलब्ध नहीं है और यह उपलब्ध प्रति किसके द्वारा लिखी गई हैं यह भी ज्ञात नही हैं। अन्य समकालीन, पूर्व या पश्चाद्वर्ती किसी कवि ने उनका उल्लेख भी नहीं किया है जिससे उनके सम्बन्ध में विशेष रूप से यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया जाता। केवल उनकी कृति भूवलय ग्रन्थ मे ही उनका नामोल्लेख होने से उनका नाम नवीन रूप से परिचय में आया है। अतः विद्वान लोग उस काल की ग्रन्थ राशि और शासन-सामग्री का यदि परिशीलन करें तो तत्कालीन इतिहास और ग्रन्थकर्ता एवं ग्रन्थ की महत्ता के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु जिन्होंने इस ग्रन्थ का अध्ययन किया है, कराया है। उन्होंने ही इसकी महत्ता को समझा और अनुभव किया है। माता कव्वे, प्रिया पट्टन के जैन ब्राह्मण कवि, और कन्नड कवि रत्न के पोषक, दान चिन्तामणि के पोषक अत्तिमव्वे के समान, मल्लिकव्वे नामकी महिला ने इस भूवलय स्वरूप धवल जयधवल, महा धवल, विजय धवल और अतिशय धवल इत्यादि ग्रन्थों के साथ इस महान ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराकर इस महान् सिद्धान्त ग्रन्थ को गुण भद्राचार्य के शिष्य माघनंद्याचार्य को अपने ज्ञानावरणी कमक्षयार्थ प्रदान किया था, ऐसा ग्रन्थ की अन्तिम लिपि प्रशस्ति से जाना जाता है।

अनूनधरमज नाम का प्रसिद्ध—

महनीय गुणनिधाम् । सहजोन्नत बुद्धिविनय निधिये नेनेगळ्दम् ।
महिविनुत कीर्ति कांतेय । महिमानम् मानिताभिमानम् सेनम् ।।

इस सेन की स्त्री—

अनुपम गुणगण दाखवर् । मनशील निदानेयेनिसिर्जिन पदसक्ते ।
कनदाशली मुखळेनेमा । ननधि श्री मल्लिकब्बे ललनारत्नम् ।।
अवनितातनदपेम् । पावनगम् योगळ लरि दुजिन पूजयना ।
नाविधद दानद मळिन । भावदोळाम् मल्लिकब्बयम् पोल्लवरार् ।
विनयदे शीलदोळ् गुणदोळादिय पेंपिनिम् पुट्टिद मनो ।
जन रति रूपिनोळ् खणियेनिसिर्द । मनोहर वप्पु दोंदरू ।।
पिन मनेदान सागर मेनिप्पवधूत्त मेयप्पसंदसे ।
ननसति मल्लिकब्बे धरत्रियोळार्दोरेसदगुणंगळोळ् ।।
श्री पंचमियम् नोंतु । द्यापनेयम् माडिबरेसि सिद्धांतभना ।।
रूपवती सेन वथुचित । कोप श्री माघनंदियति पतिगित्तळ् ।।

इस मल्लिकव्वे के द्वारा प्रतिलिपि की हुई प्रति 'दान चिन्तामणि' मेरे पास है। इस महिला ने ग्रन्थ को स्वयं पढ़कर और दूसरों को पढ़ाकर स्वयं मनन और प्रचार किया, ऐसा मालूम होता है। इस ग्रन्थ को पढ़कर उससे प्रभावित होकर प्रिया पट्टन के देवप्पा ने अपने लिखे हुए कुमुदेन्दु शतक में निम्न रूपमें उल्लेख किया है—

विदितविमलनानासत्कलान् सिद्ध मूर्तिहि ।
'य ल भू' कुमुदेंदो राजवद् राजतेजम् ।।
इमाम्यलवलेककुमुदेंदुप्रशस्ताम् ।
कथाम् विश्रुण्वंतिते मानवाश्च ।।

सुनय श्रेयसभसंख्यमश्नन्ति भद्रम् ।
शुभम् मंगलम् त्वस्तु चास्याह कथायाह ।।१०२।।

देवप्पाका हमे कोई विशेष परिचय प्राप्त नही है जिससे उनके विषयमे विचार किया जाय। देवप्पा ने ऊपर के पद्य मे कुमुदेन्दु मुनि के विषय मे ('य ल् व भू' य ल वलय') जो कुछ भी कहा है उससे ज्ञात होता है कि आचार्य कुमुदेन्दु वडे भारी तेजस्वी महात्मा थे और उनका यह ग्रन्थ आदि मध्य और अन्तिम श्रेणी में विभक्त है, जो प्राकृत संस्कृत के महत्व को लिए हुए है। संस्कृत प्राकृत और कानडी, इन तीनो की श्रेणियो का यदि चिन्तन किया जाय तो ज्ञात होगा कि य ल व भू और यल वलय उनके नामहै जिनका उसमे कथन निहित है अथवा देवप्पा कुमुदेन्दु आचार्य के समय के नजदीक होने के कारण इनके माता पिता के नाम के साथ उन्हे जन्म स्थान का नाम भी ज्ञात था, ऐसा जान पडता है। देवप्पा के अनुसार अथवा कुमुदेन्दु के कहे अनुसार वह नदिगिरि निश्चय से पर्वत के शिखर पर था ऐसा निश्चय किया जाता है। इस महात्मा के द्वारा कहे जाने वाले गाँव बेगलूर ततः चिक्क वल्लापुर के मार्ग मे होने वाले नंदी स्टेशन के नजदीक है। यही ग्राम और यही क्षेत्र कुमुदेन्दु की जन्मभूमि ज्ञात होती है। कुमुदेन्दु की जन्म भूमि के सम्बन्ध मे और भी विचार किया जा रहा है।

ग्रन्थ की उपलब्धि

संसार का दशवाँ आश्चर्य स्वरूप महान ग्रन्थ भूवलय आज से लगभग २० वर्ष पहले पूज्य आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज ने बेगलोर मे श्री एलप्पा जी शास्त्री के घर पर आहार ग्रहण करने के अनन्तर देखा था, परन्तु अंक रूप मे अकित होने के कारण उस समय इस ग्रन्थ का विषय आचार्य श्री को ज्ञात न हो सका, अत. उस समय इस महान् ग्रन्थ का महत्व महाराज अनुभव न कर सके।

श्री एलप्पा शास्त्री को यह ग्रन्थ अपने श्वशुरके घरसे प्राप्त हुआ था। उनके श्वशुर को यह ग्रन्थ कहाँ से किस प्रकार प्राप्त हुआ, यह बात मालूम न हो सकी।

भूवलय ग्रन्थ मे एक कानडी पद्य आया है। उसके अनुसार सेठ श्रीषेण की पत्नी श्री मल्लिकव्वे ने श्रुत पंचमी व्रत के उद्यापन मे धवल, जय धवल, महा धवल, अतिशय धवल तथा भूवलय ग्रन्थराज लिखाकर श्री माघनन्दि आचार्य को भेट किये थे। धवल, जयधवल, महाधवल ग्रन्थ मूड विद्री के सिद्धान्त वस्ति भण्डार मे विद्यमान है। संभवतः भूवलय ग्रन्थ भी उसी सिद्धान्त वस्ति भण्डार मे विराजमान होगा। श्री एल्लप्पा शास्त्री के श्वशुर के घर पर यह ग्रन्थ किस तरह पहुचा, यह रहस्य की बात अज्ञात है। अस्तु।

श्री एल्लप्पा शास्त्रीजी ने महान् परिश्रम करके अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से भूवलय के अको का अक्षर रूप मे परिवर्तित करके कानड़ी लिपिमे लिख डाला तव इस ग्रन्थ का महत्व जनता के सामने आया। यदि यह ग्रन्थ कानड़ी लिपि मे ही रह जाता तो उसका परिचय दक्षिण प्रान्त मे रहता, शेष समस्त भारत की जनता उससे अनभिज्ञ ही रह जाती। प्राचीन साहित्य के उद्धार मे रुचि रखने वाले, अनेक प्राच्य ग्रन्थो को प्रकाश मे लानेवाले, सतत ज्ञानोपयोगी, विद्यालकार आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने श्री एलप्पा शास्त्री के सहयोग से इस भूवलय ग्रन्थ के प्रारम्भिक १४ अध्यायो का हिन्दी भाषा मे अनुवाद करके देवनागरी लिपि मे प्रकाशित कराने की प्रेरणा की, उसके फलस्वरूप भूवलय के मगल प्राभृत के १४ अध्याय जनता के समक्ष आये हैं।

इस महान अद्भुत ग्रन्थ को जब भारत के महामहिम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी को श्री एल्लप्पाजी शास्त्री ने भेंट किया तो राष्ट्रपतिजी ने इस ग्रन्थ को सुरक्षित रखने के लिए भूवलय को राष्ट्रीय सम्पत्ति बना लिया। मैसूर राज्य की ओर से इस ग्रन्थ को इंग्लिश अको मे परिवर्तित करने के लिये श्री एल्लप्पा जी शास्त्री को १२ हजार रुपये प्रदान किये गये। उस आर्थिक सहायतासे इस ग्रन्थ का अगरेजी अकाकार निर्माण हो रहा है।

जैन समाज तथा भारत देश के दुर्भाग्य से श्री एल्लप्पाजी शास्त्री का गत मास दिल्ली मे शरीरान्त हो गया, अत. अब इस ग्रन्थ के अग्रिम भाग के प्रकाशन मे बहुत भारी अडचन आ गई है। यदि भारत सरकार का सहयोग पूज्य आचार्य श्री को मिल जावे तो इस ग्रन्थ का अग्रिम भाग प्रकाशन मे आ सकता है।

भूवलय का परिचय

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलयग्रन्थ में पंच भापा मयी गीता का समावेश किया है, उन्होने गीता का प्रादुर्भाव श्लोकों के प्रथम अक्षर से ऊपर नीचे की ओर लेजाते हुए किया है, जिसकी प्रथम गाथा **'अट्ठवियकम्मवियला'** आदि है। तदन्तर अपनी नवमांक पद्धति के समान–

भूवलय सिद्धांतदइघतेळु। तावेल्लवनु हौदिसिरुव ॥
श्री वीरवाणियोळ्बह"इ,' मंगलकाव्य। ई विश्वदूर्ध्वलोकदलि ॥

इसमे चक्रबन्ध है, जिसमे कि २७ कोष्ठक है उन कोष्ठको मे से बीच का अंक '१' है जिसका कि सकेताक्षर 'अ' है। 'अ' से नीचे (सब से नीचे) गिनने पर १५ आता है १५ मे ५८ संख्या है जिसका कि संकेत अक्षर 'ष्' है उसके ऊपर के तिरछे कोठे मे आने पर ३८ संख्या है जिसका कि सकेताक्षर 'ट्' है। उसके आगे के कोठे में '१' आता है जिसका सकेत अक्षर 'अ' है इन तीनों अक्षरों को मिलाने पर **'अष्ट'** बन जाता है।

इस चक्र बन्ध को नीचे दिखाते हैं –

यह प्रथम चक्र-बन्ध है इसके अनुसार आये हुए अंको को अक्षर रूप करके पढ़ा जाता है। इस प्रकार कनड़ी श्लोक प्रगट होते है उन कनड़ी श्लोको के आद्य अक्षरो को नीचे की ओर पढ़ने से **'अट्ठवियकम्मवियला'** आदि प्राकृत भाषा की गाथाएँ प्रगट होती है। उस कानड़ी श्लोको के मध्य मे स्थित अक्षरों को नीचे की ओर पढ़ने से **ओंकार 'विन्दुसंयुक्त'**, आदि संस्कृत श्लोक प्रगट होता है जो कि भूवलय का मगलाचरण है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय मे जो गीता लिखी है वह उन्होने आधुनिक महाभारतसे न लेकर उससे प्राचीन **'भारत जयाख्यान'** नामक काव्य ग्रन्थ से ली है, ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने लिखा है। उस गीता को चक्रबन्ध पद्धतिसे प्रगट किया है। प्राचीन लुप्त हुए जयाख्यान काव्य के भीतर आये हुए गीता काव्यको उद्धृत किया है, उस गीता का अन्तिम श्लोक निम्नप्रकार है—

'चिदानन्दघने कृष्णेनोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम्।
वेदत्रयी परानन्दतत्त्वार्थऋषिमण्डलम् ॥

इस प्रकार प्रथमाध्याय को समाप्त करके दूसरे अध्याय का प्रारम्भ निम्नलिखित रूप से किया है–

'अथव्यासमुनीन्द्रोपदिष्ट जयाख्यानान्तर्गत गीता द्वितीयोऽध्याय':
इस गद्य से प्रारम्भ करके गोम्मटेश्वर द्वारा उपदिष्ट भरत चक्रवर्ती को तथा भगवान नेमिनाथ द्वारा कथित कृष्ण को तथा उसी गीता को कृष्ण ने अर्जुन को सस्कृत भापामे कहा गोम्मटेश्वर ने भरत को प्राकृत भाषा मे और भगवान नेमिनाथने कृष्ण को मागधी भाषा में कहा था। जिसका प्रारम्भिक पद्य निम्नलिखित है।

'तित्थणबोधमायगमे' आदि

('अ' अध्याय १६वीं श्रेणी)

नेमिगीता मे तत्वार्थ सूत्र, ऋषि मण्डल, ऋद्धि मन्त्र को अन्तर्भूत करके भगवान नेमिनाथ द्वारा कृष्ण को उपदेश किया गया है।

एल्लारगीरव ते केळेंदु श्रेणिक। गुल्लासदिंदगौतमनु ॥
सल्लीलेयिंदलि व्यासरुपेळिद। देल्लतीतदकथेय ॥१७-४४॥

व्याससे लेकर गौतम गणधर द्वारा श्रेणिक को कही हुई कथा को आचार्य कुमुदेन्दु कहते है।

ऋषिगळेल्लरु एरगुवतेरदिंदलि। ऋषिरूप धर कुमुदेंदु।
हसनादमनदिंद मोघवर्षांकिगे। हेसरिददु पेळ्द श्रीगीते॥
॥१७-६४-१००॥

इस प्रकार परम्परागत गीता को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ऋषि रूप या कृष्ण रूप मे अपने आपको अलंकृत करके अर्जुन रूप अमोघवर्ष राजा को गीता का उपदेश किया है। इस प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ विश्व का एक महान महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका विवरण श्री कुमुदेन्दु आचार्य स्वय प्रगट करते हैं–

धर्मध्वजवदरोळु केत्तिदचक्र। निर्मल दष्टु हूगळम् ॥
स्वर्म नदलगय्वत्तोंदुसोन्नेयु। धर्म दकालुलक्षगळ ॥
आपादियनूकदोंळ् ऐदुसाविर कूडे। श्री पादपद्म दंगदल ॥
सपि अरूपिया ओम् दरोळ्व। श्री पद्धतिय भूवलय ॥

इस प्रकार भूवलय के अंक और अक्षर पद्मदल ५१०२५००० है इस अंक मे ५००० मिलाने से समस्त भूवलय की अक्षर सख्या हो जाती है, ऐसा श्री कुमुदेन्दु ने सूचित किया है। इस तरह ५१०३०००० संख्या का योग (५+१+०+३+०+०+०+०=९) नवम अक रूप है, ९वे अंक को प्रथम करके नवमांक गणित से इस राशि को विभक्त किया गया है।

करुणेयोंबत्तिप्पत्तेळु ।। अरुहरण गुणवेम् त्तोम् दु ।।
सिरि एळ् नूरिप्प त्तोम् तम् ।। वरुव महान् कगळारु ।।
एरडने कमल हन्नेरडू ।। करविडि देळनन्द कुंभ ।।
अरुहन वाणी ओम् बत्त् ।। परिपूर्ण नवदंक करग ।।
सिरि सिद्धम् नमह ओम् हत्तु १,६८, ७६ ।।

इस तरह वर्णमालांक- अक्षर राशि को तथा ९-२७-८१-७२९ संख्या को स्थापित करके ६-१२-७-९ का पूर्ण वर्ग होकर के विभाग कर दिया है। ९×९=८१×८१=७७९×९=६५६१ इस तरह संख्या मे पहला अध्याय समाप्त हुआ है। इस प्रकार इस राशि के प्रमाण अपुनरुक्त **९ अंक** बन जाता है।

नवकार मंत्तर दोळादिय सिद्धांत्त । अवयव पूर्वेय ग्रन्थ ।।
दवत्तारादि मदक्षर मंगल । नव अ अ अ अ अ अ अ अ अ ।।

अध्याय २

कर्णसूत्र गणिताक्षर अंक के समान "है" 'क' को मिलाने २८×६०= कुल ८८ होता है, इस ८८ को आपस में मिलाने से ८+८=१६ होता है। यह १६—१×६=कुल सात होता है। ये सात भंग होकर के इन्हे ९ अंक से भाग करने पर प्राप्त हुए लब्धाक से अपने इस काव्य को प्रारम्भ करते हुए, इस शर्मंगी कोष्टक को दिया गया है। यहा अनुलोम अंक को ५४ अक्षर के भाग करने पर जो अंक राशि के एक सूक्ष्म केन्द्र को ८६ अंक राशि रूपनिरूपण किया गया है। (अध्याय २, श्लोक १२)

इस अनुलोम राशि को प्रतिलोम राशि के उसी ५४ अक्षर वर्ग के ७१ अक राशि मे वर्गी करण करके (अध्याय २—१७)। इन अंकों को परस्पर मिलाकर, परस्परभाग देकर २५ को अंक राशि किया है। इन अङ्को को वर्ग भाग कर ३५ अर्धभंग करके इस अक राशि का २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १ इस पहाडे से परस्पर भंग करके अपने काव्याक को मोती के समान माला मे गूंथकर काव्य की रचना की गई है। इस वर्ग गणित का ९ वां अक अशुद्ध घन होने के कारण उत्तर मे गलती जरूर आ जाता है। परन्तु कुमुदेन्दु आचार्य कहते है कि तुम इसे गलती मत समझो। हम आगे जाकर इसका खुलासा करेगे।

कुमुदेन्दु आचार्य द्वारा कहा हुआ जो गणित है वह हमारी समझ में नहीं आता। उसे स्वय ग्रन्थकारने आगे जाकर स्पष्ट विवेचन के साथ राशि के रूप मे बतलाया है।

अध्याय ३

इस अध्याय मे कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने काव्य की कुशलता का सभी ढग बतलाया है।

अध्याय ४

इस अध्याय मे सम्पूर्ण काव्य ग्रन्थ को तथा अपनी गुरु परम्पराको कहकर रस, और रसमणि की विधि, सुवर्ण तैय्यार करने की विधि और लोह-शुद्धि का विषय अच्छी तरह से वर्णन किया गया है। रस शुद्धि के लिए अनेक पुष्पो के नामो का उल्लेख किया गया है इस अ अध्याय मे रस मणि के शुद्ध रूप को बतलाते हुएमे वैद्यशास्त्र की महत्ता को पाठको को अच्छी तरह से समझा दिया गया है।

अध्याय ५

इसमे अनेक देश भाषाओं 'के नाम' और देशो के नाम, तथा अंकों के नाम देकर भाषा के वर्गीकरण का निरूपण किया गया है।

अध्याय ६

इसमें द्वैत, अद्वैत, का वर्णन करते हुए अपने अनेकान्त तत्व के साथ तुलनात्मक रूप से वस्तु तत्व की प्रतिष्ठा की गई है। इसमें आचार्य कुमुदेन्दु

ने ४ बातें मुख्य रूप से कही है—

दोपगळ् हदिनेन्टु गशियार्दाग । ईशरोळ् भेद तोरुवदु ।।
राशिरत्नत्रय दाशेय जनरिगे । दोष वळिवबुद्धि वहुदु ।।
सहावास संसार वागिपीकाल । महियकळ्तलेये तोरुवदु ।।
महणाण वरणीय दोप वदळियलु । वहु सुखविहमोक्ष वहुदु ।।
विषहर वागलु चैतन्य बप्पन्ते । रससिद्धि अमृतदशक्ति ।।
यशवागे एकांत हरकदु केट्टोडे । वशवप्पनन्तु शुद्धात्म ।।
रतुनत्रयदे आदियद्वैत । द्वितियवु द्वैतवेम्बंक ।।
तृतीयदोळ नेकांतळवेने द्वैतुाद्वैतव । हितदिसाधिसिद्ध जैनांक ।।
हिरियत्व विवुमूरु । सरमालेय । अरहंत हारदरत्नम् ।।
सरफणिपन्ते मूरर मूर ओंबत्त । परिपूर्णमूरारुमूरु ।।
।।७७-८१।।

अध्याय ७

इसमें कवि रस सिद्ध के लिए आवश्यक २४ पुष्पों की जाति तथा अष्ट महा प्रातिहार्यों मे एक सिंह का नाम कहकर चार सिंहों के मुखों की महिमा का वर्णन किया गया है।

अध्याय ८

इस भाग में समस्त तीर्थंकरों के वाहनों, सिंहासनों का आकार रूप और उनके स्वभाव के साथ राशि की तुलना करते हुए उनकी आयु, नाम आदि का प्रश्नोत्तर एवं शंका समाधान के साथ गणित शास्त्र का व्याख्यान किया हैं।

अध्याय ९

इसमें रस सिद्धि के लिए आवश्यक कुछ पुष्पों का, और सिद्ध पुरुषों को दिव्य वाणी को, कर्नाटक राजा अमोघ वर्ष को सुनाया गया है, और उसमें अपने वंश का परिचय देते हुए आचार्य भूत बली के भूवलय की ख्याति का वर्णन किया गया है।

अध्याय १०

इसमे कर्नाटक जैन जनता को अध्ययन कराकर, तथा 'क ट प' इनकी नवमांक पद्धति को तथा 'य' इस अक की अष्टक पद्धति को समझाया है इस वर्ग पद्धति के अनुसार २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, इन भागों के समान अनुलोम-प्रति लोमों का परस्पर गुणा करने से सम्पूर्ण भाषाओं मे यही काव्य ग्रन्थ आ जाता है। यहाँ ९ को तोड़कर दो भाग करके, इस गणित को रीति से समस्त भाषाओं को अंकित कर उनकी रीति को विशदरीति से समझाया गया है। इस तरह पुरानी और और नयी कनडी मिलाकर मिश्रित रूप में काव्य की रचना की गई है।

अध्याय ११

इस भाग में ऋषभदेव द्वारा अपनी पुत्री ब्राह्मी को सिखाये गये अक्षर अंकों को लिख लिया गया है। इस पद्धति से कोड़ा-कोड़ी सागर को मापने की 'मेटगूट शलाका' रीति को समझाया गया है।

अध्याय १२

इसमें २४ तीर्थंकरों, के उन वृक्षों का जिनके नीचे बैठकर उन्होंने अरहंत पद प्राप्त किया है। उन अशोक वृक्षों का नाम तथा उनकी प्राचीनता का उल्लेख किया गया है।

अध्याय १३

इसमें पुरुषोत्तम महान् तीर्थंकरों की जीवनचर्या, तपश्चरण, विद्या और उनके वैदुष्य गुण का महत्व ख्यापित किया है। साथ ही भगवान महावीर के बाद होनेवाली आचार्य परम्परा का, तथा धरसेनाचार्य का कथन करके सेनगण परम्परा का वर्णन किया गया है।

अध्याय १४

इस अध्याय में पुष्पायुर्वेद की विधि वतलाकर तत्पश्चात् चरकादिद्वारा अज्ञात 'न समझी जाने वाली' 'रसविद्या' को और जिनदत्त, देवेन्द्र यति अमोघवर्ष, समन्तभद्राचार्य, आदि के द्वारा समर्थित एवं पल्लवित पुष्पायुर्वेद का निरूपण किया गया है।

अध्याय १५

इसमे भवनवासी'देव, और उनके वैभव का कथन किया गया है। इसमे सम्भव और असम्भव जचनेवाले तत्वो का विशद विवेचन किया गया है।

अध्याय १६

दोनो श्रेणियों मे भगवद् गीता की प्रस्तावना का वर्णन तथा उसी के अन्तर्गत तत्वार्थसूत्र का विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया है। और भगवद् गीता के प्रारम्भ करने के पूर्व मंगल कलश की पूजा करके गीता का व्याख्यान प्रारम्भ किया है।, तथा कृष्ण और अर्जुन के रूप को अपने मे कल्पना कर पूर्व गीता और तत्वार्थ सूत्र का विवेचन किया है। आगे अमोघवर्ष के लिए कन्नड गीता की भूमिका का उल्लेख किया गया है।

अध्याय १७

इसमें भगवद् गीता की परम्परा ब्राह्मण वर्णोत्पत्ति गोम्मटदेव (वाहुवली) की उपनयन विधि, वनवासि-देश की, दण्डक राजा के विपय का अत्यन्त सुन्दर रूप से कथन करके राजा समुद्र विजय, तथा वलकृष्ण उपनयन सस्कार करने की विधि का कथाद्वारा उल्लेख किया गया है।

वलभद्र, नारायण इत्यादि की उपनयन विधि के साथ गीता तत्वोपदेश का समुल्लेख किया गया है। इस भगवद् गीता को सर्वभापामयी भापा भूवलय रूप मे, पाच भापा रूप मे प्राकृत, सस्कृत, अर्ध मागधी, आदि मे कृष्ण रूप कुमुदेन्दु आचार्य ने निरूपण किया है।

अध्याय १८

इसमे मूल श्रेणी मे भगद् गीता की शेप परम्परा का उल्लेख करते हुए, पहले की श्रेणी मे जयाख्यान के अन्तर्गत भगवद् गीता के श्लोको का कर्नाटिक भापा मे निरूपण किया गया है। और भगवद् गीता के अक चक्र का कथन दिया हुआ है। तथा अंक चक्र को समझाकर द्वितीय अध्याय मे उल्लिखित अनुलोम सम-विपम आदि की संख्या को शुद्ध करके गीता का आगे का विवेचन दिया हुआ है। इस श्रेणी मे कृष्ण द्वारा अर्जुन को कहा गया 'अणुविज्ञान' का भी वर्णन करता है।

१९ और २० अध्याय

इसमे सीधा भगवद्गीता के अर्थ को दूसरी श्रेणी मे अंक विज्ञान, अणु-विज्ञान आदि के अद्भुत विपयका ऊपर से नीचे तक अक विद्याओके साथ वर्णन किया गया है। इस तरह इस खड मे २० अध्याय है। उनमे इस मुद्रित भाग मे १४ अध्याय तक दिया गया है। शेप ६ अध्याय वाकी है। उनके यहां न दिये जाने का यह कारण है कि इसके मूल अनुवादक पडित एलप्पा शास्त्री का अकस्मात् आयु का अन्त हो जाने के कारण इस कार्य मे कुछ रुकावट सो आ गई है। किन्तु फिर भी हमारे चातुर्मास के अन्त मे इसके भार को सम्हालने वाले अन्य सहायक के अभाव मे उसे पूरा करना सम्भव नही हो सका। तो भी हमने शेप को ११ अध्याय से लेकर १४ अध्याय तक रात दिन मे इस का अनुवाद कर पूरा करने का प्रयत्न किया है। आगे अवसर मिलने पर, और एक स्थान पर ठहरने आदि को सुविधा उपलब्ध होने पर उसे पूरा करने का प्रयत्न किया जायगा। विद्वानो को चाहिए कि वे इस ग्रन्थ का अध्ययन करके लाभ उठावे। क्योकि ग्रन्थ का प्रतिपाद्य अक विषय गम्भीर होने के कारण सर्वसाधारण का उसमे सरलता से प्रवेश होना कठिन है।

चक्रबन्ध को पढ़ने का क्रम

गोता के इस 'अ' अध्याय की एक बिन्दो को तोडकर, उसको घुमाने से चक्र तथा पद्य आरम्भ हो जाता है। इस पद्य का कही भी अक मे पता नही चलता, क्योकि भूवलय ग्रन्थ अक्षर मे नही है। अक्षर मे होता तो कही न कही पढा जाता, अत: पढने के लिए इसमे एक भी अक्षर नही है। वाए से दाये तक वरावर चलेजायं तो उन अंको की गणना २७ होती है। इसी तरह ऊपर से नीचे की ओर पढते जावे तो भी २७ अक ही आवगे, इस तरह चारो ओर से पढने पर २७ अंक ही लब्ध होते है। २७×२७=७२९ हो जाते है। इसो चौकोर चक्र के कोष्ठक मे ६४ अक्षर के गुणाकार से गुणित कर प्राप्त हुआ लब्धाक ६४ ही लिखा गया है। उन २७ अंकों मे से दोनो ओर के १३-१३ अंक छोड़कर ऊपर के एक का रूप 'अ' है। 'अ' के ऊपर से नीचे उतर करके उसके अन्तिम अंक ८ को छोडकर वगल के ५८ अक पर आजाय इस

अंक का अर्थ 'ष' है। वहाँ से आगे बढ़ने पर दूसरी पंक्ति के ऊपर के कोने में ३८ आता है। इस अङ्क का अर्थ 'ट' होता है। पुनः ५८ के बाद एक अङ्क आता है। ६० का अर्थ 'ह' है, एक का अर्थ 'अ' है। इसी तरह से इसी क्रम रीति के अनुसार अन्त तक (६०) चले जावे, और ६० से लौटकर आड़ी लाइन की मध्यम प्रथम पंक्ति के २ पर आजाँय। दो का अर्थ 'आ' हो गया। 'ह' में आ मिलाने से हा हो गया। इस तरह ऊपर चढ़ते हुए जाने से एक अक पर पहुँचते है, क्योकि वह एक अक आड़ा हो जाता है। पुनः वहाँ से एक कोठा नीचे उतरकर फिर ऊपर '४७' पर जाँय, वहाँ से फिर आड़ा जाय और निश्चित कोठे पर पहुंचकर फिर ऊपर लिखे क्रम से उसी प्रकार प्रवृत्ति करता जाय तो घंटे के अन्दर सभी अंकों को पढ़ सकता है। इन ६४ अक्षरों मे सभी भाषाओं का समावेश है। पर वह रूढ़ी रूप न होने से लोगों को उसके पढने में कठिनाई होती थी किन्तु दो वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद उसे पढ़ने पर सभी के लिए मार्ग सुगम हो गया है। और सभी जन प्रयत्न करने पर उसे आसानी से पढ़ सकते है तथा सभी भाषाओं का परिज्ञान कर सकते है। जिस तरह से छोटे बच्चों को यदि यह भाषा सिखलाई जाय तो वे कम से कम छः महीने में पढ़ सकते है अर्थात् १-२-३-४-५-६-७-८-९-०, इनमे से बिन्दी को तोड़कर नव अंक की उत्पत्ति हुई है। इस तरह तत्व दृष्टि से विचार किया जाय तो भगवान महावीर की समस्त वाणी का (उपदेशों का) सार सातसौ अठहार भाषाओं को उपलब्धि होती है। क्योंकि यह नव अक में संसार की समस्त भाषाएं गर्भित है। और यह नव का अंक नव देवता का बाची है। और इष्ट मंगल रूप है।

जिस तरह श्रीकृष्ण ने मुँह खोला तो यशोदा ने विचार किया कि यह ब्रह्माण्ड मालूम होता है इसी में तीन लोक गर्भित हैं, उसी तरह नवमांक के अन्दर सम्पूर्ण जगत् गर्भित है। इसमें विश्व की सभी भाषाएँ अन्तर्निहित होने से इस ग्रन्थ का नाम 'भूवलय' रक्खा गया है, जो उसके यथार्थ नाम को सूचित करता है।

पहले अंक अक्षर में जो कानड़ी भाषा का श्लोक अष्ट महाप्रातिहार्य रूप होता है। और अ' से नीचे की ओर पढ़ा जाय तो 'अट्टवियकम्म वियला' प्राकृत भाषा की गाथा निकलती है। उस कानड़ी श्लोक के मध्य में 'ओ' आता है। उससे नीचे तक पढते जायं तो संस्कृत काव्य निकलता है। इसी तरह से १५ अध्याय तक पढ़ते जायँ तो उसके नीचे-नीचे भगवद्गीता निकलती है। इस तरह से इसअथाह अंक समुद्र में कोई पता नहीं चलता, परन्तु चतुर मनुष्य डुबकी लगाकर उसमें से सुन्दर सुन्दर मोती निकाल कर लाते हैं। इसी तरह उस अंक समुद्र का यथेष्ट रीत्या अवगाहन करने पर विविध भाषाओं से ओत-प्रोत अनेक ग्रन्थों का सहज ही पता चल जाता है। जिस तरह समुद्र मे डुबकी लगानेवाले चतुर मनुष्य गहराई में डुबकी लगाकर असली और नकली मोती निकाल लाते है और फिर उनमे से असली मोती छांटकर रख लेते हैं। उसी प्रकार इस भगवद्गीता के अन्तर्गत गहराई से अध्ययन करते हुए 'ओम् इत्येकाक्षरं ब्रह्म' अट्टवियकम्म वियला, सरस्वती स्तोत्र-चन्द्रार्ककोटि और तत्त्वार्थ सूत्र इत्यादि भाषाएँ निकलती हैं। इसके आगे और भी अवगाहन कर अनेक भाषाओं का पता चलने पर सूचित किया जावेगा। क्योंकि इस समय तक १४ अध्यायों का ही अनुवाद हो सका है। शेष ग्रन्थ का अनुवाद बादको प्रस्तुत किया जावेगा। पाठक गण उससे सब समझने का यत्न करें।

SIRIBHOOVALAYA JAIN SIDDHANTHA

PRILIMINARY NOTES :

* "SIRIBHOOVALAYA" is the unique literature in the world.
* It is not written in any script of any language.
* It is written in Numbers only, on mathematical basis, in Squares.
* The numbers should be converted into "Sounds" as alphabets. They are 1 to 64 It is said that all the sounds of the world could be written within 64 numbers, through 1 to 9 and '0' figurs only.
* The first literature will be formed in "KANNADA" (KARNATAKA) language And then different literatures of all other languages of the world will be formed through that
* It is said that there are literatures in 718 languages in this book, and 363 religions and all the 64 arts and sciences have been explained in exhaustively
* It is found in the text that the author of this unique book is "KUMUDENDU" by name who was the Guru of the Ganga king Amoghavarsha the 1st, of Manya Kheta (Manne), and the native of a village "YALAVA" (YALAVALLI) near Nandi Hills, Kolar District, Mysore State, India It is learnt that he lived in 680 A.D. according to the available inscriptions and other historical evidences.
* It is said that "KUMUDENDU" was a Digambara Jain Brahmin "RISHI" or "MUNI" proffessed with the entire knowledge of the world and "GOD". He was a prominant disciple of Guru Virasena, the author of Sri Dhavala Siddantha.
* It is found in the literature that all the preachings and massages of all the 24 Tirthankars beginning from the first tirtankar * ADI VRISHABHA DEVA* (the Ist "GOD") were said in all the languages of the world, at a time, within 47 minutes (one Anthar Muhurtha) in a nut-shell through the mathematical proccess and both for a common man and a proffessor. And the same was written in black and white for the benefit of the present generations of the world, according to the instructions and formulas given by Kumudendu Muni by his 1200 disciples. (all of them were Munies)
* Hence, it is said that this is the only literature given by "GOD" as "DIVYADWANI" which includes every thing under the "SUN"
* The manuscript which was available with the late Pt. Yellappa Shastry, a great Scholar of this literature is said to have been the copy of that literature written at the time of "MALLIKABBE" wife of Commander "Sena" of 14th Century by the then pandits. The same has been Microfilmed by the National Archives; Government of India, under the gracious recommendations of our beloved President Dr Rajendra Prasad ji
* It is described in the text that Adi Vrishabha deva gave this art, of Numbers and Alphabets to his two daughters "Brahmi and Sundary as presentations at the time of his departure to heaven (Moksha) and the same was learnt by their brother . the Great Gomtashwar (Bahubali), and he preached that to his elder brother Bhartha, in the war-field, as Bhagavadgita, (Purugitha).
* The lists of the languages and the religions and Arts mentioned in this literature are enclosed seperatly.
* "SIRI BHOOVALAYA" mainly describes the Jain philosophy in an eloborate and an exhaustive form along with all other Philosophies of the world commencing from No 1. up to 363 religions —Advaitha, Dvaitha and Anekantha etc

Language & Grammar

* It is said that all the sounds and words of all the languages of the world, of men, deities, demons and beasts and creatures of present past and future could be formed by permutations and combinations according to Jain system within 1 to 64 numbers, and thus the total number of the sounds would be of 92 digits
* It is also said that all the literatures like Vedas, Vedangas, and

Puranas, and Bhagavadgita in all languages and all kinds of Arts and Sciences have been said in reverse method (Akramavarthi) so that it was possible to build up in a net form, and could be condenced in a very small form and also it could be enlarged to the entire length and breadth of the world like........ ...

The Grammar of the languages in this literature is also in a peculiar manner. There is a number of languages against our present practice of Grammars, And it is also said that there was only one Grammar for all the languages formed by "GOD".

* The first literature in Kannada comes out this text in the form of "Home Songs" in "SANGATHYA" Metre.
* It is said and also found that the text could be formed from the reverse method also on cyclic system.
* Hence this is said to be the Unique literature of the entire world.
* It is mentioned in this literature that there were 18 major languages and Too minor languages in the world ; and all of them were included in the text.

Siribhoovalaya Jain Siddhantha

LIST OF THE LANGUAGES

Prakrita
Samskrita
Dravida
Andhra
Maharastra
Malayala
Ghurjara
Anga
Kalinga
Kashmira
Kambhoja
Hammira
Showraseni
Vali
Thebathi
Vengi

Arasa
Parasa
Saraswatha
Barasa
Vasha
Malaya
Lata
Gowda
Maghadha
Vihara
Utkala
Kanyakubja
Varaha
Vaishravana
Vedantha
Chitrakara

Amithrika
Chanakya
Mooladevi
Karnata
etc.
Uparika
Varatika
Vejeekharasapika
Prabharathrika
Uchatharika
Pusthika
Bhogavaratika
Vedanathika
Nihanthika
Anka
Ganitha

Vanga
Brahmi
Vijayardha
Padma
Vaidarbhya
Vaishali
Sowrashtra
Kharoshtri
Niroshtra
Apabramshika
Paishachika
Rakthakshara
Arishta
Ardhamagadhi

Yakshi
Rakshasi
Hansa
Bhootha
Coniya
Yavanani
Thurki
Dramila
Saindhava
Malavaniya
Keeriya
Devanagari
Lada
Parshi

Gandharva
Adarsha
Mahesvari
Dama
Bolidi
Etc.

LIST OF" BANDHAS —(TIES)

Chakrabandha	Sarasa Bandha	Nakha Bandha	Thaptha Bandha
Hamsabandha	Shalaka Bandha	Chakra Bandha	Kamitha Praja Bandha
Padmabandha	Shreni Bandha	Kirana Bandha	Srivskoti Bandha
Shuddha Bandha	Anka Bandha	Niyama Bandha	Shivacharya Bandha
Navamanka Bandha	Loka Bandha	Simgasana Bandha	Srivayana Bandha
Varapadma Bandha	Roma Koopa Bandha	Vratha Bandha	Sansthana Bandha
Mahapadma Bandha	Krowncha Bandha	Mahaveera Bandha	Divya Bandha
Dveepa Bandha	Mayura Bandha	Atishaya Bandha	Navpadma Bandha
Sāgara Bandha	Seemateeta Bandha	Sri Bandha	Etc.
Pālya Bandha	Kamana Padapadica	Samanthabhadra Bandha	
Ambu Bandha		Sivakoti Bandha	

READING THE SQUARES (CHAKRAS)

* There are 1270 squares for the 'Foreword* (Mangla Prabhritha) only It is said that 16000 squares should be formed out of them.
* 75000 verses have been formed out of 1270 squares, and it is said that 600,000 verses in Kannada and 721 digits of verses in Sanskrit and other languages could be formed out of the 16000 squares
* There are 27 lines in every square with 27 numbers in every line with a total of 729 numbers.
* There are different methodes of reading the squares with "KEYS"
* (1) Reading the entire square. (2) Reading the entire square in 9 parts of 81 numbers, on rotation methods.
* And it is said that there are a number of "Bandhas* (ties) to form the literatures of the other languages

SQUARE NO. 1

* Every reading of the square from 1 to 9 should be commenced from the 14th number of the first line which is strarted in the squares And the end will be the same 14th number of the 27th line, which is underlined.
* After commencing No 1, as mentioned above, every line should be read in a Diagonal parallel form as shown in square No 1.

Bottom	**Right Side**
2nd line from No. 38 to 60	3rd line from No. 2 to 1
4th line from No. 1 to 13.	4th line from No 23rd to 47

Like this, all the lines should be read alternatively, with the substitutions of the sounds or Alphabets, as given in page no.. ... thus the following 7 verses will be formed in Kannada Language from the first square.

* And then, every first letter of each verse will be formed as another literature of Bhagavadgitha (Purugitha) in PRAKRIT, that reads as —
* And next, every 27th letter of each verse will be formed as Bhagavadgitha in Sanskrit, and that reads as :—

* Thus, 3 languages, Kannada, Prakrit, and Sanskrit have been found in the first chapter, for the present
+ In chapter 20 generally, every letter of each line forms different literature in different languages.
* It has been traced .....languages in part "2" such as Prakrit, Girwani, Telugu, and Tamil.
* There are inter literatures also in prose forms on "Horse-step.* (Aswagathi).
* Number of different literatures will be formed again and again from the first literature by arranging respective letters in a line.
* The total No of sounds of every chapter has been counted and stated at the end of each chapter. Ex .—
* Tus Siri Bhoovalya by name itself, in Describes as "The wealth of the enture world." And every thing under the sun.

Siribhoovalaya Jain Siddhantha

INDEX TO NUMBERS & SOUNDS

I VPWELS

No.	Alphabet	Sound in
1	A	SUN (1)
2	AA	ALL (2)
3	AAA	Longer sound (3)
4	E	BE (1)
5	EE	BEE (2)
6	EEE	Longer sound (3)
7	U	UUT (1)
8	UU	JUNE (2)
9	UUU	Longer Sound (3)
10	.R.	Light Sound (1)
11	.RR.	LIGHT and LONG SOUND (2)
12	.RRR.	Light and Longer Sound (3)
13	L	HEAVY SOUND (1)
14	LL	"And Long Sound (2)
15	LLL	"And Longer Sound (3)
16	A	BELL (1)
17	AA	RATE (2)
18	AAA	Longer Sound (3)
19	I	IRON (1)
20	II	Long Sound (2)
21	III	Lonoer sound (3)
22	O	GO (1)
23	OO	GOAL (2)
24	OOO	Longer Sound (4)
25	OW	OUT (1)
26	OOW	Long Sound (2)
27	OOOW	Longer Sound (3)

II CONSONANT

No.	Alphabet	Sound in
28	K	KEY
29	KK	KHEDDA
30	G	GO
31	GH	GHOST
32	.N.	KING
33	CH	CHURCH
34	CHH	CHAMBER
35	J	JOB
36	JH	JHON
37	:N:	PUNCH
38	T	TO
39	TH	Heavy Sound
40	D	DO
41	DH	Heavy Sound
42	N	Heavy Sound
43	.TH.	PATH
44	.TH.	THEORY
45	.DH.	THE
46	.DH.	Heavy sound
47	N	NO
48	P	PUT
49	PH	Heavy sound
50	B	BABL
51	BH	Heavy sound
52	M	MAN

No.	III Alphabet	Sound in
53	Y	YOUNG
54	R	RED
55	L	LAW
56	V	VAN
57	SH	SHIP
58	SH	Heavy sound,
59	S	SO
60	H	HALL
	IIII	
61	○	N, M.
62	.	H

***** It is said in *SIRI BHOOVALAYA* that all sounds of all the languages of men, deities, demons, beasts, creatures, and nature could be pronounced and written exactly within the above 64 sounds through the numbers from 1 to 9 and 0 only, equally to any longest script of the world.

***** This solves the present-day to day growing problems of printing, typing etc., in thousands of scripts every day in the world. Hence *SIRIBHOOVALAYA* helps the present and future generations in a unique manner.

Siribhoovalaya-Jain Siddhantha

**ALTERATIONS SUGGESTED BY PANDIT YELLAPPA SHASTRI, RESEARCHSCHOLAR OF "SIRIBHOOVALAYA"

* CHAPTER * 1

Square (Chakra)	Line	Number	Figure		Alteration Suggested
No. 1	1	24th	7	—	8
	15	21st	7	—	16
	18	27th	1	—	1 & 56
2	19	27th	4	—	1
	27	Ist	51	—	and 8
	26	4th	29	—	31
	18 19	14th 13th	45 58		Extra
3	23	23th	7		52
	3	23th	54		59
	6th, 5th, 4th, & 3rd	3, 4, 5, 6th numbers	35, 2, 43 & 4		Fxtra
	9th, to 1 & 27th	5th, 6th, 7th 8th, 9th, 10th 11th, 12th, 13th, & 14th	53, 1, 45, 1, 52, 1, 5c, 1, 52 and 32		Extra
4	2nd & 1st	17th & 18th	56, 1	—	Extra
	18th & 17th	17th & 18th	54, 1	—	"
5	1st & 27th	21st & 22nd	56, 1	—	"
	12th	11th	2	—	46 and 2
	6th & 5th	17th & 18th	....	—	53 and 23 Omitted
	1st	23rd	52	—	48
	12th & 11th	13th & 14th	56 and 1	—	Extra
	13th	17th	16	—	20
	7th to 1 & 27th	7th to 13th and 14th	1, 45, 1, 1, 52, 1, 47, 47		Extra
6	6th	10th	1	—	42 and 1
	6th	14th	52	—	54
	21st	1st	48	—	48 and 17
	16th	8th	52	—	54
	23th	4th	2	—	37 and 2
7	27th	17th	55	—	Extra
	1st	26th	1	—	"
	19th & 18th	9th & 10th	47, 1	—	"
	15th & 14th	21st & 22nd	30, 16	—	"
8	27th	16th	29	—	31
9	24th	27th	23	—	17
	24th	5th	23	—	17
	3rd	25th	40	—	38
	6th	2nd	52	—	54
	5th	25th	40	—	38
	6th	2nd	45	—	55

सुप्रीम कोर्ट के जज श्री बेंकटारमण ऐयर तथा दानवीर सेठ युगलकिशोर जी बिड़ला श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज के दर्शनार्थ पधार कर उनसे धर्म चर्चा कर रहे है ।

श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज जापान के प्रो० नाकामुरो को उपदेश के पश्चात् शास्त्र प्रदान कर रहे है ।

श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज पं० एम एल्लप्पा शास्त्री तथा कांग्रेस के प्रधान श्री ढेबर भाई से भूवलय के सम्बन्ध मे चर्चा करते हुए।

मैसूर के मुख्यमंत्री श्री निर्जालगप्पा, श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज के समीप भाषण देते हुए।
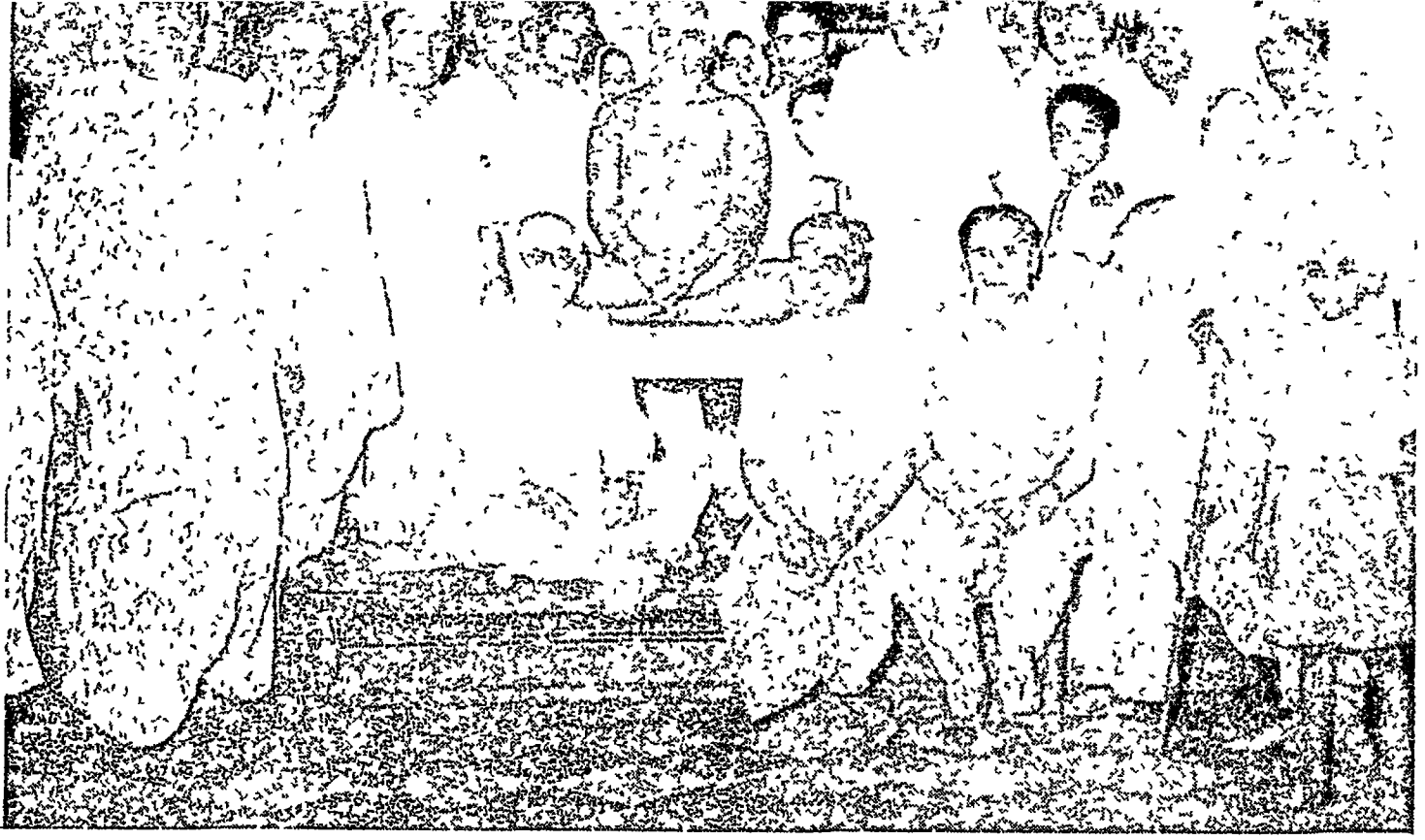
श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज पं० एम एल्लप्पा शास्त्री तथा मैसूर के मुख्यमंत्री श्रीनिर्जलिंगप्पा जी से ग्रन्थराज भूवलय के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए।
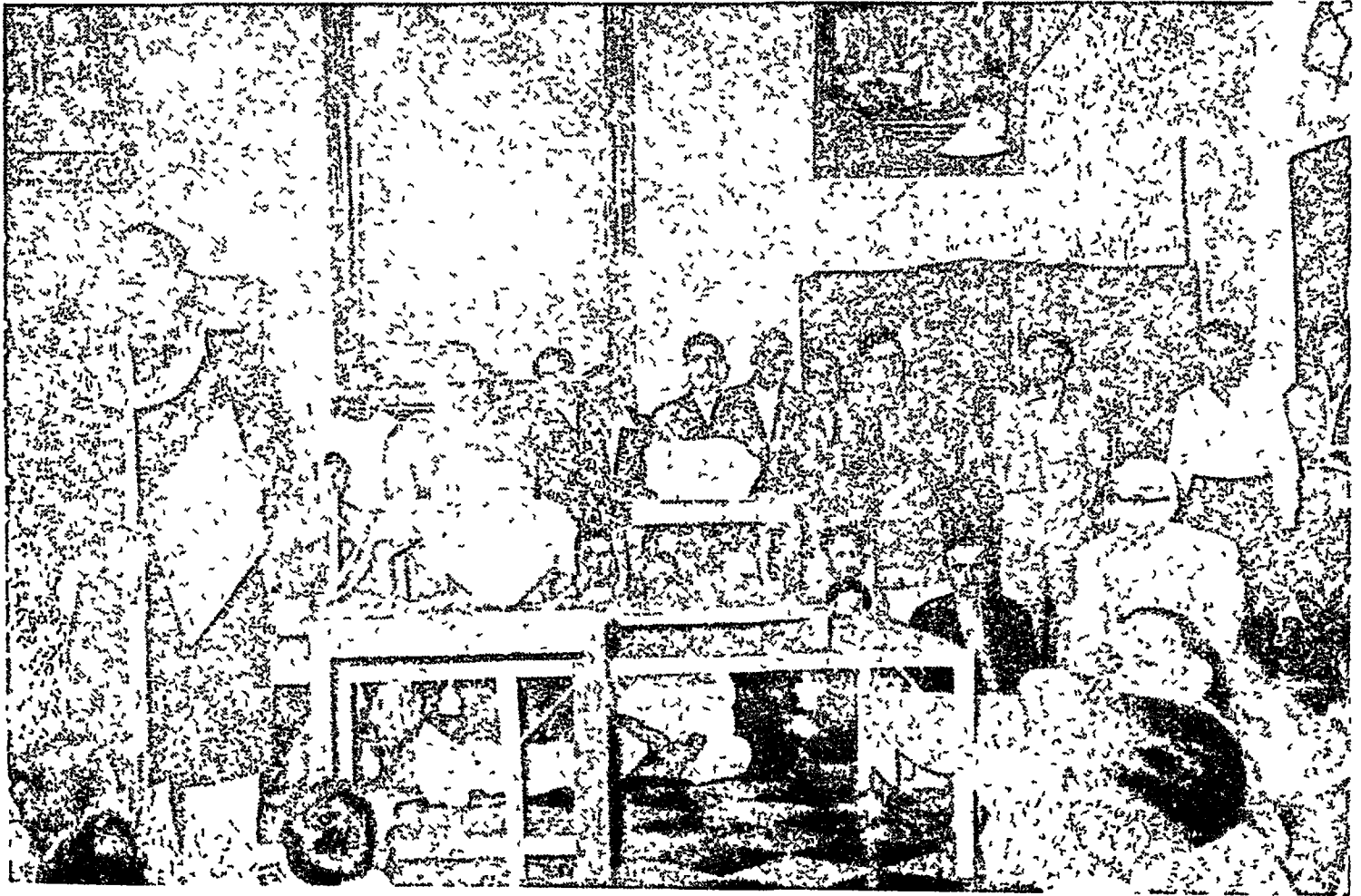
मैसूर के मुख्यमत्री श्री निर्जलिंगप्पा को जैन समाज दिल्ली की ओर से प्रो० मुनिसुव्रत दास एम० ए० द्वारा अभिनन्दन पत्र भेट और आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज का मुख्यमंत्री को उपदेश तथा आशीर्वाद।
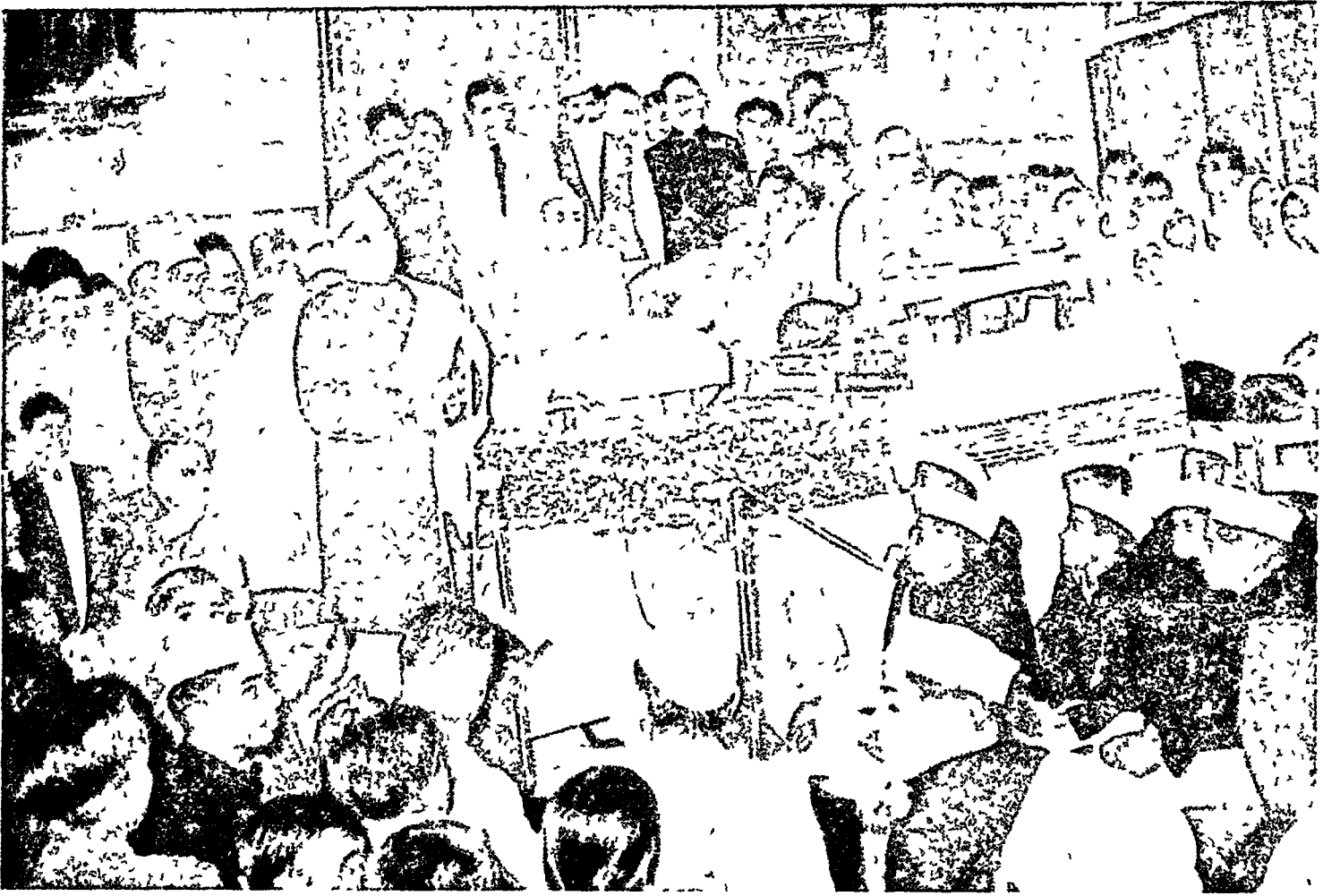
श्री दि० जैन लाल मंदिर में परिन्दों के हस्पताल के उद्घाटन के समय, भारत सरकार के गृहमंत्री माननीय पं० गोविन्दवल्लभ पंत जी, महाराज श्री देशभूषण जी से श्री भूवलय के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे हैं।

श्री १०८ देशभूषण जी, महाराज जर्मन तथा अमेरिका के विद्वानों तथा राजदूत को शास्त्र प्रदान करते हुए।

सिरि भूवलय
"अ" अध्याय प्रथम
१ भाग

स्	ओ	अ	ए	अ	क्	क्	अ	अ	व्	स्	इ	व्	अ	अ	न्	ए	छ्	म	उ	ए	अ	अ	ऊ	व्	अ	ह्
य्	र्	न्	क्	अ	न्	द्	क्	उ	इ	न्	ट्	इ	द्	अ	ग्	न	न्	द	ण्	य्	क्	श्	म	म्	अ	अ
अ	ओ	अ(४)	ग	आ	अ	आ	ळ्	ग	अ(७)	उ	द्	ग्	म्	अ	इ	आ	न्	अ	अ	अ	अ	य्	आ	म्	स्	म
स्	ग्	आ	ळ्	ळ	ळ्	ए	आ	य	ह	अ	इ	ए	न्	ए	द्	ए	अ	व	त्	द्	अ	व्	अ	इ	अ	ळ्
न्	द्	अ	अ	ओ	ग	भ	अ	आ	व्	र्	ग्	इ	अ	अ	व्	व्	अ	ए	अ	श्	उ	व्	व्	अ	ओ	अ
र्	म्	म	द्	अ	उ	ळ्	प	अ	घ	म्	ज्	क्	ळ्	अ	ट्	द	ग्	ळ्	इ	न्	उ	द्	ट्	द्	ट्	अ
अ	अ	अ	क्	ळ्	व्	ळ	भ्	र्	अ	अ	अ	अ	ण्	आ(२)	इ	इ	अ	त्	ए	न्	उ	अ	ळ्	इ	भ्	इ
क	य्	न्	ओ	ऊ	अ	यु	स	ट्	उ	त्	उ	अ	म	स	र्	ग्	अ	द्	ए	अ	क	ओ	व्	उ	त्	त
अ	आ	द्	भ	ग्	अ	म्	ब	पू	स्	न्	र्	इ	इ	अ	न्	द्	न्	व्	कृ	अ	द	अ	ळ्	उ	उ	उ
ळ	अ	य्	न्	व्	अ	अ	उ	अ	अ	आ	ह्	यु	व्	अ	अ	ए	अ	अ	र्	अ	ग्	ए	ग्	र्	द्	द
स	व्	म	अ	द्	अ	ळ्	क्	म्	क्	अ	अ	अ	म्	र्	ई	त्	ह्	प्	क्	अ	ए	ओ	ऊ	इ	उ	अ
आ	अ	य्	म	त	ओ	आ	इ	ए	म्	ए	र्	अ	आ	ण	उ	अ(४)	उ	न	अ	क	ए	भ्	अ	र्	म्	ए
द	र्	ओ	इ	क्	द्	ध्	ग्	ए	स्	अ	व्	क	आ	र्	य्	ट्	आ	ग्	अ	क्	ळ	ह	ह्	इ	व	क्
आ	के	न्	अ	अ	इ	ए	द	अ	व्	अ	म्	व	भू	अ	न	ळ्	अ	द	उ	आ	र्	अ	व्	उ	अ	अ
ओ	इ	य्	र	स्	ए्	ळ	व्	अ	न्	ओ	अ	आ	ळ्	ए	अ	ळ्	न	उ	र	ए	म्	अ	न्	ह्	त्	ह्
द	ए	ता	अ	उ	न्	अ	उ	अ	इ	र	र्	अ	त	कृ	क्	उ	अ	आ	उ	म	ग्	अ	इ	न्	इ	ळ्
ण्	अ	र्	ळ	अ	क	य्	द्	ण्	ई	प्	व्	अ	अ	अ	म	र्	उ	अ	अ(५)	आ	व्	न्	आ	त	अ	अ
च	त्	ओ	द्	व्	त्	आ	आ	न्	अ	ऊ	प	स्	स्	उ	ए	य्	ळ	य	ए	अ	अ	ध्	आ	ग	व्	अ
ल्	द	ऊ	आ	र्	व्	व्	आ	ळ	ग्	इ	ए	उ	ळ	ग्	ए	अ	अ	इ	म्	म्	इ	र	न्	आ	ट्	अ
अ	र्	ह्	व्	र	अ	ह्	अ	अ	ए	ड्	ट्	ए	अ	न्	व्	च	ळ	अ	अ	स्	प्	अ	व	उ(३)	अ	अ
अ	म	ए	अ	ह्	अ	ग्	य	ग्	ऊ	न	ळ्	ळ्	ओ	ऊ	ळ	द्	स्	र्	अ	आ	ण	र्	न्	यु	म्	यु
ए	ग्	आ(३)	इ	म्	न्	व	अ	त्	ए	अ	ओ	स	भ्	अ	अ	उ	क्	य्	ह	उ	अ	ए	ए	अ	य्	ष्
इ	य्	व्	अ	म्	आ	ळ्	म	ट्	ग्	द्	उ	अ	ग	व्	ए्	अ	अ	अ	ग्	प्	व्	र्	र्	ळ्	क्	द्
अ	न्	न्	अ	क्	ओ	अ	न	अ	अ	द	ध	अ	अ	न्	ए्	ळ	म	अ	अ	उ	त्	आ	अ	अ	अ	त
अ	इ	य्	अ	द्	त्	ए	ळ्	म	इ	न	ळ	द	ओ	भ्	व	अ	ट्	ळ	ग्	आ	क्	व	ळ्	व्	क्	ळ
इ	ए	भ्	अ	अ	ए	अ	अ	अ	अ	अ	न्	स	इ	ऊ	ट्	ब	अ	अ	प	अ	ऊ	ओ	अ	अ	अ	ह
म	इ	ग्	व	य	म्	र	अ	ग	म	अ	ए	र	उ	ष	अ	ग	र	अ	न	भ	य्	व्	श्	व	इ	ह

श्री भूवलय जैन
सिद्धांत मंगल
प्राभृत प्रथम
खंड 'अ'
अध्याय
अंक भाषा

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

श्री दिगम्बराचार्य बीर सेनाचार्यवर्योपदिष्ट

श्री दिगम्बरजैनाचार्य कुमुदेन्दु विरचित

अंक भाषामयी जैन सिद्धान्त शास्त्र

श्री भूवलय

हिन्दी अनुवाद कर्ता

श्री दिगम्बर जैनाचार्य १०८ देशभूषण जी महाराज

प्रथम खण्ड

मंगल प्राभृत

"अ" अध्याय १-१-१

★ प्राकृत सं०❖

अ ष्ट महाप्रातिहार्य वय्भवदिन्द । अष्ट गुणन्गळोळ् ओ मृदम् ।। सृष्टिगे मंगल पर्यायदिनित्त । अष्टम जिनगेरगुवेनु ॥१॥

ट्ट वर्णयकोलु पुस्तक पिन्छ पात्रेय । अवतारदा कमन्डलद ।। नव का रमन्त्र सिद्धिगे कारणवेनुदु । भुवलयदोळुपेळ्द महिमा ॥२॥

ट वर्णयोळक्षरदंकव स्थापिसि । दवयववदे महाव्रतवु ।। अव ष वरिगे तक्क शक्तिगे वरवाद । नवमन्गलद भूवलय ॥३॥

वि हवाणि ओम्कारदतिशय विहन्निन्त । महावीरवाणि एन्देनुव ।। प हिमेय मन्गल प्राभृत वेन्नुव । महसिद्ध काव्य भूवलय ॥४॥

ह कवु द्विसस्योगदोळगेइप्परेंदु । प्रकटदोळरवत्तमूडे ।। सकलांक दोळु षि ट्ट सोन्नेये एन्टेन्दु । सकलागम ए ळु भंग ॥५॥

क मलगळेळु मुन्द के पोगुतिर्दाग । क्रमदोळगेरडु काल्नूरु ष ।। तमलांक ऐदुसोन्नेयु आरुएरडेवु । कमलदगंध भूवलय ॥६॥

ष महरुदयदोळा कमलगळ् चलिपाग । विमलांक अ डे । समव- दोळ भागिसे सोन्नेय विमलांक काव्य वलय ॥७॥

म विरुद्ध सिद्धान्तवनु महाव्रतकेंदु । नवपदवरणु व्रतकेंदु ॥ स
वि यलियमल मूढ दमसरगुत्तलिया । जयपरीषहवइप्पत्तेरडम् ॥ नय भ
थ लयल दिक्कुगळहत्तनु बट्टेय । नलविनिम् धरसिद मुनि मु

कलियंक काव्य भूवलय ॥११॥
गेलवेरिसुव भूवलय ॥१४॥
सलुव प्रमाण भूवलय ॥१७॥

आ वण्यदंग मैय्याद गोमट देव । आवागतन्न अरणगनिगे ॥ ईवागच क्
णि जदहत्तनु आत्म धर्मवागिसि कोंड भजकर्गे श्रीविन्ध्यगिरिय ॥ निज त
द् क्किनिसिल्लदाहत्तनु निर्जरदिंद । तक्कजनकेपेळ्द महिमर ॥ सिक्करुस स्
हि दि अनुभागबन्ध देप्रदेशवहोक्कु । विदियादिहदिनाल्कहोंदि । अदनलिल नि
य शस्वतिदेविय मगळाद ब्राह्मिगे । असमान कर्माटकद । रिसियुनि स्

रसद ओंकार भूवलय ॥२४॥
रिसिरिद्धि यरवत्त नाल्कु ॥२७॥

क रुणेयसबहिरन्ग साम्राज्यम् लक्ष्मिय । अरुहनु कर्माटकद ॥ सिरिमात य्
ज् य सिद्धियादआग्रोम्देअक्षर ब्रह्म । नयदोळगअरवत्'नाल्कु । जयिनर्गेस अ्
जा ति जरा मरणवनुगुणाकार । दातिथ्यबरेभागहार । ख्यातियभंगदोळरिव भ्
घ द पद्म दोळगणंकाक्षर विज्ञान । अदर गुणाकार मग्गि ॥ वदगि बंदा ध्या
ण वपदकदिम्गणिसलोम्बत्ताम् । अवरंक वनुलोम भंग। दवतारवयत्नपूर्वक य
ट् कद समयोगदे भंगवागिह हत्तु ।सकलांक चक्रेश्वरवु ॥ अकलंक वादहत्त त्
ट कवनु महवीर नंतमुहूर्त दिम ।प्रकटि सेदिव्य वाणियलि ॥ सकलाक्षरवम् ति
स वर्थसिद्धि येंदेनलु अक्षर भंग । निर्वाहदोळगंक भंगम् ॥ सर्वांक यो
स् र्मवादाहत्तम्वळेसुव(कालदे)योग दे।निर्मलम्शुद्धसिद्धान्तधर्मवहरडवआ गि
सा गर द्वीपगळेल्लव गणिसुव । श्रीगुरु ऐदवरंक ॥ नागवनाकव न
रा शियोळोम्दम्तेगेयलाराशियु ।घासियागदलेतु बिरुव॥ श्रीशननन्तदपद वि ह

वियागिसि प्रौढ मूढ-रीर्वरिगोंदे ।नव पद भक्ति भूवलय ॥ ८॥
आर्गदिंदगेलुदवर सद् वंशद। स्वयम् सिद्ध काव्य भूवलय ॥ ९॥
॥ सलुवदिगंबर नेन्तेदुकेळुव । बलिदवक काव्य भूवलय ॥१०॥
बलशलिगळभूवलय ॥१२॥ कळेयद पुण्य भूवलय ॥१३॥
विलयगैदघद भूवलय ॥१५॥ जलज धवलद भूवलल ॥१६॥
सलेसिद्धधवल भूवलय ॥१८॥

र बन्धद कट्टिटनोळ्कट्टि । दाविश्व काव्य भूवलय ॥१९॥
त्त ववेळर दर्शनवन्नित्त । विजय धवलद भूवलय ॥२०॥
सारसागर दो ळगेंब । चोक्क कर्माट भूवलय ॥२१॥
धियागिशिवसौख्य होंदिद । पदवेमंगलकर्माटकवु ॥२२॥
यवु अरवत्नाल्कक्षर । होसेद अंगय्य भूवलय ॥२३॥
यशदेडगय्य भूवलय ॥२५॥ रसमूरु गेरेय भूवलय ॥२६॥
यशवु नाल्कारडु हत्तु ॥२८॥ रस सिद्धिया हत्तु ओम्दु ॥२९॥

तनदे ओम्दरिम् पेळिव । अरवत्नाल्कंक भूवलय ॥३०॥
यतनदाकलेयतिशय । स्वयम् सिद्ध भंग भूवलय ॥३१॥
विख्यात । पूतवु पुण्य भूवलय ॥३२॥
नि यरिविगे सिलुकिह । सदवधि ज्ञान भूवलय ॥३३॥
भागिसे । अवनिगेयेळु भूवलय ॥३४॥
कद ओ मुंदे । प्रकटद गुणाकार बिन्दु ॥३५॥
ळिदिह गौतम । नकलंक हन्नेरडंग ॥३६॥
गदोळ् अरवत्तनाल्क न्नेलल । निर्वहिसलु हत्तु भंग ॥३७॥
न जिनपाद । शर्मर सिद्ध भूवलय ॥३८॥
रकव मोक्षव । साघन वागिसिदंक ॥३९॥
संख्यात । दाशेयनन्त सम्ख्यात ॥४०॥

द्वि शेयोळु बंद अनन्त संख्यातद । वश दोळसङ्ख्यातवदम् ॥ रस : क्रमलगळेळु का दिरिसिददिव्य । रससिद्धि जलपद्मगंध ॥४१॥
ट् वर्णेयोळिरुवन् 'क' दोळु कूडिद् अरवत्तु । सवियंक वेंटेंट वरोळ् ॥ अवितिह श्रीपद अ हदिनारु स्वप्नद । अवयव स्थलपद्मगन्ध ॥४२॥
ट वर्णेयोळिरुवन्क दोळु कूडिद् एन्टॆंटु । अवन्तु मत्तुपुनह कूडिदरे ॥ नव पद्म व द रिंदबरुवंक एळम् । सविदरे बेट्टद पद्म ॥४३॥
स मनाद ई मूरु पद्मगळन्नेल्ल । समहृदयद शुद्धरसद । गमकदोळ् अंन्टद अंट स एंटनु । श्रमविल्लदे सोन्नेगेय्दु ॥४४॥
य शद ध्यानाग्नियिम् पुटविडे रससिद्धि । वशवागुवुदु सत्य मणियु ॥ रसमणि श्रो क्षदेकामदवहुदेम्ब । रस सिद्धियंक भूवलय ॥४५॥
ल वमात्रवादरू दोषगळिल्लद । नवमानुकदादि अरहन्त ॥ अवनेरडू कालन्नूरिद्द अन् क् द । सवियॆ भाविसे महापद्म ॥४६॥
यु रतरवादेरळ् आपाद पद्मगळोळु । बरुव अतीतानागतद॥ वरदवादोंदु आ समयद ष ट् पद । दरियिरि वर्तमान वनु ॥४७॥
थ ण थण वेन्नुव रसमणियौषध । गणितवम् नागार्जुनन्नु । क्षणदोळगरि दन्नु गुरुविन् द लातनु । गुणिसुत लेन्दु कर्म वनु ॥४८॥
सा धिसि केडिसुत सिद्धान्त मार्गद । ओदिनन्काक्षरविद्य ॥मोददर्हम्सालक्षण धर्मदि म् । आदि जिनेन्द्रर मतदिम् ॥४९॥
रा गवगेलिदवराग पेळिद दिव्यम् । नागसम्पगेय हूउगळम् ॥ सागर दुपमान गुणितद च रितेयम् । भोगव योगदोळ् कूडि ॥५०॥
सि द्धरसवमाडि हूवनु कोंदिह । बुद्धियज्ञानव केडिसि ॥ शुद्धात्म नेले इ ह सिद्धर लोकद । सिद्ध सिद्धान्त भूवलय ॥५१॥
द् रुशन माडलु सद्दर्शन वागि । परमात्म पादव गुणिसे ॥ तिरुगिद कमल व दलगळ कूडलु । बर लोमदु साविर देन्दु ॥५२॥
अरुहन पद पद्म भंग ॥५३॥ परमन पदपद्म दंग ॥५४॥ गुरुपरम् परेयादि भंग ॥५५॥ सरसान्क हुट्टिद भंग ॥५६॥
गुरु गळ उपदेश दंग ॥५७॥ परिशुद्ध परमात्मनंग ॥५८॥ सरसद हन्नेरडंग ॥५९॥ करुणेय मूरु हूवन्ग ॥६०॥
परिमळ रसवगेल्दन्ग ॥६१॥ सरसाक्षरद एळु भन्ग ॥६२॥ गुरुसेन गणदवरन्ग ॥६३॥ सरमंगल काव्य भंग ॥६४॥
ध् र्मध्वजवदरोळु केत्तिद चक्र । निर्मलदष्टु हूवुगळम् ॥ स्वर्मन दळगळ य्वत् ओ म्दु सोन्नेयु । धर्मदकालु लक्षगळे ॥६५॥
आ पाटियंकदोळ् ऎंदु साविर कूडे । श्रीपाद पद्म गंधजल (दंगजल)॥ रूपि अरूपियाओ स दरोळ् पेळुव । श्रीपद्धतिय भूवलय ॥६६॥
सि रि सिद्ध अरहंत आचार्य पाठक । वर सर्वसाधु सद्धर्म ॥ परमागम वद स बरेव चयत्यालय।दिरूव श्रीबिंबओम्बत्तु ॥६७॥
करुणे योम्बत्त् इप्पत्तोळु ॥६८॥ अरुहन गुणवेंबत्तोंदु ॥६९॥ सिरियेळ्नूरिप्प त्तओम्बत्तम् ॥७०॥ बरुव मदान्कगळारु ॥७१॥
एरडने कमल हन्नेरडु ॥७२॥ करविडिदेळंक कुम्भ ॥७३॥ अरुहन वाणि ओम्बत्तु ॥७४॥ परिपूर्ण नवदन्क करग ॥७५॥
सिरि सिद्ध नमह ओमहत्तु ॥७६॥

द् गणित राशियोळुत्पन्न वागिह । बगेबगेयन्कदक्षरद ॥ सोंगसिनिम् मन्गलप्रा का र भद्रवु । बगेगे शुभदसौख्यकर ॥७७॥
धि षणर् एन्देने व्ररुद्ध मुनिगळ सम्पद । दिशेयोळु बह बालमुनिगे ॥ वशवागद रा शियतिशय हारदे।हौसेदरे बन्दिह शिववु ॥७८॥
य नवु सिंहासन तनुवु चैत्यालय । जिनबिम्बदन्ते नन्नात्म । नेनुत अक्ष य बाद भावद्रव्यगळिंद।घनबन्धपुण्यभूवलय ॥७९॥
मं रेतिहदेहाभिमानदोळध्यात्म । सरमालेयोळु बन्धकरगे ॥ अरहन्त रूपि न द्रव्यागमकाव्य ।सिरि थिरप सिद्ध भूवलय ॥८०॥

मो क्ष । दनुभव मंगल काव्य ॥ ८१॥

म न दर्थियिंद शरीरवतपिसिद । जिनरूपि नाशेयजनरू ।घनकर्माटक वेन्टनु गेले म् मातम स्वसमय वेन्नुव ।कु समय नाशक काव्य ॥ ८२॥

दि शेयोळोम्बत्तर वशगोंड सूत्रांक । दसमानि पाहुड काव्य ॥ वशवःद न न वलम् बिसिरुवर । धर्मानुयोगद वस्तु ॥ ८३॥

स र्वार्थ सिद्धिसम्पददनिर्मलकाव्य। धर्मवलौकिकगणित ।निर् ममबुद्धिय निर्ममकार वाक्यानंक ॥ ८७॥

शर्मर निर्मल काव्य ॥८४॥ धर्म मूरारु मूरनक ॥८५॥ धर्म समन्वय काव्य ॥८६॥

धर्म भाषेगळेन्टोन्देळु ॥८८॥ मर्म पश्चदानुपूर्वि ॥८९॥ धर्म समन्वय गुणित ॥९०॥ कर्मद अरिकेय गणित ॥ ९१॥

करमद संख्यात गणित ॥९२॥ कर्मदसमख्यात गुणित॥९३॥ कर्मदनन्तानक गुणित ॥९४॥ कर्मदुत्क्रुष्टदनन्त ॥ ९५॥

कर्मसिद्धान्तद गणित ॥९६॥ निर्मलदध्यात्म बन्धम् ॥९७॥ सर्वस्व सार भूवलय ॥९८॥ धर्ममन्गल प्राभृतवु ॥ ९९॥

निर्मल शुद्धकल्याणम् ॥१००॥ धर्मवय्भव भद्र सौख्य ॥१०१॥

अ द् 'अ' क्षरमन्गल।नव अ अ अ अअअअअअ ॥१०२॥

न वकार मन्त्र दोळादिय सिद्धान्त। अवयव पूर्वेय ग्रन्थ।।दवतारदआदि

अवरोळु अपुनरुक्तानक ॥१०३॥ अवुनोडल पुनरुक्त लिपि ॥१०४॥ अवरोळ गादिय भन्ग ॥१०५॥ सविएरळ् मूर्नालकु भन्ग ॥१०६॥

इवु ऐदारेळेंनुदु भन्ग ॥१०७॥ रत्रोमबत्तु हत्हन् ओम्दु ॥१०८॥ सविहन्एरड् हदिमूरु भन्ग ॥१०९॥ अवु हदिनालक् हदिनय्दु ॥११०॥

अवु हदिनार् हदिनेळु ॥१११॥ नव वेरडेने हदिनेन्दु ॥११२॥ अवु हत्तोंबत्तु इप्पत्तु ॥११३॥ अवर मुन्द ओम्देरळ्मूरु ॥११४॥

सवि नालुकय्दारेळेन्ट न्ग ॥११५॥ नवमुन्देंमूवत्तु अन्ग ॥११६॥ अवु नलवत् मुन्देहत्अनक ॥११७॥ सवि हत्त् उ अरवत्तु भन्ग ॥११८॥

अवु हत्तए अरवत्तु भन्ग ॥११९॥ सवियओम्देरडुमूर्नालकु ॥१२०॥ अवु कूडल् अरवत्तनालकु ॥१२१॥

सवियअ अरवत्नालकु भन्ग ॥१२२॥ अवरंकवडु तोम्बत्एरडु ॥१२३॥ अवु अडगिहुदु अन्तरद ॥१२४॥

ह रिमुन्दे ॥ कळेये मंगलद (बळसे)पाहुडवुम् ॥१२५॥

तु ळियलु आरूवरे साविर मुन्दे । बळसिह अरवत्तोंदु ॥ तिळियंक औबत्तर मूर

६५६१ अन्तर ७७८५×१४३४६ = ९

९×९×९×९ = ६५६१ = ९

संस्कृत अक्रमवर्ती

प्राकृत और कर्माटक ये दोनों भाषा सक्रमवर्ती है

ओकारम् बिन्दु संयुक्तं नित्यम् ध्यायन्ति योगिनः ।

कामदं मोक्षदम् चैव ओंकाराय नमो नमः ॥१॥

अट्टविहकम्म वियला णिटिटय कज्जा पणटुटसंसारा ।

दिट्टसयलत्थ सारा सिद्धआ सिद्धिम् मम दिसन्तु ॥१॥

★ आरम्भ के लाल रग के अक्षरो को ऊपर से नीचे की तरफ पढने से प्राकृत भाषा वनती हे ।

❖ वीच के लाल रग के अक्षरो को ऊपर से नीचे की तरफ पढने से सस्कृत भाषा वनती है ।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री दिगम्बरजैनाचार्य वीरसेन जी के शिष्य श्री दिगम्बरजैनाचार्य कुमुदेन्दु विरचित

श्री सर्वभाषामय सिद्धान्त शास्त्र

भूवलय

श्री १०८ दिगम्बरजैनाचार्य देशभूषण जी द्वारा

कानड़ी का हिन्दी अनुवाद

प्रथमखंड 'अ' अध्याय

कौ मोददायकमनंतगुणाम्बुराशि, श्री कौमुदेन्दुमुनिनाथकृतोपसेवं ।
श्री देशभूषण मुनीश्वरमासुनम्य, हिंदीं करोमि शुभ भूवलयस्य बुद्ध्या ॥

मंगल प्राभृत

अष्ट महाप्रातिहार्य वैभवदिंद । अष्टगुणंगळोळोंदम् ॥
सृष्टिगे मंगल पर्यायदिनित्त । अष्टमजिनगेरगुवेनु ॥ १ ॥

इस भूवलय ग्रन्थ की रचना के आदि में श्री कुमुदेंदु जैनाचार्य ने मंगल रूप में श्री चन्द्र प्रभु तीर्थकर को ही नमस्कार किया है। यह चन्द्र प्रभु तीर्थंकर परम देव कैसे हैं, ? सो कहते हैं-

अष्ट महाप्रातिहार्य--

संपूर्ण विश्व के अन्दर जितनी भी श्रेष्ठ वस्तुएं हैं अर्थात् जितने वैभव चक्रवर्ती देवेन्द्र या मनुष्य के सुख है, उन संपूर्ण सुखों से भी अत्यन्त पवित्र एवं मंगलकारी सुख, जो है वह अष्ट महाप्रातिहार्यों तथा अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी के वैभवों से सुशोभित आठ गुणों से युक्त एक अष्टम तीर्थकर चन्द्रप्रभु भगवान के पास ही है वे भगवान ही विश्व के प्राणियों को मंगल के देने वाले है। इसलिये हम अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान को मन-वचन-काय से त्रिकरण शुद्धि पूर्वक नमस्कार करते है।

श्री कुमुदेदु आचार्य ने केवल अकेले आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान को ही नमस्कार क्यों किया ?

समाधान--भगवान गुणधर आचार्य द्वारा रचित जयधवल के टीकाकार अर्थात् कुमुदेदु आचार्य के गुरु वीरसेन आचार्य ने जयधवल की टीका के आदि में चन्द्रप्रभु भगवान को ही नमस्कार किया है जैसा कि--

जयइ धवलंगते ए णाऊरियसयल भुवण भवणगणो ।
केवलणाण सरीरो अणंजणो णामओ चंदो ॥

अपने धवल शरीर के तेज से समस्त भुवनों के भवन समूह को व्याप्त करने वाले केवल ज्ञान शरीर धारी, अनंजन अर्थात् कर्म से रहित चन्द्रप्रभु जिनदेव जयवंत हो।

विशेषार्थ--चन्द्रमा अपने धवल अर्थात् सफेद शरीर के मद आलोक से मध्य लोक के कुछ भाग को व्याप्त करता है, उसका शरीर भी पार्थिव है और वह सकलंक है। परन्तु चन्द्रप्रभु भगवान अपने परमौदारिक रूप धवल शरीर के तेज से तीनों लोकों के प्रत्येक भाग को व्याप्त करते है। उनका अभ्यतर शरीर पार्थिव न होकर केवल ज्ञान मय है। और वे निष्कलंक हैं, ऐसे चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र देव सदा जयवन्त हो।

वीरसेन स्वामी ने इसके द्वारा चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र की बाह्य और आभ्यन्तर दोनो प्रकार की स्तुति की है। और श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भी "अष्ट महाप्रातिहार्य वैभवदिंद" अतरंग और वहिरग लक्ष्मी से सुशोभित सपूर्ण प्राणियो को शुद्ध धवलीकृत कल्याण का मार्ग बतलाने के कारण उनको प्रथम नमस्कार किया है। श्री वीरसेन आचार्य ने 'धवलगतएण' इत्यादि पद के द्वारा उनकी वाह्य स्तुति की है। औदारिक नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुआ उनका औदारिक शरीर शुभ तथा सफेद वर्ण का था। उस शरीर की प्रभा चन्द्रमा की काति के समान, निस्तेज न होकर तेजयुक्त थी। जो करोडो सूर्यो की प्रभा को भी मात करती थी। अर्थात् तिरस्कार करती थी। "केवलणाणशरीरो" इस पद से भगवान की अत्यन्त स्तुति की गई है और कुमुदेन्दु आचार्य ने भी इसी आशय को लेकर अतरग लक्ष्मी की स्तुति की है। प्रत्येक आत्मा, केवल--ज्ञान, केवल दर्शन--आदि अनन्त गुणो का पिंड है। इसलिए उन अनन्त गुणो के समुदाय को छोड़ कर आत्मा जैसी स्वतत्र और कोई वस्तु नही है। वांह्य शरीर आदि के द्वारा जो आत्मा की स्तुति की गई, वह, आत्मा की स्तुति न होकर किसी विशिष्ट पुण्यशाली आत्मा का उस शरीर की स्तुति के द्वारा महत्व दिखलाना मात्र है। यहा केवल ज्ञान यह उपलक्षण है, जिस मे केवल दर्शन आदि अनन्त आत्मा के गुणो का ग्रहण होता है, अथवा चार घातिया कर्मों के नाश से प्रगट होने वाले आत्मा के अनुजीवी गुणों का ग्रहण होता है। "**अनजणो**" यह विशेषण भगवान की अर्हन्त अवस्था को दिखलाने के लिए दिया गया है। इससे प्रगट हो जाता है कि यह स्तुति अर्हन्त अवस्था को प्राप्त चंद्रप्रभु भगवान की है। इस स्तोत्र के आरम्भ मे आए हुए 'जयइ धवल' पद द्वारा वीरसेन आचार्य ने इस टीका का नाम 'जयधवला' प्रख्यात कर दिया है और चिरकाल तक उसके जयवन्त होकर रहने की कामना की है। यही आशा कुमुदेन्दु आचार्य की भी है, और कुमुदेन्दु आचार्य ने आगे चलकर महावीर इत्यादि द्वारा महावीर भगवान की स्तुति की है।

श्लोक नं० १

अर्थ--अशोक वृक्ष आदि आठ महाप्रातिहार्य वैभवो से युक्त ज्ञानादि आठ गुणो मे से एक 'ओ' अक्षर समस्त संसार के लिए मंगलमय है। अर्थात् जो आठ गुण हैं वे इस 'ओं' के पर्यायरूप है। ऐसे गुण और पर्यायसहित गुणो को प्राप्त करने वाले आठवे चन्द्रप्रभु भगवान को मैं (कुमुदेन्दु आचार्य) प्रणाम करता हूँ।

कुमुदेन्दु आचार्य ने व्याकरण इत्यादि तथा आजकल के प्रचलित काव्य रचना इत्यादि के क्रम के अनुसार इसकी रचना नही की है। बल्कि जिनेन्द्र भगवान की जो अनक्षरी वाणी थी और जो वाणी उनकी दिव्य ध्वनि के द्वारा सर्वांग प्रदेश से खिरी थी वैसी ही वाणी मे अपने भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।

इस प्रकार कुमुदेन्दु आचार्य ने जो इस ग्रन्थ की रचना की है वह गणित के द्वारा ही हो सकती है अन्य किसी साधन से नही। कुमुदेन्दु आचार्य ने भी इस भूवलय काव्य की रचना केवल गणित द्वारा ही की है।

इसीलिये ७१८ (सात सौ अठारह) भाषा ३६३ धर्म तथा ६४ कलादि अर्थात् तीन काल तीन लोक का परमाणु से लेकर वृहद्ब्रह्माड तक और अनादि काल से अनन्त काल तक होने वाले जीवों की संपूर्ण कथाये अथवा इतिहास लिखने के लिये प्रथम नौ नम्बर (अंक) लिया गया है। एक जो अक है वह अंक किसी गणना या गिनती मे नही आता है। इसीलिये परम्परा से जैनाचार्यों ने सर्व जघन्य अंक को

दो २ को माना है आज उसी पद्धति के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने सर्व जघन्य अंक दो को मानकर नौवे (नवा) अंक को आठवां अंक माना है। नौ के ऊपर अंक ही नही है। फिर यहा एक शंका होती है कि १ और १ मिलकर दो हुआ तो फिर यहा यह एक कहां से आ गया ? जब दो को छोड़कर एक को लेते हैं तो दो मिटकर एक एक ही रह जाता है। यह एक क्या चीज है ? दुनियां मे ऐसा प्रचलित है कि प्रत्येक मनुष्य के हाथ में कोई चीज रखी जाती है तो एक, दो, तीन इत्यादि क्रम से गिनती के द्वारा गिनी जाती है, वे गिनती १०-१२-१५-२० इत्यादि जो संख्या है एक को लेकर १२ या १३ या २० या ३० को प्राप्त हुई है। इनमें से एक एक संख्या क्रम से निकाल दी जाए तो अंत मे केवल एक ही रह जाता है।

उत्तर-अंक-कहे जाने योग्य एक नहीं है। एक का टुकड़ा कर दिया जाए तो दो टुकडे हो जाते हैं और दो बार टुकडे कर दिये जाएं तो चार होते है। इसी क्रम के अनुसार काटते चले जाएं तो काल की अपेक्षा अनादि काल से फिर भी अनादि काल तक चलता ही रहेगा। क्षेत्र की अपेक्षा से केवली भगवान गम्य शुद्ध परमाणु तक जाएगा। जीव की अपेक्षा से सर्व जघन्य क्षेत्रावगाह प्रदेशस्थ क्षुद्र भव ग्रहणधारी जीव तक जायगा, भाव की अपेक्षा केवली भगवान के गम्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म तक कर पावेंगे। आप लोग हमेशा देखते है कि एक रुपया है, अथवा एक घर है, या कोई चीज है ऐसे तुम गिनते रहते हो। तब तुम्हारे विचार से ही एक को हमेशा अलग २ मानेगे। सभी चीज एक कैसे रह सकती है ? अर्थात् कभी भी नही रह सकती है।

इतने महान शक्ति शाली होने पर भी आत्मध्यान मे बैठे हुए योगी राज के समान अथवा सिद्ध भगवान के यह जो एक अंश आप अपने अन्दर ही स्थित है। ऐसे एक को एक से गुणा करने से एक ही रह जाता है। यह ही इसकी अचिन्त्य महिमा है। कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय की कला कौशल की रचना मे ज्ञानादि अष्ट गुणों में 'ओ' अर्थात ज्ञान रूपी एक को ही सम्मान्य अर्थात मंगलमय माना है।

इस भूवलय को गणित शास्त्र के आधार पर लिखा है। अंक शास्त्र और गणित शास्त्र ये विद्या महान् विद्या हैं और इन दोनों का विषय भिन्न-भिन्न है। अंक शास्त्र का विषय यह है कि सबसे पहले वृषभदेव भगवान ने सुन्दरी देवी की हथेली पर बिन्दु को काटकर एक और दो आपस मे मिलाते हुए नौ तक लिखा था। इस विषय का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन करने वाले जो शास्त्र हैं उन्हीं का नाम अंक शास्त्र है। इस अंक शास्त्र के आधार से गणित शास्त्र की उत्पत्ति हुई, अर्थात् द्रव्य प्रमाणानुगम नामक रचना भगवान भूतबली आचार्य ने की। इसी द्रव्य प्रमाणानुगम शास्त्र के आधार से इस भूवलय ग्रन्थ के आधारभूत जड को मजबूत किया गया है। इसलिये सर्व जघन्य दो मान लिया और दो से गिनती की जाए तो नौवां अंक आठवां हो जाएगा। इसलिये आनुपूर्वी क्रम से नवें चन्द्रप्रभु भगवान आठवे तीर्थकर हुए। इसलिये कुमुदेन्दु आचार्य ने नवें चन्द्रप्रभु भगवान को नमस्कार किया है। क्योंकि यह बात ठीक भी है कि संपूर्ण भूवलय की ६४ अक्षरों में ही रचना की हुई है और आठ को आठ से गुणा करने से ६४ होता है। ॥१॥

[१] "टवणेयकौलु" अर्थात् पुस्तक रखने की व्यासपीठ [रहल] [२] पुस्तक [३] पिच्छ [४] पात्र रूपी कमडल ये चारों ही नव पद सिद्धि के कारण है। इस प्रकार भूवलय की रचना के आदि मे महा महिमावान [वैभवशाली] चन्द्रप्रभु भगवान ने कहा है। ॥२॥

इसी [व्यासपीठ] अर्थात् रहल में एक ओर चौसठ अक्षर और दूसरी ओर नौ अंक की जो स्थापना की गई है वही महाव्रत धारण किये हुए महात्माओ ने अर्थात् [दिगम्बर मुनिराजों ने] भव्य जीवो की शक्ति को जानकर उनकी शक्ति के अनुसार सांध्य हुआ नवें केवल

लब्धि रूप नव मंगल ही भूवलय है। ॥३॥

यह नौ की वाणी ओंकार शब्द का अतिशय है। ऐसी इस वाणी को इस काल मे महावीर वाणी कहते है और इसको महामहिमा वाला मगल प्राभृत भी कहते है और इसको महासिद्ध काव्य भी कहते है, तथा इसको भूवलय सिद्धान्त भी कहते है। ॥४॥

भूवलय की पद्धति के अनुसार 'ह्' और 'क्' इन दोनो अक्षरो के संयोग को द्विसम्योग कहते है। क् २८ और ह् ६० अगर इन दोनो अकों को जोड लिया जाए तो ८८ आ जाता है। वह बिन्दी ही ८८ वन गयी। ८ और ८ को जोड़ देने से १६ बन गया और १ और ६ को जोड देने से ७ [सात] वन गया। सात के रूप मे ही भगवान महावीर ने इसका नाम सप्तभंगी रखा। ॥५॥

जिस समय भगवान महावीर सहस्र कमल के ऊपर कायोत्सर्ग मे खडे थे उस समय देवेन्द्र ने प्रार्थना की कि भव्य जीव रूपी पौदे कुमार्ग नाम की तीव्र गर्मी के ताप से सूखते हुए आ रहे हैं। इसके लिये धर्मामृत रूपी वर्षा की आवश्यकता है इसलिये तुम्हारा समवसरण श्री विहार, अखिल, काश्मीर, आन्ध्र, कर्नाटक, गौड, वाह्लीक, गुर्जर इत्यादि छप्पन देशो मे बिहार करके उन जीवो को धर्मामृत की वर्षा करने की कृपा करे, इस प्रकार उन्होने नम्र प्रार्थना की। यद्यपि भगवान का समवसरण बिना प्रार्थना के चलने वाला था। परन्तु देवेन्द्र की प्रार्थना करना एक प्रकार का निमित्त था। जिस समय देवेन्द्र ने समझा कि भगवान का विहार होने वाला है उस समय इस बात को जानकर कमलो की रचना चक्र रूप मे स्थापित की। किस प्रकार स्थापित किया यह बतलाते है?

आगे की ओर सात पीछे की ओर सात, इस प्रकार चारो ओर बत्तीस २ कमल की रचना की अर्थात् चक्र रूप मे स्थापना की। अब हमको इस प्रकार समझना चाहिये कि एक एक कमल मे १००८ दल अथवा पखडी होती है।

३२×७ मे गुणा करने से २२४ होते है और एक वह कमल जो भगवान के चरण के नीचे है उसको मिलाकर कुल २२५ हुए और २२५ अर्थात् २+२+५ को जोड दे तो ९ हो गया और कनाडी भाषा मे इसका 'ऐरडूकालनूर' अर्थ होता है और इसी का अर्थ भगवान का चरण भी होता है। इसी का अर्थ कायोत्सर्ग मे स्थित खडा होना भी है। और जब भगवान अपने कदम को दूसरी जगह रखते है तो उसी समय भक्तिवश होकर देव उस कमल को घुमा देते है। तव घूमने के पश्चात् वही कमल भगवान के दूसरे पाव के नीचे आकर बैठ जाता है। अब जो २२५ कमल पहले थे उसको दुबारा २२५ से गुणा करने से ५०६२५ हो जाता है। [५+०+६+२+५=१८=८+१=९] ये भी जोड़ देने से परस्पर ९ हो जाता है।

भगवान के समवसरण मे देव-देवियाँ ऊपर के अक के अनुसार अष्ट द्रव्य मंगल को लेकर खडे थे। जब भगवान अपने पावो को उठाकर दूसरे पाव पर खडे हुए उस समय इतने ही द्रव्यो से अर्चना [पूजा] करते हुए तथा जब तीसरा पाव उठाकर रखा तो इसी अंक के गणितानुसार अर्चना करते हुए चले गए। अर्थात् सारे [५६ देशो] भरतखंड मे भगवान के जितने पाव पड़ते गए उतने ही देव-देवियां है ॥६॥

जिस समय भगवान विहार करते थे उस समय भगवान के चरण के नीचे जो कमल होता था उसकी सुगन्ध उसी भूमि से निकलकर भव्य जीवो की नासिका मे प्रवेश कर हृदय मे जाती थी। तब उनके हृदय मे अत्यन्त पुण्य-परमाणु का बन्ध होता था। अब इस समय तो भगवान है ही नहीं, उनके चरण के नीचे का कमल भी नही। तब फिर वह गंध किस प्रकार आएगी। क्योंकि अब कमल की गध तो है ही नही तो फिर हम क्यो भक्ति करे?

इस प्रकार के प्रश्न प्राय: उठते है जिनका समाधान हम नीचे दिए हुए दसवें श्लोक में करेंगे।

भगवान अपने समवसरण के साथ विहार करते समय पृथ्वी पर चलने-फिरने वाली चिड़िया के समान चलते थे। परन्तु अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का विहार चक्र के समान अर्थात् आजकल के हवाई

जहाज के समान तिरछा चलता था। इस समय वही भगवान के चरण कमल हमारे हृदय-कमल में चक्र की भाँति घूमते हुए सर्वांग भक्ति को उत्पन्न कर अत्यन्त शान्तमय बना देते हैं। इस प्रकार घूमने के कारण आठवां अंक मिलता है, उस अंक से तथा उस गुणाकार से '९' नौ नामक अंक दो से भाग होकर अर्थात् विषमांक से भाग होकर शून्य रूप बन जाता है। यह गणित की क्रिया किसी को मालूम नही थी। स्वयं वीरसेन आचार्य को भी यह नवमांक पद्धति विदित न थी। कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विधि को अपने क्षयोपशम ज्ञान से जानकर गुरू से प्रार्थना की। तब वीरसेन आचार्य प्रसन्न होकर बोले--तुम हमारे शिष्य नही परन्तु हम ही आपके शिष्य है। जैसा उन्होंने अपने मुख से प्रकट किया है, इस बात का आगे चलकर खुलासा दिया गया है।

यह विधि गणित शास्त्रज्ञों लिये अधिक महत्वशाली है, बहुत दूर प्राच्य देश (जर्मन इत्यादि) से आने वाला (राडार बम्बार मिशन) पर्थात् राडर विमान भारत के किसी एक बडे भाग को नष्ट करने के लिये आता है। तब तुरन्त ही भारत वाले अपनी साइंस से मालूम कर लेते हैं कि एक बडा विमान भारत के बड़े भाग को नष्ट करने के लिये आ रहा है। तभी वह कई स्थानों को सूचित कर, उस विमान को गोली से मार गिराने की आज्ञा देते है। यदि गोली लग जाती है तो विमान नष्ट हो जाता है अन्यथा विमान अपना काम पूर्ण कर लेता है। इसका कारण क्या है ? इसका उत्तर है कि गणित शास्त्र की अधूरता ही इसका कारण है। यदि भूवलय का गणित शास्त्र जगत में प्रचलित हो जाए और समांक का विषमांक से विभाग हो जावे तो सब सवाल हल हो जाते है। और एक दूसरे को मारने की हिसा मिट जाती है। कहते है कि एक राजा के पास मारने का शस्त्र है और दूसरे के पास रक्षा करने का शस्त्र है तो उस मारने वाले शस्त्र का क्या लाभ अर्थात् कुछ नही। यही जैन धर्म का बड़ा महत्वशाली अहिसा का शस्त्र दुनिया को देन है। भगवान् महावीर के ज्ञान में कुछ भी जानने में शेष न रहने के कारण उनके ज्ञान को सर्वज्ञ कहा है। अगर भगवान् के ज्ञान में कुछ वस्तु शेष रह जाती तो उनको सर्वज्ञ नही कहा जाता। इसलिये उनकी वाणी प्रमाण होने के कारण किसी को अप्रमाणता के विषय की शंका नहीं हो सकती। यही भगवान के ज्ञान में एक महत्व है। इसलिये आजकल भी भगवान महावीर के कमलों की गंध का आस्वादन ऊपर कहे हुए गुणकार से भगवान के पद-कमलों को गुणकार करते हुए विशेष रूप से वस्तु को जान सकता है। यही हमारे कहने का प्रयोजन है ॥ ७ ॥

पूर्वापर विरोधादि दोष रहित सिद्धान्त शास्त्र महाव्रती के लिये हैं और अरहंत सिद्धाचार्यादि नव पद की भक्ति अणुव्रत वालों के लिये हैं। इस रीति से अणुव्रत और महाव्रत दोनों की समानता दिखलाते हुए यह मूढ़ और प्रौढ़ अर्थात् विद्वान् दोनो को एक ही समान उपदेश देने वाला भूवलय शास्त्र है। जैसे कि कनाड़ी श्लोकों को पढ़ लेने से मूढ भी अर्थ कर लेता है और इस कनाढ़ी में भी विद्वान् अपने प्रथक-प्रथक दृष्टिकोणों से उन्ही अक्षरों को ढूंढते हुए प्रथक्-प्रथक भाषा और विषय को निकाल लेते हैं ॥ ८ ॥

जिन्होंने सम्यक्त्व के आठ मूल दोषों को निकाल दिया है और देव-मूढता, गुरू मूढता और पाखंडी मूढ़ता को त्याग दिया है और दर्शनावरणी कर्म का नाश कर दिया है और क्षुधा, तृषादि बाईस परीषहों को जीत लिया है। ऐसे महाव्रतियों के प्रमाण से जो वस्तु सिद्ध हो गई उस वस्तु को दुबारा सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। यदि कोई सिद्ध भी करे तो वह अविचारित रमणीय है। अर्थात् कुछ फल नही। यह भूवलय काव्य भी महाव्रतियों के शिरोमणि आचार्य के द्वारा बनाया हुआ है अत. स्वयं प्रमाण है ॥ ९ ॥

इस भूवलय काव्य में बतलाया गया है कि दस दिशा रूपी कपड़ों को अपने शरीर पर धारण करते हुए भी मुनिराज दिगम्बर कैसे बने ?

जैसे सूर्य को दिनकर, भास्कर, प्रभाकर आदि अनेक नामों से पुकारते है वैसे ही कवि लोग उस सूर्य को तस्कर भी कहते है क्योंकि वह रात्रि के अन्धकार को चुराने वाला है। इसी

तरह दिगम्वर जंन मुनि सम्पूर्ण वस्त्रादि परिग्रह से रहित अर्थात् निरावरण आकाश के समान होते हैं। केवल एक शरीर मात्र उनके पास परिग्रह हे। इस रूप मे होते हुए दशो दिशा रूपी वस्त्रको धारण किए हुए है। यह शब्द उपमा रूप मे है ।।१०।।

अनादि काल से इस तरह मुनियो के द्वारा बनाया हुआ यह भूवलय नाम का काव्य है ।। ११ ।।

आत्म बल से वलिष्ठ होने के कारण इन्ही मुनियो को ही बलशाली कहते है ।। १२ ।।

ऐसे दिगम्वर मुनियो के द्वारा कहा हुआ काव्य होने के कारण इसके श्रवण-मनन आदि से जो पुण्य का वन्ध होता है वह बंध अतिम समय तक अर्थात् मोक्ष जाने तक साथ रहता है अर्थात् नाश नही होता है ।। १३ ।।

इस भूवलय के श्रवणमात्र से अनेक कला और भापा आदि अनेक दैविक चमत्कार देखने को मिलते है इसी तरह सुनने और पढने मात्र से उत्तरोत्तर उत्साह को वढाने वाला यह काव्य है ।। १४ ।।

इस प्रकार इस पवित्र भूवलय शास्त्र को सुनने मात्रसे सम्पूर्ण पापो का नाश होता है ।। १५ ।।

दिगम्बर मुनियो ने ध्यानस्थ होकर अपने हृदय रूपी कमल दल मे धवल बिन्दु को देखकर जो ज्ञान प्राप्त किया था उसी के अतिशय को स्पष्ट कर दिखलाने वाला यह भूवलय है। अथवा यह धवल, जयधवल, महाधवल, विजयधवल और अतिशय धवल जैसे पाँच धवलो के अतिशय को धारण करने वाला भूवलय है। जव दिगम्वर मुनिराज अपने योग मे कमल दल के ऊपर पाँच विन्दुओ को श्वेत अर्थात् धवल रूप मे जिस प्रकार एक साथ देखते है उसी तरह इस भूवलय ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ पर तथा प्रत्येक पंक्ति पर इन पाँच धवल सिद्धान्त ग्रंथ के एक साथ दर्शन कर सकते है और पढ भी सकते है ।। १६ ।।

चौसठ (६४) अक्षरमय गणित से सिद्ध अर्थात् प्रमाणित होने के कारण यह भूवलय सर्वोपरि प्रमाणिक काव्य है ।। १७ ।।

ऐसे इस भूवलय के अंक फोटो कर लेने से उसके सव अंकाक्षर काले न होकर सफेद वन गए है। उसी तरह जीव द्रव्य से शब्द निकलता है। उसी तरह यह अक सिद्ध हुआ। यह भूवलय ग्रथ है।

अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले आदि मन्मथ कामदेव, गोमट्टदेव (वाहुवलि) जिस समय अपने वडे भाई भरत चक्रवर्ती को तीनो युद्धो मे जीतते समय जब वैराग्य उत्पन्न हुआ तव जीता हुआ सम्पूर्ण भरत-खंड अपने भाई को वापिस दे दिया। तव खेद खिन्न होते हुए सकल चक्रवर्ती राजा भरत ने (बाहुवलि) से पूछा कि हमने राज-लोभ से आपके वज्र वृपम नाराच संहनन से वने हुए शरीर पर चक्र छोडा। जो पर-चक्र को मात करने वाला सुदर्शन चक्र है वह चक्र आपके शरीर को भी घात करे इस विचार से छोड दिया। यह सभी लोभ कषाय का उदय है। मै इतना वलशाली होते हुए भी पुद्गल से रचा हुआ होने के कारण आपके ज्ञानमयी शरीर रूपी चक्र का घात करने मे असमर्थ होने के कारण तुम्हारे पास निस्तेज होकर खड़ा हुआ हूँ। मैं इस निस्तेज चक्र को वापिस कर रहा हूँ, यह मुझे नही चाहिए। पहले पिता वृषभदेव तीर्थंकर जव तपोवन मे जाने लगे तब मै, आप, ब्राह्मी और सुंदरी इन चारो को नौ अंकमय चक्ररूपी भूवलय मे ६४ (चौसठ) अक्षरो में बाँधकर ज्ञानरूपी चक्र को बनाने की विधि को दिखाया था। उस समय हमने अच्छी तरह नही सुना था, इसलिए मुझे लोभ पैदा हुआ है। उसके फल ने ही मुझे निस्तेज कर दिया अर्थात् मुझे हरा दिया। अव मुझे किसी से न हारनेवाले भूवलय चक्र को वापिस दो। कुम्हार के चक्र के समान ससार में घुमाने वाला यह चक्र मुझे नही चाहिए। तव वाहुवली ने कहा कि जैसा आप कहते हो वैसा नही हो सकता। इस भरत खड को आप पाले मै तो इसका पालन नही कर सकता हूँ, क्योंकि मै इस पृथ्वी को पूर्णरूप से त्याग कर चुका हूँ। इसलिये मुझ को तो अव ज्ञान रूप चक्र के द्वारा धर्म साम्राज्य प्राप्त कर लेने की आज्ञा दो तव-इच्छा न होने पर भी भरत चक्रवर्ती को मानना पड़ा अतः भरत महाराज वोले कि यदि मेरा

सुदर्शन चक्र चला जाए तो कोई चिन्ता नहीं है, परन्तु इस ज्ञान-चक्र-रूपी भूवलय को कदापि नही छोड़ सकता हूँ। इसलिए मुझे लौकिक चक्र और अलौकिक ज्ञान चक्र रूपी भूवलय चक्र इन दोनों को दो, इसपर बाहुबली ने २७ × २७ = ७२९ कोष्ठ में सम्पूर्ण द्रव्य श्रुत-रूपी द्वादशांग वाणी को ६४ अक्षरो में बाँध कर इन अक्षरो को पुनः ९ अंक में बाँध कर दान दिया हुआ होने के कारण यह भूवलय विश्वरूप काव्य है ॥ १९ ॥

उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्मो को अपना आत्मधर्म मानते हुए बाहुबली ने भक्त जनों को श्री विध्यगिरि पर अपने निजी सात तत्व रूपी सप्त भंगों द्वारा जिसको प्रकट किया था वह विजय धवल ही यह भूवलय है ॥ २० ॥

तीनों शल्य रहित उन दश धर्मो को पालन करते हुए उनके द्वारा जो अपने अंदर अनुभव प्राप्त किया है उस अनुभव को ग्रहण करने योग्य सत्यपात्र रूपी भव्य जीवों को जो दान देने वाले महात्मा है वे इस संसार रूपी सागर में कभी नही डूब सकते। ऐसा बताने वाला शुभ कर्माटक अर्थात् ६३ कर्म प्रकृति पर विजय पाने वाला तथा केवल ज्ञान प्राप्ति का उपाय बताने वाला यह भूवलय है।

कर्माटक शब्द का विवेचनः---

आदि तीर्थंकर अर्थात् वृषभदेव भगवान के गणधर वृषभसेनाचार्य से लेकर गौतम गणधर तक सभी गणधर परमेष्ठी कर्नाटक देश के थे। और सब तीर्थंकरों ने अपना उपदेश (सर्व भाषामयी दिव्य वाणी को) कर्नाटक भाषा में ही भव्य जीवों को सुनाया। यह कर्माटक कैसा था ? जैसे कि सात सौ रेडियो को अपने घर में रखकर अलग अलग स्टेशनों पर नम्बर लगाकर उनको गायन सुनने के लिए रख दिया जाय तो दूर से सुनने वालों को वीणा-नाद के समान अर्थात् कोयल पक्षी के कंठ के समान मधुर आवाज सुनने मे आती है। उसी तरह यह कर्नाटक भाषा है। इस भाषा से दिव्य ध्वनि के अर्थ को समझ कर सब गणधर परमेष्ठियों ने बारह अंग (द्वादशांग) रूप में गूंथ कर इन अंगों से प्रत्येक भाषाओं को लेकर सुननेवाले भव्य जीवो की योग्यता के अनुसार उन्ही २ भाषाओं में उपदेश देते थे। इसलिए कर्नाटक भाषा को दिगम्बराचार्य कुमुदेन्दु मुनि ने कर्माटक अर्थात् ६३ कर्मो के खेल को बतलाने वाली अथवा कर्माटक अर्थात् आठ कर्मो की कथा को कहनेवाली और दिव्य वाणी को अपने अन्तर्गत रखने की शक्ति इस कर्माटक भाषा में ही बताई है, अन्य किसी भाषा में नहीं। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने बतलाया है। इसी का नाम भूवलय ग्रन्थ है ॥ २१ ॥

यह कर्म चार भागो में विभक्त है--१ स्थिति २ अनुभाग ३ प्रदेश बंध ४ प्रकृति बंध। ये चारो बंध आत्मा के साथ भिन्न-भिन्न रूप से फल को देते हुए आठ कर्म रूप बन गए हैं। आठों कर्म आत्मा के साथ पिड रूप में आवरण करा के इस आत्मा को संसार रूपी समुद्र में भ्रमण कराते है। इन सभी कर्मो के आवागमन को द्विती-यादि चौदह गुणस्थान तक सम्यक्त्व रूपी निधि में परिवर्तित कर आत्मा के साथ स्थिर करते हुए मोक्ष में पहुंचाने वाली यह कर्माटक नामक भाषा है ॥ २२ ॥

तिरेसठ (६३) कर्म प्रकृति को घातियाकर्म में और शेष बचे हुए ८५ कर्मों को एक अघाति कर्म मानकर उस एक को ६३ में मिलाकर ६४ (चौसठ) मानकर भगवान ऋषभदेव ने चौसठ ध्वनि रूप, अर्थात् आजकल कर्नाटक देश में प्रचार रूप में रहने वाली लिपि के रूप में ही रचना करके यशस्वती देवी की पुत्री ब्राह्मी की दाहिने हाथ की हथेली को स्पर्श करते हुए क्रम से लिखा हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥ २३ ॥

उन चौंसठ अक्षरों को परस्पर मिलाने से "ओम्" बन जाता है अर्थात् ४ और ६ दस बन जाते है, दस में एक और बिन्दी लगाने से 'ओ' से "ओम्" बन जाता है। कर्नाटक भाषा में एक को 'ओंदु' कहते है, दु' प्रत्यय है। 'दु' को निकाल दिया जाय तो 'ओम्' रह जाता है और 'दु' का अर्थ 'का' हो जाता है। 'का' का अर्थ छठी विभक्ति में

लगता है। संक्षेप रूप कह दिया जाय तो 'ओम्' शब्द में सम्पूर्ण 'भूवलय' अंतर्गत होता है।

अब पहले श्लोक से लेकर सत्ताइस अक्षर से तेइस श्लोक तक आ जाए तो "ओकारं बिन्दु संयुक्तं नित्यम्" हो जाता है। ये ही रूप भगवत् गीता मे नेमिनाथ भगवान ने कृष्ण को सुनाया है। वह गीता इस भूवलय के प्रथम अध्याय से ही शुरू होती है। इसका विवेचन आगे चलकर करेंगे ॥ २४ ॥

इस भारत मे कर्नाटक दक्षिण की तरफ पड़ता है। ब्राह्मी देवी का दाये हाथ से लिखने का भी यही कारण है कि कर्नाटक देश दक्षिण में था। उसी दक्षिण देश में स्थित नन्दी नामक पर्वत पर इस भूवलय की रचना हुई। नन्दी नामक पर्वत के समीप पाच मील दूरी पर "यलव" नाम का गांव अब भी वर्तमान मे है। उसी 'यलव' के 'भू' उपसर्ग लगा दिया जाए तो 'भूवलय' होता है ॥ २५ ॥

ब्राह्मी देवी की हथेली मे तीन रेखाये है। ऊपर की बिन्दी को काट दिया जाए तो ऊपर का एक, वीच का एक और नीचे का एक इस प्रकार मिल कर तीन हो जाते है। सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के चिन्ह ही ये तीन रेखागम है। भूवलय मे रेखागम का विषय बहुत अद्भुत है। सारे विपय को और सम्पूर्ण काल को इस रेखागम से ही जान सकते है। सिद्धान्त शास्त्र के गणित मे इस रेखा को अर्द्धछेदशलाका अथवा शलाकार्द्धच्छेद नाम से भी कहते हैं ॥ २६ ॥

दिगम्वर जैन मुनियों ने ऋद्धियों के द्वारा अपने रेखागम को जान लिया है वह बहुत सुलभ है। मान लो कि दो और दो को जोडने से चार, चार और चार को जोडने से आठ, आठ और आठ को जोडने से सोलह, सोलह और सोलह को जोडने से वत्तीस, वत्तीस और वत्तीस जोड़ने से चौसठ होता है। इस तरह करने से चौसठ होता है। यदि गुणा किया जाय तो पाच बार करने से चौसठ आता है इस रेखागम से चौसठ को एक रेखा मान लो। प्रथमार्द्धच्छेद मे बत्तीस रह गया, द्वितीयार्द्धच्छेद में सोलह रह गया, तृतीयार्द्धच्छेद मे आठ रह गया, चतुर्थार्द्धच्छेद में चार रह गया, पंचमार्द्धच्छेद में दो रह गया। यही भूवलय रेखागम की मूल जड़ है।

इन चौसठ अक्षरों को दस (६+४) मानकर अन्त मे एक मानने की विशिष्ट कला है। यदि इस प्रकार न करें तो रेखांकागम नहीं बनता इसलिए कुंद-कुंद आचार्य को द्वादशांग से लेना पड़ा।

सम्पूर्ण संसारी जीवो का सिद्ध पद प्राप्त करना ही एक ध्येय है। इस लोक में रहने वाले सम्पूर्ण अजीव द्रव्यों में से एक पारा ही उत्तम अजीव द्रव्य है। जैसे जीव अनादि काल से ज्ञानावरणादि आठो कर्मों से लिप्त है, उसी प्रकार पारा भी कालिमा, कटिक, सीसक आदि दोषो से लिप्त है। जब यह आत्मा इन ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हो जाती है, तव सिद्ध परमात्मा बन जाती है। इसी तरह यह पारा भी जव इन कालिमादि दोषों से रहित हो जाता है तो रसमणि वन जाता है। इन दोनों का कथन भूवलय में आगे चलकर विस्तार पूर्वक कहा हैं ॥ २९ ॥

अर्हन्त देव ने कर्माष्टक भापा कहा है। "आदौसकार प्रयोगः सुखद" अर्थात् सव के आदि मे जो सकार का प्रयोग है वह सुख देने वाला है। इसलिए सिद्धान्त शास्त्र के आदि मे सकार रख दिया है। "सिरि" यह शव्द प्राकृत और कनाडी दोनों भापा मे समान रूप से देखने मे आता है। इस तरह यह प्राचीन भाषा है। जब इस प्राचीन भापा को अपने हाथ मे लेकर संस्कृत किया तव से 'श्री' रूप में प्रचलित हुआ। 'इस श्री' शव्द का अर्थ अंतरंग और वहिरंग दोनों रूपो मे 'लक्ष्मी' है। अतरंग लक्ष्मी यह है कि सव जीवों पर दया करना। परन्तु दया करने से पहले किन जीवों पर किस रीति से दया करना, इस बात को सबसे पहले जान लेना चाहिए। जिस समय ज्ञानावरणादि कर्म नष्ट होते है तव अनन्त ज्ञान प्रकट होता हैं, इस ज्ञान को केवल ज्ञान कहते है। इस केवल ज्ञान से भगवान ने सब जीवों का हाल यथावत् यथार्थ रूप से जान लिया था। सिद्ध जीव तो अपने

समान अनादि काल से आप अपने अंदर हमेशा ही सुख मे स्थित हैं। इसलिए सिद्ध जीवो के ऊपर दया करने की कोई आवश्यकता ही नही बल्कि ससारी जीवों के ऊपर दया करने की आवश्यकता हैं। इसीलिए भगवान ने अनन्त ज्ञान प्राप्त किया। इसी को कुमुदेन्दु आचार्य ने अतरग लक्ष्मी कहा है। उपदेश के विना जीवों का उद्धार तथा सुधार नही हो सकता। एक-एक जीव को अलग-अलग उपदेश करने का समय भी नही मिल सकता, क्योकि समय की कमी होने के कारण सभी जीवो को एक ही समय मे सब भाषाओं मे सभी विषयों का एकीकरण करके उपदेश देना अनिवार्य है। सभी जीवो का एक स्थान पर बैठकर यथा योग्य उपदेश सुनने का जो नाम है उसी का नाम समवसरण है। यह समवसरण बहिरग लक्ष्मी है। इन दोनो सम्पत्तियो को बताने वाली कर्माटक भाषा है। इन भाषाओं को ओम् से निकाल कर चौसठ अक्षरों को दया, धर्म आदि रूपों मे विभक्त कर उपदेश दिया है। यही सर्व जीवों का एक साम्राज्य है। इस बात को कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥ ३० ॥

नय मार्ग से देखा जाय तो ६४ अक्षर है। जयसिद्धि अर्थात् प्रमाण रूप से देखा जाय तो एक है। उसी का नाम 'ओम्' है। "ओमित्येकाक्षरंब्रह्म" अर्थात् 'ओम्' यह एक अक्षर ही ब्रह्म है। इस प्रकार भगवद्गीता मे कहा गया है। वह भगवद्गीता जैनियो की एक अतिशय कला है। इन कलाओ से ६४ अक्षरो को समान रूप से भग करते जाये तो सम्पूर्ण भूवलय शास्त्र स्वयं सिद्ध बन जाता है ॥ ३१ ॥

इन भंगों से पूत अर्थात् जन्म लिया हुआ जो ज्ञान है, वह ज्ञान गुणाकार रूप से जाति, बुढ़ापा, मरण इन तीनों को जानकर अलग अलग विभाजित करने से पुण्य का स्वरूप मालूम हो जाता है। इसी लिए यह पुण्यरूप भूवलय है ॥ ३२ ॥

भगवान के चरणों के नीचे रहने वाले कमल पत्रों के अन्दर होने वाले जो धवल रूप अक अक्षर है, वह सब विज्ञानमय है। अर्थात् आकाश प्रदेश में रहने वाले अंक है। उन अंकों को पहाड़े का गुणाकार करने से लिया गया अर्थात् ध्यान में स्थित मुनिराजों के योग में झलके हुए अंकाक्षर सर्वावधिज्ञान रूप हैं, उन्हीं अंकों से इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई है ॥३३॥

अरहन्त सिद्धादि नव पद वाचक अंकों से बने हुये दुनियाँ में जितनी अंक राशि है उन सबको नव पदो से गुणा कर देने से अर्थात् १ को दो से और दो को ३ से, ३ को चार से, और ४ को ५ से, और ५ को ६ से गुना करने से ८२० आ गया। वह इस प्रकार है १×२×३×४×५×६×७=७२० इस क्रम को अनुलोम भग भी कहते है। इस प्रकार चौसठ बार यत्नपूर्वक करते जाए तो ९२ डिजिट्स् [स्थानांङ्क] आ जाता है। इसी रीति से उल्टा अर्थात् ६४×६३×६२×६१ इस रीति से एक तक गुना करते चले जाये तो वही ९२ अंक आ जायेगा। इसी गणित पद्धति से भूवलय की रचना हुई है। इतना बड़ी अंक राशि को यदि कोई जान सकता है तो परमावधि धारक महामेधावी वीरसेनाचार्य सरीरवा ही जान सकता है। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार मतिश्रुतज्ञान के धारक हम सरीखे लोग भी जान सकते हैं। अब इस भूवलय में यह एक अपूर्व बात है कि नव का अंक जो है वह दो, चार, पांच, आदि हरएक अंक के द्वारा पूर्णरूप से विभक्त कर लिया जाता है। अर्थात् उन अंकों के द्वारा नौ का अंक कटकर अन्त में शून्य पाँच आ जाता है।

ट् ३८, क् २८, कुल मिलकर ६६ हुआ। उनमें से आदि और अन्त का दोनों पुनरुक्त है। उन पुनरुक्तों को निकाल देने से ६४ बन जाता है। अर्थात् ६६–२=६४। ६+४=१० अंक में जो बिन्दी है वह बिन्दी सर्वोपरि होने से उसका नाम सकलांक चक्रेश्वर है और अकलक है अर्थात् निरावरण है, जब अंक बन गया तो फिर उससे अक्षर भी बन जाता है यही भूवलय का एक बड़ा महत्व है ॥३५॥

इस टक भंग को महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य वाणी में अन्तर मुहूर्त में प्रकट किया, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। इस बात पर शंका होती हैं कि:—

ऊपर पांचवें श्लोक में हक भंग रूप में भगवान महावीर ने कहा था, ऐसा लिखा है, वहां बताया है कि हक भंग से सप्तभंगी रूप वाणी की उत्पत्ति होती है और टक भंग से द्वादशाङ्ग १२ की उत्पत्ति होती है और १२ को जोड़ देवें तो ३ आ जाता है ऐसी विषमता क्यों ? इसका समाधान करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि:

इक भंग से सब तीर्थंकरों द्वारा द्वादशांग वाणी का प्रचार हुआ यह तो अटल बात है परन्तु चौवीसवे तीर्थंकर श्री महावीर ने गौतम गणधर को समझाने के लिए ट्क भग को स्वीकार किया था। ट्क भंग से गौतम गणधर ने बारह अग को जान लिया और उसी को सम्पूर्णभव्य जीव को गू थ कर समझा दिया है ॥३६॥

इस बारह अ ंग शास्त्र का अध्ययन करने से सवार्थसिद्धि की प्राप्ति होती है। अर्थ का मतलव चौसठ अक्षर होता है उन अक्षरों को भंग करने से ९२ अ ंक आ जाता है फिर घटाते चले जाये तो वही ६४ अ ंक आ जाता है, और दस अ ंक भी मिल जाता है ॥३७॥

मर्म रूपी इस दस को उपयोग मे लाने से समस्त सिद्धान्त का ज्ञान हो जाता है। जो कि पहले कहे हुये जिनेन्द्र देव के चरण कमल की सुगन्ध को फैलाने वाला है ॥३८॥

इस दश के अ ंक का अर्द्धच्छेद कर देने से पाँच का अ ंक आ जाता है जो कि पंच परमेष्ठी का वाचक है। इसी अ ंक से मध्यलोक के द्वीप सागरादि की गणना हो जाती है तथा नागलोक, स्वर्ग लोक,, नर और नरक लोक एवं मोक्ष स्थान तक की गणना की जा सकती है। इन्ही तीन लोको के घन राजुओ को पिण्ड रूप बनाने से वही दश का अ ंक आ जाता है अर्थात् ३४३ को क्रमश. जोड़ देने पर दश बन जाता है। इस बात को दिखलाने वाला यह अ ंक रूपी भूवलय है ॥ ३९ ॥

यह एक का अ क महाराशि है, उस राशि की गिनती किसी दूसरे अ ंक से नही होती है। अतएव इस राशि को अनन्त राशि कहते है। क्योकि इस राशि मे से आप कितनी ही एक-एक राशि निकालते चले जाओ तो भी उसका अन्त नही हो पाता है जितना का जितना ही वह रहता है। ऐसे करते हुए भी जिनेन्द्र देव के चरण कमल को १, २, ३, ४, ऐसे ९ तक गिनती करने का नाम सख्यात है और असख्यात भी है। सख्यात राशि मानव के असंख्यात राशि ऋद्धि प्राप्त मुनि और देव इत्यादि के लिए और अनन्त राशि केवली भगवान के गम्य है।

इस प्रकार जघन्य संख्यात दो है। सर्वोत्कृष्ट संख्यात नौ है तो एक नम्बर मे अनन्त भी है, असंख्यात भी और सख्यात भी है ॥ ४० ॥

इन तीनो दिशाओ से आई हुई अनन्त राशि को संख्या राशि से गिनती किया जावे तो प्रत्येक राशि मे अनन्त ही निकल कर आता है। ऊपर भगवान के समवसरण बिहार के समय मे बताये हुये जो सात कमल है, उन कमलों को जलकमल मानकर उन जल कमलों से रससिद्धि या पारा की सिद्धि बन जाती है। कुमुदेन्दु आचार्य ने इस सिद्धरस को दिव्य रस सिद्धि कहा है ॥ ४१ ॥

पाँचवाँ श्लोक मे जो 'ह्क' भंग आया है उसमें ८८ की संख्या है। उस अठासी वर्ग स्थान मे जो गुप्त रीति से छिपा हुआ है, उसका नाम श्री पद्म है। भगवन्त के जन्म कल्याण के समय के पीछे गर्भावतरण के समय मे जिन माता को जो सोलह स्वप्न हुए थे उस स्वप्न समय का जो कथन है उस कथन के अन्दर जो पद्म निकल कर आयेगा उसका नाम स्थल पद्म है। उस पद्म से पारा को घर्षण किया जाय तो महौपधि बन जाती है ॥ ४२ ॥

पुनः उसी अठासी को जोड दिया जाय तो सात का कथन निकल आता है। इस कथन के अन्दर जो कमल आकर मिल जाता है उसको पहाड़ी पद्म या कमल ऐसे कहते है। इस प्रकार जल पद्म स्थल पद्म और पहाड़ी पद्म ऐसे तीन पद्म इस गिनती मे मिल गये। इन तीनो पद्मों को कुमुदेन्दु आचार्य ने इसी भूवलय के चौथे खण्ड प्राणावाय पूर्व के विभाग मे अतीत कमल अनागत कमल और वर्तमान कमल इन तीनो नामो से भी कहा है। इसका मतलव यह है कि अतीत चौवीस तीर्थंकरो के चिन्हो से गिनाया हुआ जो नाम है वह अनागत कमल है। इसी तरह वर्तमान चौवीस तीर्थंकरो का लाञ्छनो के गणित से गिना हुआ जो नाम है वह अतीत कमल है। अनागत चौवीस तीर्थंकरो के चिन्हो से गिना हुआ नाम वर्तमान कमल है।

"कु ंभानागत सद्गुरु कमलजा" अर्थात् अनागत सद्गुरु ऐसे कहने से अनागत चौवीसी इसका अर्थ होता है। कु भ अर्थात् जो कलश है वह १९वे तीर्थंकर का चिन्ह है। इन तात्विक शब्दो से भरे हुए तथा गणित विषय से

परिपूर्ण ऐसे इस शास्त्र के अर्थ को जैन सिद्धान्त के वेत्ता महाविद्वान लोग ही अपने कठिन परिश्रम से जान सकते हैं। अन्यथा नही ॥ ४३ ॥

अव आगे कुमुदेन्दु आचार्य ध्यानाग्नि और पुटाग्नि दोनों अग्नियो का विशेप रूप से साथ-साथ वर्णन करते हैं।

उपर्युक्त अतीत अनागत और वर्तमान कमलो को अथवा यों कहो कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों को समान रूप से लेकर उनके साथ में सम्मिश्रण करके अपने चञ्चल मन रूप पारा को पीसने से उसकी चपलता मिट जाती है और वह स्थिर वन जाता है ॥ ४४ ॥

फिर उस शुद्ध पारा को ध्यान रूप अग्नि में पुटपाक विधि से पकाया जावे तो वह सम्यक् रूप से सिद्ध रसायन हो कर सच्चा रत्नत्रय रूपी रसमणि वन जाता है। तत्पश्चात् यही रसमणि संसारी जीवों को उत्तम सुख देने मे समर्थ हो। इस तरह काम और मोक्ष इन दोनों पुरपार्थों को साधन कर देने वाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥ ४५ ॥

नवमअङ्क के आदि में श्री अरहन्त देव हैं जो कि बिलकुल निर्दोष हैं। उनमें दोप का लेश भी नही है। वह भगवान् अरहन्त देव विहार के समय में जव जव अपना पैर उठाकर रखते है तो उसके नीचे जो कमल बन जाता है उसको महापद्माङ्क कमल कहते है।

विहार के समय में भगवान् के चरण के नीचे २२५ कमल रचे जाया करते हैं। उन कमलों में से सुरुडग के समय भगवान के चरण के नीचे जो कमल होता है वह वदल कर घुमाव खाकर दूसरे डग के समय भगवान के चरण के नीचे दूसरा कमल आया करता है। इसी प्रकार घुमाव खाकर नम्बर वार हरेक कमल आते रहते है। अब भगवान के चरण के नीचे पहले आये हुये कमल को तो अतीत कमल कहते है। चरण के नीचे आकर रहने वाले कमल को वर्तमान कमल कहा जाता है। किन्तु घुमाव खाकर आगे भगवान के चरण के नीचे आने वाले कमल को अनागत कमल कहते है।

उपर्युक्त प्रकार की रसमणी के वनाने की गणित विधि को नागार्जुन ने अपने गुरुवर श्री दिगम्वर जैनाचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी से जानकर उस ज्ञान को आठ बार क्रियात्मक रूप देकर रसमणि वनाया था उसी विधि के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने इस अलौकिक गणित ग्रन्थ में सोना आदि बनाने की भी विधि वताई है।

आदि नाथ भगवान के निर्दोष सिद्धान्त मार्ग से प्राप्त एकाक्षरी विद्या से अहिंसात्मक विधि पूर्वक यह रसमणि बनती है।

अंकाक्षर विधि को पढ़ने से कर्मों को नष्ट करने वाले सिंद्धान्त का मार्ग मिलता है जिसे अहिसा परमो धर्मः कहते हैं। और यह यथार्थ रूप में आत्मा का लक्षण ही अहिसा धर्म है। इस लक्षण धर्म से जो आयुर्वेद विद्या वतलाई गई है यह धर्म श्री वृषभदेव आदि जिनेन्द्र के द्वारा प्राप्त हुआ है ॥४६॥

और इसे सम्पूर्ण रागद्वेष नष्ट हो जाने के कारण जब सर्वज्ञता प्राप्त हो गई तब भगवान ने बताया था।

दिगम्वर मुनि राग को जीतने वाले होने के कारण सूक्ष्म जीवों की हिंसा न हो जाए इस हेतु से वृक्ष के पत्ते उसकी छाल, उसकी जड़, शाखाएं, फल आदि को न लेकर उन्होंने केवल पुष्पों से अपने आयुर्वेद शास्त्र की रचना की है। पुष्प में हिंसा कम है और इसमें ऊपर कहे हुए पंच अंग का सार भी होने से गुण अधिक है। अव आगे कुमुदेन्दु आचार्य का पारा या रस की सिद्धि के लिए जो अठारह हजार पुष्प हैं उसमें से इधर एक को लेकर, जिसका नाम "नागसम्पिगे" अर्थात् नागचम्पा है। उन चम्पा पुष्पों से बना हुआ रसमणी में सागरोपम गुणित रोग परमाणु नष्ट करने की शक्ति है। उतना ही शरीर सौन्दर्य भी वढता जाता हैं। जव सौन्दर्य, आयु शक्ति इत्यादि की वृद्धि हो जाती है तव समान रूप से भोग और योग की वृद्धि हो जाती है ॥५०॥

जगत में एक रूढि है कि सभी लोग पुष्प को तोड़ कर पूजा, अलंकार आदि के निमित्त से ले जाते है और वे सब व्यर्थ ही जाते हैं। यहाँ आचार्य ने उन पुष्पो को सिद्ध रस वनाने के लिए ही तोड़ने की आज्ञा दी है। जो फूल भगवान के चरण मे चढाया जाता है इसका अर्थ है कि वह सिद्ध रस बनाने के लिए ही चढ़ाया जाता है वह व्यर्थ नहीं जाता। प्राचीनकाल में भगवान् की मूर्ति को सिद्ध रसमणि से तैयार करते थे। जिस फूल से रसिमणि वन गयी

उसी फ़ूल को तोड़ कर भगवान के चरणो मे चढाया जाता था। उन मूर्तियो का अभिषेक करने से फिर उस धारा को मस्तक पर सिचन करने मात्र से कुष्ठादि महान् रोग तुरन्त नष्ट हो जाते थे। इस पद्धति का विज्ञान-सिद्धि से सम्बन्ध था। आजकल गन्धोदक मे वह महिमा नही रही साराश यह है कि वह पहले मूर्ति बनाने की विधि जो कि रसिमणी से बनाई जाती थी वह नही रही। लेकिन इससे हमे आज के गन्धोदक पर अविश्वास नही करना चाहिए क्योकि अगर ऐसे छोड दिया जाय तो धर्म का घात भी होगा और वह रसमणी भी नही मिलेगा। परन्तु आजकल वह पुष्प भी मौजूद है और भगवान पर चढाया भी जाता और उसमे रसमणि बनाने को शक्ति भी है लेकिन रसमणी बनाने को विधि न मालूम होने के कारण आजकल उसका फल हमे नहीं मिलता है अगर इसी भूवलय ग्रन्थराज से विदित करले तो हम इस विधि को जानकर रसिमणी प्राप्त कर सकते है। ऐसा ज्ञान कराने वाला केवल भूवलय ग्रन्थ ही है॥ ५१ ॥

ऊपर कही गई विधि के अनुसार भगवान के चरण कमल की गिनती करके सम्यक् दर्शन भी प्राप्त कर सकते है और भगवान के शरीर मे रहने वाले एक हजार आठ लक्षणो से लक्षित चिन्ह भी हमे प्राप्त होगे ॥ ५२ ॥

अरहन्त भगवान के चरण कमलो की गणना करने का यह गुणाकार भग है। लब्धाक को घात करने से जो अ क आता है उसे भगाग [गुणनखड] कहते हैं। यही द्वादशाग की विधि है। यह विधि गुरु परम्परा से आई हुई अनादि अनिधन भग रूप है ५३-५४-५५।

इन सम्पूर्ण अतिशयो से युक्त होने पर भी भग निकालने की विधि बहुत सुलभ है। गुरु परम्परा से चले आये भग रूप है।

अठारह दोपो का नाश कर चुकने वाले परमातमा के अगो से आया हुआ यह अग ज्ञान है।

सुलभता पूर्वक रहने वाले ये बारह अग है सो दया धर्म रूप कमलपुष्पक पत्तो के समान है अथवा यह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपात्मक है और आत्मा के अतरग फूल है।

इन फ़ूलो के घर्षण से यह अन्तरात्मा परमात्मा बन जाता है।

इन परमात्मा के चरण कमलो के स्पर्श वाले कमलो की सुगन्ध से पारा रसायन रूप मे परिणत होकर अग्नि स्तम्भना तथा जलतरण मे सहायक बन जाता है।

यह सेनगण गुरु परम्परा से आया हुआ है, इस सेनगण मे ही वृषभ सेनादि सब गणधर परमेष्टि हुए है, इन्ही परम्परा मे धरसेन आचार्य वीरसेन जिनसेन आचार्य हुये है तथा इस भूवलय ग्रन्थ के कर्ता कुमुदेन्दु आचार्य भी इसी सेन सघ मे हुये है तथा अनादि कालीन सुप्रसिद्ध जैन ऋग्वेद के अनुयायी जैन क्षत्रिय कुलोत्पन्न जैन ब्राह्मण तथा चक्रवर्ती राजा लोग भी इन्ही सेनगण के आचार्यो के शिष्य थे। सब राजाओं ने इन्ही आचार्यो की आज्ञा को सर्वोपरि प्रमाण मानकर धर्म पूर्वक राज्य किया था और उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर चढाया था॥ ५६ से ६३ ॥

और इस मगल प्राभृत का शृङ्खलाबद्ध काव्याग है। वह द्वादशाङ्ग रूप है ॥६४॥

इस मगल प्राभृत काव्य को चक्र मे लिखे होने के कारण यह धर्म ध्वजा के ऊपर रहने वाले धर्म चक्र के समान है। उस चक्र में जितने फ़ूलो को खुद-वाया गया है उतने ही अक्षरो से इस भूवलय की रचना हुई है। अब आगे उसके कितने अक्षर होते है सो कहेगे।

स्व मन के दल मे इन अको की स्थापना कर लेते समय इक्यावन, विन्दी और लाख का चतुर्थांश अर्थात् पच्चीस हजार कुल मिलकर ५१०२५००० हजार होगे ॥६५॥

उतने महान अको मे ५००० हजार और मिला दिया जाय तो (५१०-३००००) अक होगा। इन अकों को नवमाक पद्धति से जोड़ दिया जाय तो नौ हो जायेगा। भगवान का एक पाद उठाकर रखने मे जितने कमल घूमें उतने कमलो मे से सुगधित हवा निकले, उतने परमाणुओ के अरूपी द्रव्य का वर्णन इस भूवलय मे है। ऐसे मान लो कि एक कानडी सागत्य छन्द के श्लोक मे १०८ असयुक्ताक्षार मान लिया जाय तो उपर्युक्त कहा हुआ अक को १०८ से भाग

देने से ७२५००० इतने कानड़ी श्लोक संख्या होते हैं। इतने श्लोकों से रचना किया हुआ काव्य इस संसार में और कोई कही भी नही है। महा भारत को सब से बड़ा शास्त्र माना गया है। उसमें १२५००० श्लोक है। वे संस्कृत होने के कारण से भूवलय में १०८ अक्षरों में एक कानड़ी श्लोक की अपेक्षा से महाभारत की श्लोक संख्या सवा लाख होने पर भी ७५००० हजार मानी जायेगी इस अपेक्षा से यह भूवलय काव्य महाभारत से छः गुणा बड़ा है बल्कि छः गुणा से ज्यादा ही समझना चाहिए। इस भूवलय के अंक ५१०-३०००० है। इन अंकों को चक्र रूप में कर लेना हो तो ७२९ से भाग देना होगा तब ७००९६ इतने चक्र बन जाते है। परन्तु यदि हम अपने प्रयत्न से चक्र बनाना चाहें तो १६००० ही बना सकते हैं। शेष के ५४०९६ चक्र बनाने का ज्ञान हमारे अन्दर नही है। किन्तु उन १६००० चक्रों को भी यदि निकालने का प्रयत्न किया जाय तो उनके निकालने मे भी इतने महान करोड़ों अंक भी [ॐ] इस एक अक्षर में गर्भित है। इस तरह से १७० वर्ष लगेंगे। रूपी और अरूपी सभी द्रव्यों को एक ही भाषा में वर्णन करने वाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम श्री पद्धति भूवलय भी है ॥६६॥

१ श्री सिद्ध २ अरहन्त ३ आचार्य ४ पाठक अर्थात् उपाध्याय ५ सर्व साधु ६ सद्धर्म ७ परमागम ८ परमागम के उत्पत्ति कारण चैत्यालय और ९ जिन बिम्ब इस तरह नौ अंक मे समस्त भूवलय को गर्भित कर रचना किया हुआ ये सम्पूर्ण अंक है ॥६७॥

दयां धर्ममयी इस अंक को रत्नत्रय से गुणाकर देने से ९×३ = २७ ॥ ६८ ॥

इस संताईस को २७×३ = ८१ ॥६९॥

इसी तरह भूवलय में रहने वाले ६४ अक्षर बारम्बार आते रहे तो भी अपुनरुक्त अक्षर का ही समावेश समझना चाहिए ॥१०४॥

इसमें कोई शंका करने का कारण नही है, भूवलय के प्रथम खण्ड मंगल प्राभृत के ४९ वें अध्याय मे २०,७३,६०० बीस लाख तिहत्तर हजार छः सौ अंक हैं। उन सभी के १२७० चक्र होते है इसको अक्षर रूप भूवलय की गिनती से न लेकर चक्राक की गिनती से ही लेना चाहिए। ऐसे लेने से नौ अंक बार-बार आते रहते हैं तो भी कुमुदेन्दु आचार्य ने अपुनरुक्तांक ही कहा है। यहाँ पर विचार कर देखा जाय तो अनेकान्त की महिमा स्पष्ट हो जाती है। इस रीति से ६४ अक्षर भी बार-बार आते हैं।

इन अंकों में से यह आदि भंग हैं ॥१०५॥

इस क्रम के अनुसार २ ३ और ४ भंग हैं ॥१०६॥

इसी क्रम से ५ ६ ७ ८ भंग है ॥१०७॥

इसी तरह ९ १० ११ भंग होते हैं ॥१०८॥

इसी तरह १२ १३ भी भंग होते है ॥१०९॥

इसी क्रमानुसार १४ १५ भंग हैं ॥११०॥

इसी रीति से १६ १७ भंग हैं ॥१११॥

दो नौ मिलकर अठारह भंग हुए ॥११२॥

इसी तरह १९ २० भंग होते ॥११३॥

उसके आगे १ २ ३ अर्थात् २१ २२ २३ भंग है ॥११४॥

इसी क्रम के अनुसार ४ ५ ६ ७ ८ अर्थात् २४ २५ २६ २७ २८ भंग होते है ॥११५॥

इसा क्रम से नौ अर्थात् २९ और ३० भंग है ॥११६॥

इसी तरह ३१ ३२ के क्रमानुसार ३९ तक जाना चाहिए ॥११७॥

इसी क्रम से ५० से ५९ तक जाना चाहिए ॥११८॥

उसके बाद ६०वां भंग आ जाता है ॥११९॥

तत्पश्चात् १-२-३-४ अर्थात् ६१-६२-६३-६४ इस तरह भंग आता है, उन सभी को मिलाने से ६४ भंग आता है। ये ही ६४ भंग सम्पूर्ण भूवलय है ॥१२०। १२१ । १२२ ॥

उन ६४ भंगों के क्रम के अनुसार प्रतिलोम और अनुलोम के क्रमानुसार अक और शब्दों को बना दिया जाय तो ९२ स्थाँनाक आ जाता है।

६४ अक्षरों को १ से गुणाकार करने पर ६४ आता है। इस ६४ को असंयोगी भंग अथवा एक संयोगी भंग कहते है। क्योंकि श्रुतज्ञान के इन ६४ अक्षरों में से जिस अक्षर का भी हम उच्चारण करते हैं तो वह वस्तुतः अपने मूल स्वरूप में ही रहता है। इसलिये इसको असंयोगी भंग कहते हैं।

वह इस प्रकार है—

अ × अ = अ अथवा १ × १ = १

अब भूवलय सिद्धान्त मे आने वाली द्वादशाग वाणी मे द्रव्य श्रुत के जितने भी अक्षर है और उनके जितने भी पद होते है तथा एक पद मे जितने भी अक्षर है इत्यादि क्रम वद्ध सख्या को जहाँ-तहाँ आगे देते जायेगे। अब असंयोगी भंग अर्थात् ६४ अक्षरो के द्विसयोगी भग को करते समय आने वाले गुणाकार को यहाँ बतलाते है। ६४ × ६३ = ४०३२

द्विसंयोगी भंग—संपूर्ण संसार मे अनादि काल से लेकर आज तक जो काल बीत चुका है और आज से लेकर अनन्त काल तक जो आने वाला काल है उसकी जितनी भी भाषाये होती है तथा उसके आश्रय पर चलने वाले जितने भी मत है उनके द्विसयोगी सभी शब्द इस द्विसयोगी भंग मे गर्भित है। भाव यह है कि कोई भी विद्वान या मुनि अपनी समझ से नूतन जानकर जो अक्षरो वाला शब्द उच्चारण करता है तो वह सब इसी मे आ जाता है। अब यदि ३ अक्षरो के भंग को निकालना हो तो द्विसंयोगी भग को ६२ से गुणा करे; चतुः-सयोगी भग निकालना हो तो त्रिसयोगी भग को ६१ से गुणा करे इसी प्रकार आगे भी यदि चतु.पष्ठि भंग तक इसी क्रमानुसार ६४ बार गुणा करते जाये—तो—६८५१८६४३३८०३७७४४८६१५८५४०३०२४०६८७१६६६३-३५४७६३७ ८७३४२५४४०३७८७३५३०२२६६२६१५६४०२८४४१६०००-०७०००००००००० इतनी संख्या आ जाती है, जो कि ९ से भाग देने पर शेष शून्य बचता है। यही १२३ श्लोको से निकला हुआ अर्थ है ॥ १२३ ॥

अब यहाँ पर प्रश्न उटता है कि हजार-दस हजार पृष्ठ वाले छोटे से भूवलय ग्रन्थ मे से इतनी बड़ी सख्या किस प्रकार प्रगट हुई ?

उत्तर—इस भूवलय ग्रन्थ की लेखन शैली ही ऐसी है। यहाँ पर चार चरणो का एक श्लोक होता है। इसमे से आचार्य श्री ने केवल अन्त चरण की ही बारम्बार गणना की है ॥ १२४ ॥

यह मंगल प्राभृत का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ। इसमे कुल ६५६१ अकाक्षर है। ९ को ९ से यदि ३ वार गुणा किया जाय तो भी इतने अकाक्षर आ जाते है। इस अध्याय मे ९ चक्र है तथा प्रत्येक चक्र मे ७२९ अक्षराङ्क है। यहाँ तक कानड़ी का १२५ वाँ श्लोक समाप्त हुआ।

अब इन कनाडी श्लोकों का प्रथमाक्षर ऊपर से लेकर नीचे तक यदि चीनी भाषा की पद्धति के अनुसार पढते चले जायं तो प्राकृत भगवद्गीता निकल आती है। कानडी श्लोको का मूल पाठ प्रारम्भ के ४ पृष्ठों मे आ चुका है। अब उसका अर्थ लिखते हैं। जिन्होने ज्ञानावरणी आदि आठो कर्मों को जीत लिया है और जो इस ससार के समस्त कार्यों को पूर्ण करके संसार से मुक्त हो गये है तथा तीनो लोको एव तीनो कालो के समस्त विषयो को जो देखते रहते है ऐसे सिद्ध भगवान् हमे सिद्धि प्रदान करे।

अब कनाड़ी श्लोक के मध्य मे ऊपर से लेकर नीचे तक निकलने वाले सस्कृत श्लोक का अर्थ लिखते है—

अर्थात् "ओ" एक अक्षर है। बिन्दी एक अक है। इन दोनों को यदि परस्पर मे मिला दे तो "ओ" बन जाता है। ओ बनाने के लिए अ, उ तथा म् इन तीनो अक्षरो की जरुरत नही पड़ती। क्योकि कानड़ी भाषा मे स्वतन्त्र ओ अक्षर है। उन अक्षरों का नम्बर भूवलय मे २४ बतलाया गया है। ओ अक्षर को बिन्दी मिलाकर ओ बनाकर योगी जन नित्य ध्यान करते हैं। क्योकि अक्षर मे यदि अक मिला दिया जाय तो अद्भुत शक्ति उत्पन्न हो जाती है। उस शक्ति से योगी जन ऐहिक और पारलौकिक दोनों सम्पत्तियो को प्राप्त कर लेते है।

दूसरा अध्याय

आ दिय अतिशय ज्ञान साम्राज्य । साधित वय् भववाद ।। मोद अ र्थागम अविरल शब्दव । नोदिप नवम बंधदोळु ।।१।।
दिं वद देवागमवाद ससव स्रुति । यव यव वद नाल्वेरळ ।। स चि रदे निंदु न भो बिहारवमाडि । दवनु पेळिरुव भूवलय ।।२।।
म नुज रोळतिशय दनुभव चक्रिगे । घन शक्ति वय् भवक र नु ।। अनुजनुदोर्बलियवनादि मन्मथ । जिनरूपिनादि भूवलय ।।३।।
स रस विद्य गळोळु कामद कलेयोळु । हरुषदायुर् वेददोळ् उ ।। ल रयद अपुनरुक्ताक्षर दनुकद । सरस सौंदरि देवियोडने ।।४।।
स् नविद्दु कलितवनाद कारणदिंद । मनुमथ नेनसिदे देवा ।। श गसदे सवनुदरियरि तनुक गणनेय । घनविद्ये इरुव भूवलय ।।५।।
ह कदनुकदोळु बनुदळर भाजितम् । सकलवु गुणितवो एम् ब् अ ।। सकलशब्दागमदएळ् भंगगळिह । प्रकटद तत्व भूवलय ।।६।।
ण. वदनुकवदनेळ रिंदलि भागिसे । नव सोन्नेयु हुट्टि बहु द ।। अवधरिसलुबिडियनुकगळएष्टेंब । सबिशंकेगितु उत्तर वु ।।७।।
ण वपददंदद करण सूत्रव कोळ्व । अवयव दोळगिह द णत ।। नवमत्तुनाल्कुसोन्नेगळेरळ्मूर्नाल्कु सविआरारेरडों बत्तारु ।।८।।

१८८८१९८३९५६२३२७६२५९५३९१८७३४१२९७०४५८४५२८०७३६८४७८३५४९३९३१५२९९००९४८६९२६६४३२०००००००००००००

(यहां ८५ को चौंसठ ६४ अक्षरों से आया भंग है । आडासे जोड़ दे तो ३६९ होता है । ३६९ को पुनः आडासे मिलाने से १८ हो जाता है । १८ मिला दिया जाय तो १+८=९ ।

जु णि एंटु नाल्कोंबत्त् सोन्ने सोन्ने योंबत्तु । घनवे नौ वोंबत्तेरडैदु ।। जिनओंदु मूरोंबत्मूरु बंदंकद । घनदेमुंदके बरुवंक ।।९।।
दो ड्ड ओंबतु नाल्कैदु मूरेटेळु । ओड्डिदद नाल्केंटो ध ।। गुड्डे यार् मूरेळु सोन्ने एंटेरडैदु । अड्डनाल्केंटैदु नाल्कु ।।१०।।
स म सोन्ने एळु ओंबत्तेरडोंदु । गमनाल्कु मूरेळु बर् प् आ ।। क्रमदेंदु ओंदोंबत् मूरु ऐदोंबत्तु । विमल ऐदेरडारु एळु ।।११।।
म रळि एरडु मूरु एरडारैदोंबत्तु । सरदे मूरेंटेंब र शि ।। अरुहर ओंबत्तु ओमृदेंदु एंटेंदु । सरियोंदु बरलु बंदंक ।।१२।।
च रिते योळ् प्रतिलोम गुणकार दिंबंद । वरवैवत्नाल् क् अक्षरद ।। सरमालेइदरोळुअनुलोमक्रमविह परियद्रव्यागमवरियै ।।१३।।
उ त्तरदोळु सोन्नेगळु हन्नेरडु । ओत्ते नाल्केरडे अक् बा ।। मत्तोंटेळैदैदेंढारु बंदंक । वत्तिनोळेंदु नाल्केळु ।।१४।।
र सदोम् दोंदु नाल्कू सोन्ने यरडैदु । वसदेंटैदारुकु लि षा ।। यशदेळै दारु ओंदु ओंबत्तु । वशदोंबतु नाल्केरडु ।।१५।।
स् र नाल्कारू सोन्नेयु ओंदु येरडारू । एरळ मूरु ऐदेंबरि त ।। सरि ओंदेळै दु मूरेंदु मूरनाल्कु । बरेसोन्ने योंदारु ओंदु ।।१६।।
स विसूरेंदु सोन्नेयु ऐन्ढोंबत्तु । नवऐळु नाल्केरळ् हो म दे ।। कवि सोन्ने नाल्कु बंदंक वैभव । दवयव अनुलोम वरियै ।।१७।।

४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४०००००००००००

इस ७१ अंक को जोड़ दें तो २६१ = ९ आता है ।

न् वदंक वाद ई अनुलोम विदरिंद । सविरस वेनु तिंतु स क लं ।। सवेसलु भागदहार लब्धदि बंद । भवभयहरणद अंक ।।१८।।
ग णितदे हन्नेरळ् सोन्नेगळागलु । गण मूरोंबत्तेरडों ह ।। मणि ऐदेळु नाल्कोंबत्तु नाल्कु । गण ओंदों बत्ता एना लकु ।।१९।।

४६६१४६४७५१२६३००००००००००००० यह मात्रा हरेक के द्वारा आया हुआ लब्धांक है इन कुल मिलाने से ६४ आता है।
६४ को जोड़ दे तो १० होता है।

चा रित्र दंकविंतिवनेल्ल कूडिद । दारियोळ् बंदिहुदं
रु दळिरतेय क्रम प्रतिलोम वदा । अदरक अरवत्तनाल्
स मना हन्नोंदु सोन्नेय निट्टु मुन्दण । रमदोळ ऐदेरिब
त् वदंक वनेरडं पररपर दिंद । तविसुव कालक्र
डा विन मंगल प्राभृत दोळु बह । तावं गमनिस लाग ।। तावे
णो वदंकदे बंद तप्पित वेनिल्ल । ओवियावुत्तार दं
श् दनन बाणवु वक्रवदहुदु । सदरदि हूविन गंध ।। मृदु
दि न दिन दत्याशे एरलुबिडदिह । अनुपमयोगाग्नि यदनुम्

भू ।। सारतरात्मतत्वव नोडलेरळ् भाग । दारैके अरवत्तोंदु ।।२०।।
त नुदु ।। अदरर्द्ध माडलु बह भंगाक्षर । वदर क्रम वदिंतिहुदु ।।२१।।
ल ।। विमलआर्नात्कारु ऐदेळु मूरेळु । समनाल्केळें दुनाल्मूरयेरडु ।।२२।।
दे ।। अवतरिसिद तप्प तप्पेनलागदु । सवियंक दुपदेश मुंदे ।।२३।।
म क्षणवागि इप्पत्तों बत्तंक । धावल्य वदनु काणु विरि ।।२४।।
ल ।। कोविदओंदंक उत्पत्ति याय्तिल्लि । नववैदरिं भागवाय्तु ।।२५।।
क वदे तो अंतु हृदय होक्कु । हृदनागि भोग योग वनु ।।२६।।
ल ।। ने कोने होगिसि कर्मवकेडिसलु । अनुपम पंचाग्नि इदेको ।।२७।।
नु

घनरत्न ऐदुइंद्रियवु ।।२८।। मनुजत्वदनुभवलाभ ।।२९।। घनकर्मदास्रवविल्ल ।।३०।। जिनमुद्रे हृदय होक्किकहुदु ।।३१।।
अनुभवगम्यद दृष्टि ।।३२।। जिननाथनोप्पिदभक्ति ।।३३।। जिन मुनिगळ ज्ञानयोग ।।३४।। विनुतांतरंग विज्ञान ।।३५।।
तनयरिगेल्ल सौभाग्य ।।३६।। जिननाथ अडिइट्टमार्ग ।।३७।। घन कर्म वळिव भूवलय ।।३८।। जिनवर्धमानसाम्राज्य ।।३९।।
मनसिहदग्रद कमल ।।४०।। " " " " "

श् रद संहननद आदि यादी काव्य । धरेय भव्यर भावदलि ।।
अ नदोळु तपगैदत्म योगदे तम्म । तनुवनु कृशगैव्

क् रुणेय प्रतिम समुद्घातवनुतोर्प । गुरुगळैवर दिव्य चरण ।।४१।।
आ ग ।। जिननाथनंदद सर्व साधुगळंक । दनुभव साधुसमाधि ।।४२।।

वनु संख्यातदोळरिवं ।।४३।। वनुअसंख्यातदोळरिव ।।४४।। घनअनंतांकदोळरिव ।।४५।।
जिननाथनरिकेगेगम्य ।।४६।। तनुमनवचनातीत ।।४७।। घनदुष्कर्मदावाग्नि ।।४८।।
वनुपडेदवनोव्वयोगि ।।४९।। विनुत वैभव शालि अज्ज ।।५।। घन शिव सौख्यव पडेव ।।५१।।
दिन दिन उन्नति गडर्व ।।५२।। वनगृहव् वेल्लवनरिव ।।५३।। घनशुद्धोप योगियवं ।।५४।।
वनु सार्द कर्म भूवलय ।।५५।।

घ मनव माडिद कर्मद कगळण्डु । विमलात्म गुणावदे
र सयुतवागिहेऽच्चुत बरला आत्म होस आदियाद ज्ञानवद ।।

मु रुळि ।। गमकद कलेयन्तेहेऽच्चत वरुवाग । तमगल्लि उपदश शक्ति ।।५६।।
नि शियोळु पड़ेदुद हगलुव न दें ल्लरगे । वशागोळिसुवव पाठकनु ।।५७।।

वशगोळिसुवनुपाध्यायं ।।५८।। रस दूट उरिण सुवनार्य (चार्य) ।।५९।। यशदे भूवलयवनलेव ।।६०।।
यशदोळिन्द्रियव जयिसिरुव ।।६१।। होसब नागेसेव भूवलय ।।६२।। हुसियनोड़िसिद महात्मा ।।६३।।
" " " "

होसमार्द वार्जवरूप ॥६७॥ रिसि समुदाय दोळग्र ॥६८॥ होसदाद् पदे शदार्य ॥६९॥
यशदौषर्द्धिय द हि ॥७०॥ होस बुद्धि ऋद्धिय सिद्ध ॥७१॥ उसहसेनार्य वंशजनु ॥७२॥
वृषभनाथन काल दरिव ॥७३॥ हसर मेल्लद दयापरनु ॥७४॥

ग गन मार्ग द पोपरंदद तीव्रत्व । दगणितदाचारसद भि ॥ मिगिलागिपालिसुतदरन्ते भव्यर । बगेय पालिसुवनाचार्य ॥७५॥
सु वद कद ते सम्पूर्ण पदार्थद । सविचार वेल्लवन ह हि ॥ अवरवरिगेतक्क आचार सारव । सवियवयवव तोरिसुव ॥७६॥
श्र मं साम्राज्यद सार्व भौमत्ववु । निर्मल सद्धर्मव पा ॥ धर्म वैभव वदरंक दष्टाचार । धर्म व पालि सुवार्य ॥७७॥
धा रिणियोळ् दश धर्मद सारव । सारिदगुरुवुआचार्य ॥ सारद ति द्धरनारैदु तोरुव । सारतरात्म आचार्य ॥७८॥

सारतरात्म भूवलय ॥७९॥ धीरन चरण भूवलय ॥८०॥ नेरद मार्ग भूवलय ॥८१॥
दारि योळ् बन्द भूवलय ॥८२॥ शूरर काव्य भूवलय ॥८३॥ हारद रत्न भूवलय ॥८४॥
सारात्म किरण भूवलय ॥८५॥ नेर सिद्धान्त भूवलय ॥८६॥ क्रूर कर्मारि भूवलय ॥८७॥
शूरर ज्ञान भूवलय ॥८८॥ सारात्म ज्योति भूवलय ॥८९॥ नेरदध्यात्म भूवलय ॥९०॥
सारमाणिक्यभूवलत ॥ ९१ ॥ वीरजिनेन्द्रभूवलय ॥ ९२ ॥ वीरनवचन भूवलय ॥९३॥
वीर महादेव वलय ॥ ९४ ॥ भूरि वैभवयुतवलय ॥ ९५ ॥ एरिदनन्त आचार ॥९६॥
सारवसारिदाचार्य ॥ ९७ ॥ भूरि वैभवद विरागी ॥ ९८ ॥ गेरिसुवेनुभक्तियनु, ॥९९॥

र् ससिद्धियागेदुर्लोहसुवर्णद वशवागुवन्तात्म निर त ॥ यशवळिसुवदेहवर्जितनागुत । वशवागेमोक्षवुसिद्ध, ॥१००॥
शनागुवनु लोकाग्रदेनेलसुव । राशियोळ्शुद्ध तानागी ॥ लेसा सो र्थवद सारेभव्यर । राशिराशिये कादिहुदु ॥१०१॥
प र्तनागिरे आत्मनुसंसारद । व्यर्थयनेल्लवसमेदि र् पा ॥ क्षितिये श्री सिद्धत्व दनुभवदादिय । हितवदनन्तवु काल ॥१०२॥
मा न मायवुलोभ क्रोध कषायद । ताणवेल्लवईगळिदु ॥ ताण श्रा णवनेल्लकाणुतलरियुत । आनन्ददिहरेल्ल सिद्धर् ॥१०३॥
ण व कारमन्त्रदसार सर्वस्वरु । अवरिवरेन्नदेसर स ॥ अवयववेआत्मन रुपवागिह । अवरुसिद्धरु एन्दरियय, ॥१०४॥

नवदंक संपूर्णसिद्धर् ॥१०५॥ अवरुवासिसुव भूवलय ॥१०६ नवकारमन्त्रदसिद्धर् ॥१०७॥
अवरनन्तांकदेवद्धर् ॥१०८॥ अवरनन्तदज्ञानधररु ॥१०९॥ नवकोटिमुनिगळगुरुगळ् ॥११०॥
अवरंगनिर्मलशुद्धर् ॥१११॥ अवयववळिदवयवरु ॥११२॥ नवसद्दर्शनमयरु ॥११३॥
अवरु "स" अक्षरआदि ॥११४॥ अवरुतंमिन्दजीविपरु ॥११५॥ सविसौख्यसार सर्वस्वर् ॥११६॥
अवतारवळिदुबाळ्ववरु ॥११७॥ अवरनन्तदवीर्ययुतरु ॥११८॥ अवरनन्तदसुखमयरु ॥११९॥
सवियअगुरुलघुगुणरु ॥१२०॥ नवसूक्ष्मत्वताळ्दवरु ॥१२१॥ कवियवगाहदोळिहरु ॥१२२॥
अवरव्याबाधधररु ॥१२३॥ नवगेबेकवरसंपदवु ॥१२४॥ अवररहन्तत्त्वतिळिदर् ॥१२५॥

सुविशालजगवनोळ्पवरु ॥१२६॥ अवरपादकेनमिसुवेनु ॥१२७॥ भववछिदवरासिद्धर्

छ् वर्णोयोळ कदक्षरवनुस्थापिसि । दवयववो येम्ब अव र ॥ नवकेवललब्धिगोडेयरेन्देनुवरु । अवररहन्तर् इष्टात्मर्, ॥१२८॥

ष्टददेवरुघातिकर्मवगेल्दु । स्पष्टदेभववनीगिद श् द् ॥ वृष्टियोळ् भूवलय के धर्मव पेळ्द । स्पष्ट द् ओंकार वेळ्दवरु ॥१२९॥

नियोळु मूरुवेळेयलि अनन्तद । गरिणतदोळडगिसिदवरम् ॥ ब न ज नाभिय सोंकदोंनिन्ददेवरम् । जिनदेवरेंदरियुवुदु ॥१३०॥

सयुतवाद भूवलय सिद्धान्तके । रसवन्तर्मु हूर्त्तदि तीर्थ । होसेदेन्दुमूरुकालव नोन्देकालदि । होसदोन्दरोळुपेळ् दिहर ॥१३१॥

ओ मुकारओंदरोळुगिसिदरवत्नाल् । कंकम ओंदक्षर् हु ॥ अंकवेअक्षर अक्षर अंकवेम् । बम्कियपेळ्दवरवरु ॥१३२॥

नमथनुपटळु दोळु बाळ्व नररिगे । घनकर्मवळिदवस र व ॥ अनुभववनु पेळ्द अरहन्तरड्गिळ नेनेवल्लि ऐदंकसिद्धि ॥१३४॥

खशिखेगळु समानदोळिर्प देहद । सकलांकपरमनिगिरु लु म् ॥ सकलागमवु सर्वागम् ओंदरिम् । प्रकट वादरहन्त देव ॥१३५॥

चरव्यन्तर भवनामर कल्पद । सचरदेवतेगळवरु णो ॥ सचराचरवनेल्लवकेळिदवरागि । अचलभक्तिय प्रकटिसिदर् ॥१३६॥

सनेन्द्रियदासेयळिद भव्यात्मरु । वशगेय् सकलांक द्ध दया ॥ वशवादुदेमगेन्दु नमिसुतपोदरु । असदृश भूवलयक्के ॥१३७॥

नविल्लद ज्ञान ओंददुहुट्टि । श्री निकेतनंगदुप रि ॥ आनतवागिह मुक्कोडे पूमळे । भानुमंडलद भूवलय ॥१३८॥

शगोंड "अ" आदिमंगलप्रामृत । रसद अक्षरवदु ला नु ॥ यशदारुसाविर दैनूररवत्तोंदु । रसदेरडनेय अन्तरदोळ् ॥१३९॥

यशदैदेन्टेळेळ् अन्तरद ॥१४०॥ दिशेयधिकारदोळ् बर्प ॥१४१॥ रसदंकगरगनेयक्षरद ॥१४२॥

यशदेकूड़िदरेबाहड्क ॥१४३॥ रसदेन्टमूर्नाल्केरडु ओंदु ॥१४७॥ वशदसाविर हन्नेरडरेय ॥१४५॥

दिशेयोळुबरुवचारित्र्य ॥१४६॥ यशवदन्तागे "आ" इदरोळ् ॥१४७॥ रसदन्तराधिकारदोळु ॥१४८॥

रसदक्षरदलेक्कसिद्धि ॥२४९॥ कुसुमगळन्नुकूड़िदरे ॥२५०॥ विषहरदनुभवविरुव ॥१५१॥

यशदंककाव्यदसिद्धि ॥१५२॥ रिषिवर्द्ध मानरवाक्य ॥१५३॥ रसदन्तरेन्टनाल्केन्ट्ऐळु ॥१५४॥

ओ मुदंकवेप्पत्तेळु येम्भत्तै दु । अमृमलुअन्तर नु दरलि ॥ उम्मिदेन्टनाल्केन्टेळु बंदंक । सम्मतव् "आ" वय भूवलय ॥१५५॥

संपूर्ण

आ दूसरे अध्याय में ६५६१ अक्षर हैं+ अन्तर में ७८४८ = है। कुल मिलकर १४४०९ अक्षर होते हैं

अथवा

प्रथम--अध्याय १४३४६+दूसरे आ अध्याय १४४०९ = २८७५५ हुये ।

प्रथम अक्षर ऊपर से नीचे तक पढ़ते जायंतो प्राकृत भाषा सक्रमवर्ती

आदिमसंहरगराजुदोसमचउ रस्संगचारु संठाराोम् दिव्ववरगन्धधारी पमाराठिदरोमराखरुवो ॥२॥

२७ वां अक्षर से लेकर यदि ऊपर से नीचे पढ़ते जायं तो संस्कृत भाषा सक्रमवर्ती

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित सकल भूतल मल कलंका । मुनिभिरुपासिततीर्था । सरस्वती हरतुनो दुरितान् ॥२॥

द्वितीय अध्याय

अनादि कालीन ज्ञान साम्राज्य के वैभव युक्त इतिहास को लिए हुये तथा नवमबन्ध मे कहे जाने वाले अत्यन्त सुन्दर अर्थागम को प्रकट करने वाला यह अखिल शब्दागम है। १

आकाश मे अधर गमन करने वाले तथा देवो द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर समवशरण नामक सभा मे विराजमान होकर उपदेश देने वाले भगवान् के मुख कमल से निकला हुआ दिव्य ध्वनि रूप यह भूवलय शास्त्र है। २

सम्पूर्ण मनुष्यो मे अतिशय सम्पन्न और चक्रवर्ती के अपूर्व वैभव से युक्त ऐसे श्री भरत यहाराज के अनुज तथा जिन रूप धारण करने वाले ऐसे आदि मन्मथ श्री बाहुबलि जी द्वारा निरूपित यह भूवलय है।

विवेचनः— मति, श्रुति, अवधि, मन.पर्यय और केवल ये पॉच तथा कुश्रुत, कुमति और कुअवधि ये तीन मिलकर आठ प्रकार के ज्ञान है। इनमें जो पहले के पॉच है वे सम्यग्ज्ञान के भेद है और जो शेष तीन है वे मिथ्या ज्ञान कहलाते है। इन तीनों को विभंग ज्ञान भी कहते है। स्थावर इत्यादि असंज्ञी जीवों को कुमति, कुश्रुत होता है और सेनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त को विभंग ज्ञान भी हो सकता है। यह ज्ञान सासादन गुणस्थानवर्ती जीवो तक होता है। सम्यग् मिथ्यात्व गुणस्थान मे सद्ज्ञान और असद्ज्ञान (अज्ञान) ये दोनों मिश्र ज्ञान होते है। मति श्रुत अवधि असंयत सम्यग्दृष्टि आदि को होता है। मनः पर्ययज्ञान प्रमत्त गुण स्थान को लेकर क्षीण कषाय गुण स्थान तक होता है। तेरहवे गुण स्थान में केवल ज्ञान होता है और चौदहवें गुण स्थान वाला अयोग केवली होता है इससे ऊपर अशरीरी होकर सिद्ध हो जाता है।

पाँचों ज्ञानों में जो पहले के चार ज्ञान है वे परोक्ष है और केवल ज्ञान पूर्णतया आत्माधीन होने के कारण प्रत्यक्ष है। यह ज्ञान आदि और अतिशयवान् भी है। केवल ज्ञान हो जाने के बाद फिर शरीर धारण नहीं करना पड़ता इसलिये इसे अशरीरी भी कह सकते है और पौद्गलिक पर वस्तु के संबंध से रहित है, इसलिये यह अरूपी भी कहलाताहै। मत, श्रुति,अवधि और मन:पर्यय ये चारों ज्ञानपरोक्ष हैं क्योंकि ये चारों ज्ञान इंद्रियों की अपेक्षा रखते है। केवल ज्ञान अतीन्द्रिय है और संसार के सभी पदार्थो को एक साथ जानने वाला है। इसलिये इसको सर्वज्ञ ज्ञान कहते है। अनन्त ज्ञान भी इसे कहते है। जिसका अन्त नहीं है वह अनन्त है। केवल ज्ञान का भी हो जाने के बाद अन्त नहीं होता है।

यह ज्ञान व्यवहार नय से लोकालोक के त्रिकालवर्ती संपूर्ण विषयों को जानता है तथा निश्चयनय से अनाद्यनन्तकाल से आये हुए अपने आत्मस्वरूप को प्रतिक्षण में जानता है अतः इस ज्ञान को शुद्धात्मज्ञान कहते है।

अतिशय वैभव से संयुक्त संपूर्ण जीवों को आमोद प्रमोद उत्पन्न करने वाले गंगा नदी के पवित्र प्रवाह के समान अखंडित होकर बहाने वाले अर्थागम को मै (दिगंबराचार्य कुमुदेन्दु मुनि)ने नवम अंक के बंधन मे बांध दिया है। यह पहले कानड़ी श्लोक के अर्थ का सार है। ऐसा होने पर भी नवम बंध-वैभव इन दो शब्दों की व्याख्या विस्तार पूर्वक नही हो सकी। इसी अध्याय का छः से लेकर आने वाले श्लोक में संक्षेप मे नवम बंध के अर्थ का विवरण करते है। ऐसा कहने पर भी वह पूर्ण नहीं हो सकता।

बंधनानुयोग द्वार का कथन विस्तार के साथ ही होना चाहिये। इसका विस्तार आगे लिखेगे।

वैभव शब्द का अर्थ ३४ अतिशय है. जिनका विवेचन आगें समयानुसार करेंगे।

श्लोक दूसराः—

ऊपर कहे हुये श्लोक के अनुसार मनुष्य को केवल ज्ञान अर्थात् निर्विकल्प समाधि प्राप्त होने के बाद उसके बल से स्वर्ग से देवेन्द्र आकर उस केवली भगवान् के लिये समवसरण की रचना करते हैं। देवताओं के द्वारा समवसरण की रचना होने पर भी उसकी माप

तथा ऊँचाई इत्यादि सर्व प्रमाण भूवलय में दिया गया है। जैन शास्त्र में कोई भी बात अप्रमाणित नही होती अर्थात् प्रमाणिक होती है। आजकल विमान चढने मे दस, बारह सीढी तक एक ही तरफ लगा देते है, परन्तु समवसरण के लिये चारों ओर हर एक मे २१००० सीढियाँ होती हैं। आज के विमानो मे चढते समय एक के ऊपर एक पांव रखकर चढना पढता है परन्तु समवसरण मे क्रमश. चढने का क्रम न होने के कारण इस तरह चढने की आवश्यकता नही रहती।

पहली सीढी में पाद लेप औषधि के प्रभाव से मनुष्य और तिर्यंच प्राणी समवसरण भूमि मे जाकर भगवान् के सन्मुख पहुच जाते थे। यद्यपि यह बात आजकल की जनता के लिये हास्यकारक मालूम होती है तथापि श्री भगवान् कुदकुदाचार्य तथा श्री पूज्य पाद आचार्यादिक पहले इसी प्रकार की पाद औपधि का लेप करके आकाश मे गमन करते थे, यह बात उस समय की जनता के समक्ष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती थी। पाद औपधि का विधान किस प्रकार करना चाहिये, इस विधि को भूवलय के प्राणावायु पर्व मे पूर्ण रीति से स्पष्ट किया गया है। विमान इत्यादि तैयार करने की भी विधि इसमे आई हुई है। इस खंड में जगली कटहल के फूलो से पादलेप तैयार होता है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने बतलाया है। आगे इसके विधान का प्रसग आने पर लिखेंगे। ऐसे देव निर्मित समवसरण मे विराजमान होने पर भी भगवान् ने समवसरण का स्पर्श नही किया। बल्कि वे सिहासन के ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान रहते थे और आकाश में गमन किया करते थे।

सर्वसघ परित्याग कर अपने तप के द्वारा सपूर्ण कर्मो की निर्जरा करके केवल ज्ञान साम्राज्य को प्राप्त कर, संपूर्ण प्राणी को भिन्न-भिन्न कल्याण का मार्ग न वतलाकर एक अहिंसामयी सच्चे आत्मकल्याणकारी आत्मधर्म को बतानेवाले भगवान श्री वीतराग देव के द्वारा कहे हुए भूवलय को कुमुदेन्दु आचार्य ने संपूर्ण विश्व के प्राणी मात्र के लिये सर्वभाषामयी भाषा अंक रूप में कहा है।

श्लोक तीसरा :-

इस मनुष्य भव में अतिशय देनेवाले तीन पद हैं। इससे अन्य कोई भी महान् पद नही है। बीते हुए जन्म जन्मान्तरों में अतिशय पुण्यसंचय कर सोलह कारण भावना, बारह भावना तथा दस लक्षण धर्म इत्यादि भावनाओ को भाते हुये आने के कारण राजा महाराजादिक १८ श्रेणियों को चढते हुये आने से परम्परा अभ्युदयसुख किसी १८ श्रेणियों में कही भी खंडित न होकर परम्परागत अभ्युदय सुख में सबसे पहले भरत चक्रवर्ती तथा मन्मथ वाहुवली महान् उन्नतिशाली पराक्रमी कामदेव थे। मन्मथ का अर्थ-ईश्वर के ध्यान में ज्ञानाग्नि से शरीर को तपाने के कारण इसका नाम मन्मथ पड़ा, ऐसा कतिपय विद्वानों का कथन है। जिनके शरीर नही है वे दूसरे के मन को कैसे आर्कषित कर सकते है ? ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय में इस प्रकार कहा है कि जिस समय मनुष्य को पुवेद प्रगट होता है उस समय स्त्रियों के साथ भोग करने की इच्छा उत्पन्न होती है। स्त्री वेदनीय कर्म का उदय होने से पुरुष की अपेक्षा और नपुसक वेद का उदय होने से एक साथ स्त्री और पुरुप इन दोनों के साथ रमण करने की इच्छा होती है, ऐसे अवसर मे अशरीरी ईश्वर मन्मथ कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता है, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय मे कहा है। इतना ही नही उस समय सभी मनुष्यो में बाहुवली अत्यन्त सुन्दर देखने में आये थे। इस प्रकार सपूर्ण भरतखंड के मानव प्राणियों को अपने आधीन करके रहने वाले भरत चक्रवर्ती थे। यदि मनुष्य सुख की अपेक्षा देखा जाय तो ये दो ही सुख है एक कामदेव का सुख और दूसरा चक्रवर्ती का सुख। इसके अतिरिक्त संसारी सुख अन्य किसी मे भी नहीं है। ऐसे अतिशय कारक सुख, रूप लावण्य तथा बल इत्यादि संपूर्ण इंद्रियजन्य सुख को तृण के समान जानकर उसे त्याग कर सबसे अतिम तथा सर्वोत्कृष्ट अविनाशी अनाद्यनन्त मोक्ष पद को प्राप्त करने का उद्यम किया, तो क्या यह बात सामान्य है ? यह जिनरूप धारण करने की

प्रबल इच्छा मन में प्रगट होने के बाद विषय वासना कभी रह नही सकती। किंतु इस जिन रूप का स्पष्टीकरण ही इस भूवलय मे है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते है। इसलिये इसकी प्राप्ति के लिये गोमटदेव ने संपूर्ण मानव को सुखकारी भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।

वृषभदेव तीर्थंकर कृत युग के आदि में संपूर्ण साम्राज्य पद भरत चक्रवर्ती को देकर तपोवन को जाने के लिये जब उद्युक्त हुए थे तब अपने शरीर के संपूर्ण आभरणों को प्रजाजनों को अर्पण कर दिया था। उस समय उनके शरीर पर कुछ भी शेष नही रह गया था। तब ब्रह्मचारिणी युवती ब्राह्मी व सुन्दरी नामक दो देवियों अर्थात् भरत चक्रवर्ती की बहिन ब्राह्मी और बाहुबली की बहिन सुन्दरी देवी दोनों आकर पिताजी से निवेदन करने लगी कि पिताजी! भाई भरत को तथा बाहुबली को तो आपने बहुत कुछ दिया परन्तु हमे कुछ नही दिया। इसलिये हमें भी कुछ मिलना चाहिए। तब भगवान ने कहा कि बेटियो! तुम्हें क्या चाहिए अर्थात् तुम क्या चाहती हो? इस तरह भगवान की प्रश्न करने की आदत थी। ससार एक ऐसा अनूठा है कि यदि कोई आकर किसी से पूछे तो वह यह नही कह सकता कि तुमको क्या चाहिए? अर्थात् वह कहेगा कि मेरे पास १०-२० या ५० रुपया है, इसे तुम ले जाओ, यही बात कहेगा। परन्तु भगवान की इस तरह भावना नही होती। क्योंकि भगवान के अन्दर लोभ कषाय का सर्वथा अभाव था तथा उनकी आत्मा के अन्दर स्वाभाविक दान करने की प्रवृत्ति होने के कारण इनके प्रति शंकात्मक उत्तर मिलता है। भगवान के अन्दर यही एक अतिशय है। पिताजी की इस बात से प्रसन्न होकर दोनों पुत्रियाँ लौकिक सम्पत्ति पूछना तो भूल ही गई पर ब्रह्मचारिणी होने के कारण इह परलोक के कल्याण निमित्त तथा भविष्यकाल की सर्वजनता के कल्याणार्थ उन दोनो पुत्रियो ने इस प्रकार प्रार्थना की कि-- हे पिताजी! अभी भरत चक्रवर्त्यादि को आपने जो वस्तु दिया है वह सब क्षणिक इद्रिय जन्य तथा अंत मे दु:खदायी है। इसलिए हमें ऐसी वस्तु नही चाहिये। हमें आप कोई ऐसी वस्तु दे कि जो सदा हमारे साथ रहे।

तब भगवान ने प्रसन्नतापूर्वक दोनों पुत्रियों को अपने पास बुलाकर बांई अक मे ब्राह्मी को और दाहिनी अंक में सुन्दरी देवी को बिठा लिया। तत्पश्चात् ब्राह्मी से कहा कि पुत्री! तुम अपना हाथ दिखाओ। पिता की आज्ञानुसार ब्राह्मी देवी ने अपना दाहिना हाथ निकाला। तब भगवान ने अपने दाहिने हाथ के अंगूठे को अंदर रखकर मुट्ठी बांधकर ब्राह्मी की हथेली मे बंधे-हुए अमृतमय अपने अंगूठे से लिख दिया। ऐसा लिखने का कारण यह था कि जब भगवान का जन्म हुआ तब बालक अवस्था मे सौधर्म इंद्र ने तत्काल जनित भगवान के मृदुल मृणाल अगूठे के मूलभाग मे अमृत भर दिया था। इसलिये उस अमृत को उनके अगूठे के मूलस्थान से लेकर सिंचन करते हुए सर्वभाषामयी भाषाओ को धारण करनेवाला कर्माष्टक अर्थात् आठ प्रकार की कन्नड़ भाषा के स्वरूप को दिखानेवाली लिपि रूप कई अक्षरों को लिखकर कहा कि बेटी आपके प्रश्न के अनुसार अक्षर की उत्पत्ति हुई है। सो अनन्त काल तक रहेंगी। इसलिये यह साद्य अनन्त कहलाता है। पहले भोग-भूमि के समय में इस लिपि की आवश्यकता नहीं थी। उसके पहले अनादि काल से अर्थात् सबसे प्रथम कर्म-भूमि के प्रादुर्भाव के समय मे सबसे प्रथम तीर्थंकरों से आज जैसे ही उत्पत्ति होती आई है इस दृष्टि से देखा जाय तो तुम्हारी हथेली पर लिखे हुए अक्षर अनाद्यनन्त भी कहे जायेगे। इसलिये कर्नाटक भाषा साद्यनंत भी है और अनाद्यनंत भी। छठवे काल मे ये अक्षर काम में नहीं आने से शांत हो जाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो अक्षर आदि और सांत भी हैं।

इसका विस्तार आगे चलकर बताया जाएगा।

इस बात को सुनकर ब्राह्मी देवी सन्तुष्ट हो गई क्योंकि उसकी हार्दिक इच्छा पहले से यही थी कि हमें कोई अविनाशी वस्तु मिले। अतः उसे प्राप्त होते ही वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। अनेक विद्वानों का यही मत है कि सभी लिपियों की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि प्राचीन है।

क्योकि यह लिपि आदि तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ भगवान की सुपुत्री ब्राह्मी देवी के नाम से अंकित है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते है कि सबसे पहले श्री आदिनाथ भगवान ने ब्राह्मी देवी की हथेली मे जिस रूप से लिखा था वह आधुनिक कानडी भाषा का मूल स्वरूप था।

उपर्युक्त बात को देखकर पिताजी (भगवान आदिनाथ) की जघा पर बैठी हुई सुन्दरी देवी ने प्रश्न किया कि पिताजी ? बहिन ब्राह्मी की हथेली मे जो आपने लिखा वह कितना है? जिस प्रकार किसी विश्वस्त व्यक्ति का सहयोग लेने के लिये यदि प्रश्न किया जाय कि हमे अमुक कार्य करने के लिये रुपये की आवश्यकता है। सो आपके पास मौजूद है या नही ? तो उसके इस प्रश्न पर यदि वह कह दें कि मै आपको पूर्ण सहयोग दूगा तो रुपये पैसे का कोई प्रश्न नही उठता क्योंकि पूर्ण रूप से सहयोग देने की प्रतिज्ञा कर लेने के कारण वहाँ पैसे के प्रमाण की कोई आवश्यकता नही रह जाती पर यदि संदिग्ध हो जाय तो आप कितने पैसे का सहयोग देगे ऐसा प्रश्न करते ही रुपये की सख्या की जरूरत पड जाती है। इसी प्रकार जब सुन्दरी देवी ने यह प्रश्न कर दिया कि पिताजी ब्राह्मी बहिन की हथेली मे जो आपने लिखा वह कितना है ? तो तत्काल ही उन वर्णों की संख्या की आवश्यकता पड गई।

तब भगवान् ने कहा कि बेटी ! तुम अपना हाथ निकालो, ब्राह्मी की हथेली मे हमने जो लिखा सो बतलायेगे।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि सुन्दरी देवी को कौन सा हाथ निकालने मे तथा भगवान् आदि-नाथ को किस हाथ से लिखवाने मे सुविधा हुई ?

इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार ब्राह्मी देवी के हाथ मे भगवान् ने अपने सीधे हाथ से लिखा था उसी प्रकार सुन्दरी देवी के हाथ मे लिखने की सुविधा नही थी। क्योकि ब्राह्मी देवी भगवान् की बायीं जंघा पर बैठी हुई थी और सुन्दरी देवी दाहिनी जंघा पर। अतः ब्राह्मी दवी के हाथ में भगवान् ने अपने दायें हाथ से आधुनिक लिपि के समान लिखा और सुन्दरी देवी के हाथ में बाये हाथ से लिखने की आवश्यकता पडी।

इसी कारण बाये से दायी ओर वर्णमाला लिपि तथा दाये से बायी ओर अंकमाला लिपि प्रचलित हुई। प्राचीन वैदिक और जैन शास्त्रो मे "अंकानां वामतो गति." ऐसा लेख तो उपलब्ध होता था किन्तु उसके मूल कारण का समाधान नही हो रहा था। इस समय इसका समुचित समाधान भूवलय से प्राप्त होकर उसने सभी को चकित कर दिया है। इस समाधान से समस्त विद्वद्वर्ग को सन्तोष हो जाता है।

तत्पश्चात् भगवान् आदिनाथ स्वामी जी ने उपरोक्त नियमानुसार सुन्दरी देवी की दायी हथेली के अंगूठे द्वारा १ बिन्दी लिखी और उसके मध्य भाग मे एक आडी रेखा खीच दी। उस रेखा का नाम कुमुदेन्दु आचार्य ने अर्द्धच्छेद शलाका दिया है और छेदन विधि को शलाकार्धच्छेद अर्थात् एक दम बराबर काटने को कहा है। जब बिन्दी को अर्द्ध भाग से काटा गया तब उसके बराबर दो टुकडे हो गये। कानडी भाषा मे ऊपरी भाग को [१] तथा नीचे के भाग को [२] कहते है, जोकि थोडे से अन्तर मे आज भी प्रचलित है।

ये दो टुकडे नीचे के चित्र मे दिये गये है। इसे देखने से आप लोगो को स्वय पता चल जायेगा।

एक टुकडे से दो-दो टुकडे से तीन चार, छ, सात, आठ और नौ और एक बिन्दी और टुकडा मिलाने से पाँच अर्थात् चार को एक टुकडा मिला देने से पाँच बन जाता है। इन सब अंकों को एकत्रित कर मिलाया जाय तो पहले के समान बिन्दी बन जाती है।

इसका स्पष्टीकरण आगे आने वाले २१वे अध्याय मे ग्रन्थकार स्वयं विस्तार पूर्वक कहेगे। यदि उपर्युक्त विधि के अनुसार अंको की गणना की जाय तो बिंदी के दो टुकडे होने पर भी कानड़ी भाषा मे ऊपर का टुकड़ा एक और नीचे का टुकडा दो होने से तीन हो गये अर्थात् १ + २ = ३ हो गये। इन तीनों को तीन से गुणा करने

पर ६ [नौ] हो गये इस नौ के ऊपर कोई अंक ही नही है। अर्थात् एक बिन्दी को एक दफे काटा जाय तो तीन बन गया दूसरी बार गुणा करने से नौ बन गया यही भगवान् जिनेन्द्र देव का व्यवहार औरनिश्चय नय कहलाता है। इस प्रकार यह संपूर्ण भूवलय ग्रन्थ व्यवहार और निश्चयनय से भरा हुआ है। नौ के उपर कोई भी अंक नही है। नौ नम्बर में ही चार और छ आ जाता है। ऊपर के कथनानुसार भगवान् ने ब्राह्मी देवी की हथेली पर जितना अक्षर लिखा था वह सब चार और छः अर्थात् चौसठ ये सभी नौ में ही समाविष्ट है। इसी चौसठ अक्षर को गणित पद्धति के अनुसार गिनते जाये तो संपूर्ण द्वादशाग शास्त्र निकल आता है। इसका खुलासा आगे चलकर आवश्यकतानुसार करेंगे ।

श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु मुनिराज आज से डेढ हजार वर्ष पहले हुये है जो महा मेधावी तथा द्वादशांग के पाठी, सूक्ष्मार्थ के वेदी और केवल ज्ञान स्वरूप नौ अंक के संपूर्ण अंश को जानने वाले थे। इसलिये छ. लाख श्लोक परिमित कानडी सांगत्य छन्द में आज कल सामने जो मौजूद है वह नौ अंको मे ही बन्धन करके रक्खा हुआ है। उन्ही नौ अङ्कों से सातसौ आठरह भाषा मय निकलता है।

ये किस तरह निकलती है सो आगे चलकर बतायेगे।

भगवान् ऋषभदेव ने एक बिन्दी को काटकर ६ अंक बनाने की विधि बताकर कहा कि सुन्दरी देवी ! तुम अपनी बड़ी बहिन ब्राह्मी के हाथ में ६४ वर्ण माला को देखकर यह चिन्ता मत करो कि इनके हाथ में अधिक और हमारे हाथ मे अल्प है। क्योकि ये ६४ वर्ण ६ के अन्तर्गत ही है। इस ६ के अंतर्गत ही समस्त द्वादशाग वाणी है। यह बात सुनते ही सुन्दरी देवी तृप्त हो गई।

इस प्रकार पिता-पुत्री के सरस विद्याओ के वाद-विवाद करने मे संसार के समस्त प्राणियो की भलाई करने रूप ज्ञान भण्डार का संक्षिप्त समस्त इतिहास ध्यान से मन लगाकर गोम्मट देव ने सुना।

इस प्रकार मन को मंथन करके सुनने के कारण ही गोम्मट देव का नाम मन्मथ [कामदेव] हुआ। पहिले गोम्मट देव को उनके पिता जी ने कामकला और सभी जीवों का हितकारी आयुर्वेद अर्थात् समस्त जीवों का रोग दूर करने वाला अहिंसात्मक वैद्यक शास्त्र सिखलाया था। अब अक्षर और अंक दोनो विद्याओं के मालूम हो जाने पर परमानन्दित होते हुये भगवान् से पहले सीखी हुई विद्याओं की चर्चा का स्वरूप प्रकट हुआ। ६४ अक्षर का गुणाकार करने से वे ही वर्ण बारम्बार आते रहते है, इसलिए अपुनरुक्त कैसे हुआ ? ६ अंक के ऊपर पुन १ अंक की उत्पत्ति है और १० की उत्पत्ति होती है। वह १० का अंक पुनरुक्ति है। ऐसा सभी अंकों का हाल है। इसलिए पुनरुक्ति हुआ। जब भगवान् ने ब्राह्मी देवी को ६४ अक्षर और सुन्दरी को ६ अंक सिखाया तथा अपुनरुक्त रूप से सारी द्वादशांग वाणी निकलती है और अपुनरुक्त से निकलता है, ऐसा बताया। ६४ के ऊपर पैंसठवां अक्षर तथा ६ के ऊपर १० ये दोनों अक्षर और अंक पुनरुक्त ही है। इसी प्रकार अगले अंक और अक्षर दोनों क्रमशः यानी अ आ, ११-१२ इत्यादि पुनरुक्त होते जाते है।

भगवान् ने कहा कि ये ६४ अक्षर और ६ अंक अपुनरुक्त है, यह कैसे हुआ ? इसके बीर में भगवान् ने उत्तर दिया। ऐसा कहने में भगवान् से जो उत्तर मिला वह अगले श्लोक मे आयेगा।

अब कामकला और आयुर्वेद इन दोनों विषयों की चर्चा चल रही है। किन्तु कामकला का जो विषय है वह यहाँ चलने के लायक नही है। क्योंकि पिता और पुत्र, पिता और पुत्रियों, भ्रातृ और भगिनी उसमे भी ब्रह्मचारिणी भगिनी उसके समक्ष कामकला का वर्णन सर्वथा अनुचित है कामकला तो पवित्र प्रेम वाले पति-पत्नी और अपवित्र प्रेम वाले वेश्या और कामुक पुरुषों में होता है, ऐसी शंका उठाने की जरूरत नही है। क्योंकि यहाँ रहने वाले दोनों पिता-पुत्र तद्भव मोक्ष भागी है। अर्थात् पुनर्जन्म नहीं लेने वाले है और दोनों स्त्रियाँ ब्रह्म-

नारिणी है। ऐसे पवित्रात्माओ से ही यदि काम कला निकले तो वह लोकोपकारिणी हो और आयुर्वेद विद्या शारीरिक स्वास्थ्य दायिनी बने। इस आयुर्वेद और कामुक दोनो का परस्पर मे अभिन्न सबध है। और ये दोनो ही अनादि भगवद्वाणी मे निकली हुई है। अर्थात् पवित्र और अपवित्र ये दोनो कलाये भगवद्वाणी से निकलती है, अन्यथा भगवद्वाणी अपूर्ण हो जाती हे। कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा है कि पवित्रता तथा अपवित्रता पदार्थ मे नही, वल्कि वीतराग अथवा सराग रहने वाले जीवो मे है। इसलिए इसे ४ पवित्रात्माओ की चर्चा करनी चाहिये। इसके लिए एक कथा भी है, सो देखिये।

भगवज्जिन सेनाचार्य श्री कुमुदेन्दु आचार्य के सहाध्यायी थे। वे सकल जैन समाज मे मान्य दिगम्बर जैन मुनि थे, यह इतिहास देखने से ज्ञात होता है। कि जब जिनसेन पवित्रकुल मे पैदा हुये तब उस घर मे एक वे ही लडके थे। उनकी उम्र ४ वर्ष की थी जिससे कि वे घर में बालक्रीडा किया करते थे। एक दिन आचार्य कुमुदेन्दु के गुरु श्री वीरसेनाचार्य--[धवल और जय धवल ग्रंथ के कर्ता] आहार के लिये इसी घर मे आ पहुंचे। आप आहार के पश्चात् तेजस्वी बालक को शुभ लक्षणो सहित समझकर उसके माता-पिता से कहने लगे कि इस बच्चे को सघ मे सौप दो। वह होनहार बालक अपने माँ-बाप का इकलौता लाड़ला था, अतः उन लोगों की इच्छा न होने पर भी गुरु वचनमनुल्लंघनीयम् अर्थात् गुरु के वचनो का उल्लघन नही करना चाहिए इस नियम से तथा आचार्य वीरसेन की आज्ञा को चक्रवर्ती राजे महाराजे आदि सभी सहर्ष शिरोधार्य करते थे। अत उनकी आज्ञा अप्रतिहत प्रवाहरूप चलती थी। इसलिये उन्हे सौपना ही पड़ा। बालक कर्णच्छेद, उपनयन तथा चूडाकर्म संस्कार से रहित था। यथाजात रूप [दिगम्बर रूप] था। उनका चूडा कर्म ही केशलुचन रूप प्रतिभासित होता था। इसी रूप मे साधक ८ वर्ष के पश्चात् केशलुंच करके यथाविधि दिगम्बर दीक्षा धारण की इसलिये वे आगर्भ दिगम्बर

आजकल परम दुर्लभ है।

जिनसेन आचार्य के नाम से चार आचार्य हुये है। उनमे मे हमारे कथानायक जिनसेनाचार्य पहले वाले कुमुदेन्दु आचार्य के सहपाठी थे। इसी प्रकार वीर सेनाचार्य भी आजकल मिलने वाले धवल तथा जयधवल टीका के कर्ता वीरसेन नही वल्कि इससे पहले के पद्यात्मक धवल टीका के जो कर्ता थे वे ही कुमुदेन्दु आचार्य के गुरु थे। आजकल पद्यात्मक धवल टीका उपलब्ध नही है। इसी प्रकार कल्याण कारक ग्रंथ कर्ता उग्रादित्याचार्य भी राष्ट्रकूट अमोघ वर्ष नृप के समय वाला नही है। क्योकि कल्याण कारक मे जितने भी श्लोक है वे सभी भूवलय मे आते है, इसलिये उस काल के उग्रादित्याचार्य नही हैं। उग्रादित्याचार्य श्री कुमुदेन्दु आचार्य के समय मे थे, ऐसा कतिपय विद्वानो का मत है यद्यपि यहाँ इस समय इस विषय की आवश्यकता नही थी, तथापि इसका कुछ थोड़ा विवेचन यहाँ किया गया है।

पहले गोम्मट देव अर्थात् बाहुबली काम कला तथा आयुर्वेद पढ़ते थे वैसे ही इस काल में भी आचार्य कुमुदेन्दु के शिष्य शिवकुमार, उनकी पत्नी जक्की लक्को अब्वे तथा कुमुदेन्दु वीरसेन, और उग्रादित्याचार्य आदि मेधावी आचार्य उस समय मौजूद थे। इसलिये धन्य है वह काल। ऐसे दिगम्बर मुनि साक्षात् भगवान् का रूप धारण करके सपूर्ण भारत मे जैन धर्म का डका चारों ओर बजाया करते थे। यह महोन्नति काल जैन धर्म के लिये था। कर्णाटक के एक राजा ने सारे भरत खंड को जीत कर उसे अपने आधीन कर हिमवान् पर्वत के ऊपर अपने झडे को फहराया था। इतिहास मे कर्नाटक देश का राजा पहले शिवमार ही था।

जिनसेनाचार्य :-

जिनसेन दिगम्बर जैनाचार्य होकर राजस्थान मे भी विहार करके वहां उपदेश दिया करते थे। वीतरागी जिनमुद्राधारी भगवान स्वरूप

अत्यन्त सुन्दर स्त्रियों के प्रत्येक अंगोपांगादिक के मर्मांग का सुन्दर रूप से वर्णन करके शृंगाररस का अत्युत्तम विवेचन किया था। उस काल के कई विद्वान् बड़े सुन्दर ढंग से स्त्रियों का वर्णन करने वाले परस्पर में कहने लगे कि ये मुनि काम विकारी अवश्य होंगे। ऐसी जनता के मन मे शकास्पद चर्चा उत्पन्न हुई और यह बात सर्वत्र फैल गई। यही तक नही बल्कि यह बात धीरे २ जिनसेन आचार्य के कानों मे भी जा पहुंची। तब जिनसेन आचार्य आश्चर्य चकित होकर कहने लगे कि केवल मेरे एक ही व्यक्ति पर यदि वह दोष आ जाता तो कोई दोष नही था। परन्तु सपूर्ण दिगम्बर मुद्रा पर यह दोष लगाना है, यह ठीक नही है। क्योंकि यह धर्म को कलंकित करने वाला है। इस तरह जिनसेन आचार्य मन में सोचकर राजस्थान में चले आये और उस राजा को आज्ञा दी कि कल एक सभा बुला कर सभी युवक और युवतियों को लाकर बिठा देना और उनके नीचे छोटी २ चटाई बिछा देना। इस प्रकार आज्ञा पाते ही राजा ने तुरन्त ही सभी तैयार करवा दिया। तब आचार्य जिनसेन ने खडे होकर कहा कि हम धर्म अर्थ तथा काम इन तीनों पुरुषार्थो पर व्याख्यान देंगे। इस तरह पहले अपने व्याख्यान की भूमिका समझा दी। तत्पश्चात् धर्म और अर्थ को गौण करके काम पुरुषार्थ का विवेचन करेंगे। ऐसा कहकर काम पुरुषार्थ के श्रृंगार रस का वर्णन इस तरह किया कि उस सभा में बैठे हुए सभी युवक और युवतियां अपने आप को भूल कर मुंह खोलकर सुनने मे दत्तचित्त हो गये और कामांध होकर परवशता के कारण स्वयं ही चटाई पर वीर्यपात कर चुके।

इस तरह जिनसेन आचार्य का उपदेश समाप्त होते ही बैठे हुए युवक और युवतियों के उठने पर चटाई पर गिरे हुए युवको के वीर्य तथा स्त्रियों के रज को देखकर राजा और सब प्रजा परिवार सहित विस्मित होकर कहा कि देखो जिनसेन आचार्य के इन्द्रियों पर विकार है या नही? किन्तु जिनसेन आचार्य के लिग में किसी प्रकार का भी विकार नही दीख पड़ा। तब राजा ने उन्हें सच्चा महात्मा कह कर आचार्य की प्रशसा करते हुए कहा कि आप ही एक सच्चे महात्मा है। राजा व सारे प्रजा परिवारने इस प्रकार अनेक स्तुति की। निकृष्ट कराल पंचम काल में भी ऐसे महात्मा ने इस भरत खण्ड में जन्म लिया था तब वृषभ तीर्थंकर के समय में गोम्मट देव अर्थात् बाहुबलि आदि बज्र वृषभ नाराच संहनन वाले काम कला के विषय की चर्चा को करते हुए भी इस विषय मे अरुचि रखने वाले को क्या काम विकार कुछ कर सकता है? अर्थात् नही। इस चर्चा के समय में उनके पिता भगवान वृषभदेव और उनकी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों ब्रह्मचारिणी चारों जन मिलकर काम कला की चर्चा करने से इस भूवलय में काम कला के बारे मे जो विवेचन आने वाला है वह अत्यन्त सुन्दर और गृहस्थों के लिए अनुकरणीय है।

गृहस्थों की भोगादि क्रियाओं में वीर्य वृद्धि के लिए स्खलन होने से शरीर दुर्बल होता है। वे पुन: तत्कालीन वीर्य की वृद्धि के लिए आयुर्वेद तथा औषधादि सेवन से सुखी होंगे। अपने समान अर्थात् बाहुबलि के समान शरीर बना लेने की ही आशा गोम्मटदेव की थी।

श्री भूवलय में आने वाली काम कला और आयुर्वेद ये दोनों अनादि काल से भगवान की वाणी के द्वारा चले आये है और अनन्त काल तक चलते रहेगे। इसलिए ये तीनों काल में अहिंसात्मक ही रहेंगे। क्योंकि जिनेन्द्र देव ने सभी जीवों पर समान दयालु होने के कारण एक चीटी से लेकर सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर अर्थात् मनुष्य पर जिस जिस समय में रोगादिक बाधा हो जाती है उस समय उन सब रोगों को नाश करने वाला पुष्पायुर्वेद को बतलाया है। उसके श्री भूवलय के चौथे खण्ड में एक लाख कानड़ी श्लोक है। इन्ही श्लोकों को संशोधक महोदय ने उसमे से निकाल कर अपने पास रक्खा है। इस श्लोक को संशोधक महोदय ने सरकार को अर्पण कर दिया है। भारत की सरकार ने इस ग्रन्थ को अनुवाद करने के लिए सर्वार्थसिद्धि संघ, विश्वेश्वरपुर सकल बंगलौर को सौंप दिया है। यह ग्रन्थ अब जल्दी ही क्रम से उद्धृत होकर जनता के हाथ में आयेगा। अब उस काम कला और आयुर्वेद के साथ शब्द शास्त्र भगवद्गीता (पांच भाषाओं में) और भगवान वृषभदेव के द्वारा कही हुई पुरु गीता, श्री नेमिनाथ भगवान के द्वारा अपने भाई श्री कृष्ण को कही हुई नेमि गीता, द्वारका के कृष्ण के कुरुक्षेत्र में कही हुई भगवद्गीता, और भगवान महावीर के द्वारा गौतम गणधर को कही हुई, गौतम गणधर के द्वारा श्रेणिक राजा को कही हुई और श्रेणिक राजा के द्वारा अपनी रानी चेलना देवी को कही हुई भगवान महावीर गीता को कहा है। जक्की लक्की अव्वे और उसका पति राजा सईगोट्टा शिवमार प्रथम अमोघवर्ष इन दोनों दम्पतियों को उपदेश की हुई कुमुदेन्दु गीता, और उसी अक्षर से दश तक की निकलने वाले ऋग्वेद इत्यादि हजारों ग्रन्थ हुए है। परन्तु कोई उन्हे अभी तक देख भी नहीं पाया है।

प्रतिलोमांक भागहार

१८८८१६८३६५६२३२७६२५६५३६१८७३४१२६७०४५८४५२८०७३६८४७८३५४६३६३१५२६६००६४८६६२६६४३२००००००००००००

४—१६०६६१६६२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६६६६६६६३०६३४०८१६४६६६४७४२३१२६६
२७८२७८४७२२६६६८३४५०६११०५७४२६२८७१३४५८७८६५०१०२७६६१८८४६६१८६२१६६४०

६—२४१४८७६८८४६८६६६२६३०१४२६१६५७२६३८५४६६४६६४५६५११२२४७०४६२११३४६६४४
३६७६०४८३७६७८६८२४३०६६२८२३३५६०७४६०८८३६५५५०७६५३६४१४४६६७७८६६६६६

६—३६२२३१६८२७४८४४६३६४५२१४३७६३५८६५७८२४६२४६१८६२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
५६७२८५५२३०२३३०३६४४१३८५४२०१७६१२६३४४०६३१८४८७१०४३६२५६६१६७६५५३४

१—४०२४७६६८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४६६१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४
१६४८०५५४२१६१६६३२०५७८१३८८७५५८०६२०६४१४६६०७२८५८३६८०८४७४८२३७७१०८

४—१६०६६१६६२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६६६६६६६३०६३४०८१६४६६६४७४२३१२६६

०—३८१३५४६८५६०४८८३०४३८५२७४५०६६३६३६४१७६६७७६५१७५८१६१४८००८१४५८१२६

६—३६२२३१६८२७४८४४६३६४५२१४३७६३५८६५७८२४६२४६१८६२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
१६१२३००३१५६४३३६४६३३१३०७१६०४६८१५६३०७२८६२४६१३२४४२२६६६७५६०८७६

४—१६०६६१६६२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६६६६६६६३०६३४०८१६४६६६४७४२३१२६६
३०२३८०३६२३१६६२३१७६७०२१०२६६८३६०२३०७६६१६६४२७६१६२५८०००२८१८५४५३६

७—२८१७३५६८६५८२१२७३०६८५०००७२८३४७४४६७४६४१६०३६०६६४२८८२२४०७६६०४७६८
२०६४४४०५७३४७६५८७२८५२०६५७१४६१५७३३२६६६७१४६६२७८४८७४८०६३३८६७५६८६

५—२०१२३६६६०४१५८०५२१६१७८५७६६३१०५३२१२४६५८२८८२६२६०२०५८७४३४२७८६१२०
५२०४०६६६३२१५३५०६३४२८०५१८१०४१२०१७०८८६१३३५२४६६८६३४६६५८८६८६६४

१—४०२४७६६८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४६६१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४
११७६२६७१२३८३७४०४६५८८०८६८५४८३०५५६२०६६६५५६६३६४६४८१७५०६०३१०८४०३

२—८०४६५६६६१६६३२२०८७६७१४३०६५२४२१२८४६६८३३१५३१७०४०८२३४६७३७११५६४८
३७४३०७१६२१७४१८४०८२०६४६७८६५८८४३०७०६८६२४१६२२४२३६६४०११६५६६२७५५२

६—३६२२३१६८२७४८४४६३६४५२१४३७६३५८६५७८२४६२४६१८६२६६८३७०५७३८१७०२०४१६
१२०७५१७६४२५७३४६८७५७३२४१०२२६४७२८८४६३७४६७२६७५५६२३४३७८४२६०७१३६

३—१२०७ ६४२

०००० - ००० ०००००००००० ०

अशुद्ध नवम शंक

चौवन अक्षर सम्मिलित

लब्धांक:—

४६६१४०६४७५१२६३०००००००००००००

भंगांक.—

२३४५७०४७३७५६४६५००००००००००००

शेषांक :—

०००००००००००००००००००००००००००

(मंगल प्राभृत का दूसरा अध्याय, पद्य एक से बाईस तक)

१—४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४००००००००००००
२—८०४९५९९६१६६३२२०८७६७१४३०६५२४२१२८४९९८३३१५३१७०४०८२३४९७३७११५६४८
३—१२०७४३१९९४२४९४८३१३१५०७१४५९७८६३१९२७४९७४९७५५६१२३५२४६०५६७३४७२
४—१६०९९१९९२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६९९९६६६३०६३४०८१६४६९९४७४२३१२९६
५—२०१२३९९९०४१५८०५२१९१७८५७६६३१०५३२१२४९५८२८८२९२६०२०५८७४३४२७८९१२०
६—२४१४८७९८८४९८९६६२६३०१४२९१९५७२६३८५४९९४९९४५९५११२२४७०४९२११३४६९४४
७—२८१७३५९८६५८२१२७३०६८५०००७२८३४७४४९७४९४१६०३६०९६४२८८२२४०७९९०४७६८
८—३२१९८३९८४६६५२८८३५०६८५७२२६०९६८५१३९९९३३२६१२६८१६३२९३९८९४८४६२५९२
९—३६२२३१९८२७४८४४९३९४५२१४३७९३५८९५७८२४९२४९१८९२६६८३७०५७३८१७०२०४१६

अर्थ—प्रथम अध्याय में 'हक' पाहुड का विषय आया है। पहले अध्याय के पाँचवें श्लोक में भी हक पाहुड का विषय आया है। भूवलय अक्षर भंग कर गणित के नियमानुसार यदि कर लिया तो "ह" का अर्थ ६० और "क" का अर्थ २८ इन दोनों के परस्पर में मिलाने से ८८ होता है। ६० में जो बिंदी थी उस बिंदी का लोप हो गया अत्र वह नहीं दीखती। जो ८८ अंक उत्पन्न हुआ है उसको यदि आड़ी रीति से जोड़ दिया जाय तो ८+८=१६ होता है। १+६=७ हुआ इस गणना के अनुसार भगवान महावीर ने सात भंग के नियमों के अनुसार अनादि कालीन संपूर्ण द्वादशांग को इस गुणाकार की विधि से निकाल कर भव्य जीवों को उपदेश दिया था।

श्री भगवान् पार्श्वनाथ तक आये हुए समस्त द्वादशांगों का विवेचन भगवान पार्श्वनाथ ने टक भंग मे लिया था। १-१-१-३६ + वह टक भंग भी अनादि द्वादशाग में ही मिल गया है और आगे भी मिलता ही जाएगा। भगवान महावीर ने श्री पार्श्वनाथ भगवान के टक भग से लेकर हक भंग से उपदेश किया। केवल ज्ञान की ऐसी महिमा है कि अपने केवल ज्ञान से सम्पूर्ण वस्तुओं को एक साथ जानने की शक्ति केवली मे होती है, अतः जैसे है वैसा ही यथार्थ पदार्थ द्वादशाग वाणी में कहा गया है।

अब ५४ अक्षर को घुमाने से इसके अन्दर वह महत्व निकलता है। इस विषय को ७ वें श्लोक में स्वयं कुमुदेन्दु आचार्य कहेंगे ॥६॥

ऊपर कहे हुए संपूर्ण नव पदों का अर्थात्—

१ सिरिसिद्ध, २ अरहन्त, ३ आचार्य, ४ पाठक ५ वर सर्व साधु ६ सद्धर्म, ७ परमागम, ८ चैत्यालय, ९ और बिम्ब ओंबत्तु ॥

इन नौ पदों में सात अंक से भाग देने से बिंदियां आती हैं। इस अंक का यही एक महत्व है। आज कल प्रचलन में आने वाले पाश्चात्य गणित शास्त्र में नौ अर्थात् विषमांक को सम अंकों से भाग देने पर बिंदी नहीं आती उदाहरणार्थ नौ अंक को दो अंक से भाग देने पर ४ (चार) दफे नौ नौ आकर शेष नौ बच जाता है। पर इस तरह बचना नहीं चाहिए। यह पाश्चात्य गणित शास्त्र की अपूर्णता समझना चाहिए। यह भूवलय भगवान महावीर की वाणी होने के कारण और संपूर्ण अंश को जानने वाला होने के कारण ऊपर कहे हुए नौ अंक दो से विभक्त होकर बिंदी आ जाना और ७-६-५-४ इत्यादि पूर्ण अंकों से विभक्त होकर शून्य शेष रहने वाली विधि को बतलाने वाले को सर्वज्ञ कहते है। ऐसे नौ अंक किसी अंक से विभक्त नहीं हुआ या

+ १।१।३६ ऐसा कहने से प्रथम खड मंगल प्राभृत समझना चाहिए। दूसरा जो यह है कि इसे निशान श्लोक सख्या समझना चाहिए। आगे इसी तरह क्रम समझना चाहिए।

शेष रह जाय तो वह सर्वज्ञ वाणी कैसे होगी ? इस जटिल प्रश्न का, इस मुख्य प्रश्न का अगर हल हो जाता है तो जैन धर्म सार्व धर्म हो सकता है। परन्तु जैन धर्म सार्व धर्म होते हुए भी वह ताले मे या विस्तर मे बद होकर गुप्त रूप मे ही रह गया। उसका दर्शन अन्य लोग या जैन विद्वानो की आखो के सामने आ नही पाया। यह दोष केवल जैन विद्वानो पर ही नही है विज्ञानादि साधनादि वस्तुओ के सग्रहालय करोडो रुपये व्यय करके अपने हाथ में रहने वाले पाश्चात्य विद्वानो के हाथ से भी नही हुआ परन्तु श्री भूवलय ग्रन्थ का अध्ययन परम्परा जैन विद्वानो के द्वारा चली आती तो जैन धर्म का भी उद्धार होता जाता और सारे संसार का भी उद्धार हो जाता।

इस श्लोक के द्वारा यह निष्कर्ष निकला कि नौ अंक सात से विभक्त होकर शून्य आ जाता है। ये कैसे ? जैसे आचार्य कुमुदेन्दु स्वयमेव प्रश्न उठाकर उसका समाधान करते हैं कि यह शका परमानन्द वाली है, ऐसा बताते हैं। इस उत्तर का समाधान करते हुए आचार्य ने ऊपर दी हुई गरिणत विधि को बतलाया ॥७॥

नौ अक को अपने नीचे रहने वाले ८ आठ ७ सात ६ छ ५ पांच चार ३ तीन २ दो इन सख्याओं मे विभाग होने की बिधि को आचार्य ने करण सूत्र मे ऐसे कहा है और एक सख्या से सब सख्या का विभाग होता ही है।

नौ और चार मिल कर ००००९००००००००० ये तेरह बिदी अन्त मे रखना चाहिए और पहले बिंदी से बाये भाग से २, ३, ४, ६ यहा तक आठ श्लोकों का अर्थ पूर्ण हुआ।

गौतम गणधर से जब किसी जिज्ञासुने प्रश्न किया कि भगवान के करण सूत्र की विधि क्या है ? ऐसा प्रश्न करने से गौतम गणधर ने उत्तर मे कहा कि करण सूत्र अनेक है उनमें से एक यह करण सूत्र है। इस सूत्र से जो अंक निकले हुए हैं उन सभी अक्षरो को द्वादशाग वाणी ही समझना चाहिए। कुल अंक चौरासी स्थान मे ही बैठा है सबका जोड़ लगाने से तीन सौ उनत्तर (३६९) अंक होते हैं। अंकों को पुनः जोड़ने से १८, अठारह को पुनः जोड़ने से ९ होते हैं जैसे ३+६+९=१८ अब अठारह आ गये, इस १८ को १-८-९ इतने बडे अंश अर्थात् चौरासी स्थान पर बैठे हुये सब के सब महान् अंक नौ के अन्दर गर्भित हो गये है यह कितने आश्चर्य की बात है ?

यह बात आश्चर्य की नहीं है बल्कि इसे भगवान के केवल ज्ञान की महिमा समझना चाहिए।

५४ अक को सयोग भंग से प्रतिलोम के क्रम से ५४ बार गुणा करते आने से यह अंक निकल आता है। इसकी विधि इस तरह है कि—

$६४ \times ६३ = ४०३२$ इसमे दुनिया की सम्पूर्ण भाषाओ के दो अक्षर का सम्पूर्ण शब्द निकल आते है। एक वार आया हुआ शब्द पुनरुक्त नही आता है।

उदाहरणार्थ—

१ को अ और ६४ को · फ · ये दोनों मिलकर (अ फ) होता है यह भाषा इगलिश है। सभी लोग ऐसा कहते है कि इगलिश भाषा ईसा मसीह के समय से प्रचलित हुई है इसके पहले ग्रीक भाषा थी इङ्गलिश नही थी। परन्तु भूवलय ग्रन्थ से साबित होता है कि इङ्गलिश भाषा पहले भी मौजूद थी। भगवान महावीर की वाणी के अन्दर भी यह भाषा मौजूद थी। पार्श्वनाथ भगवान की वाणी मे भी मौजूद थी। इसी तरह केवल भगवान वृषभदेव तक ही नही परन्तु उससे भी पहिले से अनादि काल से यह भाषा मौजूद थी अगर यह बात भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ से उनको मालूम हो जाय कि यह इङ्गलिश भाषा अनादि काल से मौजूद है तो लोगों को कितना आनन्द होगा। इसी तरह कानड़ी, गुजराती, तेलगु, तामिल इत्यादि नयी उत्पन्न हुई है ऐसा कहने वालो को भी इस विषय को जानना चाहिए।

अब देखिये इसी गरिणत पद्धति के अनुसार कही इङ्गलिश भाषा क शब्द निकाल कर देते है वह इस प्रकार है कि.—

(of)	4032	फिराने से	fo	64 and 1
	2			
	4030			
(off) 2nd 64	2	,,	foo	,, ,, 2
	4028			
(if) 4 ,,64	2	,,	fi	,, ,, 4
	4026			

ऊपर कहे हुए अनुसार गुणन फल से ४०३२ निकला उस में १ और ६४ मिला दिया तो इंगलिश का (fo) आया अब इसमें से २ दो घटाइये तो ४०३० बाकी बचा और बचा हुआ ४०३० ये उलट कर ६४ और १ मिला दिया जाय तो (fo इस fo को first, for furlang.

इस तरह इङ्गलिश वाक्य रचना करने की मिसाल मिल जाती है। अब बचा हुआ ४०३० से और दो घटाने से ४०२८ वास होता है। इसमें से दो दीर्घ 'आ' और ६४ को मिलाने से 0 ff ः: इन चार बिन्दुओं का खुलासा ऊपर के मुखपत्र चार्ट पर देखो। अब इसको उलटा करने से 'ः:' 'आ' ffo होता है इससे ः: फादर father fast इस तरह वाक्य रचना करने के लिए शब्द निकल आते हैं। अब बचा हुआ ४०२८ में और दो निकाल देने से बचा हुआ २६ छब्बीस बच गया है। इसी तरह इसको भी इसी रीति से करते जाये तो अन्त में चार बिंदी आ जाते हैं। इसलिए इस भूवलय का गणित प्रामाणिक है ऐसा सिद्ध होता है। आगे इसी तरह करते जायें तो तीन अक्षर का शब्द निकल आता है। कैसे निकल आता है? उस विधि को बतलाते है —

४०३२ को × ६२ से गुणा किया जाय।

$$
\begin{array}{r}
8064 \\
\underline{24192} \\
249984
\end{array}
$$

२४९९८४ भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि निकल आयी। तीन लोक और तीन काल में रहने वाले तथा होने वाले समस्त भाषाओं की और समस्त विषयों की तीन अक्षर के शब्द निकल आते हैं। इन तीन अक्षरों की वाणी ही द्वादशांग वाणी है ऐसे कहते हैं। भगवान की तीन अक्षरों की वाणी को छोड़कर अन्य प्रचलित किसी वेद में भी देखने में नहीं आता है, इसलिए यह भूवलय ग्रंथ प्रमाण हैं। उसका क्रम इस तरह से है कि—

"कमल, ऐसा एक शब्द लीजिये—

कमल	२८.५२,५५,
मलक	५२,५५.२८,
लकम	५५, २८,५२,
कलम	२८,५५,५२,
मकल	५२,२८,५५,
लमक	५५, ५२,२८

अब अनेकान्त दृष्टि तथा आनुपूर्वी क्रम से देखा जाय तो २८ को १ बावन को २, और ५५ को तीन माना जाय तो

१२३

२३१

३१२

१३२

२१३

३२१ इस रीति से अन्त तक करते जायें तो छः ०००००० बिंदी आयेगी इसलिए भगवान की दिव्य ध्वनि को भूवलय गणित के प्रमाण में अनेकांत से यह सत्य है एकांत से नहीं है। भगवान की दिव्य ध्वनि के द्वारा बारह अंग शास्त्र का अभाव हो गया इस समय वह शास्त्र मौजूद नहीं है। ऐसे कहने वाले दिगम्बर जैन विद्वानों की यह असमझ है। श्वेताम्बर आदि समस्त जैन जैनेतर सभी विद्वान् अपने पास बचा हुआ थोड़ा बहुत अंकात्मक श्लोक को ही भगवद् वाणी मानते हैं। तो भी भूवलय ग्रंथ में कहा हुआ गणित पद्धति के अनुसार एक भी श्लोक नहीं निकलता है। इसलिए वे सब जो श्लोक से परिमित संख्या वाले है वे एक भाषात्मक कहलाते हैं। इसलिए वे परिमित श्लोक भगवान की दिव्य ध्वनि नही कहलाते हैं।

दिगम्बर विद्वान लोग कहते हैं कि 'हमारे पास इस समय अंग ज्ञान की व्युच्छुत्ति हुई हैं'। उनका कहना भी सच है। क्योंकि सम्पूर्ण विषय और सम्पूर्ण भाषाओं को बतलाने वाले कोई भी साधन रूप बतलाने वाले की भूवलय ग्रन्थ की अंक से पढ़ने की परिपाटी तेरह सौ वर्षों से अर्थात् श्री आचार्य कुमुदेंदु के समय से आज तक अध्ययन अध्यापन की परिपाटी बंद होने के कारण अंगादि विच्छेद मानने लगे थे। अब यह भूवलय

ग्रन्थ से निकलकर ऊपर लिखा हुआ गणित पद्धति के क्रम से महान् मेघा वाही नही कि सामान्य पढे लिखे हुए मामूली आदमी भी आसानी से भूवलय ग्रन्थ जैसी द्वादशांग वाणि को आसानी से निकाल कर दे सकता है। अब चार अक्षर भंग आप लोगों को आसानी से निकालने वाली विधि निम्न प्रकार बतायेंगे इससे आप लोगों की समझ मे आयेगा।

४ अक्षर के भंग

आ म ल क

१)	१ २ ३ ४	आ म ल क	२)	२ ३ ४ १	म ल क आ
३)	३ ४ १ २	ल क आ म	४)	४ १ २ ३	क आ ल म
५)	२ ३ २ ५	क ल म आ	६)	३ २ १ ४	क ल म आ
७)	२ १ ३ ४	म आ ल क	८)	१ ३ ४ २	आ ल क म
९)	३ ४ २ १	ल क म आ	१०)	२ १ ४ ३	म आ क ल
११)	१ ४ ३ २	आ क ल म	१२)	२ १ ३ ४	म आ ल क
१३)	३ २ ४ १	ल म क आ	१४)	४ २ ३ १	क म ल आ
१५)	२ ३ १ ४	म ल आ क	१६)	१ ३ २ ४	आ ल म क
१७)	४ ३ ० २	क ल आ म	१८)	३ १ ४ २	ल आ क म
१९)	२ ४ ३ १	ल आ क म	२०)	० २ ४ ३	आ म क ल
२१)	२ ४ ३ ०	म क ल आ	२२)	२ ० २ ४	ल आ म क
२३)	४ ० २ ३	क आ म ल	२४)	० ४ २ ३	आ क म ल

इस चार अक्षर के समस्त अंक की राशि में सम्पूर्ण विश्व के अंक राशि आगये है कोई बाहर बाकी नही रह जाता है।

आगे के उत्सर्पिणि काल मे तीर्थंकर रूप मे होने वाले समंतभद्रादि महान मेधावी बडे बडे आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थ मे या भविष्य मे होने वाले महान ग्रन्थ में जो ४ अक्षर की शब्द रचना होती है वह इस चार अक्षर रूपी भूवलय मे अब ही मिल जाता है। इसी तरह—

"क म ल द ल" ये पांच अक्षर है—

ऊपर के अनुसार आंच अक्षरो को अपुनरुक्त रूप से फिराते आये तो बहत्तर शब्द निकल आयेगे। ७३ शब्द नही हो सकते हैं कोई ७३ निकाल कर रखे तो वह पुनरुक्त हो जाता है इसलिऐ भगवान महावीर की वाणी जितनी छोटी हो उसमे पुनरुक्त दोष नही आता है। ऊपर कहे जैसा अगले आने वाले उत्सर्पिणी काल मे जितने तीर्थंकर होंगे उनकी सब दिव्य ध्वनि में निकलकर आने वाले अक्षर का भंग इस भूवलय मे अभी भी मिल जायगा, यही अनेकान्त सत्य है।

इसी विधि से आगे बढते हुए छः अक्षर "कमल" इस शब्द को अपुनरुक्त रूप से घुमाते जाएं तो १२० शब्द निकलकर आएगा ऊपर कहे जैसा ही इसको भी मान लेना। इसी विधि से आगे बढते हुए सात अक्षर "कमल दल रज" इस शब्द को अपुनरुक्त रूप से घुमाते आएं तो ७२० शब्द निकलकर आएगा उसमे पहिले व अन्त के दोनों शब्द पुनरुक्त रीति से आ जाते है इसलिए वह निकाल देने से ७१८ भाषा रह जाती है, वह इस प्रकार है:—

वह क्रम इस प्रकार है—

१२×२×३×४×५×६ = ७२०—२=७१८ और ८ अक्षर की शब्दराशि को निकालकर आपके सामने रखना हमारी बुद्धि के बाहर है ऐसा रहने में इसके ऊपर का ९-१०-११-१२ इसी रीति से बढते हुए अक्षरों के स्वरूप को मिलाते हुए शब्द राशि बनाते जाना इस काल मे बहुत कठिन है इसी विधि से ऊपर कहे हुए ५४ अक्षरो का एक शब्द निकालना हो तो इस अध्याय मे आये हुए ८४ स्थान है जो ८४ स्थान मे आयी हुई अक राशि ५४ अक्षरों का समूह है उस राशि से अपुनरुक्त रूप से ५४-५४-५४-५४ ऐसा अक्षर निकालते आएं तो ८४ शून्य आजायगा ००००००००००००००-००-००००००००००००००००००००००००० जब गिनती मे शून्य आ गया तो आचार्य जी का कहना सत्य है ऐसा मानना ही पडेगा। ऊपर लिखा हुआ क्रम अर्थात् ८४ स्थान प्रतिलोम क्रम है।

६४×६३×६२×६१ इस रीति से ११ अंक तक आगए तो ५४ बार हो जाता है।

अनुलोम क्रम जैसे ऊपर १×२×३×४×५×६ ऐसे क्रम ५४ तक लिखा जाए तो शब्द राशि की उत्पत्ति आती है जितने बार की प्रतिलोम की संख्या है उतने बार की अनुलोम क्रम संख्या के भाग देने से उतना ही शून्य आजावेगा अब प्रतिलोम क्रम ११ और अनुलोम क्रम पद तक हम आए है। अब प्रतिलोम क्रम ६४ से लेकर १ तक आएं अनुलोम क्रम १ से लेकर ६४ तक रहे तो ८२ अंक हो जाता है वह फिर बताया जावेगा।

अनुलोम क्रम ७२ अंक का आबा है ८४ प्रतिलोम। ८४ अंक को अनुलोम ६१ अंक से भाग करने से पूरणा आने के लिए जो कोष्ठक बतलाया गया है उस रीति से कर लेना। अर्थात् अनुलोम ७१ अंक को २ से गुणा करे तो जो अंक आता है उसको २ मानना इसी रीति से ३-४-५-६-७-८-९ तक कर लेना तब भाग देतें आना जब भाग देते आवें तो ऊपर से नीचे जिस संख्या से भाग होता है उस संख्या को आड़ा पद्धति से लिख लें जो अंक आता है उसको लब्धांक कहते हैं। उसको आधा करें तो सारी शब्द राशि हो जाती हैं। अवधि ज्ञान सम्पन्न महा मुनि और देव देवियाँ और कुमति ज्ञान वाले नारकी जीव के लिए इतना ज्ञान है। आजकल सीमंधर भगवान् के समोशरण मे रहने वाले ऋद्धि धारक मुनि ही इस अंक से निकलने वाला अर्थात् ६४ अक्षर का एक शब्द ६३ अक्षर का एक शब्द ६२ अक्षर का एक शब्द जान सकते है। हम लोगों के ज्ञान-गम्य नहीं है। परन्तु आचार्य कुमुदेन्दु ने इस समस्त विधि को गणित पद्धति से जान लिया था। इसलिए उनका परम पूज्य उस मूल धवल सिद्धान्त का रचयिता आचार्य वीरसेन अपना शिष्य होते हुए भी इतना महान भूवलय जैसे ग्रंथ रचना से उनकी महान मेघा शक्ति को देख करके अपने शिष्य को ही अपना गुरु मानकर शिष्य बन गया। सो ऐसा महान प्रसंग दिगम्बर जैन साहित्य में नही मिलता है। लेकिन आचार्य जी को सल्लेखना लेने के समय में अपने शिष्य को अपना गुरु बना करके शरीर त्याग करने की परिपाटी मिलती है और चालू भी है परन्तु जीवित काल में ही शिष्य बनकर रहना महान गौरव की बात है।

ऊपर कहे हुए के अनुसार प्रतिलोम गुणा कर ५४ अक्षर की सरमाला नामक माला रूप में इसकी रचना हुई है। अब आगे आने वाले अनुलोम क्रम से आने वाले द्रव्यगम है ऐसे जानना चाहिए।

भावार्थ—

इसकी व्याख्या विस्तार के साथ ऊपर की गई है। इसलिए पुनरुक्त यहाँ नही किया गया है।

४७९९८०७३१६१०४३७३५७१५३२६२१०६४१४९९१६५०६५७५२०४११७४८६८५५७८२४०००००००.००००० इस अंक के पूर्ण वैभव का अवयव अनुलोम पद्धति अनुसार है।

इस अंक में ७१ अंक हैं इस अंक को आड़ा करके मिला दें तो २६१ होता है। इसको पुनः जोड़ दिया जाय तो ९ हो जाता है।

अर्थ—इस प्रकार नौ अंक में अन्तर्भाव हुआ इस अनुलोम क्रम के अनुसार ऊपर कहा हुआ प्रतिलोम के भाग देने से जो लब्धांक आता है वही भवभय को हरण वाले अंक हैं। ऊपर कहे हुए कोष्ठक में रहने वाले प्रत्येक लब्धांक को लेकर आड़ा करके रख दिया जाय तो ४६९१४९४७५१२९३००-०००००००००० यही ५४ अक्षर का भागाहार लब्धांक यही अंक आड़ा रखकर मिला देने से ६४ होता है। इस ६४ को मिला देने से से १० होता है। दस में भी १ एक ही है अर्थात् नम्बर १ अक्षर है और जो बचा हुआ बिंदी है। यही एक भंग से निकलकर आया हुआ भगवान के नीचे रहने वाले बिंदी रूप कमल है।

भावार्थ—

गणित की दृष्टि से देखा जाय तो ऊपर के कहे हुए प्रतिलोम रूप छोटी राशि "नौ"। इस नौ से भाग देने से अर्थात् नौ को नौ से भाग देने से बिंदी आना था। परन्तु अब यहां दस मिल गया यह आश्चर्य की बात है। गणित के संशोधन करने वाले गणितज्ञ विद्वानों के लिए महान निधि है इसी लब्धांक को आधा करके कुमुदेंदु आचार्य भंगांक को निकालने की विधि को बतलाने वाले तीन श्लोकों में 'पांच' मिल जाता है। वह और भी आश्चर्य-कारक है। ९ से ९ को भाग देने से शून्य आना था। लेकिन ऊपर दस आया है नीचे पांच

आया है, बस व्याख्यान से इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि ६ को पाच से भाग देने से शून्य आ गया है। पाश्चात्य गणितज्ञ लोगो के मत से ६ तो ५ से विभक्त नही होता है और समाक से विषमाक का कभी भाग नही होता है ऐसा कहने का उन लोगो का अभिप्राय है। उस अभिप्राय का निरसन करने के लिए इतना बड़ा विस्तार के साथ लिखा हुआ भगवान महावीर की अगाध महिमाओसे अनेकातदृष्टि से देखा जाय तो विषमाक हुआ। ६ को समाक दो चार आठ और विषमांक तीन-पाच-सात, से भी नौ विभक्त होकर शून्य आता है। गणितज्ञ विद्वानों को इस विषय पर कही वर्षों तक बैठकर खोज करनी चाहिए जैसे हमने अर्थात् जैनियो ने माना है उसी तरह जाना जाय तो आनन्द तथा प्रशंसनीय माना जायेगा।

रत्नत्रय मे चारित्र तीसरा है, अनियत वसतिका और अनियत विहार अर्थात् कुमुदेन्दु आचार्य के और उनके महान् विद्वान मुनि शिष्य तथा उनके अन्य चतुः संघ के मुनि जनों के लिए खास नियत वास करने के लिए घर नहीं था। अर्थात् वसतिका इत्यादि कोई स्थान नही है। और उनको किसी गाँव या किसी अन्य स्थान में पहुंचने की भी कोई निश्चित योजना नही थी। उनके लिए नियमित रूप नही है। वे हमेशा गोचरी वृत्ति अर्थात् जिस प्रकार गाय या भैंस घास या रोटी देने वाले से राग द्वेष न करके चुपचाप आहार खाती है उसी तरह दिगम्बर साधु किसी खास व्यक्ति के या अन्य काला या गोरा व्यक्ति को ख्याल या अपेक्षा न करके केवल उनके द्वारा शुद्ध आहार राग द्वेष भाव से रहित लेते है।

कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि—

गृहस्थ धर्म मे अव्रती, अणुव्रती तथा महाव्रती इस तरह पात्र के तीन भेद बतलाते है पहले अव्रती मे पात्रापात्र दोनों है। असयंमी अपात्र मे शुद्धाशुद्ध के विचार से रहित होकर भक्ष्य और अभक्ष्य का कोई नियम नही रहता है, और पशु के समान उनके खान पान का हिसाब रहता है। वैसे आज कल के लोग आहार विहार का कोई विचार न करके एक दूसरे की झूठन को भी नही छोड़ते हैं और न उसको अशुद्ध मानते है और न इनको रात और दिन का ख्याल आता है। यही चिन्ह अपात्र अविरत मिथ्यादृष्टि का है।

कुमुदेन्दु आचार्य ऐसे गृहस्थ श्रावक के बारे मे कहते है कि—

ये लोग गधे के समान खाना खाते है। उसी प्रकार आजकल के गृहस्थ रहते है जब खेत मे किसान बीज बो देता है तब शुरू मे धान का अकुर उत्पन्न होकर ऊपर आना आरम्भ होता है। तब उस समय कदाचित गधा आकर उसको खाने लगे तो सबसे पहले उसका मुंह धान की जड़ तक घुसकर जड सहित उखाड़ लेती है और उसके साथ मिट्टी का ढेर भी आता है। उस समय मे गधा अपने मुंह मे लेकर घास को खाने लगता है तब मिट्टी भी उसके साथ जाती है। जब मिट्टी साथ जाती है तब केवल बीच मे से खाकर दोनो तरफ छोड़ देता है। तब दोनों तरफ छोडे हुए को कोई ग्रहण नही कर सकता और दोनो तरफ से भ्रष्ट होता है। उसी तरह अव्रती अपात्र मनुष्य आप जो खाते है वह खाना अणुव्रती या महाव्रती नही खा सकते है। इसलिए उनका खान पान हेय माना गया है। ऐसा आहार खाने से कुष्ठादिक अनेक रोग होते है जैसे कहा भी है कि—

मेधां पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरम्।
कुरुते मक्षिका वान्ति कुष्ठरोग च कोकिलः।
कण्टको दारुखण्डञ्च वितनोति गलव्यथाम्।
व्यञ्जनांतर्निपतितस्तालु विधृति वृश्चिकः ॥

भोजन के समय चीटी अगर पेट मे चली जाय तो बुद्धि नष्ट होती है, जूं पेट मे चली जाय जलोदर रोग उत्पन्न होता है, मक्खी पेट मे चली जाय तो वमन अर्थात् उलटी करा देता है, मकड़ी पेट मे चली जाय तो कुष्ठ रोग होता है।

छोटे काटे या छोटे तिनके इत्यादि पेट मे चले जायं तो कंठ में अनेक रोग उत्पन्न होते है।

इसी तरह मार्कंडेय ऋषि ने भी कहा है कि:—

अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥

मार्कंडेय ऋषि ने सूर्यास्त होने के बाद अन्न ग्रहण करना मांस के समान तथा जलपान करना रुधिर के समान कहा है। इसलिए उत्तम बुद्धिमान

मनुष्य को रात्रि को अन्न और पानी का त्याग कर देना चाहिए।

ऊपर के कहे हुए जो चारित्र की हानि या नाश करने का साधन है उन सबको त्याग कर जब अणुव्रती तथा क्रम से महाव्रती बनता है तभी शुद्ध चारित्र को प्राप्त कर सकता है।

शुद्ध चारित्र केवल महाव्रती मुनि हो पालन कर सकता है। यह शुद्ध चारित्र निरतिचार अठारह हजार शीलों के तथा चौरासी लाख उत्तर गुणों के पालने से होता है। इस चारित्र के अंक भंग को निकालने की विधि को ऊपर कहे हुए गणित से लिया है।

यदि आत्मतत्व की दृष्टि से देखा जाय तो समस्त भूवलय स्वरूप अर्थात् केवली समुद् घात, लोक पूरण समुद्घात रूप आत्मतत्व व्यवहार और निश्चय दो विभाग से होता है। इसो तरह ऊपर कहा हुआ भागाहार लब्धाक को भी दो भाग करने से ६४ शेष रह जाता है, ऐसा कुमुदेंदु आचार्य कहते है।

प्रतिलोम से लिखा हुआ **"रुदळिरते"** प्रतिलोम से पढते जांय तो **"तेरळिदरु"** इस तरह शब्द बन जाता है। यह **"रुदळिरते"** शब्द किस भाषा का है सो हमें पता नहीं लगा। जो ऊपर लब्धाङ्क आया है वह ६४ है, उसको आधा किया जाय तो ? ६८ होता है। इसकी विधि इस तरह है:—

२३४५७४७३७५६४६५०००००००००००० इससे इसका निष्कर्ष यह निकल। कि अनेकांत दृष्टि से देखा जाय तो ६४ से ६८ भाग होता है ऐसा आचार्य ने बतलाया है।

इसका आचार्यो ने भंगांक ऐसा कहा है। गणित विधि बहुत गहन होने के कारण पुनरुक्ति दोष नही आता। महान मेधावी तपस्वी है वे इसे पुनरुक्त न मानकर जो रस इस गणित से आता है उस रस को आस्वादन करते हुए आनन्द की लहर मे मग्न हो जाते है।

प्रतिलोम को अनुलोम से भाग देते समय लब्धाक के इसी विधि मे अन्तिम भागांक में जो गलती है उस गलती को ऊपर के कोष्ठक में देख लेना ऊपर के लब्धांक गणित के अन्त में सभी शून्य ही आना चाहिए था परन्तु नहीं आया, अंक ही आ गया है।

१२०७५१७९४२५७३४६८७५७३२४१०२२९४७२८८४९३७४९७२९७५५-६२३४३७८४२९०७१३६१२०७५१७९४२५७३४६८७५७३२४१०२२९४७-२८८४९३७४९७२९७५५६२३७८४२९०१३६१२०७०००९४२०००००००००-०००००००००००००००००००७४९७२९७५५६०३०००००००००० यह जितने चिन्ह दिये गये है वे सभी अंक ९ आना चाहिए था परन्तु यहाँ ९ नहीं आया है।

अर्थ—प्रतिलोम '९' और अनुलोम ९ से भाग देते समय जो गलती आती है उस गलती को बतलाने के लिए जितनी गलती आयी है उतने अंक नीचे यह (०००) चिन्ह दिया गया है। इस गलती को जान बूझकर ही हमने डाला है और आचार्य ने इसको ऊपर छोड़ दिया है। क्योकि यदि ऐसे गलत अंक को नही रखते तो संस्कृत भगवद्गीता नही निकल सकती थी और न प्राकृत भगवद् गीता ही। इसीलिए इस अक्षर को बतलाने के लिए जैन ऋग्वेद के समान महर्षि के द्वारा रचित अनादि कालीन ३६३ मत जैन ऋग्वेद में नही निकलते। अनादि ऋग्वेद के सम्बन्धी १० मंडल के अष्टक ८८८८८८-८८८८ अर्थात् श्री नेमि गीता के प्रथम अध्याय का ७ वां सूत्र—

"सत्संख्याक्षेत्र स्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च"

इस सूत्र के अनुसार आठ अनुयोग द्वारा ऋग्वेद नही आता था। वही ऋग्वेद अनादि कालीन गणित को नही मिलता था। जैन पद्धति के वाल्मीकि ऋषि ने रामायण के अंक के अन्त में स्तवनिधिब्रह्म देव की स्तुति के द्वारा पहले होने वाले आजकल के वैदिकों में प्रचलित रहने वाले, साम्य वेद के पूर्वार्चिका और उत्तरार्चिका नामक महान् भाग नही निकल सकता था। और पूर्वार्चिका के अर्थ के अन्दर ही उत्तर अर्चिका मिलकर हमारे गणित पद्धति के अनुसार सांगत्य कानडी पद्य के अनुसार नहीं आ सकता था। उसके ६५ पद्य के १ अध्याय में प्रत्येक श्लोक में ६५ अध्याय होकर ६५ सांगत्य पद्य में पुनः ६५ सांगत्य पद्य आड़ा और सीधा मिलाकर १०० श्लोक वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत देखने में नहीं आ सकता था।

रामायण के बालकांड, अयोध्या कांड और अरण्य कांड ये तीनों कांड

देखने में नही आ सकने थे। इसके अलावा और भी कितनी अद्भुत साहित्य कला को हम गणित के द्वारा नही छुडा सकते और जैसे कितने ही रस-भरित काव्य (साहित्य) के नष्ट होकर गिर जाने से यहा हमने गलत सख्या को रख दिया है। इसका उत्तर आगे दिया गया है।

१७६ श्लोक के नीचे दिये गये प्रतिलोम१७१६५४३९९४६०२११६०-२२८६७११८८४९२०८८२२३४९५७०९७६०७७०७५९५३९९३७७५४३५४-६३१६९९३३१२००००००००००००० है। आगे उस जगह पर २९ अक स्वच्छ चन्द्रमां की चादनी के समान निकलकर आते है। यहा तक २४ श्लोक पूर्ण हुए।

अब आचार्य कुमुन्देदु ने स्याद्वाद का अवलम्बन करके गणित के बारे मे आनन्द दायक उत्तर देते हुए कहा कि कोई गलती नही है। क्योकि जिस गलती से महत्व का कार्य साधन होता है ऐसी गलती को गलती नही माना जा सकता जिस छोटी गलती से ही महान् गलती होती है उसी को गलती माना जाता है। परन्तु यहाँ ऐसा नही है यह मगल प्राभृत है, अत यहाँ अमगल रूप गलती नही आनी चाहिए ऐसे यदि तुम प्रश्न करोगे तो ऊपर के कोष्ठक मे दिए हुये (४६९१) इत्यादि रूप से ऊपर से नीचे उतरते हुए लब्धांक को देखो उसमे किसी प्रकार की गलती नही दीखती। गलती के बदले मे अतिशय महिमा के (१) अक की उत्पत्ति होती है यदि उसका आधा किया गया तो '६८' आकर '९' नामक ५ अंकों से भाग हो गया। यह अतिशय धवल की महिमा नही है क्या ? ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य, भूवलय ग्रन्थ मे लिखते है। इस प्रकार २५ श्लोक तक पूर्ण हुए।

मन्मथ का बाण सीधा नही है वह तो टेडा है मन्मथ का पुष्प वाण स्त्री और पुरुष के ऊपर छोडाजाय तो तीर जैसे हृदय मे घुसकर बार वार वेदना उत्पन्न करता है उसी तरह मन्मथ के वाण भी स्त्री पुरुष के हृदय मे घुस कर हमेशा भोग की तीव्र वेदना उत्पन्न कर देते है। जिस तरह पुष्प मृदु होने पर भी पुरुप या स्त्री को अपनी सुगन्धि से बार बार सुगन्धित करता है उसी तरह मन्मथ का वाण मृदु होने पर भी स्त्री या पुरुष के भोगने की वेदना को उत्पन्न कर देता है। इसी तरह छोटी छोटी गलती से अनेक प्रकार की महान् २ गलती होती है। भोग का विरोध करने वाले योग को योग का विरोध करने वाले भोग को समान करके ॥ २६ ॥

प्रति दिन बढाई जाने वाली अतिशय आशा रूपी अग्नि ज्वाला की शक्ति को दबाकर उसके बदले मे उपमा रहित योगाग्नि रूपी ज्वाला को बढाते हुए कर्म को नाश करने से सिद्ध हुआ गणित का पाँच अंक योगी लोगो के लिए पञ्च अग्नि के समान है ॥ २७ ॥

ये पञ्चाग्नि रूपी रत्न ही पाँच प्रकार की इन्द्रिया है ॥२८॥

जिस कार्य की सिद्धि के लिए मनुष्य पर्याय को हमने प्राप्त किया उस पर्याय से अद्भुत लाभ होने वाले कार्य को सतत करते रहने से कर्म का बंध नही होता परन्तु छोटे छोटे सासारिक कार्यों के करने से कर्म का बंध होता है ॥२९-३० ॥

इस गणित की जो मनुष्य हमेशा भावना करता है उनके हृदय में दिगम्बर मुद्रा या भगवान जिनेश्वर की भावना हमेशा पूर्ण रूप से भरी रहती है ॥३०॥

तर्क मे न आने वाले और स्वात्म-चिंतवन मे ही देखने या आने वाले इस पाँच अंक की महिमा केवल अनुभव-गम्य है ॥ ३२ ॥

तीसरा दीक्षा कल्याण होने के बाद छद्मस्थ अवस्था मे माने गये जिनेश्वर को यह भक्ति है ॥ ३३ ॥

यह जो पाँच अक है वह जैन दिगम्बर मुनियों को देखने मे आया हुआ है ॥ ३४ ॥

ख्याति को प्राप्त हुआ यह अक विज्ञान है ॥ ३५ ॥

यह छोटे छोटे बालको से भी महान् सौभाग्य को प्राप्त कर देने वाला है ॥ ३६ ॥

जिनेन्द्र देव ने गणित के इस अक के ऊपर हो गमन किया है अर्थात् यह क्षेत्र भी है ॥ ३७ ॥

बडे २ कर्म रूपी शत्रु का नाश करने वाला आत्मस्वरूप नामक हयभूवलय है ॥ ३८ ॥

श्री भगवान महावीर स्वामी की वृद्धि समान यह अध्यात्म-साम्राज्य है ॥ ३९ ॥

मन रूपी सिंह के ऊपर आकाश गंगा के समान अधर भाग में स्थित कमल है ।। ४० ।। २८ से लेकर ४० तक अन्तर पद्य को नीचे दिया जाएगा यह प्रत्येक चौथे चरण का अक्षर है । इससे पहले २७ श्लोकों के पहले तीन चरणों को मिलाकर पढ़ लेना चाहिए ।

अर्थः—जैसे उत्तम संहनन वालों का शरीर है । वैसे इस काव्य की रचना उत्तम है ।

इस काल के पृथ्वी के भव्य जीवो के भाव में करुणा अर्थात् दया के अप्रतिम रूप अर्थात् केवली समुद्घात को बतलाने वाला यह काव्य है और पंच परमेष्ठियों का यह दिव्यरूपी चरण भूवलय काव्य है और ऊपर का आया हुआ पांच का चिन्ह है ।। ४३ ।।

जंगल में तप करके आत्म-योग द्वारा अपने शरीर को कृश करते समय श्री जिनेन्द्र देव का अंतिम रूप ही मनमें धारण करना सर्व साधु का अन्तिम रूप है अर्थात् अरहंत सिद्ध आचार्य और उपाध्याय ये चार और जिन धर्म जिनागम, जिन बिब तथा जिन मंदिर, इन दोनों चार चार अंकों को मिलाने वाला बीच का पाँच अंक है । यदि चारों ओर देखा जाय तो पाँच ही अंक है । इस रीति से ही काव्य की रचना हुई है । यही साधु समाधि है ।

इसके आगे ४३ से ५५ श्लोक तक के अन्तर पद्यों में देख ले ।

अर्थः—इन पाँच को संख्यात से ४३ असंख्यात से ।। ४४ ।। तक और बहुत बड़े अनन्त अंक से अर्थात् इन तीनों से पाँच को जानना चाहिए ।। ४५ ।। यह जिनेन्द्र भगवान का ही स्वरूप दिखाया गया है ।। ४६ ।।

वह साधु मन वचन से अतीत यानी अगोचर है ।।४७।।

वह साधु दुष्ट कर्मो को भस्म करने के लिए दावानल के समान है ।४८।

ऐसा ज्ञानी ध्यानी साधु ही वास्तविक योगी है ।।४९।।

ऐसा ही योगी साधु आचार्य पद के योग्य माना गया है ।।५०।।

ऐसा साधु ही परम विशुद्ध मुक्ति के सुख को प्राप्त कर लेता है ।।५१।।

वह योगी दिन प्रतिदिन अपने आध्यात्मिक गुणो में निरन्तर वृद्धि करता जाता है ।।५२।।

उस साधु को घर तथा वन का रहस्य अच्छी तरह ज्ञात (मालूम) होता है ।।५३।।

वह योगी ध्यानी साधु जिनेन्द्र भगवान के समान अपना उपयोग शुद्ध रखने में लगा रहता है, अतः वह अन्य साधुओं के समान शुद्ध उपयोगी होता है ।।५४।।

विवेचन—शारीरिक संगठन के लिए हड्डियों का महत्वपूर्ण स्थान है, इस हड्डियों के सगठन को 'संहनन' कहते है । संहनन के ६ भेद है—१-वज्र ऋषभ नाराच (वज्र के समान न टूट सकने वाली हड्डियों का जोड़ और वज्र सरीखी हड्डी की संधियों में कीली), २ वज्र नाराच (वज्र सरीखी हड्डियां हों जोड वज्र समान न हो), ३ नाराच (हड्डियां अपने जोड़ों तथा संधियों में कील सहित हो) ४ अर्द्ध नाराच (हड्डियां आधी कीलित हो) ५ कीलक (हड्डियां कीलों से मिली हो), ६ असंप्राप्ता सृपाटिका (सांप की हड्डियों की तरह शरीर की हड्डियां बिना जोड़ के हों, केवल नसों से बधी हुई हो) ।

समुद्घात—मूल शरीर को न छोड़ते हुए आत्मा के कुछ प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात है, उसके ७ भेद है—

१ कषाय, २ वेदना, ३ विक्रिया, ४ आहारक, ५ तैजस, ६ मारणान्तिक और ७ केवल समुद्घात ।

इस प्रकार विविधि विषयों का प्रतिपादन करने वाला यह भूवलय सिद्धांत ग्रन्थ है ।।५५ ।

पूर्व काल मे बाँधे गये कर्मो का जितना ही वमन (निर्जरा या क्षय) किया जाय उतना ही आत्मिक गुणों का विकास होता है और जब आत्मिक गुणों का विकास होता है तब संगीत कला में परम प्रवीण गायकों की गान कला के समान उपदेश देने की शक्ति बढ़ जाती है ।।५६।।

तब हृदय मे नित्य नवीन ज्ञान रस की धारा प्रवाहित होती है । जैसे रात्रि मे पढा हुआ पाठ दिन मे स्मरण हो जाता है । उसी प्रकार योगी को रात्रि समय का ज्ञान-चिन्तवन दिनमें उपस्थित हो जाता है । ऐसे ज्ञानी साधु पाठक यानी उपाध्याय परमेष्ठी होते है ।।५७।।

उपाध्याय परमेष्ठी कहलाने वाले एक ही व्यक्ति अवस्था के भेद से क्रमशः आत्मिक योग मे बैठ जाने पर साधु परमेष्ठी, अठारह हजार शील व ५ आचार के पालन करने के समय मे आचार्य परमेष्ठी, चारो घातियाँ कर्मो का क्षय कर लेने के पश्चात् अरहन्त परमेष्ठी तथा चारो अघातिया कर्मो का क्षय करके मोक्ष पद प्राप्त कर लेने के पश्चात् सिद्ध परमेष्ठी कहलाते है।

उस आध्यात्मिक ज्ञान को अपने वश मे करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी हैं ॥५८॥

उस ज्ञानरूपी अमृत रस को अपने मधुर उपदेश द्वारा भव्य जीवो को पिलाने वाले आचार्य परमेष्ठी है ॥५९॥

ऐसे आचार्य परमेष्ठी समस्त जीवो को ज्ञान उपदेश देते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करते है ॥६०॥

वे समस्त इन्द्रियों को जीतने वाले है ॥६१॥

सम्पूर्ण जीवो के लिए नई नई कला को उत्पन्न करने वाला भूवलय है ॥६२॥

सम्पूर्ण असत्य के त्यागी महात्मा होते हैं ॥६३॥

वे महान मनुष्यो के अग्रगण्य होते है ॥६४॥

सम्पूर्ण विपयों को बटोर कर बतलाने वाला द्वादशाग है ॥६५॥

अनुपम समता को कहने वाले है ॥६६॥

नये नये मार्दव आर्जव गुण को उत्पन्न करने वाले है ॥६७॥

सम्पूर्ण ऋषियो मे अग्रगण्य है ॥६८॥

नये नये उपदेश देने वाले आचार्य है ६९॥

पवित्र औपध ऋद्धि के धारक है ॥७०,।

अनेक बुद्धि-ऋद्धि तथा सिद्धि के धारक है ॥७१॥

वृषभसेन आद्य गणधर के वंशज है ॥७२॥

श्री ऋषभदेव के समय से चलने वाले समस्त विषयो को जानने वाले ॥७३॥

दयालु होने से सम्पूर्ण हरितकाय के भक्षण के त्यागी है ॥७४॥

जिस प्रकार आकाश मार्ग से जाने वाला प्राणी अव्याहतगति होने के कारण तीव्र गति से गमन करता है, उसी प्रकार तीव्र प्रगति से जो आचार-सार के अगणित आचार को स्वय आचरण करते है और अन्य भव्य जीवो को आचरण कराते है वे आचार्य होते है ॥७५॥

विवेचन—आकाश मार्ग से जाने वाले चारण ऋद्धि-धारी साधु विद्याधर या विमान जितने वेग से गमन करते है, उस वेग की अंगणित विधि को भूवलय की गणित पद्धति से जाना जा सकता है। वह इस प्रकार है।

गणित का सबसे जघन्य अ क २ दो माना गया है क्योकि एक को एक से गुणा या भाग करने पर कुछ भी वृद्धि आदि नही होती।

२ को यदि वर्ग किया जावे (२×२=४) तो ४ अंक आता है, चार को चार से एक बार वर्ग करने से (४×४=१६) १६ होते है, यदि ४ को तीन बार रखकर गुणा किया जावे तो [४×४×४=६४], ६४ आता है, यदि चार को चार बार गुणा किया जावे तो [४×४×४×४=२५६] २५६ होता है। यदि ४ के वर्गित सर्वगित अंको के २५६ को इसी पद्धति से वर्गित संवर्गित किया जावे तो संवर्गित फल ६१७ अंक प्रमाण आता है जोकि प्रचलित गणित पद्धति के दस शंख के १९ अंक प्रमाण संख्या से बहुत बड़ी अंक राशि होती है। दो के वर्ग ४ की सवर्गित संख्या जब इतनी बड़ी होती है तो विचार कीजिये कि भूवलय मे प्रतिपादित ९ अ क की वर्गित संवर्गित संख्या कितनी वडी होगी ? ऐसी गणित—पद्धति से आकाश मे गमन करने की तीव्रतम प्रगति को भी जाना जा सकता है।

नौ अंक के समान आचार्य जगत के सम्पूर्ण पदार्थों के मर्म को दिखलाकर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थो तथा मुनियों को आचार के पालन करने की प्रेरणा करता है ॥ ७६ ॥

धर्म साम्राज्य के सार्व-भौमत्व को प्रगट करके आचार्य ९ अंक के समान समस्त आचार धर्म को पालन करते हैं ॥७७॥

इस संसार में उत्तम क्षमा आदि दशधर्मों का प्रचार करने वाले गुरु आचार्य महाराज है। तथा सिद्ध भगवान के सारतर आत्म-स्वरूप को बतलाने वाले आचार्य है ॥७८॥

अन्तर श्लोक

इसी प्रकार सारतर आत्म-स्वरूप को बतलाने वाला भूवलय है ॥७९॥

धीर वीर मुनियों के आचरण का प्रतिपादक यह भूवलय है ।८०॥

सरल मार्ग को बतलाने वाला भूवलय है ॥८१॥

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने मार्ग में चलते हुए अपने शिष्यों को जो पढ़ाया वह यह भूवलय सिद्धान्त हैं ॥८२॥

यह भूवलय शूर वीर मुनियों का काव्य है ॥८३॥

रत्नहार में जड़े हुए मुख्य रत्न के समान भूवलय ग्रन्थ-रत्नों में प्रमुख है ॥८४॥

आत्मा की निर्मल ज्योति-रूप भूवलय है ८५॥

अत्यन्त सरलता से सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला भूवलय ग्रन्थ है ॥८६॥

क्रूर कर्मों का अजेय शत्रु भूवलय ग्रन्थ है ॥८७॥

शूर वीर ज्ञानी ऋषियों के मुख से प्रगट हुआ यह भूवलय है ॥८८॥

आत्मा की सार ज्योति-स्वरूप यह भूवलय है ॥८९॥

सरलता से आत्मतत्व को बतलाने वाला भूवलय है ॥९०॥

जिस प्रकार रत्नों में माणिक श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार शास्त्रों मे श्रेष्ठ शास्त्र यह भूवलय है ॥९१॥

श्री वीर जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित यह भूवलय है ॥९२॥

श्री वीर भगवान की दिव्यवाणी स्वरूप यह भूवलय है ॥९३॥

श्री महावीर महादेव के प्रभा-वलय के समान यह भूवलय हैं ॥९४॥

विशाल आत्मवैभवशाली यह भूवलय है ॥९५॥

अनन्त आचार की वृद्धि करने वाला यह भूवलय है ॥९६॥

इस प्रकार अति उत्कृष्ट आचार को प्रतिपादन करने वाले आचार्य के समान यह भूवलय है ॥९७॥

अत्यन्त वैभवशाली वैराग्य को उत्पन्न करने वाला यह भूवलय है ।९८।

भव्य जीवों के हृदय में भक्ति उत्पन्न करने वाला भूवलय है ॥९९॥

श्लोक

जिस प्रकार सिद्धरसायन द्वारा कालायस (काला लोहा) भी सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार पतित संसारी जीव को देह से भेद-विज्ञान उत्पन्न करके मुक्ति प्रदान करने वाला भूवलय हैं ॥१००॥

घातिकर्म नष्ट करके जीवराशि में जीवन्मुक्त ईश्वर (अर्हन्त) होकर भव्य जीवों की रक्षा करता हुआ धर्म तीर्थ द्वारा उनका कल्याण करके वह लोक के अग्र-भाग में विराजमान सिद्धराशि मे सम्मिलित हो जाता है ॥१०१॥

जब यह आत्मा सांसारिक व्यथा से पृथक् हो जाता है तब मुक्ति स्थान में आत्मा के आदि अनुभव को अनन्तकाल तक अनुभव करता है ॥१०२॥

अनादिकाल से संलग्न क्रोध काम लोभ मायादिक को जब यह आत्मा नष्ट कर देता है, तब वह आत्मा सिद्धालय में अपने आपको जानता देखता हुआ समस्त पदार्थों को जानता देखता है। समस्त सिद्ध निराकुल होकर आनन्द से रहते हैं ॥१०३॥

णमोकार मंत्र में प्रतिपादित पांच परमेष्ठी आत्मा के पांच अंग स्वरूप हैं। जब यह आत्मा सिद्ध हो जाता है तब वह भेद-भावना मिट जाती है और सभी सिद्ध एक समान होते हैं ॥१०४॥

अन्तर श्लोक

९ अंक के समान सिद्ध भगवान परिपूर्ण हैं ॥१०५॥

सिद्धों के रहने का स्थान ही भूवलय है ॥१०६॥

णमोकार मंत्र की सिद्धि को पाये हुए सिद्ध भगवान हैं ॥१०७॥

सिद्ध भगवान अनन्त अंकों से बद्ध है यानी संख्या में अनन्त है ॥१०८॥

वे अनन्तज्ञानी हैं ॥१०९॥

वे तीन कम ९ करोड़ मुनियों के गुरु है ॥११०॥

वे निर्मल ज्ञान शरीर-धारी है ॥१११॥

वे भौतिक शरीर के अवयवों से रहित है किन्तु आत्म-अवयव (प्रदेशों) वाले हैं ॥११२॥

परिपूर्ण ९ अंक समान परिपूर्ण दर्शन वाले वे सिद्ध भगवान हैं ॥११३॥

'आदी सकारप्रयोग सुखद' के अनुसार सिद्ध भगवान आदि अक्षर वाले है ॥ ११४॥

वे अन्न आदि अन्य पदार्थों की सहायता से जीवन व्यतीत नही करते अत स्वतन्त्र-जीवी हैं ॥११५॥

वे अत्यन्त रुचिकर सर्वस्वरूप सुख के सार का अनुभव करते है ॥११६॥

वे सिद्ध भगवान अवतार (पुनर्जन्म) रहित होकर अपना सुखमय जीवन व्यतीत करते है ॥११७॥

वे अनन्त वीर्य वाले है ॥११८॥

वे अनन्त सुखमय है ॥११९॥

वे गुरुता लघुता-रहित अत्यन्त रुचिकर अगुरुलघु गुणवाले है ॥१२०॥

उन्होंने नवीन सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त किया है ॥१२१॥

वे महान कवियो की कविता द्वारा प्रशसा के भी अगोचर है ॥१२२॥

वे अव्यावाध गुण वाले है ॥१२३॥

वे समस्त ससारी जीवो द्वारा इच्छित महान् आत्मनिधि के स्वामी है ॥१२४॥

वे ही अर्हन्त भगवान के तत्व (रहस्य) को अच्छी तरह जानने वाले हैं ॥१२५॥

उन्होने समस्त विशाल जगत को अपने ज्ञान दर्शन द्वारा देखा है ॥१२६॥

इस कारण मै उनके चरणो को नमस्कार करता हूँ ॥१२७॥

क्योकि उन्होने (सिद्धो ने) समस्त ससार-भ्रमण का नाश कर दिया है ॥१२८॥

विवेचन—सिद्ध परमेष्ठी मे वैसे तो अनन्त, पूर्ण विकसित शुद्ध गुण होते है किन्तु ८ कर्मो के नष्ट होने से उनके ८ विशेष गुण माने गये है ।

ज्ञानावरण कर्म के नष्ट होने से लोक अलोक के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को उनकी समस्त पर्यायो सहित एक साथ जानने वाला अनन्त ज्ञान होता है ॥१॥

दर्शनावरण कर्म के समूल नाश हो जाने से समस्त पदार्थों की सत्ता का प्रतिभासक दर्शन गुण है ॥ २॥

मोहनीय कर्म के समूल क्षय से आत्मा की अनुपम अनुभूति कराने वाला सम्यक्त्व गुण है ॥३॥

अनन्त पदार्थों को निरन्तर अनन्त काल तक युगपत् जानते हुए भी आत्मा मे निर्बलता न आने देकर अनन्त शक्तिशाली रखने वाला वीर्य गुण है। जो कि अन्तराय कर्म के क्षय से प्रगट होता है ॥४॥

उक्त चारो गुण अनुजीवी गुण है ।

वेदनीय कर्म नष्ट हो जाने से आत्मा मे आकुलता-बाधा आदि का न रहना अव्याबाध गुण है ॥५॥

आयु कर्म सर्वथा न रहने से शरीर की अवगाहना (निवास) में न रह कर स्वय अपने आत्म-प्रदेशो मे निवास रूप अवगाहनत्व गुण है ॥६॥

नाम कर्म द्वारा पौद्गलिक शरीर के साथ ससारी दशा मे आत्मा सतत स्थूल रूप बना रहता है । नाम कर्म नष्ट होने से आत्मा में उसका सूक्ष्मत्व गुण प्रगट होता है ॥७॥

गोत्र कर्म आत्मा को ससार मे कभी उच्च-कुली, कभी नीच-कुली बनाया करता है । गोत्र कर्म नष्ट हो जाने पर सिद्धों मे गुरुता (उच्चता), लघुता (नीचता) रहित अगुरुलघु गुण प्रगट होता है ॥८॥

अन्तिम चारो गुण प्रतिजीवी गुण है । ये ४ अनुजीवी तथा ४ प्रतिजीवी गुण सिद्धो मे पाए जाते है ।

अर्हन्त भगवान्—

व्यास पीठ मे उल्लिखित अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिन वाणी, जिन धर्म, जिन चैत्य, जिन चैत्यालय, ९ स्थानो का सूचक ९ अंक क्या ९ केवल लब्धियो के अधिपति अर्हन्त भगवान को सूचित करता है? हां वे ही अर्हन्त भगवान इष्ट देव है ॥१२९॥

विवेचन—विशेष आध्यात्मिक निधि के प्राप्त होने को 'लब्धि' कहते है। अर्हन्त भगवान को चार घाति कर्म नाश करने के अनन्तर ९ लब्धिया प्राप्त होती है । (१) केवल ज्ञान, (२) केवल दर्शन, (३) क्षायिक सम्यक्त्व, (४) क्षायिक चारित्र, (५) क्षायिक दान, (६) क्षायिक लाभ, (७) क्षायिक भोग (८) क्षायिक उपभोग, (९) क्षायिक वीर्य (अनन्त वीर्य) ये नौ लब्धियां है।

ज्ञानावरण के नाश से केवल ज्ञान लब्धि प्रगट होती है जिससे अर्हन्त भगवान त्रिलोक, त्रिकाल के ज्ञाता होते हैं।

दर्शनावरण कर्म के नाश हो जाने से लोकालोक की सत्ता की प्रतिभासक केवलदर्शन लब्धि प्राप्त होती है।

दर्शन मोहनीय कर्म सर्वथा हट जाने से, अक्षय आत्मानुभूति कराने वाली क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि प्रगट होती है।

चारित्र मोहनीय नष्ट हो जाने पर आत्मा में अनन्त काल तक अटल अचल स्थिरता रूप क्षायिक चारित्र लब्धि का उदय होता है।

दानान्तराय के क्षय होने से असंख्य प्राणियो को अपनी दिव्य वाणी द्वारा ज्ञान दान तथा अभय दान करने रूप अर्हन्त भगवान के अनन्त दान लब्धि होती है।

लाभान्तराय के नष्ट हो जाने से बिना कवलाहार किए भी अर्हन्त भगवान के परमौदारिक शरीर की पोषक अनुपम पुद्गल वर्गणाओं का प्रति समय समागम होने रूप क्षायिक या अनन्त लाभ नामक लब्धि प्राप्त होती है।

भोगान्तराय के क्षय हो जाने पर जो अर्हन्त भगवान पर देवों द्वारा पुष्प वर्षा होती है, वह क्षायिक भोगलब्धि है।

उपभोगान्तराय के क्षय हो जाने पर अर्हन्त भगवान को जो दिव्य सिहासन, चमर, छत्र, गन्धकुटी आदि प्राप्त होते है वह क्षायिक उपभोग लब्धि है।

वीर्यान्तराय के क्षय हो जाने पर जो अर्हन्त भगवान के आत्मा में अनन्तशक्ति प्रगट होती है वह क्षायिक या अनन्त वीर्य लब्धि है।

उन नौ लब्धियों के स्वामी अर्हन्त भगवान हैं, उनसे ही आध्यात्मिक इष्ट मनोरथ सिद्ध होता है, अतः वे ही इष्ट देव हैं।

इष्ट देव श्री अर्हन्त भगवान ने चार घाति कर्मों का क्षय करके संसार के परिभ्रमण का अन्त किया और ओंकार के अन्तर्गत अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भूवलय सिद्धि के लिए उपदेशामृत की वर्षा की ॥१३०॥

गन्धकुटी पर रक्खे हुए सिंहासन के सहस्रदल कमल के ऊपर चार अंगुल अधर विराजमान अर्हन्त भगवान ने अनन्त अंकों को गणित में गर्भित करके तीन संध्या काल में अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवों को कहा। वे ही जिनेन्द्र भगवान है ॥१३१॥

शान्त वैराग्य ज्ञान आदि रसों से युक्त भूवलय सिद्धान्त को अभव को श्री जिनेन्द्र भगवान ने तीनकाल-वर्ती विषयों को अन्तर मुहूर्त मे प्रतिपादन करके धर्म तीर्थ बना दिया ॥१३२॥

ओ एक अक्षर है और उसपर लगी हुई बिन्दी एक अंक है। इस प्रकार ॐ (ओं) की निष्पत्ति है। समस्त भूवलय ६४ अक्षरात्मक है। ६४ अक्षर ६ मे गर्भित है। वह कैसे? सो कहते है—६४ अक्षर (६+४=१०) १० रूप है। १० में एक का अंक 'ओ' अक्षर रूप है और बिन्दी अंक रूप है। इस तरह ॐ मे ६४ अक्षर गर्भित है। अंक ही अक्षर है और अक्षर ही अंक है ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥१३३॥

स्पष्टीकरण— ० (बिन्दी) को अर्द्ध रूप में विभक्त करके उसके दोनों टुकड़ों को विभिन्न प्रकार से जोड़ने पर कनड़ी भाषा में समस्त अंक बन जाते है जैसे ० (बिन्दी) को आधे रूप में विभक्त करने से ◡ दो टुकड़े हुए उस टुकडा का आकार क्रमशः एक आदि अंक रूप बन जाता है।

मन्मथ (कामदेव) की गुद्गुदी में जीने वाले समस्त नर, पशु, आदि प्राणियों को श्री जिनेन्द्र भगवान के चरणों का स्मरण करने से पांच अंक (५)की सिद्धि होती है अर्थात् पंच परमेष्ठी पद प्राप्त होता है ॥१३४॥

श्री अर्हन्त भगवान के परमौदारिक शरीर में नख (नाखून) और केश (बाल)एक से रहते है, बढ़ते नहीं हैं। उन अर्हन्त भगवान के एक सर्वाङ्ग शरीर से द्वादश अंग रूप द्रव्य श्रुत प्रगट हुआ। वह द्वादश अंग एक ॐ रूप है ॥१३५॥

अर्हन्त भगवान की उपर्युक्त अनुपम चराचर पदार्थ गर्भित दिव्य-वाणी को सुनकर विद्याधर, व्यन्तर, भवनामर, कल्पवासी देवों ने श्री जिनेन्द्र देव में अचल भक्ति प्रगट की ॥१३६॥

रसना इन्द्रिय की लोलुपता से विरक्त भव्य मनुष्य ९ अंक परिपूर्ण भगवान का उपदेश सुनकर पूर्ण तृप्त हुए और अनुपम भूवलय को नमस्कार करके अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१३७॥

कभीं भी रंचमात्र कम न होने वाला एक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर समवशरण मे विराजमान श्री जिनेन्द्र देव के सिर के ऊपर तीन छत्र झुक रहे हैं, देवों द्वारा पुष्प वृष्टि होती हे तथा पीठ के पीछे प्रभामण्डल होता है। ऐसी ज्ञान प्रभा प्रगट करने वाला भूवलय है ॥१३८॥

भूवलय के प्रभावशाली इस 'आ' (दूसरे) मंगल प्राभृत मे विविधता परिपूर्ण ६५६१ अक्षर प्रमाण श्रेणी बद्ध श्लोक है। अन्तर श्लोकों के अक्षर आगे बताते हैं ॥१३९॥

अन्तर श्लोक

अन्तर मे ५८७७ ॥१४०॥

अनेक भाषामय काव्य प्रगट होते हैं ॥१४१॥

अंको द्वारा अक्षर बनालेने पर उन विविध काव्यों का निर्माण होता है ॥१४२॥

बड़ी युक्ति से उन अंको को परस्पर मिलाने से उन काव्यों का उदय होता है ॥१४३॥

[८३४२], आठ तीन चार दो एक ॥१४४॥

११२५०० ॥१४५॥

यह अंक चारित्र का वर्णन करने वाला है ॥१४६॥

अन्तरान्तर मे जो काव्य प्रगट होता है, वह चारित्र का वर्णन करता है ॥१४७॥

इस अन्तराधिकार मे जितने अक्षर है उन्हे बतलाते हैं ॥१४८॥

वे अक्षर जितने है उतने ॥१४९॥

वर्ण मिलाने से ॥१५०॥

जो कठिनाई से प्राप्त हुआ ॥१५१॥

उससे अंक रूपी यश काव्य की सिद्धि होती हैं ॥१५२॥

यह ऋषीश्वर भगवान जिनेन्द्र देव का वाक्य है ॥१५३॥

अन्तर श्लोकों की अक्षर सख्या ७८४८ हैं ॥१५४॥

१ से प्रगट हुआ ७७८५। अन्तर में ७८४८ अंकाक्षर रहने वाला सर्व सम्मत 'अ' अध्याय भूवलय है ॥१५५॥

६५६१+अन्तर ७८४८=१४४०९

अथवा

अ (प्रथम) अध्याय ६५६१+अन्तर ७७८५=१४३४६+ 'अ, (दूसरा) अध्याय १४४०९=२८७५५ अक्षर है दोनो अध्यायो में, १८ अंक चक्र है।

इस द्वितीय अध्याय के मूल श्लोकों श्रेणी-बद्ध आद्य अक्षरो से (ऊपर से नीचे तक पढने पर) जो प्राकृत गाथा प्रगट होती है उसका अर्थ निम्न-लिखित हैं।

प्रथम संहनन (बज्रऋषभ नाराच), तथा समचतुरस्र संस्थान-धारी, दिव्य गन्ध सहित एवं नख केश न बढने वाला अर्हन्त भगवान का परमौदारिक शरीर होता है।

तथा मध्यवर्ती (२७वें) अक्षर की श्रेणी से जो संस्कृत श्लोक बनता है, उसका अर्थ निम्नलिखित है—

अविरल (अन्तर रहित) शब्दो के समुदाय रूप, समस्त जगत के कलङ्क को धो देने वाली, मुनियों द्वारा उपास्य तीर्थ-रूप सारस्वती (जिन वाणी) हमारे पापो का क्षय करे।

तीसरा अध्याय

आ दिदेवनु आदियकालदि पेळ्द । साधनेयध्यात्म योग ॥ दादिय अ ज्ञानवळिद धर्मध्यान । साधित काव्य भूवलय ॥१॥
ण रदोळात्मनभ्युदय सौख्यवपोंदे । दारियुदोरेताग अ ज् ज ॥ सारा त्मशिखियेरि बरुवागयोगद । सारवैभववु मंगलवु ॥२॥
हि तवादतिशय मंगलप्राभृत । सततवु भद्रपर्याय ॥ ज्ञा वज्ञात तत्वगळनेल्लव पेळ्व । ख्यातांक शिवसौख्य काव्य ॥३॥
स् नवनु सिंहपीठवनागिपकाव्य । दनुभव जिनमार्गवागे ॥ न नेकोनेवोगिसुत् अध्यात्मयोगद । घनसिद्धांत लेक्कदलि ॥४॥
अ रिवुदे ज्ञान तन्नरिविनोळ्नोळ्पुदे । सरुवज्ञ दर्शन् ति येंब ॥ परमनकाण्केइवेरडरोळ्बेरेवुदे । सरुवचारित्र अनंतं ॥५॥
परमात्मनरिव अनन्त ॥६॥ करुणेयुबेरेद अनंत ॥७॥ वरसिद्धगोष्ठियनंत ॥८॥ अरिवु तन्नात्मअनंत ॥९॥
अरिदुनोडिदरिगनंत ॥१०॥ दोरेवुदेमूरुरत्नांक ॥११॥ सरससमख्यातदनंत ॥१२॥ सरमग्गियोळगसंख्यात ॥१३॥
बरुवुद गुणिसलनंत ॥१४॥ करगदनंत संख्यात ॥१५॥ परिशुद्ध चारित्रिदंक ॥१६॥ विरचित गणनेयनंत ॥१७॥

ण वशुद्ध चारित्रदतिशयदिंदलि । अवनियधरिसुव नव सि ॥ सवरदे मेरुवग्रदेनिल्वकुळितिर्प ॥ नवयोगशक्तियंकवदु ॥१८॥
नवशुद्द दर्शनयोग ॥१९॥ अवरु ध्यानिपशुद्धयोग ॥२०॥ अवनियमरेवसुज्ञान ॥२१॥ नवमांकदद्वयुतयोग ॥२२॥
सुविशाल पृथ्विधारणेय ॥२३॥ अवसरदोळ्बंद योग ॥२४॥ सविद्वैतअध्यात्मयोग ॥२५॥ नवदेवतेय काण्बयोग ॥२६॥
नवमांकदादिययोग ॥२७॥ अवरु साधिपशक्तियोग ॥२८॥

न् मसिद्धपरमात्मएन्नुतमनदलि । ममकारवेन्नात्म रा ग ॥ समनिसेद्रव्यागम बंधदोळ् कट्टि । दमलात्मयोग चारित्र ॥२९॥
ते नम शुद्धात्मयोगायेन्नुत । आनत भावस्वभाव ॥ ध्यानान न् ददेंबाह्याभ्यंतर । वेनिल्ल परभाववेनुत ॥३०॥
हि तयोगवताळ्दवसरदोळ्योगि । अतिशय बहिरंतरंग ॥ धा त्रियनेनहनेल्लव मरेदातनु । प्रीतियोळ्मेरुविनम्र ॥३१॥
स् थनिसिदध्यातमयोग वैभवकेंदु । सततदुद्योग पर ना गि ॥ हितवेनगागेलोकाग्रवेरुवेरुवेनेंब । मतियुतनागुत योगि ॥३२॥
हितदनुभवहोंदिदाग ॥३३॥ अतिशय शिवभद्रसौख्य ॥३४॥ सततदभ्यासद बुद्धि ॥३५॥ हितवीवचारित्रशुद्ध ॥३६॥
हतिसलुवीर्यांतराय ॥३७॥ हतवुदर्शनमोहनीय ॥३८॥ अथवाउपशमवागे ॥३९॥ अथवाक्षयवागलात्म ॥४०॥
हिनदेशुद्धात्मस्वरूप ॥४१॥ नुत शुद्धसम्यक्त्वसार ॥४२॥ नुतस्वसंवेद विराग ॥४३॥ अतिशय सबलविराग ॥४४॥
हितवदेतन्नस्वरूप ॥४५॥ हतकर्मलीनवात्मनोळु ॥४६॥ अथवास्वरूपाचरण ॥४७॥

गु रुगळाचरिसुव चारित्रसारद । परिये देशचारित्र ॥ दिरवि स् अप्रत्याख्यान दुपशम । बरलथवा क्षयोपशमं ॥४८॥
णे रदे क्षयवागे देशचारित्रद । दारियु सकलचारित्र ॥ शूर ज्ञा निगळसोम्मागुवकालदे । मूरने क्रोधादिनाल्कु ॥४९॥
हि तवल्लदिरुवकषायगळ्पशमं । अथवाक्षयदुपशम ना ॥ सततोद्योगद फलदिंदक्षयवागे । क्षिति पूज्यमहाव्रतबहुदु ॥५०॥
नु णगुजुणु रेनुवदिव्यध्वनि सारद । गणनेयसकलचारित्रा नु ॥ क्षणक्षणकाव्रतउज्वलवागुत । कुणियुतबहुदात्मयोग ॥५१॥

नगेबंद ध्यानदनुभवदिंदलि । घनवाद यथाख्यात ज निसे ॥ गुणस्थानवेरुव परमावधियागे । जिनरयथाख्यातवदु ॥५२॥
व् रदेतोरुत जारुतबरुतिर्प । चारित्रदंतल्लवदु ॥ शूर न योगददारिइदैतंद । चारित्रसार भूवलय ॥५३॥
तो

सेरुत गुणस्थानदग्र ॥५४॥ सारात्म चारित्रयोग ॥५५॥ भूरिवेभवदात्मयोग ॥५६॥ दारियसिद्ध लोकाग्र ॥५७॥
नेर कषायवियोग ॥५८॥ शूर कषायद भाव ॥५९॥ दारिये शुद्धविशेष ॥६०॥ चारित्रवे यथाख्यात ॥६१॥
दूरपूर्णतेयाअयोग ॥६२॥ शूरअयोगीकेवलियु ॥६३॥ आरेंदु गुणस्थानदग्र ॥६४॥ शूररध्यात्मस्वातन्त्र्य ॥६५॥
गारादसंसारनाश ॥६६॥ नेरदेदेहवर्जितवु ॥६७॥ पूर्णदंडदे कपाटकवु ॥६८॥ सारप्रतर लोकपूर्ण ॥६९॥
वेरिद बळिक सिद्धत्व ॥७०॥

वि ष पूर्ण कुंभदेम्भत्नाल्कु लक्ष । वशद औदमृत शरावे ॥ य श वदरोळगे अंधकनु आकाशदि । नेशेदचिंतामणि रत्न ॥७१॥
शु भ भद्रवागि बिद्दन्ते मानवदेह । अभवनागलु बद्दिदुद ला ॥ उभयभवार्थ साधनेय तद्द्वय । शुभमंगललोक पूर्ण ॥७२॥
द् र्शनज्ञान चारित्रमूरंग । स्वर्शमणि सोकलाग ॥ मर् क ट मानवनादन्ते मानव । स्वर्मनवळिवुदेनरिदे ॥७३॥
ध रणियमेलिर्दु धरेयन्तरगद । परिपरियणुविनविष या ॥ वरिदुतन्नात्मन दर्शनवेरसिर्द । धरेयग्र लोकव होन्दे ॥७४॥
चा मरवादतिशयवावैभव । आमहात्मरिगिल्लवागे ॥ प्रेम च राचरवन्नेल्ल काणिप । कामिनि मोक्षव पोन्दि ॥७५॥

भामेयोळ् कूडुवनात्म ॥७६॥ प्रेमादिगळगेल्द कामी ॥७७॥ श्रीमयसुख सिद्ध भद्र ॥७८॥ आ महात्मनु भूमियळिद ॥७९॥
सीमेयगडिदान्टिदभव ॥८०॥ नेमदें चिरकालविरुव ॥८१॥ स्वामियेजगदादिगुरुवु ॥८२॥ राम लक्ष्मण हृदयाब्ज ॥८३॥
नामरूपगळेल्लवळिद ॥८४॥ कामसंनिभनल्लि बेरेद ॥८५॥ गोमटेश्वरनय्य वृषभ ॥८६॥ श्री महासूक्ष्मस्वरूप ॥८७॥
आमहिमनु श्री अनंत ॥८८॥ भूमिकालातीत संज्ञा ॥८९॥ स्वामि अनन्तकेवलय ॥९०॥

रि द्धिवैभवदलि ज्ञान साम्राज्य । शुद्धदर्शनद अन् क् अ ॥ होद्दे चारित्रव देहद सेरेमने ॥ इद्दरुबंधवळिवुदु ॥९१॥
व्, नुविद्दरेनवनमलात्म संपद । जिननन्ददे तानक् षु बुध ॥ दनुभव होन्दुवध्यात्मदोळिरुवाग । घनतेय देहवळियुव ॥९२॥
तो रुव मुनिमार्गदारैकेयिहदेह । सेरुतलात्मन बळिय ॥ सा रु बनावाग कारागृहदल्लि ॥ सेरिरुवात्मन बिडिसे ॥९३॥
भ यविनिर्सिल्लदे ध्यानदोळा योगि । नयमार्गवनु बिडदिरुव न् ॥नियतदोळात्मनोळ् बाळ्वाग ध्यानाग्नि । लयमाळ्पुदघवनेल्लवनु ॥९४॥
व शवागलाध्यान तनुवु कायोत्सर्ग । दसमान पल्यंकय मी ॥ वशदेरडरोळोंन्दासनदोळगिर्दु । रस परिपूर्णनागुवनु ॥९५॥

वशद रागवनु चिंतिपनु ॥९६॥ स्वसमाधियोळगे निल्लुवनु ॥९७॥ स्वसंपूर्णनागुतलिवनु ॥९८॥
हुसिमार्गवनु तोरेदिहनु ॥९९॥ बशिवनु अपराधगळनुस् ॥१००॥ यसेवनु कर्म दंडवनु ॥१०१॥
होस दीक्षेवडेदनन्तिमनु ॥१०२॥ यशदे लक्ष्यवनु साधिपनु ॥१०३॥ होसदाद गुणदोळगवनु ॥१०४॥
रससिद्धियनु बेंडदिहनु ॥१०५॥ कुसुमकोदंडदल्लणनु ॥१०६॥ होसहोसपरियचिंतिपनु ॥१०७॥

बसिरनु दंडिसुतिहनु ॥१०८॥ यशद चारित्रदोळिहनु ॥१०९॥ एसेवनु परद्रव्यगळनुम् ॥११०॥
हुसिय प्रेमव तोरेदिहनु ॥१११॥ रिसिय रूपिन भद्रदेहि ॥११२॥ असम भूवलयदोळिहनु ॥११३॥
यशद मंगलद प्राभृतनु ॥११४॥

भ यवेन्तेन्दु केळु तलायोगियु । जयिपपरानुरागवनु ॥ नयद लि चिंतिप आकुलितेय बिट्टु स्वयंशुद्ध रूपानुचरण ॥११५॥
य शवदु शाश्वतसुखवेन्दरियुत । असमान शान्तभावदलि ॥ त स स्थावर जीवहितवनु साधिप । हसवळिदेल्ल पौद्गलिक ॥११६॥
द लिबन्द सुखदुःखगळलि आकुलितेय । बलवेष्टिहुदेन्द म अवनु ॥ बळिसार्द व्याकुलबेल्लव केडिपनु । कलिलहन्तकनात्मशुद्ध॥११७॥
न वपद धर्मद गणितव गुणिसुत । अवरोळगात्म गौरव ए ॥ लूलवनुसाधिसुतिर्प कालदोळनुराग । दवयवविनिसिल्लदिहनु ॥११८॥
ज यजयवेन्नुत तन्न देहदोळिह । स्वयंशुद्धआत्मन न वनु ॥ भर्यादिद बिडसुत परद्रव्यदनुरागद । जयवन्ने चिंतिसुतिहन॥११९॥
ग वपद योगवनदरोळु रतियिर्द । सवियादंकाक्षर सार त ॥ नवमांक गणितदोळ् स्वद्रव्यवरिवनु । भवभय नाशनकरनु ॥१२०॥

अवतारविनिसिल्लदवनु ॥१२१॥ कविदकळतलेयनोडिपनु ॥१२२॥ अवनु निरंजनपदनु ॥१२३॥
सुविशाल धर्मसाम्राज्य ॥१२४॥ अवनु धर्मदबेट्टवेरि ॥१२५॥ कविकल्पनेगे सिक्कदिहनु ॥१२६॥
अवधरिसुव तत्वगळनु ॥१२७॥ नववनु भागिपनेरडिम् ॥१२८॥ भवसागरवनु गुणिसुव ॥१२९॥
नवकार जपदोळगिरुवम् ॥१३०॥ नवस्वर्गगळ कूडिसुव ॥१३१॥ नवसिद्धकाव्य भूवलय ॥१३२॥

द रुसनमाड़े परद्रव्यंगळ । बरुवा कर्मद वंध ॥ वर स् म्यक्त्व शुद्धवागिसदेन्दु । अरिवरु मूवरु गुरुगळ् ॥१३३॥
च् रितेयोळात्मन संसारदिं कित्तु । अरहन्त सिद्धरस् म नके ॥ बरुवन्ते माडलु सिद्धतानक्केम्ब । परम स्वरूपाचरणर् ॥१३४॥
छो द्यवागिरुव चारित्रवस् सारिद । राद्धतराचार्य अवर य् अ ॥ साध्य असाध्यवेम्बेरडनु तिळिदिह । आद्याचार्यरु हितवर्॥१३५॥
म हर्वीरिदेवन वाणियिंबंदिह । महिमेयभद्रसौख्यवु श् री ॥ सहनेय धर्म निराकुलवेन्नुव । महिमेयंकाक्षर वाणि ॥१३६॥
ह रुषवर्द्धनवाद आ निराकुलितेय । सरमागे मंगलवर श् री ॥ करुणेय वेरेसिह गणितदे गुणिसिह । बरुव दयापर धर्म ॥१३७॥

अरहंतदेवर कृपेयु ॥१३८॥ बरुवुदु संख्यात गुणित ॥१३९॥ परमौषध रिद्धिय गणित ॥१४०॥
सरलांकं बुद्धियरिद्धि ॥१४१॥ परिपरियतिशय सिद्धि ॥१४२॥ गुरुगळाशिसुतिह सिद्धि ॥१४३॥
शरणु बंदवर पालिसुव ॥१४४॥ हरुषदायकवाद वाक्य ॥१४५॥ परिपूर्ण भरतद सिरियु ॥१४६॥
परम सम्यज्ञान निधियु ॥१४७॥ सरस साहित्यद गणित ॥१४८॥ अरिवु येळनूर्हदिनेंटु ॥१४९॥
परमभाषेगळेल्ल बरिव ॥१५०॥ अरहंत रोरेद भूवलय ॥१५१॥

वी रमहादववाणिय सर्वस्व । शूरदिगंबरमुनियु ॥ सारिद गु रुगळु दारियोळ् बरुवाग । नेरदध्यात्म भूवलय ॥१५२॥
रो षवळिद काव्यसिद्धसंपदकाव्य । आशेय भव्यभावुक रु ॥ लेसिनिंभजिसुत बरुव निर्मलकाव्य । श्री शन गणितद काव्य॥१५३॥

वे काव्य ॥ दृष्टांतदोळगेल्ल वस्तुवसाधिप । अष्टमंगलविह काव्य॥१५४॥

अ ष्ट कर्मगळं निर्मूलवंमाळ्प । शिष्टरोरेद पूर् न् वाद ॥ गुणकारवेन्नुव गणकरिबंदिह । अनुभव वैभव काव्य ॥१५५॥

त् नुमन वचनद कृतकारितनुमोद । जिन भक्ति न काव्य ॥ बळेसुत चारित्रव शुद्धगोळिसुत । बळियसारिपदिव्य काव्य॥१५६॥

थ ळथळिसुव दिव्य कलेगळरवत्तु नाल्कु । गेलुवकद्नम

घळिगे वट्टल दिव्य काव्य ॥१५९॥

इळेय पालिप नव्यकाव्य ॥१५७॥	बेळेव सर्वोदय काव्य ॥१५८॥	घळिगे वट्टल दिव्य काव्य ॥१५९॥
सुळिय वाळेय दग्र काव्य ॥१६०॥	तिळियादसरसांक काव्य ॥१६१॥	गिळिय कोगिले दनि काव्य ॥१६२॥
यळेवेण्णदनियंक काव्य ॥१६३॥	इळेगादि मनसिज काव्य ॥१६४॥	सुलिवल्ल सुलियद काव्य ॥१६५॥
इळेय कळ्तले हर काव्य ॥१६६॥	बळिय सेरलु व्रतकाव्य ॥१६७॥	गेलवेरिदर व्रत काव्य ॥१६८॥
नलविनध्यात्मद काव्य ॥१६९॥	सलुव दिगम्बर काव्य ॥१७०॥	

क मंटिक मार्तिनिंदलि बळेसिह । धर्म मूरनूररव तमूर म् ॥ निर्मलवेन्नुत बळिय सेरिपकाव्य । निर्मल स्याद्वाद काव्य ॥१७१॥

त् नगे वारद मातुगळनेल्लकलिसुतम् । विनयदध्यात्मं अ चल ॥ घनदंकएळु साविरदिन्नुरु तोंवत्तु । एनलु अंतरदलि बरुव॥१७३॥

ता नल्लिहत्तूवरे साविरअरवत्तारु । रानंदवेरडम् ह अ ॥ काणुवद् हदिनेंदुसाविरदेळनूर । काणदनलवत्तनाल्कंक ॥१७४॥

रो दनवेल्लवनळिसुव (ओडिप) सोहं । आदि ओंदोंवत्तु वंद् आ ॥ साधिसि मूरु काव्य वकूडिदक्षर । आदि जिनेंद्र भूवलयम् ॥१७४॥

इस तीसरे 'आ' अध्याय मे ७२९० अक्षरांक हैं। अंतर काव्य में १०,५६६ अंकाक्षर हैं। कुल मिला देने से १७८५६ अंकाक्षर होते हैं।

अथवा पहला और दूसरा अध्याय मिला कर २८७५५ और दस अध्याय के १७८५६ मिलकर ४६६११ अंक हुए।

इस अध्याय में आने वाली प्राकृत गाथाः—

आर्णोहि अणन्तेहि गुणे हि जुत्तो विशुद्धचारित्तो। भवभयदन्जणदच्छो महवीरो अत्थकत्तारो ॥

संस्कृत श्लोकः—

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं एन तस्मय् श्री गुरवेन्नमह ॥

इस श्लोक में एन के स्थान में व्यंजन "येन" रहनः चाहिए था, किन्तु अंक भाषा में स्वर होने के कारण उसे ही रखा गया, है या यों समझिये कि धातूनामनेकार्थत्वात् धातुओं के अनेक अर्थ होने से एन, और येन दोनों समान ही हैं। अतः विद्वानों को इसकी शुद्धि न करके मूल कारण का अन्वेषण करना चाहिए।

यह भूवलय नामक अपूर्व चमत्कारिक ग्रन्थ सर्वभाषामयी होने के कारण प्रत्येक पेज ७१८ (सात सौ अठारह) भाषाओं से संयुक्त है अतः इस प्रकार व्यतिक्रम यदि आगे भी कहीं दृष्टिगोचर हो तो उसका सुधार न करके मूल कारणों का ही पता लगाना चाहिए। हो सकता है कि पुनरावृत्ति होने के समय यह स्वयं सुधर जाय।

(संशोधक)

तीसरा अध्याय

कर्म भूमि के प्रारम्भ काल में श्री ऋषभनाथ भगवान ने भोले जीवों के अज्ञान को हटा कर अध्यात्म योग के साधनीभूत धर्म ध्यान को प्राप्त करा देने वाला जो प्रक्रम बताया था उसी को स्पष्ट कर बताने वाला यह भूवलय काव्य है ॥१॥

श्री आदिनाथ भगवान के द्वारा प्राप्त हुये उपदेश से अभ्युदय और निः-श्रेयस का मार्ग जब सरलता से प्राप्त हो गया तब धर्म रूप पर्वत पर चढने के लिए उत्सुक हुये आर्य लोगों को योग का मङ्गलमय सम्वाद प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥२॥

यह मंगल प्राभृत प्राणिमात्र का सातिशय हित करने वाला है। क्यों-कि ज्ञात और अज्ञात ऐसी सम्पूर्ण वस्तुओं को बतलाकर ऐहिक सुख तथा पार-मार्थिक सुख इन दोनों को सम्पन्न करा देने वाला है ॥३॥

यह मगल प्राभृत मन को सिंहासन रूप बनाने वाला है। तथा काव्य-शैली के द्वारा जिन-मार्ग को प्रगट करते हुए अध्यात्म योग को भीतर से बाहर व्यक्त कर दिखलाने वाला है। तथा यह मंगल प्राभृत या भूवलय ग्रन्थ अक्षर विद्या में न होकर केवल गणित विद्या में विनिर्मित महा सिद्धान्त है ॥४॥

जानना ही ज्ञान है और अन्दर देखना ही दर्शन है। इन दोनों को पूर्ण-तया सर्वज्ञ परमात्मा ने ही प्राप्त कर पाया है। जानने और श्रद्धान करने के बीच में मिलकर रहने वाला चारित्र है जो कि अनन्त है ॥५॥

अब आगे अनन्त शब्द की परिभाषा बतलाते है—

अनन्त के अनन्त भेद होते है जिन सब को सर्वज्ञ परमात्मा ही देख सकता तथा जान सकता है और दूसरा कोई भी नही ॥६॥

पाप को भी अनन्त के द्वारा नापा जाता है और पुण्य को भी अनन्त के द्वारा नापा जाता है। याद रहे कि आचार्य श्री ने यहां पर अनन्त शब्द से दया धर्म को लिया है ॥७॥

सब जीवों मे श्रेष्ठ श्री सिद्ध भगवान है उनको भी अनन्त से नापा जाता है ॥८॥

अपनी आत्मा को जानना भी अनन्त है, यानो उसमे भी अनन्त गुणा है ॥९॥

यह सब जान कर अपने अन्दर ही देखना भी अनन्त गुण है ॥१०॥

अपने आप को प्राप्त करना सारे रत्नत्रय का अङ्क (मुख्य स्थान) है सो भी अनन्त है ॥११॥

सरलता से इस अनन्त को संख्यात राशि से भी गिनती कर सकते है। उदाहरण के लिए चौबीस भगवान में से प्रत्येक में अनन्त गुण है ॥१२॥

इसी रीति से असंख्यात से भी अनन्त को गुणा कर सकते है ॥१३॥

तथा अनन्त को भी अनन्त से गुणा किया जा सकता है ॥१४॥

परमोत्कृष्ट शुद्ध चारित्र का अङ्क यही है ॥१५॥

इन सभी बातों को ध्यान में लेकर अनन्त की रचना की गई है ॥१६॥

महामेरु पर्वत के शिखर पर अधर विराजमान योगिराज अपनी अपूर्व योगशक्ति के द्वारा इस अंक की महिमा को देख पाये है ॥१७॥ यहा पर योग शब्द से पृथ्वी धारण समझना, जो कि विशुद्ध चारित्र के अतिशय से उपलब्ध हुई है ॥१८॥

जितना चरित्र अंक है उतना ही दर्शन योग का अंक है ॥१९॥

ऐसा संयमी महापुरुषों के शुद्धोपयोग ध्यान द्वारा जाना गया है ॥२०॥

यहां पर बताई हुई पृथ्वी धारणा या सुमेरु पर्वत से पृथ्वी या सुमेरुगिरि न लेकर अपने चित्त में कल्पित सुमेरु पर्वत या पृथ्वी को लेना, जो कि अपने ज्ञान मे गृहीत है ॥२१॥

यह भूवलय ग्रन्थ भी उन्हीं योगियों के ज्ञान में योग के समय झलका हुआ है। भूवलय ग्रन्थ नवमाङ्क से बद्ध होने के कारण अद्वैत है। क्योंकि १ के बिना ९ नही होता और जहां पर ९ होता है वहाँ १ अवश्य होता है। एवं अद्वैत भी अनन्त है ॥२२॥

कि असख्यात प्रदेशी है। किन्तु योगियो के ध्यान मे आया हुआ सुमेरु पर्वत तो इससे कई गुणा अधिक है, जो कि अनन्त रूप है ।।२३।।

उस कल्पित पृथ्वी के ध्यान किये विना अनन्त का दर्शन नही हो सकता ।।२४।।

इस कल्पित पृथ्वी की धारणा मूल पृथ्वी के विना नही होती अत यह कथचित् अद्वैत भी है ।।२५।।

इस विशाल योग मे अर्हत् सिद्धादि ६ देवताओ का समावेश हो जाता है ।।२६।।

जो ६ देवता इसी योग शक्ति के द्वारा अपने अनन्त गुणो को प्रकाश मे लाये हुये है ।।२६।।

इस अद्भुत महत्वशाली योग को हम नवमाक का आदि योग कह सकते है ।।२८।।

"नम सिद्ध परमात्म" (सिद्धपरमात्मने नम) ऐसा मन मे कहते हुए, ममकार ही मेरा आत्म राग है, इस प्रकार अपने मन मे भाते हुए द्रव्यागम वधन मे इसे बाध कर उसी मे रमण करने का नाम अमल चारित्र है।

विवेचन—यहा कुमुदेदु आचार्य ने इस श्लोक मे यह बतलाया है कि योगी जन बाह्य इद्रिय-जन्य परवस्तु से समस्त ममकार अहकार रागादिक को हटा कर इससे भिन्न अपने अन्दर योग तथा सयम तप के द्वारा प्राप्त करके देखे हुए शुद्ध आत्माके स्वरूपमे प्रीति करते है, उसी को अपना निज पदार्थ मान कर परवस्तु से राग नही रखते अर्थात् केवल अपने आत्मा पर आप ही राग करते और उसी मे रत होते हुए द्रव्यागम मे उसे बाँधकर उसी मे रमण करते है। इसी को अमल अर्थात् निर्मल चारित्र बताया गया है।

द्रव्यागम क्या वस्तु है ?—

श्री वृषभनाथ भगवान ने अनादि काल से लेकर अपने काल तक चले आये हुए समस्त विषयो को उपर्युक्त क्रमानुसार नवमाक बंधन मे बाँध कर द्रव्यागम की रचना की। उसके बाद अपने संयम के सम्पूर्ण द्रव्यागम को विभिन्न विधि से नवमाक पद्धति के द्वारा रचा और पूर्व मे कथित नवमांक मे बाधकर मिला दिया। तत्पश्चात् आगे अनागत अनत समय मे होने वाले समस्त द्रव्यागम विषय को सक्षेप से तीसरे नवमांक वधन मे वांध कर रचा और उसे भी पूर्वोक्त नवमाक मे मिला दिया, और जो तीन काल सम्वधी द्रव्यागम को भिन्न २ रूप मे रचना की गयी थी वह सभी इसी मे एकत्रित होकर नवमाक रूप बन गयी। यह द्रव्यागम इस भरत क्षेत्र मे लगभग अजितनाथ भगवान् के समय तक स्पष्ट तथा अस्पष्ट रूप मे चला आया और अतराल काल मे नष्ट-सा हो गया। पुन अजितनाथ भगवान् ने वृपभनाथ भगवान् के कथन को और अनादि कालीन कथन को मिश्रित कर चौथे मवमाँक पद्धति का अनुसरण करके रचना करते हुए अपने समय के समस्त द्रव्यागमो को पूर्वोक्त क्रम मे मिला दिया और संक्षेप मे अनागत काल मे होने वाले समस्त द्रव्यागम को छठवे तथा नववे वंध मे वाधकर पूर्वोक्त सभी अनादि कालीन द्रव्यागम रूपी नवम बध मे बाँध कर सुरक्षित रक्खा। यह द्रव्यागम संभवनाथ के अतराल काल तक चला आया, इसी क्रमानुसार सातवे नववे तथा आठवे नववे भगादि रूप से भगवान् महावीर श्री कु दकु दाचार्य भद्रवाहु स्वामी, धरसेण आचार्य, वीरसेन, जिनसेन और कुमुदेदु आचार्य तक चले आये। इस क्रम के अनुसार कुमुदेदु आचार्य ने अपने समय के सम्पूर्ण विषय को नवमाक बध विधि को अपने दिव्य अक तथा गणित ज्ञान के द्वारा रचना कर भूवलय रूप से अनादि कालीन-सिद्ध द्रव्यागममे मिला दिया और अमागत काल के सम्पूर्ण द्रव्यागम को भिन्न नवमाक मे सक्षेप रूप से बाध कर मिला दिया इसी तरह अतीत, अनागत और वर्तमान के समस्त द्रव्यागस एकत्रित करके सुरक्षित रखने की जो विधि है वह जैनाचार्यो की एक अद्भुत कला है।

आत्महित में सलग्न होने के अवसर मे योगी अतिशय सपूर्ण विश्व की बाह्य और आभ्यतर दोनो प्रकार की वस्तुओ से अपने ध्यान को हटाकर आत्मा में अत्यन्त मग्न होकर मेरु के शिखर के समान निश्चल स्थित होता है ।।३०।।

आत्महित करने के लिये स्वानुकूल योग धारण करते हुए वह योगी बहिरग और अतरग अतिशय को प्रगट करने के लिये सम्पूर्ण विश्व की वस्तुओं को भूल कर उत्साह से महान मेरु पर्वत के अग्रभाग पर है ।।३१।।

मथन किये हुए अध्यात्म योग के वैभव की प्राप्ति के लिए प्रयत्न

शील होकर लोक के अग्रभाग पर विराजमान होने की इच्छा से ज्ञान युक्त योगी ॥३२॥

अन्तर श्लोक

हितानुभव के बाद ॥ ३३ ॥ अतिशय शिव भद्र सौख्य ॥ ३४ ॥ सर्वदा अभ्यास में रत रहने की बुद्धि । ३५ । हित करने वाले निर्मल चारित्र । ३६ । वीर्यान्तिराय. के नाश हो जाने पर । ३७ । दर्शन मोहनीय के नाश हो जाने पर । ३८ । अथवा मोहनीय के उपशम हो जाने पर । ३९ । अथवा मोहनीय के क्षय हो जाने पर आत्मा । ४० । हित कारक शुद्धात्म स्वरूप ।४१। प्रशस्त सम्यक्त्व का सार । ४२ । स्वसंवेदन का और विराग । ४३ । अतिशय सबल विराग । ४४ । वही हितकारक अपने स्वरूप । ४५ । में लीन आत्मा । ४५ । अथवा इसी स्वरूपाचरण मे योगी रत होता है । ४७

गुरुजनों के द्वारा जो आचरण करने का सार है वही देश चारित्र का अंश है । देश चारित्र में प्रत्याख्यान का उपशम होने से अथवा क्षयोपशम से मुनियो के आचरण करने योग्य सकल चारित्र प्राप्त होता है । ४८ । सुगम रीति से प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम होकर देश चारित्र का जो मार्ग है वही सकल चारित्र है । जब सकल चारित्र की प्राप्ति होती है तब शूरवीर ज्ञानी दिगम्बर मुनि के तीसरे क्रोधादि चार कषायों का उपशम होता है ॥ ४९ ॥

अकल्याणकारी कषाय के उपशम अथवा क्षयोपशम के सतत उद्योग के फल से क्षय होकर तीन लोक मे पूजनीय महाव्रत होता है ॥५०॥

जब सकल चारित्र होता है तब 'जुण जुण' अर्थात् वीणा ध्वनि के माद के समान जुण जुण आवाज करते हुए दिव्य ध्वनि सार का गणनातीत सकल चारित्र उसी क्षण क्षण मे महाव्रत रूप उज्वल होकर नाचता हुआ आत्म-योग उस मुनि में प्रगट होता है ॥५८॥

अपने को प्राप्त हुए अध्यात्म के अनुभव से महान सी यथाख्यात चारित्र उत्पन्न होकर गुणस्थान चढ़ने योग्य परम समाधि रूपी भगवान केवली जिनेश्वर के अत्यंत निर्मल यथाख्यात निर्मल चारित्र प्रगट होता है ॥५२॥

कभी दिखने वाला कभी आवरण में छिप जाने वाला, यह चारित्र मुनियों के योग-मार्ग के द्वारा आया है उस चारित्र का सार नामक भूवलय है ॥५३॥

ऐसे चढ़ते चढ़ते सयोग केवली नामक तेरहवे गुणस्थान तक चढ़ जाता है ॥५४॥

खाने पीने तथा चलने फिरने के व्रत नियम इत्यादि में जो व्यवहार चारित्र है ऐसा चरित्र यह नहीं है । यह केवल शुद्धात्म योग रूपी सार से उत्पन्न होकर आया हुआ सार-आत्म चारित्र है ॥५५॥

अर्थात् यह आत्म योग के साथ आने वाला अद्भुत आत्म-वैभव रूपी योग सार है ॥५६॥

लोकाग्र तक चढ जाने के लिए यही मार्ग है ॥५७॥

इसी मार्ग से सरलता पूर्वक चढते हुए जाने से कषाय का नाश होता है ॥५८॥

संसार को बढाने वाला अत्यंत शूरवीर एक कषाय ही है । उस कषाय को नाश करने वाला यह शुद्ध चारित्र योग है ॥५९॥

यह रास्ता शुद्ध है और इसमें विशेषता भी है ॥६०॥

इसी चारित्र का नाम यथाख्यात है ॥६१॥

अयोगी चौदहवा गुण स्थान अग्र अर्थात् अंतिम है ॥६२॥

जब अर्हंत भगवान अयोगी कहे जाते है तब इस गुणस्थान में अल्प काल तक स्थित रहता है ॥६३॥

आठवे अपूर्व करण गुण स्थान में दो श्रेणी होती हैं, एक उपशम और दूसरा क्षायिक, जब जीव इस आठवें गुण स्थान में प्रवेश करता है तो उसी एक एक क्षण में हजारो २ अद्भुत आत्मा के विशुद्ध परिणामों को देखता है । ऐसे परिणाम को अनादि काल से लेकर आज तक कभी भी इस प्रकार नहीं देखा, इसलिए इसका नाम अपूर्वकरण—गुणस्थान है जब यह संसारी मानव रूपधारी जीवात्मा संपूर्ण संसार या इंद्रिय-जन्य वाह्य और आभ्यन्तर समस्त वासनाओ को त्याग कर मुनि व्रत धारण करके एकाकी महान गहन जंगल, नदी, समुद्र तट इत्यादि किनारे पर आत्म-योग में रत होकर जब अपने शरीर पर होने वाले अनेक परिषह तथा दुष्ट जन, और क्रूरतिर्यंच इत्यादि द्वारा

होने वाले उपसर्ग तथा धूप सर्दी बरसात इत्यादिक परीषहो को सहन करते हुए मन मे विचार करता है कि जैसा मैने पूर्व जन्म में कर्म किया था उसी के अनुसार पाप का उदय आकर मुझे फल देकर जा रहा है। इसे तो मुझे आनन्द के साथ सहन कर लेना चाहिए। ऐसा विचार कर वे मुनिराज एक दम उपशम श्रेणी पर चढ जाते है। तब इस मुनि को आकाश में गमन करने तथा जल के अन्दर गमन करने की ऋद्धि प्राप्त होती है तथा इन्हे यहा पर्वत के शिखर पर भूमि के अन्दर एंव आकाश मार्ग में गमन करने की शक्ति उत्पन्न होती है। ऋद्धि के मोह से दूसरे सासादन गुणस्थान मे गिर जाता हैं।

वह मुनि दश पूर्व तक जिन वाणी का पाठी होकर भी फूटे हुए घडे के समान होता है अत वह भिन्न दश पूर्वी या भिन्न चतुर्दश पूर्वी कहलाता है। ऐसे लोगो को महान् आचार्य नमस्कार नहीं करते।

अब जो क्षपक श्रेणी प्राप्त कर आगे बढने वाला अपूर्व करण गुणस्थानी जीव है वही वास्तविक अपूर्व करण वाला होता है क्योंकि वह आगे आगे अपूर्व यानी पहिले कभी भी प्राप्त नही होने वाले ऐसे परिणामो को प्राप्त होता हुआ अविच्छिन्न गति से बढ़ता चला जाता है। और वही अभिन्न दशपूर्वी या अभिन्न चतुर्दशपूर्वी होता है, उसी को महात्मा लोग नमस्कार करते हैं।

इसी विषय को गणित मार्ग से बतलाते हुए श्री आचार्य कुमुदेन्दु जी ने कहा है कि आठवा गुणस्थान अपूर्व करण है और उससे आगे जो छ गुण स्थान है उन दोनो को जोडने से चौदह होते है। अब उन चौदहो को भी जोड देने से एक और चार मिलकर पाच बन जाते है। तथा पञ्चम गति मोक्ष है। उसी मोक्ष को अगति स्थान भी कहते है ॥६४॥

अध्यात्म साधन मे जो मुनि इस प्रकार आगे बढता चला जाता है यानी क्षपक श्रेणी मे चढ़ता चला जाता है वह अनादि काल से खोये हुए अपने स्वातन्त्र्य को क्षण मात्र मे प्राप्त कर लेता है ॥६५॥

तब संसार का अभाव हो जाता है ॥६६॥

अन्तिम भव का मनुष्य देह दूर होकर आत्मा अशरीरी बन जाता है। अथवा यो कहो कि शरीरी होते हुए अमूर्त्त ही रहता है।६७।

अब आगे केवली समुद्घात का वर्णन करते हैं—

अरहन्त परमेष्ठी के जो चार अघातिया कर्म शेष रह जाते है उनमे से एक आयु कर्म की स्थिति कुछ न्यून तथा नामादि कर्मो की स्थिति कुछ अधिक होती हैं तो वे अरहन्त परमेष्ठी अपनी आयु के शेष होने में अन्त मुहूर्त बाकी रहने पर केवली समुद्घात करना प्रारम्भ करते है। सो प्रथम एक समय मे अपने आत्म-प्रदेशो को चौदह राजू लम्बे और अपने शरीर प्रमाण चौड़े ऐसे दण्ड के आकार मे कर लेते है। फिर एक समय मे उन्ही आत्म प्रदेशो को पूर्व से पश्चिम वातवलयों के प्रान्त तक फैला लेते है कपाट की तरह। इसके बाद एक समय मे आत्म-प्रदेशों को उत्तर से दक्षिण मे फैलाते है जिसको प्रतर कहा जाता है। इसके भी बाद मे एक समय मे उन्ही आत्म प्रदेशो को वातवलयो तक मे भी व्याप्त करके लोकपूर्ण कर लेते है इस प्रकार चार समयो मे करके फिर इसी क्रम से चार समयो मे अपने आत्म-प्रदेशो को वापिस स्वशरीर प्रमाण कर लेते है ऐसे आठ समय मे केवलि समुद्घात करते है। इस क्रिया से नामादि तीन अघातिया कर्मो की स्थिति आयु कर्म के समान हो जाती है। इसको स्पष्ट करने के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने दृष्टान्त देकर समझाया हैं कि जैसे गीले कपडे को इकट्ठा करके रखे तो देरी से सूखता है किन्तु उसी को अगर फैला देवे तो वह शीघ्र ही सूख जाया करता है उसी प्रकार आत्मा भी अपने अघातिया कर्मो को समान बनाकरके खपाने मे समर्थ होता है।

तब अघाति कर्म को नाश कर सिद्ध परमात्मा होता है।६८-७०।

किसी एक स्थान मे विष से परिपूर्ण चौरासी ८४ लाख घडे रखे हुए है उनके बीच मे एक अमृत भरा हुआ कलश है। किसी अधे पुरुष ने आकाश से इच्छित फल को देने वाले चितामणि रत्न को फेक दिया।७१।

वह चितामणि रत्न शुभ भाग्य से उस अमृत कुभ मे गिर जाता है, उसी प्रकार चौरासी लाख जीव-योनि इस जगत मे हैं। उसके भीतर अमृत से भरे हुए कुभ के समान एक मनुष्य योनि ही है। उस मानव योनि में पूर्व जन्म मे किये हुए अल्पारंभ परिग्रह रूपी शुभ कर्मोदय से अधे-मनुष्य के हाथ से गिरे हुए रत्न के समान मनुष्य देह रूपी अमृत कुभ मे भद्रता पूर्वक जीव गिर जाता है। यह मनुष्य भव कैसा है ? सो कहते हैं :—

जैसे गंगा नदी है उसके दोनों तटों पर शुद्ध तथा निर्मल जल रहता है, एक तट पर मनुष्य जन्म का सार्थक अर्थात् अमृत कुंभ के समान अपने को अखंडित चक्रवर्ती पद तक ऐहिक सुख को प्राप्त करता है अंत में पारमार्थिक सुख प्राप्त करने के लिए लोक-पूर्ण समुद्घात फल को प्राप्त करते हुए चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली तथा सिद्ध भगवान बनकर अखंड नित्य सुख को प्राप्त होता है। जैसे उसने उभय सुख को प्राप्ति कर लिया उसी तरह चौरासी लाख विष-कुम्भ के समान योनियों मे रहने वाले सम्पूर्ण जीव निकायों को अमृत कुम्भ के समान उत्कृष्ट मानव योनि रूप बनाकर, साथ ही साथ उनको सन्मार्ग बतलाते हुए उन जीवों को भी सिद्ध शाश्वत सुख प्राप्त करा देते हैं। इस प्रकार ऐसे सुन्दर महत्वपूर्ण विषय को छोटे सूत्र रूप से दिया गया है सो देखये—"उभय भवार्थ साधन तट द्वय शुभ मंगल लोक पूर्ण" ॥७२॥

दर्शन, ज्ञान, और चारित्र ये तीनों अंग आत्मा का स्वरूप है। यह तीनों प्रत्येक जीव के अंदर है। इन तीनों को रत्नत्रय कहते है। इन तीनों को पारसमणि के समान समझना चाहिए जैसे पारस मणि लोहे को स्पर्श कर देने से सोना बन जाता है उसी प्रकार आत्मा के अंदर तादात्म्य संबंध रूप से रहने वाले रत्नत्रय रूप पारस मणि का अनादि काल से स्पर्श नहीं किया। जिन्होंने इसका स्पर्श कर लिया उन्होंने संसार से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर ली। इस समय मे भी भव्य ज्ञानी जीव अपने अंदर छिपे हुए रत्नत्रय रूपी मणि को एक सेकंड भी स्पर्श करले तो वह भव्य जीव अज्ञान, अदर्शन, और दुश्चारित्र को अंतर मुहूर्त में दूर हटाकर मर्कट रूप में विचरने वाले जीव मनुष्य बन जाता है और मनुष्य देव बन जाता है और देव पुन: उत्कृष्ट मनुष्य पर्याय प्राप्त कर लेता है तब मनुष्य मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है, तब मन इद्रिय, शरीर ये सब नष्ट होकर सिद्ध पद प्राप्त करने में क्या देर है? अर्थात् कुछ देर नहीं ।७३।

इस पृथ्वी पर रहते हुए इस पृथ्वी के अंतरंग के विषय तथा पृथ्वी के बहिरंग विषय को, अनेक प्रकार की भिन्न भिन्न आयु के विषय को जानते हुए भी ज्ञान दर्शन से मिश्रित अपने आत्मतत्व में मग्न होकर तीन लोक के अग्र भाग मे मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ।७४।

विवेचन—

यह पृथ्वी अनेक परमाणुओं के पिड से बनी हुई है उदाहरणार्थ—जैसे एक सरसों के दाने के ऊपर का लाल रंग और उसके अंदर का सफेद रंग है उसे सम्पूर्ण को पेल कर उसका तेल निकाल दिया जाय तो उस तेल का रंग पीला निकलता है। इसके अलावा अनेक रङ्ग इसमे बनते जाते है। उसमें से प्रत्येक अणु अर्थात् अंश लेकर उसको और भी छोटे छोटे करते जायं तो केवली-गम्य शुद्ध परमाणु तक चला जाता है। आज कल वैज्ञानिकों ने मशीन के द्वारा स्कन्ध काटे है किंतु उन्हे अन्तिम अर्थात् फिर जिसका टुकड़ा करने में न आवे इस प्रकार का सूक्ष्म परमाणु उन वैज्ञानिको को अभी तक नही मिला तो भी महानशक्तिशाली, हैड्रोजन बम, ऐटम बम बना लिया है किंतु केवली-भगवान के समान सूक्ष्म परमाणु देख नही सके।

केवली गम्य जो शुद्ध परमाणु है उसकी शक्ति अचित्य है। वह एक परमाणु अनादि कालीन ऐतिहासिक पदार्थ है, आगे अनन्त काल पर्यन्त ऐतिहासिक पदार्थ बनने वाला है। वह इस प्रकार है:—वह इतना सुदृढ़ है कि चक्रवर्ती के चक्ररत्न से भी वह नहीं कट सकता, पानी उसे गीला नही कर सकता, अग्नि उसे जला नहीं सकती, कीचड़ मे घुसकर वह कीचड़ रूप नहीं बन सकता, वह कल भी था, एक मास पीछे भी था तथा एक वर्ष से भी उत्तरोत्तर आगे था। इस रूप से एक परमाणु का इतिहास यदि लिखते जावें तो अनादि काल से लेकर अनन्तकाल पर्यन्त समाप्त नहीं हो सकता। यह भूवलय ग्रन्थ कालानुयोग प्रकरण की अपेक्षा से है इस परमाणु का कथन करते आये तो वह इस प्रकार है:—

"आयासं खलु खेत्तम्"

आकाश की प्रदेश-श्रेणी को क्षेत्र कहते है। केवली-गम्य परमाणु जितने आकाश में रहता है उसे सर्वजघन्य क्षेत्र कहते है। इसी प्रकार यदि दो परमाणु मिलाये जायं तो दो अणु का सर्वजघन्य क्षेत्र हो जाता है। अर्थात्

जितनी संख्या आगे बढाते जायँ उतनी ही वृद्धि होकर अन्त में बृहद्ब्रह्माण्ड पर्यन्त हो जाता है। यह भूवलय के क्षेत्रानुयोग-द्वार का कथन है। इसी वस्तु को यदि भूवलय के भाव प्रमाणानुगमन योग द्वार की अपेक्षा से देखा जाय तो इतना महान् अद्भुत अर्थात् १ परमाणु रूप बृहद् ब्रह्माण्ड पर्यन्त स्कंध का १ सिद्ध जीव के ज्ञान मे गभित है। सिद्ध जीव अनन्त हैं। एक एक सिद्ध जीव मे एक एक बृहद् ब्रह्माण्ड का विषय यदि गर्भित है तो अनन्त सिद्ध भगवानो के ज्ञान को इकट्ठा करने पर कितने बृहद् ब्रह्माण्ड का ज्ञान होगा ? उन सभी ज्ञान को लिखने के लिए जैनों का कथन है कि एक हाथी के ऊपर की अम्बारी भरी हुई स्याही से यदि लिखा जाय तो उससे केवल १ अंश लिखा जा सकता है तो भूवलय के समस्त भागों को यदि लिखा जाय तो कितनी स्याही लगेगी ? इसको सोच लीजिये।

ईश्वर वादी ग्रन्थो में भी भगवान् की महिमा अवर्णनीय है। कहा भी है कि—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

अर्थ—पर्वत के बराबर कज्जल को समुद्र रूपी पात्र में घोलकर स्याही बनाई जाय और कल्पवृक्ष की कलम से यदि शारदा स्वयं भगवान के गुणों को अहर्निशी लिखती रहे तो भी वह पार नही पा सकती।

तो जब एक भगवान मे इतनी शक्ति है तो जहां पर अनेको सिद्ध भगवान है वहा पर कितनी शक्ति होगी ? यह नही कहा जा सकता। इन समस्त सिद्ध भगवान की कथा कितनी स्याही से लिखी जा सकती है? इस विषय को आधुनिक वैज्ञानिक विद्वान पौराणिक ढोंग अर्थात् व्यर्थालाप कहते थे, किन्तु उनके समक्ष जब ६४ अक्षरों से गुणाकार किये हुए अंक, ९२ डिजिट्स (स्थान पर बैठने वाले अंक) को अक्षर बनाकर यदि अपुनरुक्त रूप से लिखते जायं तो क्या उपर्युक्त स्याही का अनुमान गलत है ? कदापि नही। जब यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हो चुकी तब पुनः भगवान की शक्ति अपार है ही ॥७४॥

अत्यंत अतिशयशाली छत्र चमरादि वैभव उन महात्मा योगियो के पास न होने पर भी वे महात्मा योगी जन सम्पूर्ण चराचर वस्तु को दिखा देने वाली मोक्ष रूपी कामिनी को प्राप्त कर लेते है ॥७५॥

मुक्त अवस्था में यह जीव समस्त चराचर पदार्थों को जानने वाला हो जाता है इसलिए अलंकार की भाषा में मुक्ति रूपी भामिनी का यह सग करने लगता है ॥७६॥

मुक्त जीव यद्यपि समस्त प्रकार के सांसारिक प्रेम का पूर्ण त्यागी है, फिर भी वह मुक्ति कामिनी का कामी है। ॥७७॥

चराचर पदार्थों के जानने के कारण जो सुख मिलता है वही सर्व श्रेष्ठ सिद्ध सुख है और सब सुख संसार में असिद्ध ही है ॥७८॥

अर्हंत अवस्था में समवसरण मे अधर स्थिर होकर चराचर को जानता था परन्तु सिद्ध अवस्था में लोक के अग्र भाग में बिना आधार के स्थिर रहता है और अपनी आत्मा मे ही स्थिर रहकर देखना जानता है ॥७९॥

ससार अवस्था मे जानने देखने की सीमा थी परन्तु सिद्ध अवस्था मे देखने जानने की सीमा न रहकर अपरिमित हो गई ॥८०॥

संसार अवस्था में सुख क्षणिक था परन्तु सिद्धावस्था मे वह क्षणिकता नष्ट हो गई और नित्य सुख हो गया ॥८१॥

संसार अवस्था मे जो सब से लघु था वह ही मुक्त अवस्था मे सबका स्वामी और सब का गुरु हो जाता है ॥८२॥

संसार अवस्था मे जिसको कोई ध्यान मे भी न लाता था वह ही मुक्त हो जाने पर राम लक्ष्मण आदि महापुरुषों के हृदय कमल मे वास करने लगता है ॥८३॥

ससारावस्था में इस जीव के साथ नाम कर्म उत्पन्न होने वाले रूप रस गन्ध स्पर्श आदि पौद्गलिक भाव थे परन्तु सिद्ध हो जाने पर वह नही रहे इसलिए अरूपी अमूर्तिक हो गया ॥८४॥

संसार अवस्था मे यह जीव नाना कामनाओं से लिप्त रहता था परन्तु

सिद्ध हो जाने पर सम्पूर्ण कामनाओ से रहित हो जाने से स्वयं ही कमनीय हो गया ।८५।

ऐसे गुण विशिष्ट कौन है ? तो कहना होगा कि वे युग के प्रारम्भ में होने वाले गोम्मटेश्वर के पिता जगद् गुरु आदिनाथ भगवान है ।८६।

वे सबसे महान है तो भी सबसे सूक्ष्म है ।८७।

अनन्त गुणों के स्वामी होने के कारण वे महान है ।८८।

क्षेत्र और माला की परिधि से रहित है ।८९।

अनन्त अंकवलय से वेष्टित है अर्थात् इनके अनन्त गुणों को अनन्त अंकों के वलयों से ही जान सकते हैं ।९०।

अहंत अवस्था मे ऋद्धियों का वैभव था, सम्पूर्ण ज्ञान साम्राज्य प्राप्त था, और चारित्र में लीन थे इसलिए परमौदारिक देह में रहने पर भी देह के विकारों से अलिप्त थे इसीलिए उन्होंने अन्त में देह बन्ध को तोड़ दिया ।९१।

जिनका मन अपने आत्म सम्पत्ति में लीन है वह हमेशा भगवान जिनेश्वर के समान अक्षुब्ध अर्थात् राग रहित वीतरागी होकर अपने आत्मानुभव में लीन रहता है । इस प्रकार से अक्षुब्ध आत्मानुभव में रत रहने वाले के अत्यन्त निबिड कर्मों की अनन्त निर्जरा होती है ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

विवेचन—

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक में शुद्धात्म रत ध्यानी योगी के योग सामर्थ्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि ज्ञानी योगी के शरीर होने पर भी न होने के समान है, कारण यह है कि जिस योगी का मन सदा आत्म-सम्पत्ति रूपी सम्पदा में मग्न रहता है वह हमेशा वीतराग जिनेन्द्र भगवान के समान अक्षुब्ध है, ऐसे शुद्धात्म अनुभव में रहनेवाले योगी के अनादि काल से लगे हुए अत्यन्त कठिन कर्मों के पिघलने में क्या देरी है ? अर्थात् कुछ नहीं ।

इसप्रकार श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने यहां तक सिद्ध भगवान तथा अहंत भगवान के गुणों का वर्णन किया। अब ९३ तिरानवे श्लोक से आचार्यादि तीन परमेष्ठियों के स्वरूप का वर्णन करेंगे ।

संसारी जीव को अपने शरीर की रक्षा करने के लिए तेल, साबुन, मर्दन, कपड़े लत्ते, कोट कम्बल इत्यादि अनेक प्रकार के चीजों की जरूरत पड़ती है । जब वह संसारी जीव मुनि व्रत धारण करता है तब उसे अपनी आत्म रक्षा करने के लिए शरीर की रक्षा करना पड़ता है । अनादि काल से शरीर रूपी कारागृह में बन्धे हुए आत्मा को बाहर निकाले बिना उसकी सेवा नहीं हो सकती क्योंकि शरीर की सेवा वास्तविक सेवा नहीं है क्योंकि उसकी सेवा जितनी ही अधिक की जाती है उतनी ही और आकांक्षा दिनों दिन बढ़ती जाती है पर यदि आत्मा की सेवा एक बार भी सुचारु रूप से हो जाय तो पुनः कभी भी उसकी सेवा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । अतः आत्मा को शरीर से मुक्त करना ही यथार्थ सेवा है ॥९३॥

तिल मात्र भी भयभीत न होते हुए जब ध्यान में रत होकर नयमार्ग को न छोड़ने वाले नियम से आत्मा में रत होने वाला योगी ध्यानाग्नि के द्वारा अनन्त कालीन पापकी निर्जरा करले, इसमें क्या आश्चर्य है ? अर्थात् नही है ।

निर्भय होकर योगी नये मार्ग पर बढता चला जाता है । नियम से आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन होता है तब ध्यानाग्नि द्वारा अनन्त राशि संचित पाप कर्मों का नाश कर देता है । इसमें कुछ भी आश्चर्य नही है ।९४।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक में यह बतलाया है कि—

योगी समस्त मदों से दूर रहकर व्यवहार और निश्चय दोनों नय मार्ग का आश्रय लेता हुआ स्व वशीकृत खड्गासन अथवा पद्मासन से ध्यान में रत होता हैं और तब स्वरस से परिपूर्ण हो जाता है ।९५।

स्वरस में परिपूर्ण हो जाने पर अपने वशीभूत हुए मार्ग का ही चिंतवन करता है ।९६।

स्वसमाधि में स्थिर हो जाता है ।९७। स्व में सम्पूर्ण हो जाता है ।९८। समस्त मिथ्या मार्गों को छोड़ देता है ।९९। पूर्वकृत अपराधो को बहा देता है ।१००। कर्म रूपी दंड को जला देता है ।१०१। नवीन दीक्षित को जैसे आनन्द का अनुभव होता है वैसा आनन्दानुभव होने लगता है ।१०२। यश को पैदा करने वाले लक्ष्य को सिद्ध कर लेता है ।१०३। नवीन गुणों की वृद्धि से युक्त होता है ।१०४। इस सिद्धि की इच्छा से रहित होता है ।

भावार्थ—संसारी जीव जिस प्रकार नाना ऋद्धियों की इच्छा से

आकुलित रहता है इस प्रकार वह किसी भी ऋद्धि की इच्छा से आकुलित नही रहता। यहा उपयोगी होने से श्रीभर्तृहरि और शुभ चंद्रो चार्य का कथानक लिख देना उचित है। एक राजा के दो पुत्र थे, एक का नाम भर्तृहरि और दूसरे का नाम शुभचन्द्र था ससार की दशा का विचार कर दोनो वैरागी हो वनवासी हो गये। भर्तृहरि रस आदि ऋद्धियो के साधन करने वाले गुरु के शिष्य हो गये और शुभचन्द्र किसी भी ऋद्धि को न चाहने वाले आत्म योगी वीतराग साधु के शिष्य बने। भर्तृहर ने बहुत वर्षों की साधना के बाद रस ऋद्धि को प्राप्त की अर्थात् इस-पारद को सिद्ध कर लेने के कारण सुवर्ण बनाने लगे।

एक दिन उन्हे अपने भाई का ख्याल आया कि मैने तो रस सिद्धि प्राप्त करली है और मेरे भाई ने क्या सिद्ध किया है इसलिए एक शिष्य को शुभचंद्र की तलास में भेजा। इधर उधर खोजते हुए शिष्य ने शुभचद्र को दिगम्बर (वस्त्र आदि के आवरण से रहित) वेप मे देखा और मन मे सोचा कि हमारे गुरु के तो बडे ठाठबाट है परन्तु इनके शरीर पर तो वस्त्र तक नही है। अस्थि-मात्र शेष है, आहारादि भी नही मिलता। इस तरह मन मे दुःखित हो शिष्य गुरु भर्तृहरि के पास लौट गया और सब वृत्तान्त कह सुनाया।

भर्तृहरि ने अपने भाई की यह दशा सुनकर सिद्ध रस तूंबड़ी मे भर भेजा और कहलाया इससे मन चाहा सोना बनाकर वस्त्र आहार आदि आवश्यक वस्तुओं की प्राप्त करना।

शिष्य सिद्ध रस से भरी तूम्बड़ी लेकर शुभचद्र के पास पहुचा और गुरु का वक्तव्य कह सुनाया। शुभचंद्र ने यह सब सुना, मन मे भर्तृहरि की बुद्धि पर दया भाव किये और शिष्य से कहा कि इस रस को फेक दो तो वह श्रम साध्य सिद्ध रस को इस प्रकार निरर्थक फेकने के लिए राजी न हुआ। परन्तु वापिस रस को ले जाने से गुरु नाराज हो जायेगे इस बात से इसको शिला पर फेक देना पड़ा। वापिस लौटकर जब गुरु भर्तृहरि से सब वृत्तात कहा तो वे बड़े दुखित हुए और स्वय भाई के पास पहुचे। शुभचन्द्र को अत्यन्त दुर्बल देखकर आश्चर्य मे आ गये और सिद्ध रस लेलेने का आग्रह करने लगे। भर्तृहरि की भ्रांति को दूर भगाने के उद्देश्य से शुभचद्र ने रस भरी तूंबडी पत्थर पर पटक दो जिससे सब रस फैल गया। अब तो भर्तृहरि के हाहाकार का ठिकाना न रहा वे अपने रस सिद्धि की कठिनता और उसके लिए किये गये परिश्रम का वार बार वखान करते हुए उलाहना देने लगे।

यह देखकर शुभचन्द्र तो जमीन पर से धूलि चुटकी मे उठाई और शिला पर डाल दी जिससे सम्पूर्ण शिला सोने की बन गई और भाई भर्तृहरि से बोले कि—भाई! तुमने अपने इतने समय को व्यर्थ ही रस सिद्धि के फेर मे पड़कर गवा दिया। सोने से इतना प्रेम था तो अपने राज महल मे वह क्या कम था। वह वहा अपरिमित था। उसे तो आत्म गुण की पूर्णता प्राप्त करने के लिए हम लोगों ने छोड़ा था। आत्मसिद्धि हो जाने पर वह जड़ पदार्थ अपने किस काम का है? इसलिए यह सब छोडकर आत्म सिद्धि में लगाना उचित है।

शुभचन्द्र की यह यथार्थ बात सुनकर भर्तृहरि को यथार्थ ज्ञान होगया और वे दिगम्वर वीत रागी यथार्थ साधु बन गये।

इसीलिए योगी आत्मसिद्धि करते हैं और इस सिद्धि की तरफ लक्ष्य नही करते।१०५।

रस सिद्धि जब नहीं चाहते तब काम देव का प्रभाव उनपर पड़ ही कैसे सकता है? अर्थात् कामवासना उनको नहीं सताती।१०६।

योगी उस समय नवीन नवीन पदार्थों का ध्यान मे चिंतवन करता है।१०७। क्षुधा आदि परिप है पर विजय करते हुए शरीर से दंडित करता है।१०८। कीर्ति देने वाले चारित्र मे स्थिर रहना है।१०९। पर द्रव्यो को फेंक कर पृथक् कर देना है।११०। दिखावटी प्रेम से रहित होता है।१११।

इसी प्रकार के ऋषि रूप को धारण करने वाले भद्र देही होते है।११२।

इस मध्य लोक की पृथ्वी पर रहकर भी आत्म रूपी भूवलय में रहता है अर्थात् अपने शुद्धात्म स्वभाव में रत रहता है।११३।

विश्व से ख्याति को आत्मा को फैलाने वाले मंगल प्राभृत में रहता है।११४।

विशेषार्थ.—समस्त मंगल प्राभृत मे २०७३६०० अक्षर अंक है वे ही पुनः पुनः घुमा फिरा कर समस्त भूवलय मे प्रयुक्त हुए है इसलिए भूवलय ही

मंगल प्राभृत है और मंगल प्राभृत ही भूवलय है। इसी भूवलय के अक्षरों को भिन्न भिन्न प्रणालि से भिन्न भिन्न पृष्ठों के पढ़ने पर ३२४०० भूवलय बन जाते हैं।

सर्व जीवों के भय को निवारण करने वाले योगी को भय कहां से आयेगा। जिस योगी ने परानु राग को जीत लिया है इन योगी राज को भय कहां से होगा, स्वयं शुद्ध रूपानु चरण में रत रहने वाले योगी को भय कहां ? सम्पूर्ण नय मार्ग की आकुलता को छोड़कर आत्म चिंतवन में रहने वाले योगी पूछता हूँ कि भय कैसा है ॥११५॥

जो योगी असमान शान्त भाव में रहने के कारण त्रस स्थावर जीवों के हित को साधन करने वाला होता है, वह योगी शाश्वत मुक्ति सुख को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि वह योगी देहादिक संसार के सम्पूर्ण पोद्गलिक पदार्थों को अपने से भिन्न समझता है और वह योगी विचार करता है कि इन पौद्गलिक पर पदार्थों में होने वाले सुख दुःख की आकुलता का कितना बल है इसको मैं देख लूंगा। इस प्रकार धैर्य धारण करते हुए सम्पूर्ण कर्म मल को नाशकर शुद्धआत्मा बन जाता है ॥११६-११७॥

अर्हंत्सिद्धादि नव पदों को गुणा कार रूप अपने आत्म गौरव को बढ़ते हुए वह योगी अपने आत्मस्वरूप को शुद्ध बनाता है तो उसके पास पर पदार्थों के प्रति तिलमात्र भी राग नहीं रह जाता हैं ॥११८॥

हे आत्मन ! जय हो जय हो ! इस प्रकार परम उल्लास को प्राप्त होते हुए तथा पर पदार्थों के लगाव को दूर हटाते हुए केवल अपने शुद्ध आत्मा के चिंतवन में ही लीन हो रहा हैं ॥११९॥

वह योगी–जब अर्हंत्सिद्धादि नव पदों के चिंतवन में एकाग्रतापूर्वक तल्लीन होता है एवं नवम अङ्क की महिमा को प्राप्त करता है तब उस समय उस नवम अङ्क की महिमामय अपने आप को ही अनुभव करते हुए तथा नवम अङ्क और अक्षर को समान देखते हुये वह भव भय का नाश करने वाला होता है ॥१२०॥

जब तक कि यह संसारी जीव नवम अंक और अक्षरों में भेद समझता जा रहा था तभी तक इसको जन्म मरण करना पड़ रहा था। अतः जब उन दोनों में अभेद स्थापना कर लेता है तो सहज में जन्म मरण से रहित हो जाता है। ॥१२१॥

अज्ञान रूपी जो अंधकार था अब वह नष्ट हो गया अर्थात् उसको भगा दिया ॥१२२॥

वह योगी निरंजन पद का धारी होता है ॥१२३॥

उनको विशाल धर्म साम्राज्य मिल जाता है ॥१२४॥

धर्म रूपी पर्वत की शिखर पर पहुंच जाता है ॥१२५॥

अर्थात् धर्म द्रव्य लोक के अन्त तक है इस लिये यह आत्मा उसके अन्त तक पहुंच जाता है।

उसकी कवि कल्पना भी नही कर सकता है ॥१२६॥

अपने आत्म-तत्व के साथ अन्य संपूर्ण तत्व को जानता है ॥१२७॥

सभी गणित शास्त्र तत्वज्ञों का यह कथन है कि नव अंक को दो अंक से विभाजित करने पर शेष शून्य नहीं आता है किन्तु जैनाचार्यों ने असाध्य कार्य को भी साध्य कर दिया है, अर्थात् नव को दो से विभाजित करके शेष शून्य को बचा दिया है। इसका विवरण दूसरे अध्याय के विवेचन में कर चुके हैं, वहां से समझ लेना ॥१२८॥

यह योगी अनादि काल से चले आये भव समुद्र के जन्म रूप जल के कणों को ऊपर रहे हुए गणित रूप से जान लेता है।

नवकार मंत्र को जपते रहता है ॥१२०॥

अ. इ. उ ॠ लृ ए ऐ. ओ. औ. इन नव स्वरों को मिला देता हैं। ऐसे

योगियों का गुण गान करने वाला यह भूवलय है। परद्रव्य के दर्शन करने से जिस कर्म का बंध होता है वह कर्म सम्यक्त्व को शुद्ध नही करता है ऐसा अरहंत, आचार्यादि, गुरुओ ने समझाया है। परम स्वरूपाचरण मे रहने वाले आत्मा को संसार से निकाल कर सम्यक्त्व चारित्र मे रहने के कारण मन की ओर अरहत और सिद्धो को लाकर स्थिर करने से सिद्ध पद प्राप्त होता है। ऐसा अरहंत परमेष्ठियों ने कहा है। अर्थात् कानडी काव्य का १ छन्द सांगत्य २ चरित्र में ही गर्भित है ऐसा भी इसका अर्थ होता है।

जिन जिन भावो मे जो असाध्य है, इस बात को वृषभ सेन आदि आचार्यों ने साध्य कहा है भव्य जीवो को आचार विचार चारित्रादि में स्थित करने वाले अन्य आगम मे किसी प्रकार उधृत नही किया है ॥१३५॥

सभी आचार्यों ने परम्परा परिपाटी के अनुसार मगल तथा सुख मय निराकुलतायें सराहनीय धर्म को अकाक्षर मिश्र रूप से उत्पन्न होने वाली वाणी की परम्परा पद्धति के अनुसार ही भगवान महावीर की वाणी से लिया है, इसलिये यह वाणी यथार्थ रूप है ॥१३६॥

यह निराकुल अर्थात् आकुलता रहित मार्ग मगल रूप होने के कारण सतोष की वृद्धि करने वाला है। और परम अर्थात् उत्कृष्ट करुणामय गणित से निकल आता है. इसलिए इसका दूसरा नाम दयामय धर्म भी हैं ॥१३७॥

यह धर्म अरहंत भगवान के मुख कमल से प्रकट हुआ है ॥१३८॥

संख्यात अंकों से भी गुणा कर सकते है ॥१३९॥

उत्कृष्ट औषध ऋद्धि गणित को यह बतलाने वाला है ॥१४०॥

आठ प्रकारो की बुद्धि ऋद्धि को सुलभ अको से बतलाने वाला है ॥१४१॥

भिन्न भिन्न अनेक अतिशय युक्त सिद्धि को प्राप्त करा देने वाला है॥१४२॥

भव्य जीवो का उपकार करने के लिए आचार्यो ने लिखा है ॥१४३॥

ससार सागर मे अनेक बार भ्रमण करते करते अत्यंत भय भीत होते आये हुए जीवो की रक्षा करता है सभी जीवों को हर्ष उत्पन्न करने वाला यह वाक्य है। यह वाक्य सम्पूर्ण भरत खंड की सम्पत्ति है ॥१४६॥

परमोत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान की निधि है ॥१४७॥

सुलभ साहित्य का गणित है ॥१४८॥

परम उत्कृष्ट ज्ञान को ७१८ भाग में विभाजित किया गया है ॥१४९॥

उन अनेक प्रकार की विधियो को भापाओ के नामसे अकित किया हे वे सभी इस भूवलय मे है ॥१५०॥

इसलिये अरहत देव ने ही इस भूवलय का कथन किया हे ॥१५१॥

इस श्री महावीर की सर्वांग सुन्दर दिव्य ध्वनि को शूर दिगम्बर मुनियों ने मार्ग मे विहार करते समय अध्यात्म रूप में लिखा तद्रूप यह भूवलय ग्रन्थ है॥१५२॥

इस काव्य को पढने से सम्पूर्ण कषाय नष्ट हो जाती है। शेष को नष्ट कर सिद्ध पद को प्राप्त करता है। इस लिए भव्य भावक (जीवो) मनुष्य के द्वारा इसकी आराधना करते हुए गुणाकार रूपी काव्य है ॥१५३॥

इस भूवलय ग्रन्थ मे साठ हजार प्रश्न है। इन प्रश्नो उत्तर को देते समय प्रत्येक प्रश्न पर दृष्टान्त पूर्वक विवेचन है। इस ग्रन्थ को चौदह पूर्व तथा उस से प्रकट हुई वस्तु भी कहते है। जिन्होंने अष्ट कर्मो को नष्ट किया है ऐसे भगवान ने कहा है। अत. इस भूवलय ग्रन्थ मे अष्ट मंगल द्रव्य हैं ॥१५४॥

जिनेन्द्र देव की भक्ति करते समय मन वचन काय को कृत कारित अनुमोदना इन तीनो से गुणा करने से नौ गुणनफल आता है। फिर इन अंको को अरहन्त सिद्धादि नौ पदों से गुणा करने से ८१ (इक्यासी) संख्या हो जाती है। इस प्रकार गणना करने वाले 'गणक' ऐसा कहते है। उन गणको के अनुभव मे आया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१५५॥

इस भूवलय मे चौसठ कलाये है। यह सब चौसठ कलाऐ नौ अंक मे ही अन्तर्गत हैं। यह नौ अंक समस्त जीवो के चारित्र को शुद्ध करते हुए

श्रपने श्रात्मा के समीप में लाने वाला यह दिव्य भूवलय काव्य है ॥१५६॥

जनता का पालन, सच्चरित्र द्वारा कराने वाला यह काव्य है ॥१५७॥

इस काव्य को पढ़ने से सर्व प्रकार की उन्नति होती रहती है इसलिये सर्वोदय काव्य है ॥१५८॥

काल को बताने वाली जल, घटिका के समान यह दिव्य एक है॥१५९॥

केलों के पत्ते के उद्गम काल में जैसी कोमलता श्रौर सुन्दरता रहती है वैसे ही यह मृदु सुन्दर काव्य है ॥१६०॥

श्रत्यंत सूक्ष्म श्रक्षर वाला यह सरसांक काव्य है ॥१६१॥

तोता श्रौर कोयल के शब्द के सामान सुनने में प्रिय लग ने वाला यह काव्य है ॥१६२॥

कुमारी बालिका की बोली जैसे सुनने में प्रिय लगती है श्रौर मांग-लिक होती है वैसे ही यह काव्य सुनने में प्रिय लगता है श्रौर मंगल को देता है ॥१६३॥

प्रथम कामदेव गोम्मटेश्वर का यह काव्य है ॥१६४॥

श्रदंत धावनदि श्रठाईस मूल गुणों को धारण करने वाले दिगम्बर मुनियों का यह काव्य है ॥१६५॥

सम्पूर्ण जगत के श्रज्ञान श्रंधकार का नाश करने वाला यह काव्य है। ॥१६६॥

इस काव्य का श्रध्ययन करने वाला मनुष्य व्रती बन जाता है ॥१६७॥

व्रत को उज्ज्वल करने वाला यह काव्य है ॥१६८॥

श्रानन्द को श्रत्यंत बढाने वाला यह श्राध्यत्मा काव्य है ॥१६९॥

दिगम्बर मुनि विरचित यह काव्य है ॥१७०॥

जिसको कर्णाटक कहा जाता है उस भाषा का नाम वास्तव में कर्माटक है यह बात कर्णाटक राज्य के दो करोड़ श्रादमियों में श्राज भी प्रचलित है। भगवान की वाणी भी मूल में इसी भाषा में प्रचलित हुई थी इसलिए ग्रन्थ को कुमुदेन्दु श्राचार्य ने इसी भाषा में लिखा है।

इस भूतल पर तीन सौ त्रेसठ मत देखने मे श्रा रहे है जो कि एक दूसरे से परस्पर विरोधी प्रतीत होते है श्रौर सदा ही लड़ते रहते है उन सब को एकत्रित करके मैत्रीपूर्वक रखने वाला स्याद्वाद है। एवं उस स्याद्वाद के द्वारा श्री श्राचार्य ने इस भूवलय ग्रन्थ में बड़ी खूबी के साथ शांतिपूर्वक उन सब को श्रपनाया है ॥१७१॥

इस ग्रन्थ का श्रध्ययन करने से जिन भाषाश्रों का लाभ हमको नहीं हैं उन सब भाषाश्रों का ज्ञान भी सरलता पूर्वक हो जाता है। एवं विनय पूर्वक इसका श्रनुमान करने से श्रध्यात्मसिद्धि होकर वह श्रादमी श्रचल बन जाता है। इस प्रकार प्रतिपादन करने वाले इस तीसरे श्रध्याय में, ७२९० श्रङ्क है जिन में श्रा जाते है ऐसे दश चक्र है। उन्हीं दशचक्रों को दूसरी रीति से पढ़ने पर १०५६६ श्रंक श्रौर निकलते है। इन दोनों को मिलाने पर १४४ कम १८००० श्रंकाक्षर हो जाते हैं ॥१७२॥

सम्पूर्ण संसार के दुःख को नष्ट करने वाला सोऽहं यह श्रपूर्व मन्त्र है इसका श्रर्थ होता है कि युग के श्रादि में होने वाले भगवान ऋषभ देव की सिद्धात्मा का जैसा स्वरूप है वैसा ही मेरा भी स्वरूप है।

प्रश्न:-सिद्ध भगवान तो श्रनादि से है फिर श्री ऋषभदेव को हो क्यो लिया? इसका उत्तर यह है कि—श्री ऋषभ देव भगवान ने ही प्रारम्भ में श्रपनी पुत्री सुन्दरी को श्रंक भाषा में यह भूवलय ग्रन्थ पढाया था। जो कि नौ ९ श्रंको में सम्पादित किया हुश्रा है ॥१७४॥

इति तीसरा श्रा ३ प्लुत श्र श्रध्याय समाप्त हुश्रा।

इस अध्याय के अन्तर्गत प्राकृत भगवद्गीता है उसको यहा उधृत करते हैं।

आणेहिं अणन्तेहिं गुणेहि जुत्तो विशुद्धचारित्तो।

भवभयदञ्जणदच्छो महवीरो अत्थकतारो।

अर्थ—आ (णा) णोहि यान ज्ञानादि अनन्त गुणों से युक्त विशुद्ध चारित्र वाले भव भय का नाश करने वाले भगवान महावीर ही इस ग्रंथ के अर्थ कर्ता हैं।

इसी के अन्तर्गत यह निम्न लिखित मगलाचरण का श्लोक निकलता

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।

चक्षुरुन्मीलितं एन तस्मै श्री गुरु वेन्नमः॥

इस श्लोक में आये हुये 'एन' के स्थान पर सस्कृत भाषा की दृष्टि से 'येन' होना चाहिये परन्तु चित्र काव्य और श्लेषालंकार मे एक तथा ये को एक ही मान लिया जाता है। इसी प्रकार गुरुवेन्न नमः के बारे मे भी समझलेना।
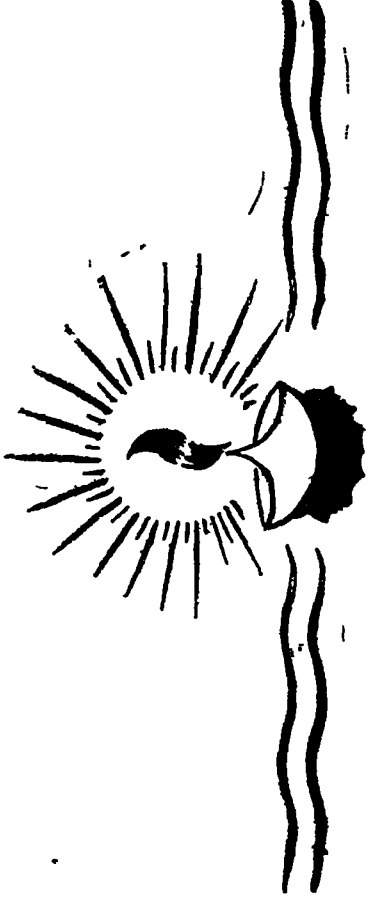
चौथा अध्याय

इ* ष्टोपदेशव नष्ट कर्मशव । स्पष्टदे अरहंतरु श्* री ॥ अष्टगुणान्वित सिद्धर स्मरिसिद । अष्टमजिन सिद्ध काव्य ॥१॥
य* शश्वतिदेविय करविडिदादि । वृषभजिनेशन काव्य ॥ अश री* र सिद्धत्व वडदु बाळुव काव्य । ऋषिवंशदादि भूवलय ॥२॥
मू* रुवेळेयोळु सामायिकदेनिल्लुव । वीरजिनेन्द्रदारियद ॥ सेरि प* द्धतियतिशयदनुभव । सारभव्यर दिव्य काव्य ॥३॥
ल* क्षणवरियुत स्वसमयवद सारि । अक्षरदंकदोळ्बे र सि* ॥ शिक्षेयोळैदिंद्रिय मत्तु मनवनु । लक्षणदिंस्तब्धगोळिसि ॥४॥
त* नुवनु मरेयुत जिनरूपे नानेंब । घनविद्ये यनुभववागे ॥ म* नवेसिमृहासनवागिरलमलात्म । जिननंते कमलदासनदि ॥५॥

घनवैभवदिंद कुळितु ॥६॥ जिननंते कायोत्सर्गदलि ॥७॥ अनुदिनदभ्यासबलदि ॥८॥
दिनदिनयोगहेच्चुतिरे ॥९॥ इननंतैतण्णिन ज्योति ॥१०॥ घनवागि बेळगुतलिरलु ॥११॥
तनगेताने ब्रह्मनेनुव ॥१२॥ जिन धर्मदनुभव बरलु ॥१३॥ ऋणद देहव मरेतिहरु ॥१४॥
एणिकेगे बारदध्यात्म ॥१५॥ घनप्रतिक्रमण तानागे ॥१६॥ चिनुमय मुद्रेयंदोदगे ॥१७॥
घनरत्न मूरर बेळकु ॥१८॥ तनगेताने बंदु बेळगे ॥१९॥ मनुमथनुपटल करगे ॥२०॥
जिननाथनोरेद भूवलय ॥२१॥ तनुविनोळात्म भूवलय ॥२२॥ वेनुतितु निलुव कुळ्ळिरुव ॥२३॥
तनुवदे स्वसमय सार ॥२४॥

न* अवदकंदंते स्वयम् परिपूर्णद । अवयववदे शुद्ध गु* णद ॥ अवतार स्थानद हृदिनाल्करत्नद । चिनुमय सिद्ध सिद्धांत ॥२५॥
त* नुवनु परवेंदरियुत आपर । दनुरागवनु तोरेदाग ॥ जिन र* सिद्धर रूपिननुभव हेच्चुत । तनु रूपिनंतात्म रूपु ॥२६॥
क* रणुवुदास्रव बरुव बंधवदिल्ल । निराकुलतेय पद्म वे* ळु ॥ सरमालेयंते तन्नेदेयलिकाणबाग । अरुहनपददंग गुणित ॥२७॥
तु* रतरवाद अद्भुतपरिणामद । सरस संपदवेल्ल अव न* ॥ हरुषवनेरिप समयद लब्धियु । बरुवागअ अंतरात्म ॥२८॥

वरुवाग अवनतंरात्म ॥२९॥ परिणाम लब्धियागुवदु ॥३०॥ बरलरहंत तानेनुव ॥३१॥
वरुषवर्द्धनकादि एनुव ॥३२॥ बरे बरुवाग तन्नात्म ॥३३॥ गुरुवादे जगकेएंदेनुव ॥३४॥
अरहंतरनु कंडेनेनुव ॥३५॥ परिशुद्ध नाने एंदेनुव ॥३६॥ परमात्म पदवडदेनुव ॥३७॥
गुरुपद दोरेयितेंदेनुव ॥३८॥ सिरियायतुज्ञानवें देनुव ॥३९॥ परममंगलनाल्कु एनुव ॥४०॥
परमात्म चरण भूवलय ॥४१॥

ता* नु तन्नंद पडेव कार्यदोळिर्प । आनन्द शाश्वत सुख म* ॥ तानु तन्निंदले तनगागि पोंदुव । तानल्लदन्यरिगरिया ॥४२॥
सि* वनव शाश्वत निर्मल नित्यनु । भववनेल्लव केडिसुव् ह* ॥ अविरल सुखसिद्धियवने महादेव । अवनादि मंगल भद्र ॥४३॥
रि* द्धियाशेय होद्धदिरुव चिन्मयनु । शुद्धत्ववेल्लमह श्* री ॥ बुद्धिद्धियाचार्य पाठक साधुवु । शुद्ध सम्यक्त्वदसारा ॥४४॥

वी॰ तरागनु निरामयनु निर्मोहियु । कातरविनितिल्लदिह ॥ ख्यात री॰ योळु बाळुव भव्यरिगाश्रय । पूत पुण्यनु शुभ सौख्य ॥४५॥
रों॰ ष तोषगळिल्ल क्रोध मोहगळिल्ल । आशेयनंतानुबंध ॥ प॰ असरिसलेडेयिल्लदवननुभव काव्य। श्री शन सिद्ध भूवलय ॥४६॥

श्री शनाडिद दिव्य वाणि ॥४७॥ घासि अप्रत्याख्यान ॥४८॥ राशि कषायगळळिगुम् ॥४९॥
मासुत प्रत्याख्यान ॥५०॥ रोषद सूक्ष्मसम्ज्वलन ॥५१॥ लेसिन जलरेखेयन्ते ॥५२॥
आशाजलद संज्वलन ॥५३॥ लेसिनिं भावदोळ् मेरेये ॥५४॥ तासुतासिनोळगनन्त ॥५५॥
राशिकषायभेदगळ ॥५६॥ घासिय माडुतवहुदु ॥५७॥ लेसिन जलरेखेयन्ते ॥५८॥
मासदे बन्दुसेरुवुदु ॥५९॥ आसेय भेदविज्ञान ॥६०॥ राशिमाळ्पुदु तुषगळनु ॥६१॥
माषदकाळिनन्तात्मा ॥६२॥ श्री सनन्ददलि योगदोळु ॥६३॥ श्री सिद्धालयवे अल्लिहुदु ॥६४॥
आसिद्धालयद अनन्त ।७५॥ राशिय सिद्ध भूवलय ॥६६॥

इ॰ दरोळगिरुव षड्द्रव्यगळेल्लव । हुदुगिसिकोन्डिह प र॰ म ॥ पदप्राप्त जीवने पंचास्तिकायदे । अदु मत्ते एळु तत्वगळ ॥६७॥
न॰ वपदार्थगळेम्ब अवसर वस्तुव । नवयवदोळु तुम्बि म॰ रळि ॥ अवनेल्लवनोन्दकूडिसि तिळियुव । अवुगळ लेक्कवे जीव: ॥६८॥
द॰ रुशन ज्ञान चारित्रव वशगोन्डु । सरमाले इवनेल्ल मुरु गु॰ ॥ शरदओम्वत्तेळु ऐदारु कूडलु बरुव दिप्पत्तेळरंक ॥६९॥
भू॰ वलय सिद्धान्त दिप्पत्तेळु । तावेल्लवनु होन्दिसि रु॰ व ॥ श्री वीरवाणियोळवह "इ" मंगल काव्य । ईविश्वदूर्ध्वलोकदलि ॥७०॥
दि॰ वगळग्रद तुत्ततुदियलि बेळगुव । शिवलोक सलुव मान व॰ वरु ॥ धवल छत्राकार दग्रदगुरुलघु । सवियातम गुणदोळगिहरु ॥७१॥

अवरव्याबाध गुणरु ॥७२॥ नवनवोदित सूक्ष्म घनरु ॥७३॥ अवरवगाहदोळिहरु ॥७४॥
सवियनन्तद ज्ञानधररु ॥७५॥ नव सम्यक्त्व दर्शनरु ॥७६॥ अवरनन्तानन्त बलरु ॥७७॥
अवरनागत सुखधररु ॥७८॥ अवरती तद ज्ञानधररु ॥७९॥ सविरुपिनशरीर घनरु ॥८०॥
अवरुशाश्वतरुचिन्मयरु ॥८१॥ अवरावागलु नित्यर् ॥८२॥ अवरसुखवु वेकेन्देनुव ॥८३॥
नवपद काव्य भूवलय ॥८४॥

वि॰ श्वदग्रके गमनवनिट्टु आ योगि । विश्वेश्वर सिद्धवर वे॰ ॥ दस्वरूपरध्यानिसुत भावदोळिर्प । विश्वज्ञ काव्यदग्रविदु ॥८५॥
प॰ रमामृतकाव्य अरहन्त भाषित । गुरु परम्परे यादि प॰ दद ॥ गुरु सिद्धपदप्राप्तियागबेकेम्वर्गे । सरसविद्यागम काव्य ॥८६॥
प॰ द्धतियोळु चक्रबंध हंसदबंध । शुद्धाक्षरांक र॰ क्षेयनु ॥ होद्दिद अपुनरुक्ताक्षर पद्मद । शुद्धद नवमांक बंध ॥८७॥
व॰ र पद्म महापद्म द्वीप सागर बंध । परम पल्यद अ म॰ बु बंध ॥ सरस सलाके श्रेणिय अंकदबंध । सरियागेलोकदबंध ॥८८॥
रो॰ मकूपद बंध क्रौंच मयूरद । सीमातीतद बन्ध ॥ कामन प॰ दपद्म नख चक्रबंधद । सीमातीतद लेक्क बन्ध ॥८९॥

ने मदकिरणदबंध ॥९०॥ स्वामिय नियमदबन्ध ॥९१॥ हेमरत्नद पद्मबन्ध ॥९२॥ हेमसिंहासन बन्ध ॥९३॥
ने मनिष्टेय व्रतबन्ध ॥९४॥ प्रेमरोषव गेल्दबन्ध ॥९५॥ श्री महावीर नबन्ध ॥९६॥ ई महियतिशयबंध ॥९७॥

का मनगणितदबन्ध ॥६८॥ आ महामहिमेयबंध ॥६६॥ स्वामियतपद श्रीबन्ध ॥ १००॥ सामन्तभद्रन बन्ध ॥१०१॥
श्री मन्तशिवकोटिबंध ॥१०२॥ आ महिमन तप्तबंध ॥१०३॥ कामितफलवीवबंध ॥१०४॥ नेमशिवाचार्य बंध ॥१०५॥
स्वामि शिवायनबंध ॥१०६॥ नेमनिष्ठेयचक्र बंध ॥१०७॥ कामितबंध भूवलय॥ १०८॥

उ* त्तम संहननद चक्रबंध म । तुत्कृष्ट देहद रा* ग ॥ चित्तजनन्दद संस्थान बंधदे ॥ सुत्तुर्वरिद दिव्यबंध ॥१०९॥
व* रदसम्यग्दर्शनदादिय बंध । गुरु परम्परेय आ चा* मूल । वरतपबंधद सरमग्गी कोष्टक । विरुवअध्यात्मदबंध ॥११०॥
त* पिसुत देहवुउपसर्ग केडेयागे । अपरिमितानन्दनव र* आ । सुपवित्रभावद सत्यवैभव बंध उपशमक्षयदादि बंध ॥१११॥
न* वपद्मबंधद कट्टिनोळ्कट्टिद । अवरसच्चारित्र य* बंध ॥ अवतारविल्लद अपुनरावृत्तिय । नवमांक बंध सुबंध ॥११२॥
ते* रसगुणठाणदोळगात्मनकूडि । सारधर्मवराशिमाड़ि ॥ वीर गु* णंगळअनन्तांकदोळु कट्टि । सारवागिसिह भूवलय ॥११३॥

शूरवागिसिद भूवलय ॥११४॥ नूरारनन्त भूवलय ॥११५॥ सारात्मरावास वलया ॥११६॥
धीररचारित्रयवलय ॥११७॥ दारियोळपवर्ग निलय ॥११८॥ सेरुवध्यात्म निर्ममव ॥११९॥
क्रूर कर्मारिविलयद ॥१२१॥ दारियतोर्वक निलय ॥१२०॥ भूरिवैभवदसद्वलय ॥१२२॥
घोरोपसर्गदविलय ॥१२३॥ सारात्म शिखेयादिनिलय ॥१२४॥ क्रूरकार्मणदेह विलय ॥१२५॥
चारित्र सारसद्वलय ॥१२६॥ सारज्ञानामृननिलय ॥१२७॥ दारैकेयवरंकवलय ॥१२८॥
घोर त्ववळिद भूवलय ॥१२९॥

क* रुणेय धर्म वर्द्धनवागेलोकदे । बरुव कष्ट गळेल्लक र गि* ॥ गुरुविगेशिष्यने गुरुवागुवागल्लि । दोरेवसमाधियोळ् मोक्ष ॥१३०॥
त्* नगेताने सिद्धियागुवकाल । जिन धर्मदतिशय बेळगि ॥ घन वे* दद्वादशदनुभवबेरलु । जिन वर्द्धमानन, धर्म ॥१३१॥
ता* रुण्यव होंदिमंगल प्राभृत । दारदंददेनवनम न* ॥ वेरलुदंदिह अध्यात्मवैभव । शूरमुनिगळदारिइह ॥१३२॥
रो* गशोकगळेल्लकरगुवयोगदे । सागर पल्यशलाके ॥ यागुव म* हिमेय नवमांक बंधद । साघनकर्म सिद्धान्त ॥१३३॥

श्रीगुरुपदद सिद्धान्त ॥१३४॥ नागनरामरकाव्य ॥१३५॥ आगर्पेळिदयोग काव्य ॥१३६॥
तागुवात्मध्यान काव्य ॥१३७॥ नागसंपगेपुष्पवैद्य ॥१३८॥ भोगयोगदसिद्धि काव्य ॥१३९॥
भोगदतृप्तिय कळेव ॥१४०॥ श्रीगुरुशिवकोट्याचार्य ॥१४१॥ आगबाळिद शिवायनन ॥१४२॥
रोगवकेडिसिदकाव्य ॥१४३॥ नागमल्लिगेकृष्णपुष्प ॥१४४॥ तागलुस्वर्ण सिद्धान्त ॥१४५॥
हेगेयुतप्पद योग ॥१४६॥ नागार्जुन सिद्धकाव्य ॥१४७॥ आगिर्दकक्षपुटांक ॥१४८॥
श्रीगुरुवर सेनगणदि ॥१४९॥ रागदिपेळ्दसिद्धान्त ॥१५०॥ साघन वहस्वर्णकाव्य ॥१५१॥
राग विराग भूवलय ॥१५२॥

अ* ष्टमहाप्रातिहार्य वैभववनु । स्पष्टगोळिसिदादि वर ह* ॥ इष्टार्थवेल्लात्म संपदावेन्नुव । अष्टमजिन सिद्धकाव्य ॥१५३॥

णु* णुपाद गुडुचाद धर्म कर्मदलोह । दनुभववदे स्वर्ण श्री* ॥ अनुभवगम्यद समवसरण काव्य । घनसिद्धरसदिव्यकाव्य ॥१५४॥
त* नुवनकाशकेहारिसिलिलिसुव । घनवैमानिक दिव्य काव्य ॥ प* नसपुष्पद काव्य विश्वम्भर काव्य । जिनरूपिनभद्र काव्य ॥१५५॥
नं* नेकोनेवोगिसि भव्यजीवरनेल्ल । जिनरूपिगैदिपकाव्य ॥ र* णकहळेय कूगनिल्लवागिप काव्य । दनुभवखेचर काव्य ॥१५६॥
ते* रनुयळेयुवदारियोळ् बरुवंक । दारैकेय मादलद । सार मा* दंववनु बेरसिमाडुवदिव्य । नूरारुरोग नाशकद ॥१५७॥

दारिय पुष्पायुर्वेद ॥१५८॥ मारनंगेयकेदगेय ॥१५९॥ सारहुविन दिव्य योग ॥१६०॥
साराग्निपुट दिव्य योग ॥१६१॥ पारदपादरिपुष्प ॥१६२॥ पारद जयदग्नि योग ॥१६३॥
सारात्मशुद्धि पारदव ॥१६४॥ नूरारुसंपुटयोग ॥१६५॥ सारस्वतर वाहनद ॥१६६॥
एरिसितिळिव पारदद ॥१६७॥ श्रीरमेगिरियकर्णिकेय ॥१६८॥ सेरिसेबरुव हूवगळ ॥१६९॥
दारियगुणवृद्धियंक ॥१७०॥ सूररवर्ग शलाके ॥१७१॥ यारैके यिरुव भूवलय ॥१७२॥
शूररकाव्य भूवलय ॥१७३

से* रदमनवनु पारददोळु कट्टि । नूरुसाविर हूवुगळ ॥ सारव त* न्दुमाड़ त रसमणियनु । सेरिसे भूवलय सिद्धि ॥१७४॥
स* रुवार्थसिद्धियग्रदश्वेत (शिलेयद) क्षत्रव । बरेदंकमार्ग म* बरलु ॥ अरुहादि ओंबत्तम् बेरेसिह ताणदो (लरियिरिसिद्धान्तवदम्)
ळरिवसिद्धान्त भूवलय ॥१७५॥

आ* गममार्गदहदिमूरु कोटिय । तागिदआयुर्वेद (प्राणावाय)॥ सागरवन् ने* रिअपुनरुक्तंकद (अपुनरुक्ताक्षर) । सागर रत्नमंजूष ॥१७६॥
इ* रुव भूवलय दोळेळ्नूरहदिनैदु । सरस भाषेगळवतार ॥ न* ररिगे प्रथम संयोगदे बहुदेंब । शिरियिह सिद्ध भूवलय ॥१७७॥

सरियिह एरडने योग ॥१७८॥ सिरियिह मूरु संयोग ॥१७९॥ सिरियिह नाल्कु संयोग ॥१८०॥
परिबाह अरवत्तनाल्कु ॥१८१॥ परमात्म कलेयंक भंग ॥१८२॥ परमामृतद भूवलय ॥१८३॥

रि* द्वियादामूरु आदिभंगदतेर । होददिकोंडिहअंकगळ ॥ म* द्दिनोळेळु साविरदिन्नूरतों बत्तु । सिद्धांक बागलु "इ"ल्लि ॥१८५॥
या* वअंतर आरेरडोम्बत्ताहत्तु । ईवक्षरगळेल्लवा ह* ॥ पावन दंकगळंतर काव्यव । नोवदे [भावदेबरुवंकवेल्ल]काव भूवलय ॥१८६॥

"इ" ७२९०+ अंतर = १०९२६ = १८२१६ अथवा अ । इ – ४६६११ +१८२१६=६४८२७ । अब पहले अक्षर से लेकर ऊपर से नीचे तक आ जाय तो प्राकृत भाषा भगवद्गीता अर्थात् पुरुगीता आती है सो देखिये, यिय मूल तंतकत्ता सिरिवीरो इंदभूदिविप्पवरो ।

उवतंते कत्तारो अणुतं ते सेसाआइरिया ॥४॥

इसी प्रकार संस्कृत भाषा भी निकलती है–श्री परम गुरवे नमह । श्री परमगुरवे परंपराचार्य गुरवे नमह । श्री परमात्मने नमह ।

इति चतुर्थोध्यायः ।

चौथा अध्याय

यह भूवलय आत्मा के लिये इष्ट उपदेश है, यह अष्ट कर्म को नष्ट करने वाला है। अर्हन्त भगवान की लक्ष्मी को प्रदान करने वाला और अष्ट गुणों से युक्त सिद्ध परमेष्ठियो में सदा स्थिर रहने वाला अष्टम जिन (चन्द्रप्रभु) सिद्ध काव्य है ।।१।।

श्री वृषभ देव ने जब यशस्वती देवी के साथ विवाह किया उस समय का यह काव्य है और अशरीर अवस्था अर्थात् मुक्ति अवस्था प्राप्त कराने वाला यह काव्य है।

यह ऋषि वंश का आदि स्थान भूवलय है ।।२।।

यह तीन काल में होने वाले सामायिक को बताने वाला, उन वीर जिनों के मार्ग का अतिशय अनुभव करा देने वाला सार भव्यात्मक काव्य है ।।३।।

स्वशुद्धात्मा के कथन रूपी अक्षर को जानकर उसी शिक्षा के द्वारा मन और पांचों इन्द्रियों को लक्षण से स्थिर करके स्वशरीर को भूलकर "भगवान जिनेन्द्र देव के समान मै स्वय हू" ऐसी महान् विद्या का अनुभव होकर निजमन ही भगवान के लिये सिहासन स्वरूप प्रतीत होता है और मेरी आत्मा भगवान् जिनेश्वर के समान हृदय रूपी पद्मासन पर विराजमान होकर सुशोभित हो रही है ।।४, ५।।

जिस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव समवशरण में अष्ट महा प्रातिहार्य तथा ३४ अतिशयों से समन्वित होकर प्रशान्त मुद्रा से विराजमान हैं उसी प्रकार मेरी आत्मा भी हृदय रूपी पद्मासन पर विविध प्रकार के वैभव से सुशोभित हो रही है ।।६।।

इसी प्रकार मेरी आत्मा जिनेन्द्र देव के समान कायोत्सर्ग में खड़ी हुई है ।।७।।

कायोत्सर्ग में किसके बल से खड़ा है ?

कायोत्सर्ग मे होने वाले ३२ दोषों से रहित निरन्तर सिद्धात्मा के अभ्यास के बल से योगी खड़ा है ।।८।।

जैसे जैसे अभ्यास बढता जाता है वैसे वैसे योग भी बढ़ता जाता है ।।९।।

तत्पश्चात् शीतल चन्द्रमा के समान आत्म-ज्योति बढ़ती जाती है ।।१०।।

तब आत्मज्योति पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाती है ।।११।।

ऐसा हो जाने पर यह अपने को आप ही ब्रह्मस्वरूप अनुभव करने लगता है ।।१२।।

इस प्रकार अनुभव करते हुए जब विशुद्ध जैन धर्म का अनुभव आता है ।।१३।।

तब अनादि काल से प्राप्त ऋण रूपी शरीर को भूल जाता है ।।१४।।

गणना मे न आने वाले अध्यात्म को ।।१५।।

आप स्वयं महान् प्रतिक्रमण रूप होकर ।।१६।।

चिन्मय अर्थात् चित्स्वरूप मुद्रा प्राप्त होती है ।।१७।।

तत्पश्चात् उपर्युक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी रत्न की ज्योति प्रगट हो जाती है ।।१८।।

तब वह ज्योति अपने पास पहुंचकर स्वयमेव अपनी आरती करती है ।।१९।।

ऐसा होते ही मन्मथ रूपी पटल पिघल जाता है ।।२०।।

मन्मथ रूपी पटल पिघलने के बाद जिस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव को संपूर्ण भूवलय दिखाई देता है उसी प्रकार उस आत्मरत योगी को सकल भूवलय दिखाई पड़ता है ।।२१।।

तब अपने शरीरस्थ आत्मरूपी भूवलय में समस्त भूवलय दिखाई पड़ता है ।।२२।।

इस प्रकार विचार करके अपनी आत्मा के निकट विराजमान हुये योगी को ।।२३।।

वही शरीर स्व-समय सार है ।।२४।।

जिस प्रकार ९ अंक के ऊपर कोई दूसरी संख्या न होने से ९ को परिपूर्ण अंक माना जाता है उसी प्रकार शुद्ध गुण अवयवों से सहित शुद्ध आत्मा भी परिपूर्ण है। वही परि; ् शुद्धावस्था सिद्ध पद में है। वह सिद्ध पद चोदह

गुणस्थान के अन्त मे चिन्मय सिद्ध स्वरूप है ऐसा भूवलय सिद्धान्त का कथन है। इस प्रकार अनुभव होने के बाद अपने शरीर को पर मानते हुये उसे त्याग देने के पश्चात् श्री जिनेन्द्र भगवान् तथा सिद्ध भगवान के स्वरूप को अनुभव अपने आत्म मे बढ़ते जाने से ऐसा प्रतीत है कि "इस आत्म का रूप ही मेरा शरीर है" ॥२५, २६॥

इस प्रकार जब आत्मरत योगी की भावना सिद्धात्मा मे सुदृढ हो जाती है तब आने वाला कर्मास्त्र तथा बंध रुक जाता है। तत्पचात् वह निराकुल होकर भगवान के चरण कमल के नीचे सात कमल को माला रूप मे जब अपने हृदय मे धारण करके देखता है तब अरहन्त भगवान के गुणाकार द्विगुण वृद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

तब विविध भाँति के चित्र विचित्रित अद्भुत परिणामो के साथ सरस सपत्ति उस योगी के हृदय मे हर्ष को बढाने वाली काललब्धि जब प्राप्त हो जाती है तब उस अन्तरात्मा अर्थात् उस योगी की अन्तरात्मा को परिणाम लब्धि होती है ॥३०॥

विवेचन :—

श्री कुमुदेन्दु आचार्य जी ने इस भूवलय के "चतुर्थ" अध्याय मे २७ वे श्लोक से लेकर ३० वे श्लोक तक इस प्रकार विवेचन किया है कि जब जिनेन्द्र देव तथा सिद्ध भगवान् के स्वरूप का अनुभव बढता जाता है तब अपने आत्म रूपी शरीर में रत हो जाता है। तब सत्ता मे रहने वाले कर्म स्वय पिघल जाते है और बाहर से आने वाले नये कर्म रुक जाते है। तत्पश्चात् निराकुलता उत्पन्न करने वाले ७ कमलो की माला के समान जब अपने हृदय मे योगी देखने लगता है तब अरहन्त भगवान् के चरण के नीचे सात कमलो के द्वारा अपने शुभ परिणामो को द्विगुण २ वृद्धि प्राप्त कर लेता है वह द्विगुण इस प्रकार है:

```
 २२५ × २२५
 ----------
     ११२५
     ४५०
    ४५०
 ----------
    ५०६२५
```

तत्र विलक्षणपरिणामन सहित सरस संपत्ति के द्वारा उसके हर्ष को बढाने वाली काय लब्धि प्राप्त होने से उस अन्तरात्मा को करण लब्धि होती है।

करण लब्धि भेदाभेद रत्नत्रयात्मक रूप मोक्ष मार्ग को दिखाती है, तथा सकल कर्मक्षय के लक्षण स्वरूप मोक्ष को दिखलाती है और आगे अतीन्द्रिय परम ज्ञानानन्दमय मोक्ष स्थल को अनेक नय निक्षेप प्रमाणो से खिदा देती है। उसे करण लब्धि कहते है। वह करण तीन प्रकार का है:—

अध प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण तथा अनिवृत्ति करण। प्रत्येक करण का समय अन्तर्मुहूर्त होता है। उस अन्तर्मुहूर्त मे पहले की अपेक्षा दूसरा सख्यात गुण हीन काल होता है जो कि अल्प समय मे ही अधिक विशुद्धि को प्राप्त होता है और अध प्रवृत्ति करण से प्रति समय अनन्तगुण विशुद्धि रूप धारण करते हुये अन्तर्मुहूर्त तक चला जाता है अर्थात् पहले समय मे जितनी विशुद्धि प्राप्त हुई थी उससे अनन्त गुणी विशुद्धि दूसरे समय मे प्राप्त होती है।

अध प्रवृत्ति करण प्रत्येक समय में अनन्तगुण विशुद्धि करता हुआ निरन्तर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त चला जाता है। वहा पर होने वाली विशुद्धि असख्यात लोक प्रमाण गणना का महत्व रखती हुई चरम काल पर्यन्त समान वृद्धि से होती जाती है।

प्रश्न—लोक तो एक ही है, फिर असख्यात लोक की कल्पना कैसे हुई?

उत्तर—एक परमाणु के प्रदेश मे अनन्तानन्त जीव रहते है। उन अनन्त जीवो मे से एक जीव के अनन्तानन्त कर्म होते है। ये समस्त जीव और अजीव एक परमाणु प्रदेश मे भी रहते है। एक परमाणु प्रदेश मे इतने ही जीव और अजीव समाविष्ट होने से असख्यात परमाणु प्रदेशात्मक इस लोक मे अनन्तानन्त पदार्थ रहने मे क्या आश्चर्य है? अर्थात् असख्यात लोक प्रमाण हो सकते हैं।

स्थिति बधापसरण का कारण होने से इस करण को अधःप्रवृत्ति करण कहते है। यहां पर भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम समान भी होते है। तदन्तर यहा से ऊपर अपूर्वकरण नामक करण होता है। उस करण मे प्रति समय मे असख्यात लोक मात्र परिणाम होते है। जोकि क्रम से समान सख्या से बढ़ते हुए असंख्यात लोक मात्र हुआ करते है। जोकि स्थिति

बंधापसरण, स्थिति काण्डकघात, अनुभाग काण्डकघात, गुणसंक्रमण और गुण श्रेणी निर्जरा इत्यादि क्रिया करने का कारण होते है।

वहां से ऊपर अनिवृत्तिकरण मे प्रति समय एक ही परिणाम होता है। स्थिति बंधापसरणादि क्रियाये पहले की भाँति होती है। उस करण के अन्तिम समय मे होने वाली क्रिया को देखिये —

चारो गतियो मे से किसी भी गति मे जन्मा हुआ गर्भज, पंचेन्द्रिय, सञ्ज्ञी पर्याप्तक सर्वविशुद्धि वाला जागृत अवस्था मे रहते हुये जीव प्रज्वलित होने वाली शुभ लेश्या को प्राप्त होकर, ज्ञानोपयोग मे रहने वाला होकर अनिवृत्ति करण रूप शक्ति को प्राप्त होता है वह शक्ति बज्रदडकघात के समान घात किये हुये संसार दुर्ग रूपी मिथ्यात्वोदय को अन्तर्मुहूर्त काल में विच्छेद कर सम्यग्ज्ञान लक्ष्मी के सगमोचित सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति का शुभ मुहुर्त यही है।

उस अन्तर्मुहूर्त के प्रथम समय में पापान्धकार को नाश करने के लिए सूर्य, सकल पदार्थों को इच्छा मात्र से प्रदान करने वाला चिन्तामणि, कभी भी न्यून न होने वाला, संवेगादि गुण की खानि ऐसा सम्यक्त्व होता है। और तब सम्यग्दर्शन हो जाने से संसार से मुक्त होने को स्वयं अरहन्त देव स्वरूप वह अंतरात्मा अपने को मानता है ।।३१।।

अनादि काल से आज तक अनन्त जन्म-मरण धारण किये और प्रत्येक जन्म मे अनित्य जयन्तियां (वर्ष वर्द्धनोत्सव) मनाईं। परन्तु आज से (करण लब्धि हो जा पर) नित्य जीवन की प्रथम जयन्ती (वर्ष वर्द्धन महोत्सव) प्रारम्भ हुई, जो अनन्त काल पर्यन्त उत्तरोत्तर विजय देती हुई स्थिर रहेगी। इतना ही नहीं सब, ससारी जीव भी इसका जयगान करते हुये वर्षवर्द्धन महोत्सव मनाते रहेंगे ।।३२।।

इस प्रकार नित्य सुखानुभव के प्रथम वर्ष प्रारम्भ होने के पश्चात् अपने आत्मा में ।।३३।।

तीनों लोकों का मै स्वयं गुरु बन गया, ऐसा चिन्तन करता है ।।३४।।

मैने अपने अन्दर अरहंत भगवान को देख कर पहिचान लिया ।।३५।।

मै समस्त परभाव रूप अशुद्धियों से रहित परम् विशुद्ध हूं ।।३६।।

अब हम अन्तरात्मा पद से परमात्मा बन गये ।।३७।।

अब हमे सच्चा पंचपरमेष्ठी का पद प्राप्त हो गया ।।३८।।

सम्पत्ति के दो भेद है। (१) अन्तरग सम्पत्ति (लक्ष्मी) और (२) वाह्य सम्पत्ति (लक्ष्मी)। धन गृह, वाहन इत्यादि से लेकर समवसरण पर्यन्त समस्त वस्तुये बहिरंग सम्पत्ति (लक्ष्मी) तथा ज्ञान, दर्शनादि अनन्त गुणो वाली अतरंग सम्पत्ति (लक्ष्मी) है। इन दोनों सम्पत्तियों को प्राकृत और कानड़ी भाषा मे 'सिरि' और संस्कृत, हिन्दी इत्यादि मे श्री कहते है। लौकिक काव्य की रचना के प्रारम्भ और आत्म-शुद्धि के प्रारम्भ मे या दीक्षा के प्रारम्भ मे 'सिरि' और 'श्री' शब्दों का प्रयोग मंगलकारी मान कर किया जाता है। कहा गया है कि:—

"आदौ सकार प्रयोगः सुखदः"। अर्थात् आदि में सकार का प्रयोग सुखदायक होता है। 'सिरि' और 'श्री' ये दोनों शब्द हमें आत्म ज्ञान रूप में उपलब्ध हुये है, ऐसा वे योगी चिन्तन करते है ।।३९।।

मंगल चार प्रकार के होते है। [१] अरहंत मंगल, [२] सिद्ध मंगल, [३] साधु मंगल, (४) तथा केवलि भगवान प्रणीत धर्म मंगल ।।४०।।

ऊपर कहा हुआ जो भगवान का चरण है वही परमात्म-चरण रूप भूवलय है ।।४१।।

अपने आप के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले तथा उस कार्य में रहने वाले आनन्द से शासित जो आत्म रूप सुख है वह अपने आत्म ज्ञान-गम्य है, अन्य कोई जानने में अशक्य है ।।४२।।

वही शिव है वही शाश्वत है, निर्मल है, नित्य है और अनन्त भव को नष्ट करने वाले, अविरल सुख सिद्धि को प्राप्त किया हुआ महादेव है। वही अनादि मंगल स्वरूप है ।।४३।।

वह ऋद्धि इत्यादि की आशा न करने वाला चिन्मय रूप है। अत्यन्त निर्मल शुद्धात्मा को प्राप्त हुआ बुद्धि, ऋद्धिधारी, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी है। यही शुद्ध सम्यक्त्व का सार है ।।४४।।

वह यही मेरी शुद्धात्मा वीतराग, निरामय, निर्मोही है। समस्त प्रकार के भय और चिन्ता से रहित है। संसारी भव्यजन के लिए इहलोक और परलोक

के सुख का साधन है, पवित्र है, पुण्यमय है तथा उत्तम सौख्य को देने के लिए आश्रयदाता है ॥४५॥

राग, द्वेप, क्रोध, मोह आदि से रहित है, क्रोध, मान, माया लोभ जो अनन्तानु बन्धी की चौकडी है उससे रहित तथा अन्य प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान, संज्वलन इत्यादि कषायो के भेदों से रहित आप अपने अन्दर ही अनुभव किया हुआ शुद्धात्म काव्य नामक शिरीर अर्थात् सिद्ध भगवान का यह भूवलय है॥४६॥

यही भगवान की दिव्य वाणी है ॥ ४७ ॥

प्रत्याख्यानावरण नामक ॥ ४८ ॥

कपाय के ढेर को ॥ ४९ ॥

भस्म करते आये हुए प्रत्याख्यान ॥ ५० ॥

संयम को न घातने वाला सूक्ष्म सज्वलन कपाय है ॥ ५१ ॥

वह निर्मल जल रेखा के समान है ॥ ५२ ॥

ऐसे निर्मल जल के समान उज्ज्वल कषाय के मन्दोदय-वाले आत्मानुभव मे मग्न होते हैं ॥ ५३ ॥

अपने आत्मा के अन्दर हमेशा रमण करते है ॥ ५४ ॥

प्रति समय मे अपने आत्मा के अन्दर ॥५५ ॥

कषाय राशियो के ढेर को ॥५६॥

नाश करते हुए आता है कि ॥५७॥

जैसे निर्मल जल रेखा के समान ॥५८॥

तब अत्यन्त निर्मल शुद्धात्म-स्वरूप अपने अन्दर जैसे निर्मल गगा का पानी अपने घर मे आकर पाइप के द्वारा प्रविष्ट होता है और पीने योग्य होता है उसी प्रकार जैसे-जैसे कषाय ढेरो का उपशम होता जाता है वैसे ही अपने अन्दर आकर निर्मल शुद्ध भावों का प्रवेश होता है ॥५९॥

तब उसी समय उस योगी को भेद-विज्ञान प्राप्त होता है। यानी सम्पूर्ण पर-वस्तुओ से भिन्न तथा अपने शरीर से भी भिन्न विज्ञानमय आत्मानन्द सुख स्वरूप का अनुभव वह जीव प्राप्त कर लेता है ॥६०॥

तब उस समय आत्म-ध्यान-रत योगी जैसे उडद के ऊपर के छिलके को अलग कर देता है ॥६१॥

उसी तरह छिलके से भिन्न उडद की दाल के समान अत्यत परिशुद्ध अपने आत्मा मे रत होते हुए ॥६२॥

भगवान जिनेश्वर के समान निश्चल योग मे स्थिर होकर वेठ जाता है ॥६३॥

इस प्रकार योगी अपने योगान में जिस समय रत रहता है उस समय अपने आत्मा के अन्दर ही सिद्धालय को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मै इस समय शुद्धस्वरूप हूं और अन्य किसी स्थान मे नही हू। शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर मै सच्चे सिद्धालय में विराजमान हूँ ॥६४॥

उस सिद्धालय के अनन्त ॥६५॥

राशि के तुल्य यह सिद्ध भूवलय है ॥६६॥

इस भूवलय मे रहने वाले समस्त ६ द्रव्य पंचास्ति काय सप्ततत्त्व नौ पदार्थ नामक वस्तुओ को मिलाकर गणित के अनुसार जानने वाला परमात्म स्वरूप जीव ही गणित है ॥६७-६८॥

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इन तीनो को मिलाकर सकलित कर गुणा करने से अर्थात् ३ × ३ = ९ × ३ = २७ इस तरह करने से २७ अक आता है । ६९॥

इस भूवलय सिद्धान्त के ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्व, ९ पदार्थ इन सभी को मिलाकर आया हुआ जो २७ है यही श्री भगवान महावीर की वाणी के द्वारा आया हुआ यह मंगल काव्य है । तीनों लोकों के अग्र-भाग मे अनन्त, अनागत काल तक हमेशा प्रकाशमान होने वाला वह शिवलोक प्राप्त करने वाला मानव धवल छत्राकार के अग्र-भागमे अगुरुलघु आदिअत्यंत अमृतमय शुद्धात्म गुणों मे चिरकाल पर्यन्त वास करता है । इसी प्रकार मेरी शुद्धात्मा भी धवल छत्राकार के मध्य में अगुरुलघु सहित अत्यन्त अमृतमय सिद्धात्मा के गुणों मे विराजमान है ॥७०-७१॥

विवेचन—मोक्ष मे परमात्मा के अगुरुलघु नामक एक गुण है, यह गुण आत्मा का स्वभाविक गुण है, इस गुण के बल से आत्मा नीचे नही गिरता है और सिद्ध लोक से बाहर अलोक आकाश मे भी नही जाता है । इस प्रकार इस अगुरुलघु गुण का स्वभाव है। यह अगुरुलघु नामक जो गुण है आत्मा के

आठ गुणों में से एक गुण है। इसी तरह आगम में आठ कर्मों को आपस में गुणाकार करके निकालते समय नाम कर्म के अनेक भेदों में से एक अगुरु लघु नामक शब्द भी आता है वह नही समझना चाहिए। क्योंकि सिद्धों के आठ गुणों मे जो अगुरुलघु शब्द आया है उसे 'अगुरुलघुत्व' कहते है इसलिए दोनों भिन्न-भिन्न है। वह अगुरुलघुत्व गुण कर्म से रहित है और जो अगुरुलघु है वह कर्म से सहित है।

सिद्ध भगवान अव्याबाध गुण से युक्त है।

अव्याबाध—

जिस जगह में हम बैठे है उस जगह में दूसरे मनुष्य नही बैठ सकते है इतना ही नही किंतु हमारे पास भी नहीं बैठ सकते है, इसका कारण यह है कि उनके शरीर का पसीना हमको अपाय कारक होता है अर्थात् दोनों जनों का पसीना आपस में विरोध रूप है। परन्तु सिद्ध भगवान के एक ही जगह मे अनन्त सिद्ध भगवान होने पर भी हमारे शरीर धारी के समान उनको कोई भी बाधा नही होती है। श्री महावीर भगवान सर्व जघन्यावगाह के सिद्ध जीव है। उनके जीव प्रदेश में अनन्तानन्त सिद्ध जीव एक क्षेत्रावगाह रूप से हमेशा रहते हुए भी परस्पर बाधा रहित है ॥७२॥

सूक्ष्मत्व गुण—

प्रत्येक सिद्ध जीव में सूक्ष्मत्व नामक एक गुण है। इस गुण से महान गुणों से युक्त अनन्त जीवो मे रहने वाले अनन्तानन्त गुणों के समूह को एक ही जीव ने अपने अन्दर समावेश कर लिया है इसी का नाम सूक्ष्मत्व है।

उदाहरणार्थ एक कमरा लीजिए उस कमरे को चारों ओर से बन्द करके उसके भीतर हजारो विद्युत दीपक रखिये। पहले समय में एक बल्ब का बटन दबाया जाय तो एक दीपक जलता है तब उस दीपक का प्रकाश कमरे के आकाररूप फैल जाता है, अर्थात् जिस समय उस बल्ब का प्रकाश फैल जाता है उस समय उस कमरे के अन्दर रखी हुई कोई चीज बिना प्रकाश से बच नही सकती, सभी पदार्थो पर प्रकाश पड़ता है। उसी समय अगर उसी कमरे के अन्दर दूसरा बटन दबाया जाय तो उतना ही प्रकाश उसमें ही समावेश ... और उसमें भिन्न प्रकाश मालूम न होकर एक रूप दीखता है। इसी तरह हजारों बल्बों के बटनों को दबाते जायें तो उन सबका भी प्रकाश उसी में शामिल होते हुए उसमें भिन्नता दिखाई नही देती है। तब इन हजारों बल्बों का प्रकाश जैसे एक ही प्रकाश में समा गया? सबसे पहले जो एक दीपक का अखंड प्रकाश था, उसमें जितने-जितने और प्रकाश पडते गये उतने-उतने पहले के दीपक सूक्ष्म रूप होते हुए प्रकाश गुण बढ़ता जाता है। जहां मूर्ति रूप पुद्गल में यह शक्ति देखने में आती है, तो अमूर्त रूप सिद्धों में अन्य सिद्धों का सूक्ष्मत्व गुण के कारण समावेश होनेमें कौनसा आश्चर्य है? अर्थात् नही है ॥७३॥

अवगाहगुण का विवेचन—

एक क्षेत्र में अनेक पदार्थों का समावेश हो जाना अवगाहन शक्ति है। जैसेकि ऊंटनी के दूध से भरे हुए घडे में चीनी समा जाती है उसके बाद उसमें भस्म भी समा जाती है। कोई किसी को रुकावट नही पहुंचाती, उसी प्रकार जिन आकाश के प्रदेशों में एक आत्मा के प्रदेश है उन्हीं में अनन्त आत्माओं के प्रदेश भी समा जाते है और धर्म अधर्म आकाश काल और पुद्गल परमाणु भी बने रहते है। इसी को अवगाहन गुण कहते है। इसी प्रकार इस भूवलय में जितने प्रतिपाद्य विषय है उनके वाचक शब्द है और भिन्न-भिन्न अर्थ है, वे सब एक दूसरे को न तो बाधा देते है और न विरुद्ध अर्थ कहते हैं, सब विषय परस्पर में एक दूसरे की सहायता करते हुए रहते है ॥७४॥

जैसे सिद्ध भगवान में अनन्त ज्ञान रहता है, उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ में भी अनंत ज्ञान भरा हुआ है ॥७५॥

जिस प्रकार सिद्धों में अनन्त दर्शन, सम्यक्त्व रहता है उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ में सम्यक्त्व तथा अनंत दर्शन विद्यमान है शब्द रूप में अनंत बल सहित है ॥७६-७७॥

वे सिद्ध अनागत सुख के धारक है ॥७८॥

वे अतीत ज्ञान के धारक है ॥७९॥

शरीर रहित होने पर भी उनका आकार चरम शरीर से किंचित् ऊन है और आत्मघन प्रदेश रूप है ॥८०॥

वे शाश्वत और चित्स्वरूप है ॥८१॥

वे हमेशा नित्य है ॥८२॥

उनका सुख हमको प्राप्त हो ॥८३॥

इन सब को बतलाने वाला यह नव पद काव्य नामक भूवलय है ॥८४॥

प्रश्न ?

६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्व, ९ पदार्थ ये मिलकर २७ हुए। २७ चक्र कोष्ठ भूवलय मे है तब आप नवपद भूवलय कैसे कहते है ?

उत्तर—२७ सत्ताईस सख्या के अक ७+२ जोड देने से ९ होते है इस लिए नव पद से निर्मित भूवलय है।

सिद्ध लोक के अग्रभाग की तरफ गमन अर्थात् उपयोग करने वाले योगी-राज विश्व के अधिपति हुए, सिद्ध परमात्मा वेद अर्थात् जिन वाणी रूप है। ऐसे ध्यान करते हुए अपनी आत्मा को प्रफुल्लित करने वाला यह विश्वज्ञ काव्य सभी काव्यों मे अग्रसर है, अर्थात् यह अग्रायणीय पूर्व से निकला हुआ काव्य है ॥८५॥

यह काव्य अरहत परमेष्ठी की दिव्य वाणी के अनुसार और श्री वृषभ-सेनादि आचार्य परपरा के आदि पद से आने के कारण परमामृत काव्य अर्थात अत्यन्त उत्कृष्ट अमृतमय काव्य है। अपने को गुरु या अरहंत या सिद्ध पद प्राप्ति की जो इच्छा रखता है उन्ही को यह भूवलय काव्य रास्ते मे सरस (सुगम) विद्यागम को पढाते हुए अत मे परम कल्याण कर देने वाला है ॥८६॥

विवेचन—यहा तक कुमुदेन्दु आचार्य ने ८६ श्लोक तक अरहत की अंतरग सम्पत्ति के बारे मे; सिद्ध भगवान के गुणो के बारे मे और तीनो गुरु आदि समस्त आचार्यों के शीलगुणादिक के वर्णन मे ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ सात तत्व और नौ ९ पदार्थादिक के वर्णन मे वहुत सुन्दरता के साथ लिखे है। ये सव तीन लोक के अंतर्गत है, इतने महान होते हुए भी इनका एक जीवात्मा के ज्ञानके अदर समावेश है। ऐसे जीव संख्या मे अनन्त है। उन अनतो मे से प्रत्येक जीव के अदर ऊपर कहे हुए समस्त विषय समाविष्ट है। उन सब विपयो को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने एकत्र रूप मे अपने भूवलय ग्रन्थ मे समाविष्ट किया है। यह किस तरह से समाविष्ट है ? इस का उत्तर निम्नलिखित श्लोको मे निरूपण किया है। हम पहिले से ही लिखते आए हैं कि इस भूवलय मे कोई भी अक्षर नही है। यदि भिन्न-भिन्न ग्रन्थों की रचना जैसे का तैसा भिन्न-भिन्न करते तो उन ग्रन्थो मे इतने विषय समावेश नही कर सकते थे, परन्तु अनादि काल से चले आये दिव्य ध्वनि के आधार से सम्पूर्ण विपयो को आदि से लेकर अनत काल तक ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ अको मे गर्भित करते हुए उन अंको मे परस्पर गुणाकार करते हुए अनत गुणाकार तक अर्थात् सिद्ध-भगवान के अनत ज्ञान तक ले जाकर उस महान् अक राशि को अर्धच्छेद रूप गणित रूपी शास्त्र द्वारा काटते हुए जघन्य सख्या से २ तक लाकर दिखाने के लिए चक्र वध रूप २७×२७ कोठा वना कर अनेक प्रकार की पद्धति से निकाल कर अक रूप कोष्ठक मे भरा है। वह कोष्टक अनेक विकल्प रूप है। वे विकल्प कितने प्रकार के है ? जितनी अर्धच्छेद-शलाकाये है उतने मात्र है। वे अर्धच्छेद-शलाका कितने प्रकार की है ? इसके उत्तर मे आचार्य समाधान करते है कि हमने उसे अनन्त राशि से लिया है। हमारे अनत वार अर्धच्छेद करते चले आने पर भी वह शलाकाछेद भी अनन्त होना अनिवार्य है, अर्थात् वह अनन्त अर्धच्छेद है। इन समस्त अनन्त राशियों को उपर्युक्त कोष्ठको मे सख्यात रूप से हम भर चुके है। इसलिए समस्त भूवलय मे समस्त विपयो को गर्भित करने मे हम समर्थ हुए। मगल प्राभृत के इस चौथे 'इ' अध्याय के अक्षर रूपी काव्य मे जो भिन्न २ प्रकार की भाषाये और विपय उपलब्ध होते है, वे वडे महत्वशाली तथा रुचिकर श्लोक हैं। इसे देखकर पाठकगण को स्वाभाविक रूप से आनन्द प्राप्त होगा ही, किन्तु उन्हे सावधान रहकर केवल प्रस्तुत आनन्द मे ही रत नही हो जाना चाहिए क्योकि यदि वे केवल इसी मे मग्न रहेगे तो आगे आने वाले अत्यन्त सूक्ष्म विपय को समझ नही सकेंगे।

नम्म ज्ञानवदेष्टु निम्म ज्ञानवदेष्टु, नम्मनिंमेल्लरगें पेळ्व।
नम्म सर्वज्ञ देवन ज्ञान वेष्टेंब हेम्मेय गणित शास्त्र दोळु।
नम्मय गणित शास्त्रदोळु। निम्मय गणित शास्त्र दोळु॥

इत्यादि—

अर्थात् हमारा ज्ञान कितना है, तुम्हारा ज्ञान कितना है तथा हम सब को सदुपदेश देकर सन्मार्ग पर लगाने वाले सर्वज्ञ भगवान् का ज्ञान कितना है ? 'इन सब को वताने वाला गौरव शाली यह गणितशास्त्र भूवलय है। यह गणित

शास्त्र हमारे ज्ञान की भी गणना करता है, आपकी (हम से भिन्न जीव के) भी गणना करता है। इस प्रकार यह गणित शास्त्र हमारे गौरव को बढ़ाता है। आपके गौरव को बढाता है और सबके गौरव को बढ़ाता है।

भूवलय रचना चक्रबन्ध पद्धतिः—

इसकी पद्धति में (१) चक्रबन्ध, (२) हंसबन्ध, (३) शुद्धाक्षर बन्ध, (४) शुद्धाक बन्ध, (५) अक्षबध (६) अपुनरुक्ताक्षर बध (७) पद्म बन्ध (८) शुद्ध नवमाक बन्ध (९) वर पद्म बन्ध (१०) महा पद्म बन्ध (११) द्वीपबध (१२)सागर बन्ध (१३) उत्कृष्ट पल्य बन्ध (१४) अम्बु बन्ध (१५) शलाका बन्ध (१६) श्रेण्यक बन्ध (१७) लोकबन्ध (१८) रोम कूप बन्ध (१९) क्रौञ्च वंध (२०) मयूर बन्ध (२१) सीमातोत बध (२२) कामदेव बन्ध [२३] कामदेव पद पद्मबन्ध [२४] कामदेव नख बन्ध [२५] कामदेव सीमातीत बन्ध [२६] गणित बन्ध [२७] नियम किरण बन्ध [२८] स्वामी नियम बन्ध [२९] स्वर्ण रत्न पद्म बन्ध [३०] हेमसिहासन बन्ध [३१] नियमनिष्टाव्रत बन्ध [३२] प्रेमरोषविजय बंध [३३] श्री महावीर बन्ध [३४] मही-अतिशय बंध [३५] काम गणित बंध [३६] महा महिमा बध [३७] स्वामी तपस्त्री बंध [३८] सामन्तभद्रबंध [३९] श्रीमन्त शिवकोटि बंध [४०] उनकी महिमा तप्त बंध [४१] कामित फल बंध [४२] शिवाचार्य नियम बंध [४३] स्वामी शिवायन बध [४४] नियमनिष्ठा चक्र बन्ध [४५] कामित बध भूवलय "९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८ ।

छह प्रकार के संहनन होते है, ४४ आदि का बंध उत्तम संहनन है। ४४ संहनन का अर्थ हड्डी की रचना है उत्तम संहनन का अर्थ वज्र के समान निर्माण हुए हड्डी और सधि बधन इत्यादि जो चीजें है ये सभी वज्र के समान वने हुए है। यह सहनन तद्भव अर्थात् उसी भव मे मोक्ष जाने वाले भव्य मनुष्यो को होता है। तद्भव मोक्षगामी वज्र समान संहनन वाले मनुष्य के शरीर को किसी मामूली शस्त्र के द्वारा काट नही सकते है। जैसे शरीर आदि भूवलय के कर्ता गोमटेश्वर अर्थात् वृषभनाथ भगवान के पुत्र बाहुबली का भी था। वही बाहुबली भूवलय ग्रन्थ के आदि कर्ता थे। उनका शरीर जैसा था वैसी ही दृढ़ इस भूवलय चक्र बंध की रचना की है। इसलिये इस बंध का नाम उत्तम संहनन चक्रबंध उत्कृष्ट शरीर का राग उस बाहुबली के शरीर संस्थान ४५ समचतुर संस्थान अर्थात् सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अंगोपांग की सबसे सुन्दर रचना की है। इस भूवलय ग्रन्थ के अनेक बंध है। इन सभी बंधों में से एक ४६ सूत्र वलय बध है ४७ प्रथमोपशम सम्यक्त्व बंध. ४८ गुरु परम्परा आचाम्ल व्रत बंध, ४९ सत् तप बंध, ५० कोष्ठक बंध, अध्यात्म बंध, ५१ सोपसर्ग तथा तपो बंध, ५२ (उपसर्ग आने पर भी तप जैसे उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है, उसी प्रकार वक्तव्य विषय में वाधा पड़ जाने पर भी अपने अपने अर्थ को स्पष्ट बतलाता है) ५३ उत्तम सुपवित्र भाव को देने वाला सत्य वैभव बंध है, ५४ उपशम क्षयादि बंध है।

५५ नव पद बधन से बधा हुआ योगी जनों का चारित्र वंध है। ५३ अवतरण रहित अपुनरावृत्ति नवमांक बंध होने से यह सुबंध है। तेरहवाँ गुणस्थान प्रदान कर आत्मा के सार धर्म की राशि को एकत्रित कर वीर भगवान के अनन्त गुणों में सम्मिलन कर देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१०९ ॥११०॥१११॥११२॥११३॥

अनन्त पदार्थों से गर्भित यह भूवलय है शुद्धात्मा का सार यह भूवलय है धीर, वीर पुरुषों का चारित्र बल है। भव्य जोवों को अपवर्ग देने के लिए यह आवास स्थान है। निर्ममत्व अध्यात्म को बढ़ाने वाला है, क्रूर कर्म रूपी शत्रु का नाश करने वाला है, भव्य जीवों को मार्ग बतलाने वाला यह भूवलय है। अनेक वैभव को देने वाला सत्यवलय अर्थात् भूवलय है। अनेक महान उपसर्ग को दूर करने वाला भूवलय है, शुद्ध आत्मा के रूप को प्राप्त कर देने वाला आदिवलय है। अत्यन्त क्रूप कामादि को नाश करने वाला भूवलय है, चारित्र सार नामक यह सद्वलय है। अत्यन्त ज्ञान रूपी अमृत से भरा यह भूवलय है। हमेशा जागृतावस्था को उत्तम करने वाला भूवलय हे। अत्यन्त सम्पूर्ण कठिन कर्मो का नाश करने वाला भूवलय है। संसार मे अनेक प्राणी निर्भयता से परस्पर विरोध करते हुये दूसरे जीवों के प्रति अनेक प्रकार के कष्ट पहुंचाकर अन्त में क्रूर परिणाम के साथ मरकर कुगति में जाते है अर्थात् आपस में विरोध करते हुये पापमय धर्म को अपना धर्म मानकर निर्दयता पूर्वक अनेक जीवों को घात

पहुंचाते हुये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे समय मे इस संसार मे पुण्य मय दया धर्म के प्रचार के साथ फैलाते हुए आने वाले के सम्पूर्ण कष्ट नाश होते है। उस समय मोक्ष मार्ग खुल जाता है। जिस समय संसार मे मनुष्य के अन्दर सुख का मार्ग मिलता है तब जीव संसार से छूटने की इच्छा करते है, तब उनको ठीक समाधि से मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा होती है। जब मोक्ष प्राप्त करने की समाधि उन्हे प्राप्त हो जाती है तब गुरू और शिष्य का भेद समाप्त हो जाता है ॥ १३० ॥

उसी समय अपने अन्दर शुद्ध होने का समय प्राप्त होता है। तब उसी समय जिन धर्म का अतिशय चारो ओर प्रसारित होता है जब महान द्वादश अंगो का द्वादश अनुभव वृद्धि प्राप्त कर लेता है उसी का नाम जिन वर्द्धमान भगवान का धर्म है ॥१३१॥

समाधि के समय मे मगल प्राभृमयि यौवनावस्था को प्राप्त होता है जैसे कि चरखे पर कातने से रूई का धागा बढता जाता है उसी तरह अध्यात्म वैभव भी तारुण्य को प्राप्त होता जाता है। यही शूरवीर मुनि का मार्ग है।

इसी प्रकार नवमॉक मे अपने अन्दर ही तारुण्य को प्राप्त कर अपने अदर ही दृढ रहता है ॥१३२॥

यौवनावस्था मे यदि कोई रोग हो जाये तो जैसे वह स्वास्थ्य को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जब अध्यात्म योग समाधि को प्राप्त हो जाता है तब रोग, क्रोधादि सब को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार नवमाँक वन्ध सागर पल्य शला का रूप होते हुए भी अपने अन्दर रहता है। ऐसा कथन करने वाला कर्म सिद्धाँत बन्ध है ॥१३३॥

श्री गुरु पद का सिद्धाँत है ॥१३४॥

यह नाग, नर, अमर काव्य है ॥१३५॥

उसी समय कहा हुआ योग काव्य है ॥१३६॥

यह आत्मध्यान काव्य है ॥१३७॥

नाग पुष्प, चम्पा पुष्प, वैद्य काव्य है ॥१३८॥

योग, भोग को देने वाला सिद्ध काव्य है ॥१३९॥

अतृप्त, भोग को नाश करने वाला काव्य है ॥१४०॥

श्री शिवकोटि आचार्य शिवानन के रोग को नाश किया हुआ यह काव्य है।

नाग पुष्प, कृष्ण पुष्प स्पर्श होने से स्वर्ण बनाने वाला सिद्धांत काव्य है। कभी भी असत्य न होने वाला काव्य है।

नाग अर्जुनक द्वारा सिद्ध किया हुआ काव्य है, अर्थात् नाग अर्जुन के कक्षपुट मे रहने वाला कक्षपुटाँक है ॥१४१।१४२।१४३।१४४।१४५।

श्री गुरू सेनगण से चला आया है। प्रेम से कहा हुआ सिद्धांत है।

महान सुवर्ण को प्राप्त करा देने वाला काव्य है।

राग और विराग दोनो को बतलाने वाला भूवलय है ॥१४६, १४७ १४८, १४९, १५०, १५१, १५२॥

ऊपर कहा हुआ अष्टमहा प्रातिहार्य वैभव का हमने यहाँ तक विवेचन कर दिया है। यह काव्य अष्टम श्री जिनचन्द्रप्रभु तीर्थकर से सिद्ध करने के कारण यह अन्तिम आत्म सम्पत्ति नामक अष्टम जिनसिद्ध काव्य है ॥१५३॥

अब आगे श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते है कि रसमणि सिद्धि तथा आत्म सिद्ध का एक हो श्लोक मे साथ साथ वर्णन करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करते है।

आत्मा मृदु है और स्वर्ण मृदु है लोहा कठिन है, और कर्म भी कठिन है जब लोहा और कर्म दोनो ही मृदु होते है तो वह समवशरण का वैभव बन जाता है जब कर्म नर्म हो जाता है तो आत्मा जाकर समवशरण मे विराजमान हो जाता है और जब लोहा नर्म होता है तो वह स्वर्ण बन जाता है ऐसे दोनों को एक साथ अनुभव करा देने वाला यह काव्य समीकरण काव्य अथवा धन सिद्ध रस दिव्य काव्य है ॥

विमान के समान शरीर को उडा कर आकाश मे स्थिर करने वाला यह काव्य है।

यह पनस पुष्प का काव्य है।

यह विश्वम्भर काव्य है।

यह भगवान जिनेश्वर रूप के समान भद्र काव्य है।

भव्य जीवों को उपदेश देकर जिन रूप प्राप्त कराने वाला काव्य है।

सिद्ध रसमणि के प्रताप से आकाश में उड़ कर लडती हुई सेनाओं के युद्ध को बन्द कर देने वाला काव्य है। आकाश में गमन करने वाले खेचरता के अनुभव का काव्य है ।।।१५६।।

मादल (विजौरा)—जैसे एक रथ को रस्सी पकड़ कर हजारों आदमी खीचते है वैसे ही मादल रस से बने हुए रसमणि के आश्रय से हजारों रोग नष्ट हो जाते है ।।१५७।।

पुष्पायुर्वेद से यह काम सिद्ध हो जाता है ।।१५८।।

बाहुबलि अपने हाथ मे केतकी पुष्प रखते थे। उस केतकी पुष्प के सिद्ध हुए पारद मे भी सैकड़ो रोगों को नष्ट करने की शक्ति रहती है ।।१५९।।

आयुर्वेद के वृक्ष आयुर्वेद, पत्र आयुर्वेद, पुष्प आयुर्वेद, फल आयुर्वेद आदि अनेक भेद है, उनमे से यह पुष्प-आयुर्वेद है। श्रेष्ठ पुष्प-निर्मित दिव्य योग है ।।१६०।।

अग्निपुट के चार भेद हैं—१ दीपाग्नि, २ ज्वालाग्नि, ३ कमलाग्नि, ४ गाढाग्नि। यहां चारों ही अग्नियों का ग्रहण है ।।१६१।।

पादरी पुष्प से भो रस सिद्ध होता है ।।१६२।।

पारा अग्नि का संयोग पाकर बढ जाता है, परन्तु इस क्रिया से उड नही पाता ।।१६३।।

सर्वात्म रूप से शुद्ध हुए पारे को हाथ में लेकर अग्नि में भी प्रवेश किया जाता है ।।१६४।।

सैकड़ों अग्नि पुट देने से पारे में उत्तरोत्तर गुण वृद्धि होती जाती है ।।१६५।।

जो इस क्रिया को जानता है वह वैद्य है ।।१६६।।

तैयार किया हुआ शुद्ध निर्मल पादरस को साफ से कमरे में अग्नि के ऊपर रखकर थोड़ी देर के बाद ऊर्ध्व गमनरूप में उड़ाकर जैसे कमरे के नीचे दीपक जलता रहता है उसी प्रकार यह पारा उड़कर छत से नीचे के दीपक के समान चमकता हुआ छत्राकार में स्थिर रहता है, उस समय वह व्यक्त रूप मे आंखों से देखने में नही आता अर्थात् जैसे शरीर को छोड़कर प्राण निकल जाते समय आंखों से दीखता नही है, उसी प्रकार पारा भी नही दीखता है। बहुत से विवाद करने वाले अज्ञानी लोग इसके मर्म अर्थात् भेद को न जानने वाले उसे यह समझते है कि यह आकाश में उड़ गया अर्थात् नष्ट हो गया और अपना काम बेकार हुआ ही समझते है। परन्तु वह पारा कहीं भी नहीं जाता है जहाँ का तहां ही है, किंतु विद्वान लोग, पारा उडते समय उसके नीचे की अग्नि को हटा कर तुरन्त ही उसके नीचे कागज का सहारा लगाते हुए जहां पारा ठहरता है वहां तक कागज नीचे पकड़े रहते हैं। तब वह पारा उस कागज मे आकर ठहर जाता है। इसी प्रकार जंगल में आकाश स्फटिक भी रहता है। सूर्योदय के समय में जैसे सूर्य क्रमशः ऊपर २ गमन करता है, और जब ठीक बारह बजे के समय ठीक बीच में आता है और स्थिर रहता है तब उसके बाद पश्चिम की तरफ उतर जाता है और सायं काल में अस्त होता है। उसी प्रकार यह आकाश स्फटिक भी नीचे उतरते-उतरते संध्या काल में जमीन में प्रवेश भीतर ही भीतर करता जाता है। रात के बारह बजे तक इसी क्रमानुसार बढते २ एक स्थान पर स्थिर हो जाता है। इस को अधो-गमन या पाताल-गमन कहते है।

यदि आकाश स्फटिक मणि पर सिद्ध रसमणि सहित पुरुष बैठ जाय तो मणि के साथ-साथ सूर्य के साथ २ आकाश में और पृथ्वी के अन्दर गमन कर सकता है अर्थात् आकाश मे ऊपर उड़ सकता है और नीचे पृथ्वी के अंदर घुसकर भ्रमण कर सकता है ।।१६७।।

गिरिकर्णिका नामक एक पुष्प है। इस पुष्प के रस से पारा सिद्ध किया जाता है जो ऊपर बताये हुए आकाश गमन और पाताल गमन दोनों में ठीक काम देता है ।।१६८।।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पुष्पों के रस से पारा 'सिद्ध' किया जा सकता है ।।१६९।।

उससे भिन्न-भिन्न चमत्कारिक कार्य किये जा सकते है ।।१७०।।

उन भिन्न पुष्पों के नाम तीन अंक के वर्ग शलाकाओं से जो अक्षर प्राप्त हों उनसे मालूम हो सकता है ।।१७१।।

इस प्रकार कार्य-क्रम को बतलाने वाला यह भूवलय है ।।१७२।।

शूरवीर दिगम्वर मुनियो के द्वारा सिद्ध किया हुआ काव्य भूवलय नामक है ।।१७३।।

जैसे दिगम्बर मुनि अपने चचल मन को वाध लेते हैं अर्थात् स्थिर कर लेते है उसी तरह सैकड़ो हजारो पुष्पो के रस से पारा स्थिर किया जाता है। इस तरह भूवलय से मन और पारा दोनो स्थिर किये जाते है ।।१७४।।

सर्वार्थसिद्धि के अग्रभाग मे सिद्धशिला है उसके श्वेत छत्राकार रूप मे लिखा हुआ अक मार्ग जो आता है उसी अक को अरहतादि नौ अको से मिश्रित अपने अदर देखना, जानना ही भूवलय नामक सिद्धात है ।।१७५।।

परमागम मार्ग से आयुर्वेद को निकाल दिया जाय तो—१३ ००००००० करोड पदों को मध्यम पद से गुणाकार करने से २१२५२८००२५४४००००००० इतने अक्षर आगम मार्ग से सिद्ध है अर्थात् निकल आते है। ये अक एक सागर के समान हैं। तो भी यह अकाक्षर अपुनरुक्त रूप है। इसलिए यह सागर रूप 'रत्न मजूषा' नाम से प्रसिद्ध है ।।१७६।।

इस भूवलय मे ७१८ भाषाओ के अवतार है, यह अवतार प्रथम सयोग से भी निकल आता है, ऐसा कहने वाला यह सिद्ध भूवलय नामक काव्य है।।१७७।।

दूसरे सयोग से भी आता है ।।१७८।।

तीसरे सयोग से भी आता है ।।१७९।।

चौथे सयोग से भी आता है ।।१८०।।

६४ अक्षर सयोग से भी आता है ।।१८१।।

इससे परमात्म कला अक भी देख सकते है ।।१८२।।

इसलिए यह परम अमृतमय भूवलय है ।।१८३।

इस तरह [१] ६४×१=६४ [२] ६४×६३=४०३२

[३] ६३×६२=२४९९८४ [४] ६२×६१=१५२४९०२४

इस क्रम के अनुसार है। इस प्रकार महारशि को बतलाना ही परमात्मा का अर्थात् केवली भगवान की ज्ञानरूपी कला है। यह कला इसमे गर्भित होने के कारण यह भूवलय ग्रन्थ परमात्म-रूप है।

उत्तरोत्तर ऋद्धि प्राप्त योगी मुनि के समान पहले के तीन अकोने समस्त अको को अपने अदर समावेश कर लिया है। उसी तरह यह चौथा अध्याय भी यहा ७२९० अको को अपने अदर गर्भित कर नौ अक मे सिद्धाक रूप होकर श्रेणी रूप मे स्थित है, अर्थात् १० चक्र के अदर यह गर्भित है ।।१८४।।

इतने अंको मे से और भी अतर रूपसे निकाल दिया जाय तो १०९२६ इतने और भी अक आ जाते है, इतने अको को अपने अदर गर्भित करता हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ।।१८५।।

'इ' ७२९०+ अतर १०९२६=१८२१६ ।

अथवा 'आ' – ई = ४६६११+१८२१६=६४८२७ ।

इति चौथा 'इ' अध्याय समाप्त हुआ ।

चौथे अध्याय के प्रथम अक्षर से लेकर ऊपर से नीचे तक पढते जाय तो प्राकृत गाथा निकल आती है उस का अर्थ इस प्रकार है—

इस भूवलय ग्रन्थ के मूल तन्त्र कर्ता श्री वीर भगवान है। उनके पश्चात् इन्द्रभूति ब्राह्मण, उपतत्र कर्ता हुए, कुमुदेन्दु आचार्य तक सभी आचार्य अनुतत्र कर्ता है। अब आगे इस अध्याय के बीच मे आने वाले संस्कृत गद्य का अर्थ कहते है :—

श्री परम पवित्र गुरु को नमस्कार, श्री परमगुरु और परम्परा आचार्यो को नमस्कार, श्री परमात्मा को नमस्कार।

पांचवां अध्याय

ई* ग आवाग हिन्दरण मुनदके बहा । नागतकाल वेल्लवनु ।। आग स* दनूतव सागुत काणुव । श्री गुरुवय्वर ज्ञान ।।१।।
य* वेयकाळिन कृपेत्रदळतेयोळडगिसि । अवरोळनंत वस क* लान् ।। कवनवदोळ् सवियागिसिपेळुव । नव सिरिइरुव भूवलय ।।२।।
मृ* स्मद सम्यज् ञान वात्मनरूपु । निर्मलानंतद् अ सक ल* धर्मव परसमयद वक्तव्यतेयलि । निर्मलगोळिसुव ज्ञान ।।३।।
ण* णवरणीय कर्मवळियलु । तानु केवल ज्ञानियागि ।। आनन्द क* रनु आत्म स्वरूपव ताळ्व । श्री निलयान् क ओम्बत्तु ।।४।।
या* वाग नोडिदरावागअललिये । ठाविनपूर्णानकवेनसि ।। तावुका लु* ष्यव होन्दुवन्कगळनु । तीविकोन्डिरुवात्म नवम ।।५।।
पावन परिशुद्ध नवम ।।६।। ईविश्व परिपूर्ण नवम ।।७।। साविर लक्षानक नवम ।।८।। पावन सूच्यग्र नवम ।।९।।
श्री विश्वदादियु नवम ।।१०।। साविर कोटिगळ् नवम ।।११।। सावु वाळ्विकेयोल्ल नवम ।।१२।। साबु नोवुगळल्लि नवम ।।१३।।
नावुगळरियद नवम ।।१४।। श्री वीरनरिकेय नवम ।।१५।। दावानल कर्म नवम ।।१६।। ऋवागमवर्प नवम ।।१७।।
ओविद्यासाधन नवम ।।१८।। पावनवागिप नवम ।।१९।। कावुदेल्लवनु इ नवम ।।२०।। तावुताविनोळेल्ल नवम ।।२१।।
श्रीवीर सिद्धान्त नवम ।।२२।। श्री वीरसेनर नवम ।।२३।। नावुगळळेयुव नवम ।।२४।। कावुतलिरुव भूवलय ।।२५।।
व* रद हस्तद नवपदद निर्मलदनक । गुरुगळय्वर इ ष* टदनक ।। सरससाहित्यदवर्णनेगादिय । वरदकेवललब्धियनक ।।२६।।
हा* रदग्रदरत्न नायक मणियनक मूरु । मूरल ओम्बत्र् अ* नक नूरु साविर लक्ष कोटियोळ् ओम्बदस् । दारिदेगेयलोम्बत् अनक।।२७।।
रि* द्धि सिद्धिगळनु कूडिसि कोडुवनक । होद्दि बरुव दिव्यव् वि* द्ये ।। अध्यात्मसिद्धियसाधिसिकोडुवनक । शुद्धकर्माटकदनक।।२८।।
य* शस्वतियाडुव प्राकृत लिपियनक । रसद समस्कृत ध* रव्यदनक।। असमानदरविडआन्ध्र महाराष्ट्र। वशदलिमलेयाळदनक२९
रिसिय गुर्जर देशदक ।।३०।। रससिद्ध अनगद अनक ।।३१।। यशद कळिनगद अनक ।।३२।। रसद काश्मीरानगदनक ।।३३।।
ऋषिय कम्भोजादियनक ।।३४।। वसनद हम्मीरदनक ।।३५।। यश शौरसेनीयदनक ।।३६।। रस वालियनक दोम्बत्तु ।।३७।।
वशवा तेबतियादियनक ।।३८।। रसवेन्गि पळुविन अनक ।।३९।। असमान वनग देशानक ।।४०।। विषहर ब्रासंहियाद्यनक ।।४१।।
रस नेमि विजयार्धदनक ।।४२।। व्यसनवळिप पद्मदनक ।।४३।। रस सिद्धि वयद्रभ्यरनक ।।४४।। वशद वय्शालियाद्यनक ।।४५।।
रसद सौराषट्र दाद्यनक ।।४६।। यशद खरोष्ट्रिय अनक ।।४७।। वशद निरोष्ट्रद अनक ।।४८।। वशदापभ्रसशिकदनक ।।४९।।
दिशेय पय्शाचिकरनक ।।५०।। यशद रक्ताक्षरदनक ।।५१।। वशवादरिष्ट देशानक ।।५२।। कुसुमाजियर देशदनक ।।५३।।
रसिकर सुमनाजियनक ।।५४।। रसदयन्दरध्वजदनक ।।५५।। रस जलजद दलदनक ।।५६।। वशद महा पद्मदनक ।।५७।।
रसदर्ध मागधियनक ।।५८।।
आ* रस पारस सारस्वतदनकम् । बारस देशदाद्यनक ।। वीर व* शद देशदारय् के सेरिद । शूर मालव लाट गवुड ।।५९।।
इ* वुगळ नेरेनाड मागध देशानक । अवराचेय विहारानक ।। नव मृ* दक्षरद उत्कल कन्याकुब्जानक । सविय वराह नाडनक ।।६०।।
* धिय व रमणर नाडिनन क. । द्ध वेदान्तदाद्य स* र । इद्लूले इरुव सन्दर्भद नाडन्क । एद्दु बरुव चित्रकरद ।।६१।।

५४ में १ मिलकर = ५५ = १० (यह सौंदरिय अन्क) पोडविय हदिनेन्दु लिपिय ॥६३॥ बिडिसलार् ओम्वत्तरन्क ॥६४॥
गडिय मूरल मूररन्क ॥६५॥ सडगरदलि हदिनेन्दु ॥६६॥ डिडिगळनोड गूडिदन्क ॥६७॥ कडेगे ऐवत्नाल्करन्क ॥६८॥
ओडगूडे त्रयहदिनेन्दु ॥६९॥ नडेय मूरर ओम्बत्तन्क ॥७०॥ अडविय वनवासियन्क ॥७१॥ मडविय त्यागिगळन्क ॥७२॥
इडिदु कूडिदर् ओमृदे अन्क॥७३॥ बिडिसि नोडिदरोमृदे अनुक ॥७४॥ गुडियोळाडुव ज्ञानदन्क ॥७५॥ नुडियु करमाटकद्अन्क ॥७६॥
हिडिय मातुगळ भूवलय ॥७७॥ ओडगूडे करमाटकद्अनक ॥७८॥

प॥ रमम् पेळिद हदिनेन्दु मानिन । सरसद लिपि ई नवम ॥ वर मृ॥ नुगल प्राभ्रुतदोळु अन्कव । सरिगूडि वरुवे भाषेगळम् ॥७९॥
र॥ सवु मूलिकेगळ सारव पीर् वन्ते । होस करमाटक भाषे ॥ रस श्र॥ री नवमान्कवेल्लरोळ्वेरेयुत । होसेदु बन्दिह ओम् ओम्दन्क ॥८०॥
मृ॥ रम् वादा ओम्कार दोळडगिद । सर्वज्ञ वाणियम् होसेये ॥ श् रे॥ यम् पोन्दुतगणितबन्धदोळ् कट्टि । धर्म साम्राज्यदन्कदोळु ॥८१॥
प॥ दवागिसि पद पद्मवनागिसि । हरुदय पद्मा दलरि ॥ सद य॥ त्ववेनिसिमेवुळ होक्कु केल्वर । हरुदयके कर्मदाटवनु ॥८२॥
रा॥ गव वय्राग्यवनोम् दे बारिगे । तागिसे कर्णाटकद ॥ बागिल सा॥ लिनिम् परितन्द कारण । श्री गुरु वर्धमानान्क ॥८३॥

६ × ६ = ५४ ईगदु सम्ख्यातदन्क ॥८४॥ तागल सम्ख्यातवन्क ॥८५॥ वेगदनन्त सम्ख्यान्क ॥८६॥ रागद मध्यमानन्त ॥८७॥
तागलु उत्करुष्टानन्त ॥८८॥ आगुवनन्तानन्तान्क ॥८९॥ श्री गुरु मध्यमानन्त ॥९०॥ ओम् गुरु उत्कृष्टानन्त ॥९१॥
आगर रत्नत्रयान्क ॥९२॥ चागर शाश्वतानन्त ॥९३॥ जागरविश्व भूवलय ॥९४॥

ग॥ मनिसे 'अथवा प्राक्रुत संस्कृत । विमल 'मागध पिशाच' मृ॥ भा ॥ सम 'भाषाश्च शूरसेनी च' द । क्रमदे' षण्टोतर' वभूरि ॥९५॥
द॥ रुशिसे 'भेदोदेशविशेषआ'द । वर'विशेषादपभ रम्शह ॥ परम् प॥ दधतिथिन्तिवरनु मूररिम् । परि गुणिसलु हद्रिनेन्दु ॥९६॥
म॥ रळिसलथवा 'कर्णाट मागध'वरे। बरलु'मालव लाट गौड' । वरि॥ थिरि 'गुर्जर प्रत्येक त्रवमित्य' । वरद 'ष्टादश महा भाषा' ॥९७॥
म॥ रळि मरलि वेरे विधदिन्द पेळुव । गुरुवर सन्ध भेदगळ ॥ व॥ र काव्य सरणिय शथिलयन्तिरळीग । सरस सवनुदरिय रिदन्क ॥९८॥
ण॥ वमान्क गणनेयोळ् भूवलय सिद्धांत । अवरनुळोमवव र॥ नुक ॥ नवमवु प्रतिलोमवागिसि बन्दन्क । सविय भूवलय सिद्धांत ॥९९॥
सा॥ विरदेन्दु भाषेगळिरलवनेलल । पावन महावीर वाणि ॥ काव ध॥ र्मांकवु ओम्वत्तागिर्पाग । तावु एळ्नूर् हदिनेन्दु ॥१००॥

६×३ = १८ । १८×३ = ५४ कावुदु हम्सद लिपियम् ॥१०१॥ नावरियद भूत लिपियु ॥१०२॥ श्री वीर यक्षिय लिपियु ॥१०३॥
ठाविन राक्षसि लिपियु ॥१०४॥ तावलि ऊहिया लिपियु ॥१०५॥ कावे यवनानिय लिपियु ॥१०६। कावद तुर्किय लिपियु ॥१०७॥
पावक द्रमिळर लिपियु ॥१०८॥ पावेय सइन्धव लिपियु ॥१०९॥ ताव मालवणीय लिपियु ॥११०॥ श्री विधकीरिय लिपियु ॥१११॥
पावन नाडिन लिपियु ॥११२॥ देव नागरियाद लिपियु ॥११३॥ वय्विध्य लाडद लिपियु ॥११४॥ काविन पारशि लिपियु ॥११५॥
काव आमित्रिक लिपियु ॥११६॥ भूवलयद चाणक्य ॥११७॥ देवि ब्राह्मियु मूलदेवि ॥११८॥ श्री वीर वाणि भूवलय ॥११९॥
देवि सवनुदरिय भूवलय ॥१२०॥

पु॥ ट्ट भाषेगळेळु नूरन्क मातिन । गट्टिय लिपिगळिल्लदं न क॥ हुट्टदनक्षर भाषेय अरियुव । हुट्टलिल्लद लिपियन्क ॥१२१॥
वृ॥ र 'सर् वभाषाम इ भाषा' एन्नुव । अरहन्त भाषितव् वाक्य मृ॥ वर 'विश्व विद्यावभासिने'(एन्नुव)एन्देमृवा परिभाषेय अंक ॥१२२॥
वा॥ सवरेल्लराडुव दिव्य भाषेय । राशिय गणितदे कट्टि ॥ आशा ध॥ र्मामृत कुम्भदोळडगिसि ओशनेळ् नूरन्क भाषे ॥१२३॥
इ॥ दरोळु हुदुगिह हदिनेन्दु भाषेय । पदगळ गुणिसुत बरुव र्॥ सदनव तोरेदु तपोवनवनु सेरे । हरुदय के शान्ति ईवन्क ॥१२४॥

रि ॐ षिगळेल्लरु कूडि महिमेय लिपिगळ । वशगोन्डु भाषेय सर म ॐ हसगोळिसुत ईगरण हिन्दरण मुन्दे । वशवप्प मातुगळन्क ॥१२५॥
या ॐ व भाषेगळलि एष्टन्क वेन्नुव । ठाविन शन्केगे तावु ॥ तावु स ॐ मन्वयगोळिसि समाधान । वीव सिद्धान्त भूवलय ॥१२६॥

ई विश्ववाळुव अन्क ॥१२७॥ श्री वीरवाणिय अंक ॥१२८॥ साविरलक्षशन्केगळ ॥१२९॥ ठाविन उत्तरदन्क ॥१३०॥
पावन स्वसमयदंक ॥१३१॥ आविद्य काव्यद अंक ॥१३२॥ कावनाडुव मातिनंक ॥१३३॥ ई विश्वदध्यात्मदंक ॥१३४॥
तीविकोन्डिह दिव्य अंक ॥१३५॥ सावनळिसुव चक्रान्कम् ॥१३६॥ धावल्य बिन्दुविनन्क ॥१३७॥

आ ॐ विश्वदंक 'त्रिषष्टिहि चतुहषष्टि' । पावनवादा अंक म ॐ तीवि 'स्वावर्णाह शुभमतेमताह'द। काव 'प्राकृतेस संकृतेचा'।१३८।
रा ॐ 'पिस्वयम् प्रोक्ताह स्वयम्भुवा' । आपद विरुवन्कदग्र ब ॐ न ॥ धापद सम्योगदोळु अरवत्नाल्कु । श्रीपदपद्म सम्गुणिसे ॥१३९॥
णु ॐ णुपाद ब्राह्मिय एडगय्योळंकित । गुणनद सरमाले ब न ॐ धापद सम्योगदोळु अरवत्नाल्कु । श्री पद पद्म सम्गुणिसे ॥१४०॥
स ॐ रस सउंदरिय बलद कय्योळच्चोत्ति । अरवत्नाल्कु ध ॐ दणुविनोळु आदीशवरेदखरोष्टिय। तनियाद वृषभांकितवु ॥१४१॥
र ॐ सयुतवा 'अकारादि हकारान्ताम्' । वश 'शुद्धाम् मुक्तावली' म् क ॐ रस 'मिवस्वर व्यन्जनमीदेन द्वि । वश 'दाभेद युपय्यु ॥१४२॥
ण ॐ वर 'षीम् अयोगवाह' द 'परयंताम् सरव' । विवर 'विद्यासु' म ॐ 'सरग'॥ नव 'ताम्अयोगाक्षरसम्भूतिम्'। सवि नय्कबीचाक्षरयश्चि
म ॐ नु 'ताम् समवादि दधत्ब्राह्मि मेधा । विन्यति सुन्दरो, वर भ ॐ घन 'सुन्दरी गणितमस्थानम्'स'क्रमहि । धनवह'सम्यगधास्यत्।१४४।
क ॐ र ततो भगवतो वत्रानिहिस्रुता । क्षरावलीम् सिद्ध व ॐ ह 'नमइ'। सरतिव्यक्तसुमनगलाम् सिद्ध' गुरु मातृकाम् 'स भूवलय
द ॐ रुशनमाडलन्याचार्य वान्गमय । परियलि ब्राह्मियु व य ॐ दे । हिरियळादुदरिन्द मोदलिन लिपियंक । एरडनेयदु यवनांक१४६
म ॐ रळिद दोष उपरिका मूरदु । वराटिका नाल्कने अंक ॥ सरव जे ॐ खरसापिका लिपि अइदंक । वरप्रभारात्रिका आरुम् ॥१४७॥

सर उच्चतारिका एळुम् ॥१४८॥ सर पुस्तिकाक्षर एन्टु ॥१४९॥ वरद भोगयवत्ता नवमा ॥१५०॥ सर वेदनतिका हत्तु ॥१५१॥
सिरि निन्हतिकाहन्मोंदु ॥१५२॥ सर माले अंक हंनेरडु ॥१५३॥ परम गणित हदिमूरु ॥१५४॥ सर हदिनाल्कु गान्धर्व ॥१५५॥
सरि हदिनय्दु आदर्श ॥१५६॥ वर माहेश्वरि हदिनारु ॥१५७॥ बरुव दामा हदिनेळु ॥१५८॥ गुरुवु बोलिदि हदिनेन्टु ॥१५९॥
इरुविवेल्लवु अंक लिपियु ॥१६०॥

ति ॐ रियन्च नारकररियद हदिनेन्टु । परिशुद्ध लिपियंक व ॐ वनु । बरेयलु बहुदुहेळ केळलु बहुदव । सरसान्क अक्षर लिपियोळ१६१
र ॐ सभाव काव्य सन्दरभदुचित नुडि । यशस्वती देविय म ॐ गळ ॥ होसदाद रीति देसिक दरिकेयनेल्ल । हेसरिट्टुकलियलु बहुदु१६२
य ॐ शस्वतियम्मन तन्गि सुनन्देय । बसरलि बनद अनगजन न ॐ । यशद कामायुर् वेददोळ् त्यागव । रससिद्धियिम् कारणबहुदु ॥१६३॥
ण ॐ वमन्मथ रोळगादिय मन्मथ । अवनादि केवलिनमग्र ह ॐ सुविशाल कायद परमात्म रूपनु । अवनिन्द सवन्दरि कन्डु ॥१६४॥
अवधरिसुत तन्गिरदन्क ॥१६५॥ छवियोळु काणब सत्यान्क ॥१६६॥ नवमन्मथरादियन्क ॥१६७॥
भवभय हरण दिव्यान्क ॥१६८॥ अवरोळु प्रतिलोमदन्क ॥१६९॥ अवनु कूडलु ओम्बत्त् ओमदु १७०॥
नवकार मन्त्रवु ओमदु ॥१७१॥ सवणर धर्मान्क ओमदु ॥१७२॥ सवियागिसिरुव भूवलय ॥१७३॥

अनुलोम १-२-३-४-५-६-७-८-९
प्रतिलोम ९-८-७-७-५-४-३-२-१

लब्धान्क १-१-१-१-१-१,१-१-१-० ओमगत्ओमदु

णि६ जद ह त ओ ब८तागिसिद क । अदर ९६

मि❀ क्किह एळ नऊरु नक्षरभापेयम् । दक्किप द्रव्याग अम र❀ तक्क ज्ञानव मुन्दकरियुव आशेय । चोक्क कन्नाड भूवलय ॥१७५॥
त रुगनु दोर्बलियवरक्क व्रामहियु । किरियसौन्दरि अरि ति❀ र्द ॥ अरवत्नाल्कक् षर नवमान्कसोन्नेय । परियिह काव्य भूवलय ॥१७६॥

सरमग्गिकोष्टक काव्य ॥१७७॥ गुरुगळिम् परितन्दगणित ॥१७८॥ गुरुगळय्वरगणितान्क ॥१७६॥
अरह न्तरीरेविह गणित ॥१८०॥ सिरि वृषभेश्वर गणित ॥१८१॥ गुरुवर अजित सिद्धगणित ॥१८२॥
परमात्म शम भव गणित ॥१८३॥ सुरपूज्य अभिनन्दनेश ॥१८४॥ सुर नर वन्दय श्री सुमति ॥१८५॥
तिरियन्च गुरु पद्म किरण ॥१८६॥ नरकर वन्दय सुपार्श्व ॥१८७॥ गुरुलिन्ग चन्द्र प्रभेश ॥१८८॥
सिरि पुष्पदन्त शीतलरु ॥१८६॥ गुरु श्रेयाम्स जिनेन्द्र ॥१६०॥ सरुवज्ञ वासुपूज्येश ॥१६१॥
अरहन्त विमल अनन्त ॥१६२॥ हरुषन श्री धर्म शान्ति ॥१६३॥ गुरु कुन्थु अर मल्लि देव ॥१६४॥
सिरि मुनि सुव्रत देव ॥१६५॥ हरि विष्टर नमि नेमी ॥१६६॥ वर पार्श्व वर्धमानेन्द्र ॥१६७॥
गुरु माले इप्पत्नाल्कुम् ॥१६८॥

त❀ रुण मन्मथनारु सोन्ने एरडु । सरियोम्दु अन्तर बो❀ ध ॥ सरस कव्य यागमदरवत् नाल्क्षर । विरुव 'ई' काव्यवु ऐदु॥१६६॥
शिरसिनन्तिह सिद्धराशि [भूवलय] ॥२००॥

म❀ नविडेओम्बत् ओम्दुसोन्नेयु एन्दु । जिनमार्गदतिशय ध❀ र्म ॥ वेनुत स्वीकरिसलु नवपद सिद्धय । घनमर्म काव्य भूवलय ॥२०१॥

५ वा ई ८०१६+अन्तर १२००६=२००२५ अथवा अ-ई ६४,८२७+ई २०,०२५=८४,८५,२

पहले श्रेणी के सुरु के अक्षर से लेकर नीचे पढते आजाय तो प्राकृत निकलता है—

ईयम्णाया वहारिय परम्परा गद्म् मणासा ।
पुव्वाइरिया आराणु सरणं कदं तिरयण निमित्तम् ॥५॥

बीच में लेकर ऊपर से नीचे के तरफ इसी श्लोक के समाण पढने आजाय तो संस्कृत श्लोक निकलता है—

सकल कलुष विध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं ।
धर्म संबन्धकं भव्य जीव मनः प्रति वोधः ॥

६५ श्लोक से इनिवर्टिड कामा तक पढते जायं तो पुन सस्कृत काव्य की दूसरी भापा निकलती है। अर्थात्—

प्राकृक, संस्कृत, मागध, पिशाच, भाषाश्च, सूरशेनीच । षष्ठोत्तर भेदा देश विषेशादपभ्रंशह ॥
कर्णाट मागध मालव लाट गौड गुर्जर प्रत्येकत्रय मित्याष्टादश महा भाषा । सर्व भाषा मई भाषा विश्वविद्यालयाव भाषिणे ॥
त्रिषष्टिः चतुषष्ठिर्वा वर्णंहा शुभमते मतह । प्राकृतेसंस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताह स्वयंभुवह ॥
अकारादि हकारांतां शुद्धाम् मुक्तावली-मिव । स्वरव्यंजन भेदेन द्विधाभेदमुपेय्युषीम् ॥
अयोग वाह पर्यंतां सर्व विद्या सुसंगताम् । अयोगाक्षर संभूतिम् नैक बीजाक्षरैश्चिताम् ॥
समवादि ददत्ब्राम्ही मेधाविन्यति सुंदरी । सुंदरी गणित स्थानं क्रमैः सम्येग्हस्यत् ॥
भगवतो वक्त्रानि श्र ताक्षरावलीं । नवइति व्र्यक्ति सुमंगलां सिद्ध मातृकाम् ॥

पांचवां अध्याय

अब हम पांचवे अध्याय का विवेचन करेगे ।

इस समय वर्तमान काल, वीता हुआ अनादि काल और इस वर्तमान के आगे आने वाला भविष्य काल, इन तीनों कालो के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं ईशान, वायव्य, आग्नेय और नैऋत्य, ऊर्ध्व आकाश और नीचे के भाग मे यानी आकाश की सभी दिशाओं में, विद्यमान समस्त पदार्थ अर्हन्त सिद्ध परमेष्ठी के ज्ञान मे स्पष्ट झलकते है । संसार का कोई भी पदार्थ उनके ज्ञान से बाहर नहीं है ।

विवेचनः—अतीत (भूत) काल बहुत विशाल है, जितना-जितना पीछे जाते है, आकाश की तरह उसका अंत नहीं मिलता । इस लिये इस काल को अतीत काल या अनादि काल कहते हैं । इतना विस्तृत होने पर भी अनागत काल से भूतकाल बहुत छोटा है । अतीत काल को अनन्ताङ्क से गुणा करने पर जितना लब्धाङ्क आता है उतना अनागत काल है । इन दोनो कालों के बीच में वर्तमान काल समय मात्र है, यह वर्तमान काल बहुत छोटा होने के कारण भूतकाल और भविष्य काल को छोटी कड़ी के समान जोड़ता है । इसी तरह क्षेत्र भी है, क्षेत्र का अर्थ आकाश है । यह आकाश अनन्त—प्रदेशी होते हुए भी तीन लोक की अपेक्षा से असंख्यात-प्रदेशी भी है । परमाणु की अपेक्षा से संख्यातप्रदेशी (एक प्रदेशी) भी है ।

एक घड़ा रक्खा हुआ है उसके बाहर किसी भी ओर देखा जावे आकाश ही आकाश मिलता है उस का अन्त नही मिलता, इसलिये आकाश को 'अनन्त-प्रदेशी' कहा है । घड़े के भीतर जो आकाश है वह सीमित है, क्यों कि वह घड़े के भीतरी भाग के बराबर है, अतः उसका अन्त मिल जाता है । फिर भी उस छोटे आकाश के प्रदेशो को अंको से गणना नही कर सकते, इसलिये वह असख्य प्रदेशी है । यदि उस घड़े के भीतर बहुत छोटा (संख्यात प्रदेशी) मिट्टी का बर्तन रख दिया जाय तो उस में जो आकाश के प्रदेश है वे सख्यात है, उनकी गिनती की जा सकती है । १, २, ३, ४, ५ आदि रूप से उनकी गणना कर सकते है । इस प्रकार अखण्ड आकाश को घट आदि पदार्थों की अपेक्षा के भेद से खण्ड रूप और आकाश की अपेक्षा अखण्ड रूप कह सकते है । उस छोटी मट-की के अंदर जो आकाश का प्रदेश है उसमें रक्खे हुए एक परमाणु को आकाश का सर्व-जघन्य प्रदेश कह सकते है । उस परमाणु को आदि लेकर १-२-३-४—५ आदि परमाणु बढ़ाते हुये समस्त आकाश के प्रदेशों की पंक्ति जानना केवली-गम्य है क्योंकि केवल ज्ञान के द्वारा समस्त विश्व के पदार्थ जाने जाते हैं ॥१॥

ऊपर कही हुई समस्त वस्तुओं को सरसों के दाने के वराबर क्षेत्र में छिपा कर उसमे अनन्त को स्थिर करके उस सकलांक को नौ अंक में मिश्रित करे, मृदु रूप में करने वाले नव श्री अर्थात् अर्हंन्त सिद्धादि नव पद रूप में रहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥२॥

विवेचन.—असंख्यात प्रदेश वाले इस लोक में अनंतानन्त पुद्गल परमाणु परस्पर विरोध रहित अपने-अपने स्वरूप मे स्थित हैं । (**परमाणु प्रदेशेष्वनन्तानन्तकोटयः जीव राशयः**) इस उक्ति के अनुसार वैद्य-शास्त्र के कर्ता वाग्भट्ट ने कहा है । जीव राशि में से प्रत्येक जीव में अनन्त कर्म वर्गणाओं का कैसे समावेश होता है ? इस बात का खुलासा पिछले अध्याय में कह चुके है । आकाश प्रदेश में अनन्त जीव और उनके कर्माणुओं को जानने के ज्ञान को नवमांक में बद्ध कर अनेक भाषात्मक रूप में व्यक्त करके उन सब को एकत्र करके इस भूवलय ने कथन किया है ।

लोक में अनादि काल से ३६३ मत है, एक धर्म कहता है कि सम्पूर्ण जीवो की रक्षा करनी चाहिए । दूसरा धर्म कहता है जीवों का नाश करना चाहिए । तीसरा धर्म कहता है ज्ञान ही श्रेयस्कर है, तथा चौथा धर्म कहता है कि अज्ञान ही श्रेष्ठ है । इस तरह परस्पर हठ करके कलह करते रहते है । इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतों में परस्पर सघर्ष होने के कारण जैनाचार्यो ने इन धर्मो को पर-समय में रखा है । इन सब पर-समयों को कहने के जो वचन हैं उसको पर-समय-वक्तव्य कहते है । जब इन सभी धर्मो को एकत्र करके कहने के लिए, वाक्य की रचना होती है तब सभी धर्मों को **समन्वित करके छोड़ देता है ।** यह समन्वय दृष्टि भूवलय का एक विशिष्ट रूप हुआ है । ३६३ इस अंक को

दाहिनी तरफ से मिलाने पर ६ और ३ = ९ आता है और बायी तरफ से ३ और ६ मिला देने से ९ आता है। इस प्रकार इन अकों मे समन्वय कर देता है। यह क्रिया सम्यक् ज्ञान मात्र से ही साध्य है, अन्यथा नही। यही ज्ञान सभी मतो को समन्वय करने वाला है, और यही सम्यकज्ञान दर्शन चारित्र के साथ मिलकर रत्नत्रय स्वरूप करके छोड देता है। वह रत्नत्रय ही आत्मा का स्वरूप है। सम्पूर्ण मल दोपो से रहित होने के कारण अनंतानत वर्ग स्थान के ऊपर जाकर सब को जान लेता है। इसी तरह अनतानन्त वर्ग स्थान के नीचे उतर कर सर्वोत्कृष्ट असख्यात तक आकर, वहा से जघन्य असख्यात मे उतर कर वहां से पुन. सर्वोत्कृष्ट असख्यात तक आकर और पुन वहा से २ अक तक आकर वहा से गणनातीत होकर एक अक्षर रूप मे होता है। अब कुमुदेन्दु आचार्य इस नवमाक की महिमा का वर्णन करते है ॥३॥

ज्ञानावरण कर्म का सर्वथा क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर अनन्त सुख देने वाला अन्तरग वहिरग लक्ष्मी का आश्रयभूत यह नवमाक है ॥४॥

यह नवमाक जहा भी देखे, सभी जगह पूर्णाङ्क दिखाई देता है नवाक से पहिले के अंक अपूर्ण और मलिन दीख पडते हैं। उन अंको को अपने अन्त-मुंख करके पूर्ण और विशुद्ध बनाने वाला यह नवमाक है ॥५॥

भावार्थ—नव ९ अक से पहिले के अक एक दो आदि सब ही अपूर्ण है क्योकि उनसे अधिक–अधिक सख्या वाले अक मौजूद है। एक नवमाक ही ऐसा है जहा संख्या पूर्ण हो जाती है क्योकि उसके आगे कोई अक ही नही है। यह नवमाक पावन और परिशुद्ध है ॥६॥

विश्व भर मे व्याप्त यह नवमाक है ॥७॥

हजार, लाख आदि गिनती मे भी नवमाक है ॥८॥

पावन सूच्यग्र मे भी नवमाक है अर्थात् छोटे से छोटे भाग मे भी नवमाक है और बडे से वडे भाग मे भी नवमाक है ॥९॥

श्री विश्व अर्थात् अंतरङ्ग विश्व में भी नवमाङ्क है ॥१०॥

हजारो करोडो आदि रूप से रहने वाला नवमाङ्क है ॥११॥

जन्म मरण जिस प्रकार परस्पर सापेक्ष है, वैसे ही नवमाक की अपेक्षा अन्य सभी अङ्क रखते हैं। मरण अन्त को कहते है, संख्या का अन्त-मरण, नवमाक प्राप्त हो जाने पर हो जाता है। नवम अङ्क प्राप्त हो जाने के बाद ही संख्या का जन्म हो जाता है अर्थात् ९ के बाद एक, दो वोले जाते है इसी-लिए जन्म मरण रूप दोनो अवस्थाओ मे नवमाक रहता है ॥१२॥

सुख दुःख दोनो मे नवमाक काम आता है ॥१३॥

छद्मस्थ की बुद्धि के अगम्य नवमाक की गम्भीरता है ॥१४॥

श्री वीर भगवान का ज्ञान-गम्य यह नवमाक है ॥१५॥

कर्म वन के लिए दावानल के समान जलाने वाला नवमाक है ॥१६॥

ऋषि-सूत्र द्वादशाग नवमाक से बद्ध है ॥१७॥

समस्त विद्याओ का साधक नवमाक है ॥१८॥

वाणी को पवित्र करने वाला नवमाक है ॥१९॥

विश्व का रक्षक यह नवमाक है ॥२०॥

विश्व मे व्याप्त नवमाक है ॥२१॥

श्री वीर भगवान का सिद्धान्त नवमाक है ॥२२॥

श्री वीरसेन आचार्य का सिद्धान्त नवमाक है ॥२३॥

हमारा (कुमुदेन्दु आचार्य का) सिद्धान्त नवमाक है ॥२४॥

इन सब ९ अङ्को का रक्षक भूवलय है ॥२५॥

यह नवमाक वरद हाथ के समान है, नव पद पच परमेष्ठियों का इष्ट है, सरस साहित्य के निर्माण मे प्रधान है। क्षायिक नव केवल लब्धि (क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य) प्रदान करने वाला है ॥२६॥

रत्न हार की मध्यवर्ती प्रधान मणि के समान ही गणित का यह अङ्क प्रधान अक (नव ९) है। ३ अक को ३ अक से गुणा करने पर यह नवमाक होता है। सौ, हजार, लाख, करोड आदि जितनी सख्या है उनमे एक संख्या घटा दी जाय तो नौ अंक ही सर्वत्र दिखाई पडता है। जैसे १०० मे से १ घटा देने से ९९ हो जाता है, १००० मे से १ घटा दे तो ९९९ हो जाता है, १०००-०० मे से १ घटा दे तो ९९९९९ हो जाता है, १००००००० मे से १ घटा दे तो ९९९९९९९ हो जाते है ॥२७॥

१००००००००००००००००००००
—१

९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९

केवलज्ञान आदि ज्ञान ऋद्धि- जंघा आदि से आकाश में गमन करा देने वाली चारण-ऋद्धि और अणिमादिक अतिशय प्रदान करने वाली समस्त ६४ ऋद्धियो की सिद्धि कर देने वाला यह नवमांक है। सदा साथ-साथ रहने वाला दिव्य विद्या रूप यह नवमांक है। अध्यात्म-सिद्धि का साधन करा देने वाला नवमांक है। अष्ट कर्मों को नष्ट कर देने वाला नवमांक है। अथवा शुद्ध कर्माटक भाषा का महानकाव्य है। अथवा घाति-कर्मों के नष्ट हो जाने के बाद बचे हुए ८५ अर्थात कर्मों का वर्णन करने वाला यह काव्य है। इसलिए (१) शुद्ध कर्माटक है ॥२८॥

यशस्वती देवी द्वारा बोली जाने वाली प्राकृत भाषा १, लिपि २, रस भरी सरस नित्य संस्कृत भाषा ३, अस्मान् द्राविड़ा ४, (१ कानड़ी, २ तामिल, ३ तेलङ्गी, ४ मलेयाल और ५ तुलु) इन पांच भाषाओं को पंच द्रविड़ भाषा कहते हैं ५, महाराष्ट्र ६, गुर्जर ७, अंगद ८, कलिग ९, काश्मीर १०, काम्भोज ११, हम्मीर १२, शौरसेनी १३, रुहाली (पाली) १४, तिब्बत १५, वेंगी इत्यादि सात सौ भाषाये है। बंग १६, विषहर ब्राह्मी। नेमि विजयार्द्ध १७, पद्म १८, वैधर्भी १९, वैशाली २०, सौराष्ट्र २१, खरोष्ट्र २२, नीरोष्टा २३, अपभ्रंशिका २४, पैशाची २५, रक्ताक्षर २६, ऋष्ट २७, कुसुमाजी २८, सुमनाजी २९, ऐन्द्रध्वजा ३०, रसज्वलज ३१, महा पद्म ३२, अर्द्ध मागधी ३३। यहां तक ५८ श्लोक हो गये। आगे ५९ श्लोक से लिखेंगे ॥२९ से ५८ तक ॥

३४ आरस, ३५ पारस, ३६ सारस्वत, ३७ बारस, ३८ वीर वश, ३९ मालव, ४० लाट (लाड देश में इस भाषा के अनेक भेद है) ४१ गौढ (गौड़ देश के पास रहने वाले मागध), ४२ मागध के बाहर का देश विहार, ४३ नौ अक्षर वाले, ४४ कान्य-कुब्ज, ४५ बराह (वराड), ४६ ऋद्धि प्राप्ति को कर देने वाले वैश्रवण, ४७ शुद्ध वेदान्त भाषा तथा दो ढाई हजार वर्ष पहिले की संस्कृत भाषा को गीर्वाण भाषा कहते हैं। भूवलय के श्रुतावतार नामक दूसरे खण्ड के संस्कृत विभाग में गीर्वाण इसी को कहा है।

ऋग्वेद ऋषिमंडल स्तोत्र आदि इसी भाषा द्वारा श्री भूवलय में कहे गये है।

जिस देश में जो भाषा बोली जाती है, वह उसी देश में लोगों का उपकार करती है और उसे "संदर्भ" कहते है। ४८ 'चित्रक भाषा' (चित्रों द्वारा कही जाने वाली भाषा) अर्थात् चित्र बना कर अपना अभिप्राय बताना, सब देश मे सफल रूप से लोगों का उपकार करती है। जैसे कि—चीनी भाषा चित्र भाषा है। कहीं लोगों में परस्पर गाली गलौज हो गयी तो वहां वाले अपने सामने दो स्त्रियों का चित्र लिख देते है। यदि 'मारपीट हो गई' यह कहना होता है तो तीन अर्थात् बहुतसी स्त्रियों का चित्र बना देते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि स्त्री का स्वभाव सब देशों में एक जैसा रहता है। जहां दो स्त्रियां इकट्ठी हुईं कि बातों-बातों में गाली देने लगती है और जहां तीन आदि ज्यादा एकत्र हुईं तो मारपीट भी करने लगती हैं। इसीलिए चित्र में २-३ आदि स्त्रियां दिखाते है।

भगवान ऋषभदेव ने अपनी बड़ी पुत्री को जो लिपि (अक्षर विद्या) दहिने हाथ की हथेली पर लिख कर सिखाई थी उसमें जो अक्षर हथेली के सीधे मार्ग पर लिखे गये थे उनका आश्रय लेकर बोली जाने वाली भाषा एक प्रकार की हुई और हथेली के निम्न भाग में लिखी गई लिपि (अक्षर) का आश्रय लेकर जो भाषा बोली गई वह दूसरी प्रकार की भाषा हुई। इसी प्रकार दक्षिण देश के भिन्न-भिन्न भागों में बोली जाने वाली आठ भाषाये है।

अथवा—

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाय सूरासेनीय।
छट्टोत्तर भेदाहिदेशविशेषादपभ्रंशः॥

अर्थ—प्राकृत, संस्कृत, मागध, पिशाच, शौरसेनी तथा अपभ्रंश इन मूल ६ भाषाओं का ३ से गुणाकार करने पर १८ महाभाषाऐ क्रम से होती हैं ॥९५ ९६॥

पुनः—कर्णाटक, मागध, मालव, लाट, गौड और गुर्जर इन मूल ६ भाषाओं का ३ से गुणा करने पर १८ महाभाषाये हैं ॥९७॥

इस रीति से दिगम्बर जैन आचार्यों के संघ भेद के कारण काव्य रचना को पद्धति सरणी तथा शैली आदि बदलती रहती हे किन्तु यह परिवर्तन हमे यहा इष्ट नही है अपितु भगवान ऋपभनाथ ने अपनी सुपुत्री सुन्दरी को जो कभी न बदलने वाली अंक विद्या सिखलाई थी, वही अक विद्या हमे यहा इष्ट है ।।९८।।

क्योंकि नवमाक विद्या सदा एक हो रूप मे स्थिर रहती है, इस कारण अनुलोम प्रतिलोम पद्धति द्वारा नवमाक से भूवलय सिद्धान्त की रचना हुई है ।।९९।।

जगत मे प्रचलित हजारो भापाओ को रहने दो । भगवान महावीर की वाणी नवमाक में व्याप्त होने के कारण नवमाक पद्धति से ७१८ भाषाओ का प्रगट होना क्या आश्चर्यजनक हे ? ।।१००।।

इसी प्रकार ऊपर कहे अनुसार ४६ भाषाओ के अलावा और भी भापा तथा लिपि कुमुदेन्दु आचार्य उद्धृत करते है—

हंस, भूत, वीरयक्षी, राक्षसी, ऊहिया, यवनानी, तुर्की, द्रमिल, संवव, मालवणीय, किरीय, नाड्डु, देवनागरी, वैविध्यन, लाड, पारसी, आमित्रिक, भूवलयक, चाणक्य, ये ब्राह्मी देवी की मूल भापाये है। ये सभी भापाये श्री भगवान् महावीर की वाणी से निकल कर भूवलय रूप वन गयी हैं।

यह सुन्दरी देवो का भूवलय है ।।११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२० ।

इस ससार (विश्व) मे सात सौ क्षुद्र भापाऐ है, उन सब भापाओ की लिपि नही हैं। शेप भापाओ को वोलने वाले कही किसी प्रदेश में रहने वाले हैं। किसी देश मे क्षुद्र भापा बोलने वाले प्राणी नही है जहा हो वहा भाषा भी उत्पन्न हो सकती है। जो भापा जहा उत्पन्न होने वाली है उसको वहा के प्राणी जान सकते हैं। क्योकि यह भूवलय ग्रन्थ त्रिकालवर्त्ती चराचर वस्तु को देखने वाले महावीर भगवान की वाणी से निकला है। इसलिए इससे जान सकते है ।।१२१।।

अर्हन्त भगवान की वाणी को सर्व-भापामयी भापा कहते हैं। सम्पूर्ण जगत मे जो भाषाएं है वे सभी भगवान महावीर की वाणी से बाहर नही। अत' अर्हन्त भगवान की दिव्य भाषा को विश्वविद्याभापिणी भी कहते हैं। इस भूवलय ग्रन्थ मे चौसठ अक्षर होने के कारण विश्व की सर्व विद्याओ की प्रभा निकलती है। इसलिये विविध भापाओ को कुमुदेन्दु आचार्य ने अंक मे वद्ध कर दिया हे ।।१२२।।

स्वर्गो मे प्रचलित भापा को दिव्य भापा कहते है। उन सब भाषाओ की एक राशि वनाकर के गणित के बंध से बाधते हुए जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी सात सौ भापाओ मे मिलती हुई धर्मामृत कुम्भ मे स्थापित हुई हे ।।१२३।।

इस कुम्भ मे समावेश हुई सव भापाओं मे रहने वाले पदो को गुणा करके बुद्धिमान दिगम्बर जैन ऋपि जव अठारह भापा के लिपिवद्ध के महत्व को तपोवन मे अध्ययन करते हैं तव उनके हृदय को शान्ति मिलती है'।।१२४।।

इन महिमामयी लिपियों को अपने हाथ में लेकर महा ऋद्धि-प्राप्त ऋषियों ने सुन्दर काव्य रूप वनाया है। वर्तमान अतीत और अनागत काल मे होने वाली सव भापाओ के अक इसमे है ।।१२५।।

किस भापा मे कितने अंक है और कितने अक्षर हैं इन सब को एक साथ आचार्य जी ने कैसे एकत्रित किया। इन शंकाओं को समन्वय रूपात्मक सिद्धान्त रूप से उत्तर कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।।१२६।।

इस भूवलय ग्रन्थ मे सर्वोपरि रहने वाला जो नौ अक हे, वह विश्व का आधिपत्य करने वाला हे ।।१२७।।

श्री भगवान महावीर की अनक्षरी वाणी इन्ही नौ अंक रूप में थी ।।१२८।।

शका अनेक प्रकार की होती है। शंका मे शका ही उत्तर रूप से अर्थात् पूर्ण से उत्तर न मिलने वाला और उत्तर मिलने वाला इत्यादि रूप से अनेक समाधान होते है। उन सवका ।।१२९।।

जिस जगह मे शका उत्पन्न होती है उसी जगह मे समाधान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।।१३०।।

इस भूवलय में स्वसमय-वक्तव्यता, परसमय-वक्तव्यता और तदुभय-वक्तव्यता ऐसे तीन प्रकार की वक्तव्यता का अर्थ प्रतिपादन करना है। स्वसमय

का अर्थ आत्म-द्रव्य है। स्वसमय वक्तव्यता में केवल आत्म द्रव्य का कथन है। पर-समय का अर्थ पुद्गल आदि द्रव्य है। उसका जहां वर्णन हो उसे 'पर-समय वक्तव्यता' कहते है। जिसमे 'स्व' यानी आत्म-द्रव्य की और पर पुद्गल द्रव्य की बात आई हो उसे उभय वक्तव्यता कहते है।

इन तीनो तरह की वक्तव्यताओं मे से इस भूवलय ग्रन्थ में स्वसमय-वक्तव्यता की प्रधानता है ॥१३१॥

यह भूवलय—सहज अंकमय काव्य को उत्पन्न करने वाला है ॥१३२॥

इस भूवलय ग्रन्थ को सबसे पहले गोम्मट देवने प्रकट किया था ॥१३३॥

यह भूवलय ग्रन्थ समस्त जीवों के लिए अध्यात्म विद्या को प्रगट करने वाला है ॥१३४॥

इसके सिवाय और भी समस्त प्रकार की विद्याओं को सिखलाने वाला है ॥१३५॥

मरण को जीतकर नित्य जीवन देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१३६॥

इस भूवलय में जो चक्रांक है सो सब धवल बिन्दु के समान हैं ॥१३७॥

श्री स्वयम्भू भगवान के बताए गए हुये ६३ अथवा ६४ अक्षर प्राकृत भाषा में तथा संस्कृत भाषा मे विद्यमान है ॥१३८॥

ये सभी अक्षराङ्क पवित्र है और विश्व को नापने वाले है। इन अक्षरों को परस्पर संयोगात्मक करके अनेक प्रकार के बन्धनों मे बाँध कर चक्राकार पद्म रूप मे बनाने वाला यह भूवलय है। चक्र के भीतर २७×२७ = ७२९ आरे बनते है ॥१३९॥

इस भूवलय काव्य को आदिनाथ भगवान ने श्री ब्राह्मी देवी की हथेली में लिख कर प्रगट किया था ब्राह्मी देवी की हथेली अत्यन्त मृदु थी इसलिए यह भूवलय भी अतिशय कोमलरूप है। उपर्युक्त अक्षरों को गुणाकार रूप में लाकर रत्नहार की भाति उनसे गुंथा हुआ यह भूवलय काव्य है। इस भूवलय ग्रन्थ को श्री भगवान ने ब्राह्मी देवी की हथेली में लिखा था और कागज, कलम तथा स्याही की सहायता के बिना सिर्फ अपने अंगुष्ठ से लिखा था और आठ-आठ अक्षरों वाली आठ पंक्तियों में लिखा था जो कि लेख कहलाया। इसलिए उसका दूसरा नाम 'खरोष्ठ' पड़ गया ॥१४०॥

इसी ६४ अक्षर मय काव्य-बन्ध को श्री ऋषभदेव भगवान ने सुन्दरी की हथेली मे एक आदि नौ अकों मे गर्भित करके लिखा था जिन नौ अंकों को पहाड़ो के प्रस्ताव रूप में करने से उन में विश्व भर को महिमा आजाती है जिस की लिपि अंक गणित कहलाती है ॥१४१॥

अथवा प्राकृत स्स्कृतमागधापिशाचभाषाश्च।
षष्ठोत्तर [९५] भेदो देशबिशेषादपभ्रंशः। [९६]
कर्णाटमागधमालवलाटगौडगुर्जरप्रत्येकत्रय–
मित्यष्टादशमहाभाषा [९७]
सर्वभाषामयीभाषा विश्वविद्यावभासिने ।११२।
त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वावर्णाः शुभमते मताः ।
प्राकृते संस्कृते चा [१३८] पिस्वयं प्रोक्ताःस्वयम्भुवा ।१३९।
अकारादिहकारान्तां शुद्धां मुक्तावलीमिव ।
स्वरव्यंजनभेदेन द्विधा भेदमुवैयु-।१४२।षीम् ।
अयोगवाहपर्यन्तां सर्वविद्यासु सङ्गताम् ।
आयोगाक्षर सम्भूतिं नैकबीजाक्षरैश्चि-[१४३] ताम् ।
समवादी दधत् ब्राह्मोमेधाविन्यपि सुन्दरी ।
सुन्दरी गणितस्थानं क्रमैः सम्यगधास्यत ॥१४४॥
तातो भगवतोवक्त्रा निःसृताक्षरावलीम् ।
नम इति व्यक्तांसुमंगलां सिद्ध मातृकाम् ॥१४५॥

अर्थ—भगवान ऋषभनाथ के मुख से प्रगट हुए अ कार से हकार तक अयोगवाह अक्षरों (क ख प् फ़) सहित शुद्ध मोतियों की माला की तरह वर्ण-माला को ब्राह्मी ने धारण किया। जो (वर्णमाला) कि स्वर और व्यंजनों के भेद से दो प्रकार है, समस्त विद्याओं से संगत है, अनेक बीजाक्षरों से भरी हुई है, नमःसिद्धेभ्यः से प्रगट हुई सिद्धमातृ का है। भगवान ऋषभ नाथ की दूसरी पुत्री सुन्दरी ने क्रम से ९ अंकों द्वारा गणित को मोतियों की माला को की तरह धारण किया।

ब्राह्मी देवी वृषभनाथ भगवान की बडी पुत्री होने के कारण ब्राह्मी लिपि को ही पहली लिपि माना गया हे। दूसरी लिपि यवनाक लिपि है ऐसा अन्य आचार्यों का भी मत हे ॥१४६॥

"दोषउपरिका तीसरी भाषा है, वराटिका (वराट) चौथी है। सर्व-जी, अथवा खरसापिका लिपि पाचवी है। प्राभृतिका छटी है ॥१४७॥

उच्चतारिका सातवी है, पुस्तिकाक्षर आठवी है, भोगयवत्ता नौवी है। षेदनतिका दशवी हे। निन्हृतिका ११ वी, सरमालाक १२वी, परम गणिता १३ वी है, १४ वी गान्धर्व, १५ आदर्श, १६ माहेश्वरी, १७ दामा १८ बोलिदी ये सब अङ्क लिपिया जाननी चाहिए ॥१४८॥

दिगम्बर मुनियो के संघ भेद के कारण भाषाओ मे भी भेद देखने मे आया है। परन्तु इन मे भेद रूप समझकर परस्पर विरोध रूप मे ग्रहण नही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जितनी भी प्रचलित भाषाये है उनमे भेद मानना चाहिए ॥१४८—१६०॥

ऊपर कही हुई बातों को नारकी जीव, तिर्यंच जीव नही जानते है। परिशुद्ध अंक को देवता लोग, मनुष्य जान सकते है। कोई लिपि न होने पर भी ध्वनि शास्त्र के अवलम्बन से केवल नौ अंको से ही लिख सकते है कह भी सकते है और सुन सकते है, ऐसे सरसाक लिपि को अक्षर लिपि रूप मे परिवर्तन कर सकते है ॥१६१॥

विवेचन—श्री भूवलय ग्रन्थ मे एक भी अक्षर नही है १ से लेकर ६४ तक अङ्क रूप मे रहने वाले १२७० चक्र हैं। उन चक्रो के द्वारा १६००० अंक चक्रो को निकाला जाता है।

भगवान ऋषभनाथ ने यशस्वती और दोनो पुत्रियो ब्राह्मी, सुन्दरी को अक्षर तथा अंक पद्धति से भूवलय पढाया था। उनकी देशभाषा मे आने वाला काव्य रस, शब्द रीति आदि जो उस समय थी उसको हम आज भी भूवलय द्वारा पढ सकते है। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते है ॥१६२॥

विवेचन—यह भूवलय ग्रन्थ आधुनिक शैली में लिखा गया है अतः आज कल के विद्वान इसको दशवी शताब्दी का मानते है अथवा अमोघवर्ष नृपतुग [illegible] ोक भवलय में

मिलते हैं। अत. यह सर्व भाषामय न होकर यदि एक ही भापा मे होता तो उसी के अनुसार इसका प्रचार हो सकता था। ऐसा कुछ लोग कहते हैं परन्तु अनेक भाषायें कनडी से सम्मिश्रित होकर गणित रूप से उनका प्रादुर्भाव होता। दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु ने अपने स्वतन्त्र अनुभव द्वारा यद्यपि इस भूवलय की रचना की है फिर भी यह काव्य परम्परा से भगवान जिनेन्द्र देव के मुख से प्रगट हुए शब्दों मे से चुन कर बनाया गया है। इस तरह प्रामाणिक परम्परा से यह भगवान की वाणी रूप काव्य है। चौथे काल मे भी यह अकमयी भाषा थी। इसलिए आचार्य कुमुदेन्दु 'उस काल की भाषा को भी गणित से ले सकते है, ऐसा लिखा है।

यशस्वती देवी की छोटी बहिन सुनन्दा के गर्भ से पहले कामदेव बाहु-बली का जन्म हुआ। वे काम शास्त्र तथा आयुर्वेद के ज्ञाता थे। किन्तु उन्होंने उन दोनो विषय में त्याग तथा रस सिद्धि को बतलाया ॥१६२॥

श्री गोम्मटदेव (बाहुबली) कामदेवो मे पहले कामदेव (अपने समय मे सबसे अधिक सुन्दर) थे। इसके सिवाय वे प्रथम केवली भी थे, अतः उनको हमारा नमस्कार हो।

प्रश्न—भगवान ऋषभनाथ को बाहुबली से पहले केवल ज्ञान हुआ था, अत· बाहुबली को प्रथम केवली कहना उचित नही।

उत्तर—बाहुबली भगवान ऋषभनाथ से पहले मुक्त हुए है अतः उनको प्रथम केवली कहा गया है।

सुन्दरी ने अपने पिता से भी २५ धनुष अधिक ऊंचे अपने भाई बाहु-बली को देखकर भक्ति की ओर जगत मे यही सबसे अधिक विशानकाय परमात्मा है, ऐसा अनुभव किया ॥१६४॥

सुन्दरी देवी ने अपने बडे भाई से चक्रवन्ध गणित को जाना और १० के भीतर ९ अंक को गर्भित हुआ समझा ॥१६५॥

उस गणित के मानचित्र (छबि) में अन्तर्भूत सत्माक है ॥१६६॥

समस्त कामदेवों मे प्रथम बाहुबली द्वारा कहा हुआ यह अंक है ॥१६७॥

जन्म मरण रूपी भवभय को हरण करने वाला यह अंक है ॥१६८॥

उन अंकों में प्रतिलोम अंक को स्थापित करना, उसके ऊपर अनुलोम अंक को स्थापित करना ॥१६९॥

उन दोनों को जोड़ देने पर नौ बार १-१ तथा एक बिन्दी आती है ॥१७०॥

इस रीति से नवकार मंत्र एक ही है ॥१७१॥

दिगम्बर मुनियों का धर्मांक १ है ॥१७२॥

इस रीति से मृदु-काव्य रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१७३॥

अनुलोम १२३४५६७८९
प्रतिलोम ९८७६५४३२१
१११११११११०

इस रीति से जो १० अंक आये वह दस धर्म का रूप है इसलिए वह परिपूर्णांक ९ में गर्भित है। वह कैसे ? समाधान-बिन्दीको छोड़ देने से ९ रह गया। इस प्रकार परिपूर्णांक ० से बना यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१७४॥

शेष ७०० भाषाऐं अंकों द्वारा लिखे हुए होने के कारण अनक्षरी भाषाऐं है। द्रव्य प्रमाणानुगम के ज्ञाता दिगम्बर मुनि उन भाषाओं को जानते हैं। उनके ज्ञान को आगे दिखावेंगे। ऐसा प्रतिपादन करनेवाला यह कर्माटक भूवलय हैं ॥१७५॥

बाहुबली, ब्राह्मी ओर सुन्दरी ने जो अपने पिता भगवान ऋषभनाथ से ६४ अक्षर तथा बिन्दी सहित ९ अंक सीखे थे, उसे अब बतावेंगे ॥१७६॥

उस सबको पहाड़े रूप गणित से जाना जा सकता है ॥१७७॥

यह सब गुरु-परम्परा से आया हुआ गणित है ॥१७८॥

पाँच परमेष्ठियों से अर्थात् ५ से गुणा किया हुआ यह गणित अंक है ॥१७९॥

सबसे पहले तीर्थंकरों ने इसे सिखाया ॥१८०॥

सबसे पहले भगवान ऋषभनाथ ने इस गणित को सिखाया ॥१८१॥

फिर भगवान अजितनाथ ने इसका प्रतिपादन किया ॥१८२॥

तत्पश्चात् देवों द्वारा वन्दनीय श्री अभिनन्दननाथ तीर्थंकर ने इसे बतलाया ॥१८४॥

देव, मनुष्यों द्वारा पूज्य श्री सुमतिनाथ ने इसे कहा ॥१८५॥

तत्पश्चात् श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ने इसको बतलाया ॥१८६॥

श्री सुपार्श्व नाथ तीर्थंकर धर्म प्रचार करके अन्त में शेष कर्म क्षय करके मोक्ष चले गये। नारकी जीव इनकी वाणी को स्मरण करते हैं ॥१८७॥

चन्द्रप्रभतीर्थंकर की दिव्य ध्वनि सुनकर उन्हें 'चन्द्रशेखर' अथवा 'शिव, गुरु लिंग' इत्यादि नामों से पूजते है ॥१८८॥

इसी प्रकार पुष्पदन्त और शीतलनाथ भगवान का उपदेश क्रम समझना चाहिए ॥१८९॥

श्री श्रेयांश तीर्थंकर का भी यही क्रम है ॥१९०॥

श्री वासुपूज्य का क्रम भी यही है ॥१९१

श्री अरहनाथ तीर्थंकर, विमलनाथ, और अनन्तनाथ का भी यही क्रम रहा ॥२९२॥

श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ का क्रम भी इस तरह है ॥१९३॥

श्री कुंथुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ तीर्थंकर का भी यही क्रम है ॥१९४॥

श्री मुनिसुव्रततीर्थङ्कर का क्रम भी इसी तरह था ॥१९५॥

श्री नमि और नेमिनाथ तीर्थङ्कर का क्रम भी इसी प्रकार समझना चाहिए ॥१९६॥

और पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर तथा श्री वर्द्धमान तीर्थङ्कर का क्रम भी इसी प्रकार था ॥१९७॥

इस प्रकार चौबीस तीथङ्करों ने भूवलय को रचना (अपनी दिव्य-ध्वनि द्वारा) की थी इसलिए यह भूवलय ग्रन्थ की परिपाटी प्रमाण रूप में अनादि काल से चली आई है ॥१९८॥

अब इस पांचवें अध्याय को कुमुदेदु आचार्य संकेत रूप करते हुए अंक से सम्पूर्ण विषयों को बतलाते है। इसी अंक से इस अध्याय के समस्त अंक का

वाहुवली ने अपनी तरुण अवस्था मे इस भूवलय काव्य मे गर्भित अन्तर काव्य का परिज्ञान कर लिया था। ६००२१ अथवा १२०६ यह अक ६४ अक्षर का ही भग है, इससे अत्यन्त सुन्दर सरस काव्यागमरूप भूवलय निकल आता है। इस लिए इस अध्याय का नाम "ई" अध्याय लिखा है ॥१९९॥

जगत के अग्र-भाग मे सिद्ध समुदाय है। जोकि तीन लोक रूपी शरीर के मस्तक स्वरूप है। इसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी मस्तक के समान महत्व-शाली है ॥२००॥

जिन मार्ग का अतिशय मानकर स्वीकार करने से नव पद सिद्धि के घन मर्म रूपी पाचवा अध्याय भूवलय नामक काव्य श्रेणी मे ग्यारहवां चक्र है। इसके सब अक्षराक ८०१९ है। २०१

पाँचवे "ई" ८०१९॥+अन्तर २२००६=२००२५

अथवा अ–ई ६४, ८२७+ई २०, ०२५= ८४, ८५, २।
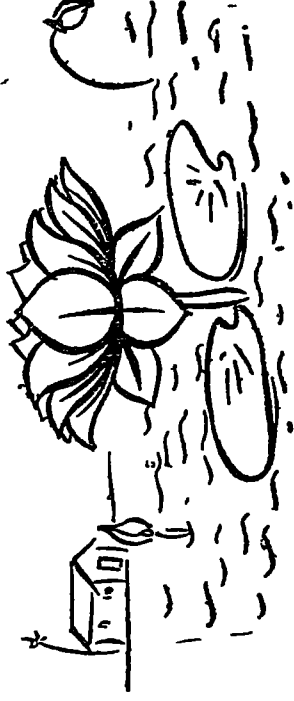
जो इस अध्याय मे श्रेणी-बद्ध प्राकृत गाथा निकलती है उस गाथा को और उसका अर्थ यहाँ दिया जाता है।

"ऊपर कहे हुए" अनुसार यह भूवलय ग्रन्थ आचार्य परम्परा से चला आया है उन सव मुनियो की सख्या तीन कम नौ करोड कहते है। उनके द्वारा कहे हुए इस भूवलय ग्रन्थ को समस्त भव्य जीव अध्ययन करे, सुने और मनन करे। इसका भक्ति तथा त्रिकरण शुद्धि-पूर्वक अध्ययन करने से इस लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति होती है अन्त मे मोक्ष प्राप्त होती है।

मध्यम श्रेणी के सस्कृत काव्य का अर्थ:—

यह भूवलय काव्य पढने से समस्त कर्म रूपी कलंक नाश होकर श्रेयोमार्ग की प्राप्ति होगी। सदा धर्म का सम्बन्ध तथा अभ्युदय को देने वाला यह काव्य है। एवं हमेशा भव्य जीवो को प्रतिबोध करने वाला यह भूवलय काव्य है।

छटा अध्याय

अ* रि गरण सुन्दरणानागत हिन्दरण । सागिद कालवेल्लरली ॥ सागु तका* णुव सर्वज्ञदेवन । योगव काव्य भूवलय ॥१॥
स* वंज्ञदेवनु सर्वागदिम् पेळ्द । सर्वस्व भाषेयस र* रिण ॥ पर्वदन्ददलि हव्बुत होगि लोकाग्र । सर्वार्थसिद्धि वळसि ॥२॥
मु* क्तियोळिह सिद्ध जीवर तागुत । व्यक्ताव्यक्तवदागि ॥ स क* लवु कर्माटदणुरूप होन्दुत । प्रकटदे ओम्दरोळ् अडगि ॥३॥
ह* दिनेन्दु भाषेयु महाभाषेयागलु । बदिय भाषेगळ् एळ्नूर म* ह्ल दयदोळडगिसि कर्माट लिपियागि । हुदुगिसिदन्क भूवलय ॥४॥
ग* रुड गान्धर्व किन्नररु किम्पुरुषरु । नरक तिर्यंच पु* ळिन्द ॥ नररू देवतेगळनक्षर भाषेय । तिरुगिसि गणिसळु बहुदु ॥५॥
ग* मकद कलेयोळु तोर्ष वय्विध्यद । सम् विषमान्कद आग ण* य ॥ विमलव समलव क्रम मूरमग्गिय । गमकदि तिळियलु बहुदु ॥६॥
ह* कसेरलेन्टेण्दु समगळएरड कूडे । सकळवु विषम एळुव य* ॥ हकद वन्धद बन्ध पाहुड भेदव । नकलन्क सूक्षात्क दरिविम् ॥७॥
प्रकटिसलध्यात्म योगि ॥८॥ सकलद्वि सम्योग भंग ॥९॥ विकलांक सम्योग भंग ॥१०॥ सकलवु अपुनरुक्ताँक ॥११॥
निखिल द्रव्यागमदंग ॥१२॥ ओक्टि ओम् ओण्णु ओम् अंक ॥१३॥ प्रकटित सर्व भाषांक ॥१४॥ विकलवागिहसर्व बंध ॥१५॥
सकल नोसर्व उत्कृष्ट ॥१६॥ अकलंक अनुत्कुरुष्ट बंध ॥१७॥ निखिल जघन्य अजघन्य ॥१८॥ सकलवु सादि अनादि ॥१९॥
सकलवु ध्रुव अध्रुवांक ॥२०॥ निखिलवु बंध स्वामित्व ॥२१॥ शकमय बंधद काल ॥२२॥ प्रकट बंधांतर काल ॥२३॥
हक बंध सन्निकर्षांक ॥२४॥ शक भंगविचय विभाग ॥२५॥ सकल भागाभाग क्षेत्र ॥२६॥ निखिलद परिमाण स्पर्श ॥२७॥
सकल कालांतर भाव ॥२८॥ सकलांक अल्पबहुत्व ॥२९॥ सकल बंधद नाल्कु गुणित ॥३०॥
व* रद प्रकृरुति स्थिति अनुभाग सरणिय । सरिय प्रदेशद् प* रकृति॥ विरचित गुणकार'एन्टेन्दु'बन्दुद। मरळि अदम् 'एन्ट'रिंद ॥३१॥
य* शदिन्द गुणिसलु बर्पएळ्नूर्र । वशदोळ्उन्आल्क र* कळेये ॥ यशस्वति देविय मगळरिदेळ्नूर । पशु देव नारक भाषे ॥३२॥
ण* वदन्दद ई भाषेगळेल्लवु । अवतरिसिदि कर्मदाट ॥ सब का* येन्देन्नदे सवियागिसिकोन्डत्रि वरद काव्य भूवलय ॥३३॥
म* नुमथनरवत्त नाल्कुकलेय बल्ल । जिन धर्मदनुभवद् श* रधि ॥ घन कर्माटकदादियोळ् बहभाषे । विनयत्व वळवडिसिहुदु ॥३४॥

$88 \times 8 = ७०४ - ४ = ७००$ ।

सुनयदुर्नयवडगिहुदु ॥३५॥ जिन धर्मवदु मानवर ॥३६॥ तनुवनेल्लव होक्इ बहुदु ॥३७॥ मनदोषवनु कोल्लुवुदु ॥३८॥
घन भाषेगळ लेक्कबहुदु ॥३९॥ धनद सम्पदवेल्ल बहुदु ॥४०॥ मनुजर मोक्षकोय्युवुदु ॥४१॥ तनियाद भाषेगळिहुदु ॥४२॥
कोनेगे मतगळकूडिपुदु ॥४३॥ जिनमार्गदणुव्रत बहुदु ॥४४॥ घनवादेळ्नूर्हदिनेन्दु ॥४५॥ जिन वर्धमान भाषेगळ ॥४६॥
ननेकोनेपोगिसुव भाव ॥४७॥ जिनर भूवलयदोळि हुदु ॥४८॥ घनकले अरवत्तनाल्कु ॥४९॥
तनगे ताने तन्नोळगे ॥५०॥ जीवि सितुम् बिरुव भूवलय ॥५१॥
भू* वलयद सिद्धांतद अंकवम् तीविकोन्डा अक्षरद ॥ पाव क* रेल्लर्गे मूरारु मूरर । आ विश्वधर्मवेल्लवनु ॥५२॥
व* शगोन्डु द्वयताद्वय्त (बनेल्लव) अनेकांत । रसदोळु ओम्कारद म* कम् ॥ यशवादक्षरदोत्नदिगे बेसेदिह । होसदादनादिय ग्रन्थ ॥५३॥

ल॰ व मात्रवादरू भेदवम् तोरदे । शिव विष्णु जिन ब्रह्म भू पा॰ भवभय हरिसेम्ब रत्न मूरन्कदे । नवकैलाश वैकुण्ठ ॥५४॥
य॰ शसत्य लोक वीमूरन् कदग्रद । सु सौभाग्य दध्यात्म वनु ॥ प॰ सरिप समवसरण दिंद होरवन्दु । दिशेगळहत्तनु व्यापिसिरुव ॥५५॥
म॰ हावीरवाणि येम्बुदे तत्वमसियागि । महिमेय मंगलवदु प॰ रा ॥ भ्रुहत्वबअणुविनोळ् तोरुव । महिमेयवहिसिहदिव्यप्राभृतद॥५६॥
मह सिद्धि काव्य वेन्देनिप ॥५७॥ सहनेयम् दयेयोडवेरसि ॥५८॥ महिमेय समतावाददलि ॥५९॥ सिहि समन्वयदोडवेरसि ॥६०॥
कहियन् कवम् कळेदिरिसि ॥६१॥ महिय भूवलयदोळ् वहिसि ॥६२॥ सहनेय विद्येयोळ् कूडि ॥६३॥ षहदन्कवदनेल्ल गुणिसि ॥६४॥
महिमेय भाग सम्ग्रहिसि ॥६५॥ इह परवेरडरोळ् कट्टि ॥६६॥ रहमदन्कव नेलेगोळिसि ॥६७॥ वहिसिद धर्मदोळ् इरिसि ॥६८॥
छह खण्डदागम विरिसि ॥६९॥ णहदंक अपुनरक्त लिपि ॥७०॥ टहवद तिरुगिसि बिडिसि ॥७१॥ गहनद विषयव वहिसि ॥७२॥
इहदोळु मोक्षव वहिसि ॥७३॥ अहमीन्दर पदविय सहिसि ॥७४॥ महावीर सिद्ध भूवलय ॥७५॥ महिमेय त्रय्रत्न वलय ॥७६॥
दो॰ षवु हदिनेन्दु राशियागिर्दाग । ईशरोळ् भेद तोरुवुदु ॥ राशि र॰ त्नत्रयदाशेय जनरिगे । दोषवळिद वुद्धि बहुदु ॥७७॥
स॰ हवास सम्सार वागिर्प काल । महिय कळ्तले तोरुवुदु ॥ मह ण॰ णावरणीय दोषवदळियलु । बहु सुखविह मोक्ष बहुदु ॥७८॥
वि॰ ष हरवागलु चैतन्यवप्पन्ते । रससिद्धि अमृतद श॰ क्ति ॥ यशवागे एकान्त हटवदुकेट्टोडे । वशवप्पनन्तु शुद्धात्म ॥७९॥
र॰ तुनत्रयदे आदियद्वैत । द्वितीयवु द्वैत वेम्बन् क॰ तुरुतोयदोळने कांतवेने द्वैताद्वैतव। हितदि साधिसिद जैनांक ॥८०॥
हि॰ रियत्वविवु मूरु सर मणिमालेय। अरहंत हारदरत्न म॰ सरपणियन्ते मूरर मूर ओम्बत्त । परिपूर्ण मूरारु मूरु ॥८१॥
य॰ शदन्कवदरोळगोम्दम् कूडलु । वशदा सोन्नेगे ब्रामह् इ॰ वेसरिन लिपियंक देवनागरियेम्ब । यशवदे ऋग्वेददंक ॥८२॥
म॰ नुजराडुव ऋक्कु दिविजराडुव ऋक्कु । दनुजराडुव ऋक्कु द॰ नद॥ विनयवु गोब्राह्मणेभ्यह शुभमस्तु। जिनधर्मसमसिद्धिरस्तु ॥८३॥
घनद प्राकृत वृद्धिरस्तु ॥८४॥ जिनवर्धमानांक नवम ॥८५॥ एनुवंक लिपिय अक्षाम् श ॥८६॥ एनुव समस्त शून्यांक ॥८७॥
दनुज मनुजरय्क्यदंक ॥८८॥ सनुमत धर्मदय्क्यांक ॥८९॥ अनुदिन बाळ्विके यन्त्र ॥९०॥ मनुजरेल्लर धर्मदंक ॥९१॥
कोनेयादि परिपूर्णदंक ॥९२॥ मनु मुनिगळ ध्यानदक ॥९३॥ कनसिनोळ् शुभदादियंक ॥९४॥ मनुमथराद्यनन्तदंक ॥९५॥
जिनरूप साधनेयन्क ॥९६॥ इननंते ज्योतियाद्यन्क ॥९७॥ घन कर्माटक रिद्धियंक ॥९८॥
तनुविन परिशुद्धदन्कम् ॥९९॥ कोनेयादि ब्राह्मि भूवलय ॥१००॥
सु॰ विशाल गणनेय पूर्वानुपूर्विय । सविषयवागलद्वैत म॰ सवियादियदु पश्चादानुपूर्वियदागे । नवदन्ते कोनेगे अद्वय्त ॥१०१॥
द॰ रुशनज्ञान चारित्रव् मूर रोळ् । परमात्मरूपडगिरला शा॰ सिरि मूर तदुभयवेने यत्रतत्रानु । वर पूर्वेय पुदअद्वय्त ॥१०२॥
ध॰ र्मवदिन्तु समन्वयवागलु । निर्मलव्अद्वय्तअ शा स॰ त्र ॥ शर्मरिगा मूरु आनुपूर्विगेबंदु । धर्मद ऐक्यवनु साधिपुदु ॥१०३॥
म॰ नर्दार्थियिद अनेकांत जय्नर । जिन निरूपितवह शास् त्र॰ र ॥ दनुभय द्वय्त कथन्चिदद्वय्तद । घनसिद्धियात्म भूवलय ॥१०४॥
सनुमत दिव्य सिद्धांत ॥१०५॥ जिन सिद्धरात्म भूवलय ॥१०६॥ कोनेयादियन्क भूवलय ॥१०७॥ घनधर्मदन्क भूवलय ॥१०८॥
जनरिगनन्त भूवलय ॥१०९॥ नेनेदाग सिद्ध भूवलय ॥११०॥ अणुमहान् काव्य भूवलय ॥१११॥ जिनरवाक्यार्थ भूवलय ॥११२॥

मन शुद्धियात्म भूवलय ॥११३॥ तनुविन अतनु भूवलय ॥११४॥ तनगात्म शुद्ध भूवलय ॥११५॥ कनकद कमल भूवलय ॥११६॥

आ* दिगनादिय कालवे निन्नेयु ई दिन नीनु बाळुवुदु ॥ आदियवश र* त्नत्रयगळ साधिप । नादि अनन्तवे नाळे ॥११७॥

ग* मनिसलेल्लरगे सम्यक्त्व रत्नद । क्रमदन्कवधुनास् हु* ट्टि॥ समतेय खड्गदिस् क्रोधमानवगेल्व चिन्नलांकनाळेय दिवस ॥११८॥

म* नद दोषके शास्त्र तनुविन दोषके । घन हृदिमूरु कोटियवश् अ* जिनर वयद्यागम वचन दोषके शब्द । वेनुवत्क मूरु भूवलय ॥११९॥

मि* दु मधुरतेयिंद हृरुदयवाळुवदिव्य । हृदनाद मुदवीश्री व* यण ॥ हृरुदयांक पद्मद दलवेरि नाळेय । हृदनकारणसुवअद्वैत ॥१२०॥

दि* नुविंदु वर्तमान निनेयतीतवु । घननाळे अनागतवा भू* तणवु द्वैताद्वैत जयनव कूडिप । मनुज दिविज धर्मदन्क ॥१२१॥

जिन वर्धमान धर्मांक ॥१२२॥ मनुजरेल्लरिगोम्दे धर्म ॥१२३॥ तनु विनोळात्म सद्धर्म ॥१२४॥ घननाळे इन्दु निनेगळ ॥१२५॥

कोनेयादियन्क मूराए ॥१२६॥ जिन धर्मदैक्या सिद्धांत ॥१२७॥ मनुजरिग् ओम्दे सद्धर्म ॥१२८॥ मनुजर ज्ञानसूत्रांक ॥१२९॥

शरणसदे वाळ्व(सूत्रांक)सम्यक्त्व ॥१३०॥अनुजरागिसुव सन्मन्तर ॥१३१॥ घन विराड्रूप सूत्रांक ॥१३२॥ जिन विष्णु शिव दिव्य ब्रह्म ॥१३३॥

तनयर सलहुव मन्त्र ॥१३४॥ घनबंध पुण्य सद्बंध ॥१३५॥ विनय सद्धर्मद् अहिम्से ॥१३६॥ घनसत्य भद्र भूवलय ॥१३७॥

प* रिशुद्ध व्रतगळम् अणु महान् एन्नुव । हनुमन्त जिन व* ररन्क॥ मुनिसुव्रतर कालदे बंद रामांक । जिन धर्म वर्धमानांक ॥१३८॥

रि* द्धियोळ् श्री वालि मुनिगल गिरियंक । शुद्ध सम्यक्त्व ल* क्षणद॥ बुद्धिरिद्धियोळगण यशद समन्वय । शुद्ध रामायणदंक ॥१३९॥

क* विगे वाल्मीकिय रसदूट उणिसुव । सविये महाव्रतदंक । य* वेय मुच्चुव कालदलि बहदोषव । नवशुद्धिगोळिप दिव्यांक ॥१४०॥

हि* रिय दोषगळिगे अणु व्रतगळनित्तु । हिरिय महाव्रत सि द्धि ॥ धरेगे मंगलदप्राभृतद दर्शनदित्तु परिशुद्धवागिसिदंक ॥१४१॥

य* शस्वति देविय बसिरिन्द वन्दन्क । वशद ब्रह्माण्ड द* अक्षरद॥ रसवनन्गय्य मूलदलि सुरिसिदंक ॥ विषहर नीलकंठांक ॥१४२॥

मृ* नमथ दोर्बलियादिय तंगिगे । घनद् नवमांक दर्शन धा* अनुभव वन्नित्तु जिनरादि ओम्बत्त । तनुजर्गे शून्यदोळ् तोरि ॥१४३॥

जिन धर्मद् ओमबत्तम् सारि ॥१४४॥ जिन स्मार्त विष्णुगळन्क ॥१४५॥ तनुविनोळात्मन तोरि ॥१४६॥

कोनेयलि 'सोन्ने' यागिसुत ॥१४७॥ तनुदोष ओम्दे एन्देनुत ॥१४८॥ सुनय दुर्नयगळ तोरि ॥१४९॥

कोनेगे दुर्नयगळ केडिसि ॥१५०॥ सुनयद अतिशयवेरसि ॥१५१॥ कोनेगे अनेकान्तवेरसि ॥१५२॥

चिनुमयत्वव तनगिरिसि ॥१५३॥ दनुजर हिम्सेयम् बिडिसि ॥१५४॥ जिनमार्ग सुन्दरवेनिसि ॥१५५॥

विनय धर्मांक भूवलय ॥१५६॥

ते* रस गुणस्तथानदन्त के बरुवाग । दारि सम्यक्त्ववेन्दे न* ब॥ सार श्रीजिन वाणियनुभवबन्दाग । नूरुसागरकर्म केडुगु ॥१५७॥

ण* वपददादिय अरहंत ओम्दुम् । अवेरडरलि सिद्धस् त* नवदादि मूरन्क आचार्य नाल्कर । विवर उपाध्याय ऐदु ॥१५८॥

दु* रितद दहनवे साधु समाधिय । सरुव साधुत्व आररलि ॥ बरे ना* ळे सद्धर्म एळन्क आगम परिशुद्ध जिनबिम्ब एन्टु ॥१५९॥

क* विद गोपुर द्वार शिखर मानस्तम्भ । दवनिय बिम्बालय म* नवमवेन्देनुवरु आगम परिभाषे । विवरवे नव पददम् क ॥१६०॥

[illegible] न्द के द्वैत धे* न॥ सरियवरिगे म क्ति भय क्तिय लाभ गुरुपदसिद्धि ईर्वरिंगे ॥१६१॥

या❀ वाग दोरेवुदो आग अनेकांत । ताविन नयमार्ग दोरेये ॥ नावा य❀ श होन्दे जैनत्व लाभद । सावकाशवे हदिनाल्कु ॥१६२॥
आविध योग राहित्य ॥१६३॥ श्री विश्वदग्र वैकुन्ठ ॥१६४॥ कावदे कैलास मुक्ति ॥१६५॥ श्री वीरवाणिय विद्ये ॥१६६॥
नावु बेकेन्नुव सिद्धि ॥१६७॥ कावन्क सत्यद लोक ॥१६८॥ पावन परिशुद्ध लोक ॥१६९॥ सावु हुट्टुगळिल्लदिह श्री ॥१७०॥
भाव अभाव राहित्य ॥१७१॥ नीवुगळाशिप मुक्ति ॥१७२॥ ई विश्व काव्य भूवलय ॥१७३॥

ह❀ रि हर जिन धर्मदरिवु मूरार्मूरु । सरसिजदलदक्षर मू❀ ओम्॥ बरुवन्कगणनेयमूरुकालदोळ् कूडे। परिदुबंदिहकाव्यसिद्धि ॥१७४॥
व❀ शवागे ओम्बत्तु कामदम् जनरिगे। हसिवु बायारिकें निद्र् अ❀ देसेगेद्दु हदिनेन्दु इत्यादि भवरोग। हेसरि ल्लदन्ते होगुवुदु ॥१७५॥
न❀ वदन्क सिद्धियकरण सूत्राक्षर । दवयव सर्ववुव स्❀ य ॥ सविय भाषेगळेन्टोम्देळर वस्य। अवुगळे मूरारुमूरु ॥१७६॥
ति❀ रेयु कालगळु ई बरुव मूरुगळलि । हरिव भव्यर भवदभ य❀ सरुवार्थसिद्धि सम्पदद एरडु भव। परिशुद्ध जीव स्वभाव ॥१७७॥
परदुगेय्यलु बंद लाभ ॥१७८॥ अरहन्त रूपिन लाभ ॥१७९॥ करुणेय मारिद लाभ ॥१८०॥ गुरु हम्सनाथ सन्मार्ग ॥१८१॥
अरहन्त रडरिद मार्ग ॥१८२॥ चिरकालविरुवसौभाग्य॥१८३॥ सरुवराराधित धर्म ॥१८४॥ गुरुपरम्परेयादि लाभ ॥१८५॥
धरसेन गुरुगळ अन्ग ॥१८६॥ हरुष वर्धनरादि भंग ॥१८७॥ मरणकालदेसिद्धकवच ॥१८८॥ हरिहर सिद्ध सिद्धांत ॥१८९॥
अरहन्तराशा भूवलय ॥१९०॥

त❀ त्वार्थ सूत्र महार्थ प्रसन्गद । सत्यार्थ दनुभव मू❀ रु ॥ रत्न प्रकाश वर्धन दिव्य ज्योतिय। तत्व एळ्र समन्वयद ॥१९१॥
च❀ रितेय सान्गत्य रागदोळडगिसि। परितन्द विषयगळेल् ल❀ अरहत मुख पद्मवेने सर्व अनादिम्। होरदु बंदिह दिव्यध्वनिय ॥१९२॥
च❀ दुरिन 'अरी' भूवलय सिद्धांत दोळ्। हुदुगिसि पेळ्ददिव्यआ ग❀ र ॥ पद पददक्षरदंक अंकदरेखे । अदर क्षेत्रगळ स्पर्शनव ॥१९३॥
त्❀ निकाल कालद अन्तर भावद। कोनेगल्पबहुत्व विन्तह र❀ जिन धर्मवदु मानव जीवराशिय । घन धर्मवागिसिदंक ॥१९४॥
मनुजरोळ्यस्य वप्पन्द ॥१९५॥ दिन दिन प्रेम वृद्ध्यंग ॥१९६॥ घन दुष्कर्म विध्वम्स ॥१९७॥ जिन शास्त्र वेल्लर्गेम्बंग ॥१९८॥
विनयवेल्लरिगे समांग ॥१९९॥ जनपद नाडिन संग ॥२००॥ जनरिगय्दने काल (भंग) दंग ॥२०१॥ कोनेगाररोळु इल्लदंग ॥२०२॥
एनुवंगधर ज्ञानरंग ॥२०३॥ जनरिगे [बह अरी] वशवाद धर्म ॥२०४॥

थ❀ ण थण थण वेम्ब द्वैत अद्वैतद। कोनेगे जैनर म न❀ त्र सेरि॥ जिनरेन्दु नाल्केळुएन्दुकाव्याक्षर। घनवाह्नि सन्दरियंक ॥२०५॥
आ❀ गमविदर'अरी'भागदेबंदन्क। रागविरागसाम्राज्य ॥ आगु थ❀ एन्टेन्दु ओम्बत्तु ओम्दोम्दु । तागुवक्षरद भूवलय ॥२०६॥

ई ८७४८+ अन्तर ११९८८=२०,७३६=१८=९ अथवा अ–ई ८४८५२+२०,७३६=१०,५५,८८

पहले श्लोक के श्रेणीबद्ध काव्य—

❀ ईस मुहग्गहवयण भूवलय दोषवि रहियं शुद्धं । आगर्ममिदि परि कहियं तेणदु कहिया हवन्ति तच्चत्था ॥६॥

❀ कानडी काव्य के मध्यमे से निकलनेवाले सस्कृत श्लोक—

कारकं पुण्य प्रकाशक पाप प्रणांशकम् इदं शास्त्र हुअव भूवलय सिद्धांतनामध्येयं अस्य मूल ग्रन्थ............ ॥

छठा अध्याय

विद्यमान वर्तमान काल, आने-वाला अनागत काल, और बीता हुआ अतीत काल, इन तीनों कालो के प्रत्येक समय मे अनंत घटनाये घटित होती है तथा होंगी। उस-उस घटना के समीप जाकर प्रत्यक्ष रूप मे दिखा देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है, तथा त्रिकालवर्ती अरहंत देव के योग को भी दिखाने वाला यह भूवलय है ।।१।।

प्रत्येक शब्द मुख आदि से उत्पन्न होकर अपने कानमे पहुंचने तक बेलके समान बढ़ते बढ़ते लोकाग्र (लोक शिखर) को स्पर्श कर (छू कर) सर्वार्थ-सिद्धि के चारों ओर होकर पुनः समस्त लोक में व्याप्त होते हुए कान को स्पर्श कर स्थिर हो जाता है। अर्थात् किसी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ शब्द संपूर्ण लोकमें घूमकर कान में पहुंचता है। शब्द वर्गणाओंमें इतनी तीव्र गमन करने की शक्ति है। तो श्री सर्वज्ञ भगवान के सर्वाङ्ग से निकली हुई वाणी के तीन लोक में व्याप्त होने में क्या आश्चर्य है ? अर्थात् कुछ आश्चर्य नहीं ।।२।।

विवेचन—अनादि काल से जितने भी शब्द निकले है वे सब कालाणु के साथ आकाश प्रदेश में हमेशा के लिए स्थित है। आगे होने वाले सभी शब्द राशि उन ही कालाणु के प्रदेश में घुसकर मिल जाती है। इस रीति से समस्त शब्द-राशि एक क्षेत्रावगाह रूप से स्थित हो जाती है। इसमे से हमको जिस वस्तु का नाम-निर्देश शब्द चाहिये उस को महर्षि गण अपनी योग दृष्टि से जानकर सूत्र रूप में रचना कर लेते हैं। उसको ज्ञापक सूत्र अथवा प्रज्ञापक सूत्र कहते हैं। उसके विस्तार रूप व्याख्या को सूत्रार्थ पौरुषी व्याख्यान कहते हैं। इस व्याख्यान को बुद्धि ऋद्धि आदिमें जो प्रवीण होते हैं, वे ही इसका अर्थ कर सकते है। हमारे समान छद्मस्थ ज्ञानियों से नहीं हो सकता।

दृष्टांत के लिए-भूवलयमें आया हुआ षट्खंड आगम और कषाय पाहुड़ आदि हैं। ग्रन्थ का विवेचन करते हुए 'कषाय' शब्द में रहने वाले तीन अक्षरों को "पेज्ज" शब्द के दो अक्षरों में संग्रह करके सूत्र-बद्ध कर दिया है। सूत्रके इन ही दो अक्षरों का वीरसेन, जिनसेन, आचार्यों ने साठ हजार श्लोकों में विस्तार कर दिया है। उन ही ६०००० साठ हजार श्लोकों को गणित पद्धति से मिला कर श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय में ७१८ अठारह भाषाओं में निबद्ध कर दिया है।

कषायपाहुड़ तथा जय धवल को गणित से निकाला है। और इसके प्रथमानुयोग कथन को गणित पद्धति से निकाल कर व्यास ऋषि ने जयाख्यान काव्य लिखा है, उसने २२ वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की दिव्य ध्वनि से प्रगट द्वादशांग शास्त्र का संग्रह करके हरिवंशी और कुरुवंशी राजाओं का कथन जिनवंश और मुनिवंश के कथन के साथ मिलाकर २५००० हजार श्लोकों के साथ जयाख्यान ग्रन्थ की रचना की थी।

व्यास से लेकर आज तक के विद्वानों ने अपने बुद्धि कौशल से घटा बढ़ा कर रद्दोबदल करते हुए उस महाभारत को सवा लाख श्लोकों में विस्तृत कर दिया। इसलिए द्वादशांग पद्धति के साथ में उसका मेल न खाने से अथवा नव-मांक गणित पद्धति में न आने से असंगत होने के कारण जैनों ने उसे नहीं माना।

यहां पर यह शंका होती है कि व्यास ऋषि को जिस प्रकार इस ग्रन्थ में मान्य किया है उसी प्रकार और जैन ग्रन्थों में इस का उल्लेख क्यों नहीं मिलता है ?

इसका समाधान यह है कि यहां पर व्यास शब्द से तीन कम नव करोड़ मुनियों को लिया गया है। उन्हीं में से किसी एक महर्षि के द्वारा इसका निर्माण हुआ है।

न्यूनकोटिनवाचार्यान् ज्ञानदृक्चरणांचितान् ।
ज्ञानदृक्सुखवीर्यार्थमानमानभ्यार्यवंदितान् ।।

अर्थात्—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारक तीन कम नव करोड़ मुनि महाराज लोग है जो कि अनन्त ज्ञान अनन्तदर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टयों के लाभ के लिए आर्य-लोगों के द्वारा वन्दना किये जाते हैं, उन महर्षियों को मैं नमस्कार करता हूं।

इस श्लोक के प्रारम्भ में जो तकार अक्षर आया हुआ है वह भगवद्गीता जयाख्यान और ऋग्वेद इन तीनो से सम्बन्ध रखने वाला है। क्योकि ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं इत्यादि जो गायत्री मन्त्र है उसके एक एक अक्षर का सम्बन्ध यहाँ चौवन-चौवन श्लोको तक चल कर जहा गायत्री मन्त्र पूर्ण होता है उसमे ऋग्वेद जयाख्यान गीता और भगवद्गीता ये तीनो आ जाते हैं। उन सब का समाहार रूप संग्रह इस भूवलय की गणित पद्धति के अनुसार एक तकार में आ जाता है। त् अक्षर नित्य सदा से चला आया है ॥२॥

जब भगवान् घाति कर्मो का नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं तो अपनी वाणी द्वारा विश्व भर को प्रतिबोधित करते है इसके बाद अघाति कर्मों का नाश करने के समय मे उसके पूर्व मे जब केवली समुद्घात करते है तो अपने आत्म-प्रदेशों द्वारा समस्त लोक का स्पर्श करके फिर वापिस हो शरीरमे आ जाते है इसका तात्पर्य यह है कि भगवान अपनी वाणी द्वारा पूर्व मे विश्व को व्यक्त करते हुए अन्त मे सम्पूर्ण कर्माटक के अणु रूप मे होते हुये अव्यक्त रूपमे आ जाते है ॥३॥

जिस प्रकार केवली समुद्घात के समय केवली के आत्म-प्रदेश मोक्ष मे रहने वाले सिद्ध जीवों को स्पर्श कर लेने पर (लोक पूर्ण समुद्घात के अनन्तर) पुनः अपने मूल शरीर मे आ जाते है। इसी प्रकार कर्णाटक भाषा १८ महाभाषाओ रूप होकर ७०० क्षुल्लक भाषाओ को अपने अन्तर्गत करके पुन अपनी कर्णाटक लिपिवद्ध रूप बनाने वाला यह 'भूवलय' है ॥४॥

सात सौ क्षुल्लक भापाओ को तथा १८ महाभाषाओं को उपर्युक्त गुणाकार क्रम से ६४ अक्षरो के साथ गुणा करने पर सुपर्ण कुमार, (गरुड), गधर्व, किन्नर, किम्पुरुप, नरक, तिर्यञ्च, भील (पुलिन्द), मनुष्य और देवो की भाषा आ जाती है ॥५॥

जिस प्रकार नाट्यशास्त्र मे गमक कला द्वारा विविध नृत्य क्रिया प्रगट होती है उसी प्रकार उपर्युक्त ३ पहाड़े के अनुसार गुणा करते समयसम तथा विषम अंक निकलते जाते है। उन लब्धांक तथा भंग अंको से विमल और समल पदार्थ प्रगट हो जाते है ॥६॥

जिस प्रकार ह् (६०) को क् (२८) का योग करने पर ८८ होता है फिर ८ और ८ को योग कर (जोड़) देने पर १६ होते है, उस १६ के अंक १ तथा ६ को परस्पर जोडने से विषम अक ७ होता है। यह ह् क् वन्ध बंध-पाहुड़ से प्रगट हुआ है जहां पर सूक्ष्म अतिसूक्ष्म विवेचन है ॥७॥

जो अध्यात्म योगी है वे ही इस अंक-प्रक्रिया को बतला सकते है ॥८॥

संक्षेप मे हम उस प्रक्रिया का नाम वतला देगे। बन्ध-पाहुड मे विषम योग भग से प्रारम्भ होता है ॥९॥

विषम योगभग मे ही सम विषम अक बन जाते है ॥१०॥

उन अंको से जो शब्द बनते है वे सव अपुनरुक्त होते है ॥११॥

इस प्रक्रिया से समस्त द्रव्य आगम (द्वादश अंग) प्रगट हो जाता है ॥१२॥

वह द्रव्य आगम एक-एक राशि रूप हो जाता है। तब तेलगू भाषा मे 'वकटि' कनडी भाषा मे 'ओंदु' तामिल भाषा में 'ओंनु' तथा इसी प्रकार अन्य भापाओ मे 'ओम्' निकल कर आता है ॥१३॥

उन शब्द राशियो में सर्व भापाओं के अंक प्रगट हो जाते है। अब ८८ बन्ध का नाम कहेगे ॥१४॥

सर्वबन्ध, नौ सर्ववन्ध, उत्कृष्ट बध, अनुत्कृष्ट वंध, जघन्य बंध, अजघन्य वन्ध, सादि बन्ध, अनादि वन्ध, ध्रुव वन्ध, अध्रुववन्ध, निखिलबन्ध, बन्ध स्वामित्व, वन्ध काल, बन्धान्तर काल, ह् क् वन्ध सन्निकर्ष, मंगलिक्य, भागाभाग, क्षेत्रवन्ध, परिमाण वध, स्पर्शबन्ध, कालान्तर वंध, भाव बन्ध; अल्प वहुत्व वन्ध, इस तरह २२ बन्ध हुए ॥१५-२९॥

इन २२ *वन्धों को प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेश वंध से गुणा करने पर २२×४=८८ अठासी भेद हो जाते है ॥३०॥

---

* १ प्रकृति वंध, २ स्थिति बंध, ३ अनुभाग वंध और ४ प्रदेश वंध बंध के दो चार भेद हैं। इनमे भी प्रत्येक के १ उत्कृप्ट २ अनुत्कृष्ट ३ जघन्य, और ४ अजघन्य, इस तरह ज्ञानावरणादि कर्मों की प्रकृति (स्वभाव) ज्ञान को ढंकना आदि है। कर्मों के इन स्वभावो का आत्मा के सम्बन्ध को पाकर प्रगट होना प्रकृति है। और आत्मा के साथ कर्मो के रहने की काल-मर्यादा को स्थिति बध कहते है। कर्मों में फल देने की शक्ति की हीनता वा अधिकता को अनुभाग

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध का प्रकृतिके द्वारा रचा हुआ ऊपर आया जो गुणाकार आठ-आठ ८, ८ है पुनः उसे आठ से अथवा आठ कर्मो से गुणाकार करें तो सात सौ चार (८८×८=७०४) होते हैं ॥३१॥

उसमें से चार कम कर दिया जाय (७०४—४=७००) तो ७००रह जाते हैं। इन क्षुल्लक भाषाओ का प्रमाण यशस्वती की पुत्री ब्राह्मी देवी ने पशु देव, नारकियों की भाषाओ को जो वृषभनाथ भगवान से सीखा है वे भाषाएं निकल आती है। ये भाषाएँ नव अंक रूप कर्म सिद्धांत के अवतार रूप होने के कारण कर्माटक भाषा रूप होकर परिणत हुई है। ऐसा कहते हुए रसायन के समान अपने भीतर समावेश कर लेने वह वालाभूवलय काव्य है ॥३२-३३॥

बाहुवली ने भगवान ऋषभन से चौंसठ कलाओं को समझ लिया था। कर्नाटक देश के आदि मे आने वाली भाषा ने सम्पूर्ण विनयत्व को अपने भीतर गर्भित कर लिया है ॥३४॥

कर्माटक भाषा में कर्म की कथा और कर्म से मुक्त होने की कथा का वर्णन है अतः इसमें अनेक नय गर्भित है। उन सब को यदि संक्षेप में कहा जावे तो एक सुनय और दूसरा दुर्नय है। जगत मे अनन्त नय होने के कारण अथवा ३६३ मत होने के कारण प्रत्येक मत और नय अपने आपको श्रेष्ठ तथा शेष सबको कनिष्ठ कहती है, अत. वह दुर्नय है, क्योंकि जिस अंश को वह कहती है पदार्थ उतना ही नही है, और अंश भी पदार्थ के हैं उन अवशिष्ट अंशों की उपेक्षा करने के कारण वह दुर्नय सिद्ध होती है। इस कारण इस दुर्नय को एकान्त पक्ष कहते है। सुनय इससे विपरीत है वह विविध अपेक्षाओं से पदार्थ के समस्त अंशों का समावेश तथा समन्वय करती है। इसलिए उसको सुनय, सम्यग्नय, प्रमाणाधीन नय, आदि अनेक नामो से पुकारते हैं। इस तरह सुनय तथा दुर्नय है। समस्त दुर्नयों को और समस्त सुनयों को बतलाकर सबका ठीक समन्वय करने वाली कर्माटक भाषा है। समस्त संसारी जीवों को ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों ने अपने आधीन कर लिया है उन सब अनादिअनन्त जीवों का कथन करने वाली यह कर्माटक भाषा है, इसलिए इसमें सुनय और दुर्नय अन्तर्भूत है ॥३५॥

जब इस भूवलय ग्रन्थ का स्वाध्याय श्रद्धा-पूर्वक किया जाता है तब दुर्नय निकलकर कल्याणकारी केवल सुनय मात्र शेष रह जाती है ॥३६॥

जब यह मानव सुनय और दुर्नय के स्वरूप को समझ लेता है तो जैन धर्म में रुचि प्राप्त करता है यानी उसके अन्तरङ्ग मे जैन धर्म प्रविष्ट हो जाता है ॥३७॥

इस मानव का मन स्पर्शनादि पांचो इन्द्रियों में प्रवृत्त होता है उससे मनमें जो चंचलता उत्पन्न होती है, उसको यह भूवलय ग्रन्थ निर्मूल करने वाला है ॥३८॥

जब उपर्युक्त दोष दूर होकर मन परिशुद्ध हो जाता है तब इस भूवलय की गणित पद्धति के द्वारा समस्त भाषाओं में तत्व को जानने की शक्ति उसे सहज प्राप्त हो जाती है ॥३९॥

जब गणित शास्त्र का सम्पूर्ण रहस्य प्राप्त हो जाता है तब फिर तीन लोक का सम्पूर्ण ऐश्वर्य हस्तगत होने मे क्या देर लगती है ॥४०॥

इस प्रकार यह गणित शास्त्र इस जीव को मोक्ष देने वाला है ॥४१॥

इस भूवलय शास्त्र मे विश्व की समस्त भापाओं का समावेश है। यानी इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाऐ बन जाती है ॥४२॥

इस भूतल पर नाना प्रकार के परस्पर विरुद्ध जो मत प्रचलित है उन सबको यह भूवलय एकता के सूत्र मे बाध कर सार्थक तथा सफल बनाने वाला है ॥४३॥

इस भूवलय ग्रन्थ के अध्येता को कम से कम जिन-मत-सम्मत अणुव्रत धारण करने की योग्यता तो अवश्य प्राप्त हो जाती है ॥४४॥

बंध कहते है तथा बधने वाले कर्मों की परमाणु सख्या को प्रदेश बंध कहते है। उत्कृष्ट आदिक भेदों के भी १ सादि (जो छूटकर पुन. बधा हो) २ अनादि बंध (अनादि काल से जिसके बंध का अभाव न हुआ हो) ३ ध्रुवबंध अर्थात् जिसका निरन्तर बंध हुआ करे और ४ अध्रुवबंध अर्थात् जो अंत सहित बन्ध हो, इस प्रकार चार भेद है। इन बन्धों को नाना जीवों की तथा एक जीव की अपेक्षा से गुणस्थान और मार्गणा स्थानों में यथासंभव घटित कर लेना चाहिए।

जब वह अणुव्रतो पर रुचि प्राप्त कर लेता है तब फिर उसको इस बात का भी पूर्ण विश्वास हो जाता है कि भगवान महावीर की वाणी मे सात सौ अठारह भाषा होती है जैसा कि इस भूवलय ग्रन्थ मे है ।४५-४६।

जब यह विश्वास होता है कि भगवान महावीर की वाणी सात सो अठारह भाषाओ मे सम्पूर्ण तत्व का प्रकाश करने वाली है तो उस जीव के चित्त मे एक प्रकार का उल्लास होता है एव उस उल्लास को पैदा कर देने की शक्ति जिन भगवान के इस भूवलय ग्रन्थ मे है ।४७-४८।

भगवान जिनदेव की वाणी जो ६४ अक्षरो के गुणाकार-मय है वह निरर्थक नही है ।४९।

जब इस प्रकार की प्रतीति हो जाती है तब वह जीव उन चौसठ अक्षरो को गुणाकार रूप से अपने अनुभव मे लाता है एव वह सहज मे द्वादशाङ्ग का वेत्ता वन जाता है ।५०।

उस महापुरुष के अनुभव मे जो कुछ आता है उसी को अभिव्यक्त करने वाला भूवलय है ।५१।

विश्व भर मे बिखरे हुए जो भिन्न-भिन्न तीन सौ तिरेसठ मत है उन सब को चौसठ अक्षरो के द्वारा नौ अङ्को मे बाधकर एकीकरण कर बतलाने वाला यह भूवलय है ।५२।

द्वैत यानी दो और अद्वैत यानी एक इन दोनो को मिलाने से तीन बनता है जोकि रत्नत्रय स्वरूप होते हुए अनेकान्त रूप है एव ॐकार मय है जोकि अनादि से चला आया हुआ है उसी ॐकार के अङ्कको चौसठ अक्षरो मे अभिव्यक्त करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य ने इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की है इस लिए यह कथचित् सादि तो कथचित् अनादि रूप भी है ।५३।

इस जगत मे शिव, विष्णु, जिन, ब्रह्मा आदि महान देव है जोकि सभी कैलाश, वैकुण्ठ सत्यलोक आदि मे रहते है ऐसा कहकर अपने अपने अपने मान्य देव की श्रेष्ठता प्रगट करते हैं और पक्षपात करके परस्पर-विरोध बढाते हैं। परन्तु भूवलय के कर्त्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने उस विरोध को स्थान न देते हुए समस्त जीवो को अध्यात्म-मार्ग ही कल्याण कारी बताया है। तदनुसार समवशरण से मिलने वाले सिद्धान्त को जगत में दशो दिशाओ मे फैलाकर पारस्परिक विरोध मिटाने का भूवलय द्वारा प्रयत्न किया है ।५४-५५।

जितने प्राभृत है वे सब द्वादशाग से ही निकले है प्राभृत का अर्थ अनादि काल के सम्पूर्ण वेद को अनुरूप मे वतला देना हे । इसलिए इसका नाम प्राभृत रखा गया है कि महान विपय को सूक्ष्म रूप से कहने वाला है । वह कैसे है सो कहते है—

भगवान महावीर की वाणो से 'तत्त्वमसि' यह शब्द निकला हुआ है उसका अर्थ यह है कि "तत्" 'वह' 'त्व' 'तू' 'असि' यानी' है' । अर्थात् 'वह तू है' । ऐसा 'तत्त्वमसि' का अर्थ है । इससे यह सिद्ध हुआ कि तत् अर्थात् 'सिद्ध परमेष्ठी' 'त्वमसि 'हे आत्मन तू ही है ।५६।

"तत्त्वमसि" असि आ उ सा" इत्यादि महामहिमा-शाली मन्त्रो से भरे होने के करण इस भूवलय को महासिद्धि काव्य कहते है ।५७।

किसी कारणवश लोग सहिष्णुता (सहनशीलता) की बात करते है । परन्तु असहिष्णुता (दूसरों की बात या काम न सहसकने का स्वभाव) होने से सच्ची सहिष्णुता प्रगट नही होती है । सहिष्णुता के लिए मनुष्य के हृदय मे दया का होना आवश्यक है, दया के विना सच्ची सहिष्णुता नही आ सकती कहा भो है कि "दयामूलो भवेद्धर्म." यानी—जहां दया है वही धर्म है, जहां दया नही है वहा धर्म कहा से आवेगा ? आत्मा का स्वभाव दयामय है, अत. आत्मा का धर्म दयामय ही है । अत जहा दया है वहा पर सहनशीलता स्वय आ जाती है। दया के सुरक्षित रखने के लिए ही समस्त व्रतो का पालन किया जाता है । जैसे कि "अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रत विशोधयेत्" यानी-अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए मूलव्रतो की शुद्धि करे ।५८।

ससार के सभी जोव कर्म-बन्धन की दृष्टि से समान है। दीखने वाला छोटा जीव जैसे कर्म जाल मे फसा हुआ है बडा जीव भी उसी प्रकार कर्म से पराधीन है । इसी कारण महान ज्ञानी योगी सब जीवों को अपने समान समझते है । इसी कारण वे सभी छोटे वडे जीव पर दया भाव रखते है । जब सब जीवो की आत्मा एक समान है तब उनको दु ख का अनुभव भी एक समान होता है इसलिए सब पर दया करनी चाहिए ।५९।

हृदय मे जब ऐसा भाव आता है तब समन्वय की बुद्धि उत्पन्न होती है । समन्वय बुद्धि वाला व्यक्ति ही समाज को, देश को, जाति धर्म, देव आदि

को समन्वय भाव से देखता है। तब वह समन्वय अमृतमय बन जाता है।६०।

ऐसी भावना जब हृदय मे जाग्रत होती है तब "मै बड़ा हूं शेष सब प्राणी मुझ से छोटे है।" ऐसा छोटा भाव हृदय मे नही रहता उस समय वह त्रिलोकपूज्य माना जाता है।६१।

तब उसके जितने भी गुण है वे सभी भूवलय (जगत) के लिए प्रतिफलीभूत होकर पुनः प्रज्वलित अवस्था प्राप्त करा देते हैं।६२।

तब वह जीव ५८ श्लोक में कहे अनुसार दयामय होने के कारण अपनी सहनशीलता के सभी गुणों को सुरस विद्यागम रूपी भूवलय में देखता हुआ संतोष से अपना आत्म-कल्याण कर लेता है।६३।

इस भूवलय ग्रन्थ का अध्ययन करने से मनुष्य मे सहनशीलता आती है जैसे कि—

किसी एक राजकीय बगीचे मे आकर एक तरुण सुन्दर सुडौल ऋषि विराजमान हुआ। उसी बाग में राजा सोया हुआ था और उसकी रानियां इधर उधर टहल रही थीं। उन्होंने जब उस साधु को देखा तो सब इकट्ठी होकर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से उसके पास आकर बैठ गईं। मुनि ने उस समय उनको अहिंसा धर्म के अन्तर्गत क्षमा धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया।

इतने में उस राजा की आंख खुली तो उसने देखा कि—रानियां उस साधु के पास बैठी है। भ्रम से उसके मन में यह विचार आया कि यह नवयुवक साधु इन रानियो को भ्रष्ट करना चाहता है इसीलिए यह उनसे वार्तालाप कर रहा है। इस विचार से क्रोध में आकर राजा उस साधु के पास गया और बोला कि तुम इन रानियों के साथ क्या व्यर्थ बातें कर रहे हो?

साधु सरल परिणामी थे। अतः उन्होंने राजा से मीठे शब्द में कहा कि 'मै क्षमा धर्म का व्याख्यान कर रहा हू।' परन्तु राजा के मन में तो कुछ और ही बात समाई हुई थी इसलिए उसने उस साधु के एक तमाचा जमा दिया और बोला कि मै देखना चाहता हूं कि तुम्हारा क्षमा धर्म कहां है?

साधु ने फिर शान्ति से उत्तर दिया कि—क्षमा धर्म मेरे हृदय में है। राजा को फिर क्रोध आया, अतः उसने दूसरी बार उस साधु के ऊपर एक दण्डा जमा दिया। साधु ने शान्ति-पूर्वक फिर कहा कि—राजन्! क्षमा तुम्हारे इस दण्डे मे नही, बल्कि वह तो मेरे मन के भीतर है।

राजा को उत्तरोत्तर क्रोध आता रहा अतः उसने तलवार से साधु के दोनों हाथ काट दिये और बोला कि—अब बता तेरी क्षमा कहां है?

साधु ने शान्ति से फिर वही उत्तर दिया कि वह मेरे भीतर है।

राजा ने तब साधु के दोनों पैर भी काट दिये और बोला कि बता, क्षमा कहां है?

इतने पर भी साधु की शान्ति भङ्ग नही हुई। वह बोला कि, राजन्! मैने कह तो दिया कि वह मेरे हृदय के भीतर है, तुम्हारे इन शस्त्रों में वह नही हो सकती है

तब राजा को होश आया और वह सोचने लगा कि मै बड़ा पापी हूँ मैने बिना बात इस साधु को कष्ट दिया परन्तु महान कष्ट होने पर भी साधु जी ने अपनी क्षमा नही छोड़ी। ये साधु महात्मा बड़े धीर गम्भीर है। ऐसा विचार करते हुए वह साधु महाराज के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ाने लगा।

साधु बोले कि राजन् इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुमने अपना कार्य किया और मैने अपना कार्य किया तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि प्रभो! इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि आप क्षमा के भण्डार हैं।

तात्पर्य यह है कि क्षमा के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है परन्तु यह क्षमा धर्म अध्यात्म-विद्या के अध्ययन किये बिना नहीं आ सकता। वह अध्यात्म विद्या इस भूवलय का सज्जीवन है, अतः यह भूवलय विश्वभर को क्षमा धर्म का पाठ पढ़ाने वाला है।

'ष' अर्थात् अट्ठावन और 'ह' यानी ६० इनको परस्पर जोड़ दिया जाय तो ११८ होते है इसका वर्ग करने पर १३९२४ होते है। उनमें से पुनरुक्त एक को कम करने पर १३९२३ रह जाते हैं जोकि नौ से विभक्त हो जाते है तो १५४७ लब्ध हुए इनमें उस पुनरुक्त एक को मिला दिया जाय तो १५४८ हो गये इनको नौ से भाग देने पर १७२ आते है इसमें से एक निकाल देने पर १७१ रह जाते हैं जोकि नौ से बंटकर १९ आते हैं उसमे से एक निकाल दिया जाय तो १८ रह गया जिसको परस्पर जोड़ देने पर (१+८=९) नौ हो जाते हैं। तात्पर्य

यह है कि इह सोख्य विपम है तथा परलोक का सौख्य सम है। इन दोनो को समान रूप से वतलाने वाला यह भूवलय शास्त्र है ।६६।

र ५४ 'ह' ६० म ४२ इन तीनों को मिलाने से —

५४×६०×५२ = १६६
४
―――
१७०
१
―――
एक मिलाने से १७१

तीनो मिलाने से ९ नौ आता है ।

१७० एक षट् खण्ड आगम मिलाने से ए ४२ और ह = ६० १ मिलाने से १७० षट् खड आगम ९ मिलाने से १७९+४२+६० = २७८+१ = २७९ २+७ = ९९+१८ = ९ उपर्युक्त लिपि हुई ।

इस प्रकार महान् महान् विषयो का सुलभ रीति से इस के द्वारा अनुभव होता है ॥ ६७ से ७२ ॥

यह भूवलय ग्रन्थ इस लोक मे मोक्ष के सम्पूर्ण विषय को वतलाता है। परलोक मे अहमिन्द्र पद को प्राप्त कराकर अन्त मे मोक्ष प्रदान करता है ।७३-७४।

इस भूवलय को भगवान महावीर ने सिद्ध करके अन्त मे मोक्ष फल प्राप्त किया ऐसी महिमा वतलाने वाले यह त्रय रत्न वलय यानी-रत्नत्रय रूपी वलय है ।७६।

क्षुधा तृपादि १८ दोप जिनकी आत्मा मे प्रचुर मौजूद हैं उनको 'यह देव बडा है और यह देव छोटा है ।' इस तरह उनको देवो मे अनेक भेद दीखते है। किन्तु जिनके हृदय मे १८ दोप नष्ट करने की तीव्र इच्छा है उनके मन मे 'रत्नत्रय रूप आतम धर्म ही स्वधर्म है' ऐसी धारणा होती है ।७७।

जिन्होने विपरीत धारणा से ससार को ही अपना घर मान लिया है उनको स्वआत्म-धर्म मे अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है जब उनका ज्ञानावरण कर्म नष्ट होता है तव उन्हें अन्तकाल तक सुख देने वाले मोक्ष की प्राप्ति होती है ।७८।

किसी मनुष्य को सर्प काटता है तो वह मुरदे के समान अचेत दीखता है यदि उसे सर्प-विषनाशक औषधि दी जावे तो वह तत्काल सचेत हो जाता है। पादरस मे रहने वाले दोष नष्ट हो जाने पर पादरस में अमृत के समान शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह विपरीत मान्यता से जो देव मे छोटा या वडा भाव रखता था वह अपनी विपरीत भावना (मिथ्या श्रद्धा) निकल जाने पर स्वस्थ शुद्ध आत्मा बन जाता है ॥७९॥

विवेचन—इस ससार मे शुद्धात्मा को न जानकर यह मेरा देव है यह मेरा ब्रह्म है। इस ससार मे एक ब्रह्म ही है दूसरा कोई नही है। इसलिए हमारा धर्म अद्वैत धर्म है। इत्यादि तरह से एकान्त पक्ष लेकर लोग सत्य का निर्णय नही करते, वे अन्धकार मे स्वयं भटकते है और दूसरों को भी भटकाते है।

जव एक शैव शिव को जगत मे वडा मानता है तव वैष्णव अपने विष्णु को वडा मानकर विष्णु के साथ लक्ष्मी को भी मानकर द्वैत रूप मे अपने धर्म का प्रचार करता है। इस तरह दोनों देवो के भक्तो मे परस्पर विरोध फैल जाता है। इस विरोध के निराकरण के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने उपर्युक्त दो श्लोक लिखे है।

आगे आचार्य श्री दोनो धर्मो का समन्वय करने के लिए श्लोक कहते है:—

रत्नत्रय धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों मे आदि का सम्यक् दर्शन अद्वैत धर्म माना जाता है। परन्तु यह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र विना पूर्ण नही होता।

तीर्थंकर जगज्ज्येष्ठा यद्यपि मोक्षगामिनः।

तथापि पालित चैव चारित्रं मोक्षहेतवे ॥

जगत में श्रेष्ठ जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि ज्ञान के धारक तद्भव मोक्षगामी तीर्थंकर भी मोक्ष प्राप्ति के लिए चारित्र को आचरण कहते है तभी उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इसलिए सम्यग्दर्शन के साथ सम्यक्चारित्र धारण करने की अत्यण्त आवश्यकता है।

ब्रह्म को अद्वैत धर्म कहने वाले की मान्यता को सुनकर द्वैतवादी वैष्णवों को खेद हुआ अतः वे बोले कि ब्रह्म अद्वैत धर्म ठीक नही है हमारा विष्णु धर्म ही (द्वैत धर्म ही) श्रेष्ठ है क्योंकि विष्णु के साथ लक्ष्मी रहती है। इस प्रकार दोनो धर्मों में स्पर्धा होने लगी। तब श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा कि भाई! विवाद मत करो आप यथार्थ बात सोचो। अद्वैत भी श्रेष्ठ है और द्वैत भी क्योकि 'न द्वैत = अद्वैतं इस प्रकार कहने में दो का निषेध करके एक होता है अर्थात् दो के बिना एक नहीं होता।

विचार कर देखें तो अद्वैत शब्द का अर्थ ब्रह्म न होकर एक होता है तथा द्वैत शब्द का अर्थ विष्णु और लक्ष्मी न होकर दो होता है। एवं इन दोनों को मिला कर तीन का अंक जो बनता है वह अनेकान्त स्वरूप हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कथंचित् एक, और कथंचित् दो ठीक होता है, अतएव दोनों का समावेश रूप रत्नत्रय धर्म अनेकान्त धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है और उसी को जैन धर्म कहते हैं। कर्मारातीन् जयतीति जिनः जो सम्पूर्ण कर्मों को जीतने वाला हो उसको जिन कहते है और उस जिन भगवान का जो धर्म-आचरण है, वह जैन धर्म है, ऐसा सुन्दर अर्थ होता है। यही प्राणी-मात्र का धर्म सार्व-धर्म है।

कर्मों को अपने अन्दर बनाये रखना न तो द्वैत वादियों को इष्ट है और न अद्वैतवादियों को इष्ट है। इसलिए जैन धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, यह सबको मानना पडेगा।

जैन धर्म रत्नत्रयात्मक है रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन पहले है जो कि एक होने से अद्वैत हैं और उसके अनन्तर ज्ञान तथा चारित्र है जो द्वैत रूप है। इस पर अद्वैतवादी कह सकता है कि पहले आने की वजह से हमारा धर्म प्रधान है परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि यहां पर जिस प्रकार पूर्वानुपूर्वी क्रम लिया जाता है वैसे ही पश्चादानुपूर्वी क्रम भी लिया जाता है। पूर्वानुपूर्वी में सम्यग्दर्शन रूप अद्वैत धर्म पहले आ जाता है तो पश्चादानुपूर्वी में चारित्र और ज्ञान रूप द्वैत धर्म पहले आ जाता है। इस युक्ति को लेकर सब का समन्वय करके एक साथ रखने वाला अनेकान्त धर्म है।

जैसे कि एक गाड़ी को वहन करने वाले दो चक्के होते हैं उन दोनों को एक साथ रखकर घुमाते हुये चले जाने वाला उनके बीच में धुरा होता है उसी प्रकार द्वैत और अद्वैत इन दोनों को टकराने न देकर एक साथ रखने वाला और दोनों को सफल बनाने वाला धुरे के समान यह अनेकान्त धर्म है ॥८०॥

अद्वैत द्वैत और अनेकान्त ये तीनों रत्नत्रय रूप महान धर्म है और अर्हन्त भगवान के हार के प्रमुख रत्न है। इस रत्नत्रय हार की मन, वचन काय, कृत कारित अनुमोदना रूप ३×३ = ९ परिपूर्ण अंक रूप कड़ियां हैं। इन परिपूर्ण ९ अंकों में ३६३ मतों का समावेश हो जाता है ॥८१॥

उसी परिपूर्ण ९ अंक के ऊपर एक १ का अंक मिलाने से एक सहित शून्य (१०) आता है। उससे ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हुई है। उस ब्राह्मी लिपि को देव नागरी लिपि कहते है तथा उसी को ऋग्वेदांक भी कहते है।

एक से लेकर नौ तक अंकों द्वारा द्वादशांग की उत्पत्ति होती है उस ९ अंक में एक और मिलाने से उस १० दश अंक से ऋग्वेद की उत्पत्ति होती है। इसी को पूर्वानुपूर्वी, पश्चात् अनुपूर्वी कहते हैं। द्वादशांग रूप वृक्ष की शाखारूप ऋग्वेद है। इसलिए इस वेद का प्रचलित नाम ऋक् शाखा है ॥८२॥

ऋग्वेद तीन प्रकार का है मानव ऋग्वेद, देव ऋग्वेद तथा दनुज (दानव राक्षस) ऋग्वेद। इन वेदो द्वारा पशुओं की रक्षा, गो-ब्राह्मण की रक्षा तथा जैन धर्म की समानता सिद्धि हो, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य आशीर्वाद देते है ॥८३॥

विवेचन—प्रचलित ऋग्वेद का प्रारम्भ 'अग्निमीले पुरोहितम्' से होता होता है परन्तु भूवलय मे ऋग्वेद का प्रारम्भ 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' से है। 'अग्निमीले पुरोहितम्' भी बाद मे आ जाता है। अब तक वैदिक लोग जैनों को वेद न मानने के कारण वेद-बाह्य कहते थे। भूवलय के अतिरिक्त अन्य जैन ग्रन्थों ने वेदो में हिंसा का विधान होने से उस को अमान्य मानकर छोड़ दिया है। किन्तु भूवलय मे उपलब्ध ऋग्वेद में हिंसा विधान, मद्यपान, द्यूत क्रीड़ा, दुराचार आदि नही है। यह दुराचार दानवीय ऋग्वेद मे है, मानवीय तथा देवीय ऋग्वेद नहीं है। जैन ग्रन्थों मे हिंसा का विशद विस्तृत वर्णन है उसके विपरीत हिंसा के त्याग रूप अहिंसा का वर्णन है क्योंकि हिंसा का विवरण बताने पर ही अहिंसा का विधान होता

है। दानवीय ऋग्वेद में मानवीय ऋग्वेद के हिसा के विवरण के ही विधेय रूप से वर्णन किया है, अहिंसा का विधान छोड दिया हे।

मानवीय ऋग्वेद के लुप्त हो जाने से दानवीय ऋग्वेद ही प्रचार मे आता रहा, जैसे कि द्वादशाग वाणी विलुप्त हुई। मानवीय ऋग्वेद के लुप्त हो जाने पर मनुष्यो ने दानवीय वेद को अपना लिया। इस कारण पशु हिसा आदि क्रियाएं वेद का आधार लेकर चल पडी। इस वैदिक हिसा को रोकने के लिए भगवान महावीर ने अहिंसा का प्रचार किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी वैदिक हिसा के विरुद्ध आवाज उठाई। जव भूवलय मे ऋग्वेद का समावेश उपलब्ध हुआ तब से स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी आर्य समाज की धारणा जैन धर्म या जैन समाज के प्रति बदल गई है।

तदनुसार आर्य मार्तण्ड, सार्वदेशिक पत्रिका आदि अपने मासिक पत्रो मे आर्य समाजी विद्वानो ने भूवलय ग्रन्थ की प्रशसात्मक लेखमालाए प्रकाशित की हैं। उन लेख-मालाओ के आधार से कल्याण, विश्वमित्र, P.E.N. तथा आर्गनाईजर आदि विख्यात पत्रों ने भी भूवलय ग्रन्थ का महत्व विश्व मे फैला दिया है। बेंगलोर आर्य समाज के प्रमुख श्री भास्कर पत ने, अजमेर के प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम० ए० तथा विश्वविख्यात विद्वान् स्वा० ध्रुवानन्द जी को तथा अन्य आर्य विद्वानो को आमन्त्रित करके सर्वार्थसिद्धि बेंगलौर मे लाने का प्रयास किया। उन विद्वानों ने बेंगलौर में भूवलय ग्रन्थ का अवलोकन करके हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की तथा श्री डा० सूर्यदेव जी ने भूवलय की महिमा में निम्नलिखित श्लोक निर्माण किया—

अनादि निधाना वाक्, दिव्यमीश्वरीयंवचः ।
ऋग्वेदोहि भूवलयः दिव्यज्ञानमयो हि सः ॥

अर्थ—भूवलय ग्रन्थ अनादि अनन्त वाणी स्वरूप है, दिव्य ईश्वरीय वचन है, दिव्य ज्ञानमय है और ऋग्वेद रूप है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य आशीर्वाद देते हैं कि इतिहास काल से पूर्व का प्रचलित वेद का ज्ञान प्रसार भविष्य मे भी हो ॥८४॥

श्री जिनेन्द्र वर्द्धमानांक यत्र तत्रानुपूर्वी के क्रम से नवम है ॥८५॥

यह नवमी कही जाने वाली लिपि ही अक्षाश मे है ॥८६॥

विंदी से प्रारम्भ होकर विंदी के साथ ही अंत होने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥८८॥

इसकी उत्पत्ति इस तरह है—

९ अंक शून्य से निष्पन्न हुआ है और वह शून्य भगवान के सर्वांग से प्रगट हुआ है। जिस प्रकार हम लोग वार्तालाप करते समय अपना मुख खोलकर बातचीत करते हैं उस प्रकार भगवान अपना मुख खोलकर नही करते। भगवद्गीता मे भी कहा गया है कि—

सर्वद्वारेषु कौन्तेय प्रकाश उपजायते !

इसी प्रकार उपनिषद् में भी 'मौन व्याख्या प्रकटित परब्रह्म' इत्यादि रूप से कहते है। मोन व्याख्या का अर्थ भगवान के सर्वांग से ध्वनि निकलना है। अभी तक इसका स्पष्टीकरण नही हो सका था, किन्तु जबसे भूवलय सिद्धात शास्त्र उपलब्ध हुआ तब से यह आधुनिक विचारज्ञों के लिये नूतन विषय दृष्टिगोचर हुआ। ऋषभनाथ भगवान् ने अपनी कनिष्ठ कन्या सुन्दरी देवी की हथेली पर अमृतागुली के मूल भाग से बायी ओर एक बिन्दी लिखी। तत्पश्चात् उस बिन्दी को अर्द्धच्छेद शलाका से दो टुकडो मे बनाया। उन्ही दोनों टुकड़ों के द्वारा अंकशास्त्र की पद्धति के अनुसार घुमाते हुये ९ अंक बनाये, जो कि अन्यत्र चित्र में दिया गया है। किन्तु ९ अंक में रहने वाले दोनों टुकड़ों को यदि परस्पर में मिला दिया जाय तो पुनः बिन्दी बन जाती है।

यही बिन्दी श्री ऋषभदेव भगवान के बन्द मुँह से हूं इस ध्वनि के रूप मे निकली जोकि भूवलय के ६४ अक्षरांकों मे से इकसठवा अक्षर है। यानी (०) अनुस्वार है न कि ५२ वां अक्षरांक (म्) है।

अब उस बिन्दी (०) को ठीक मध्य भाग से तोड़कर दो टुकड़े करने से उसके ऊपर का भाग कानडी भाषा का १ अंक बन जाता है, जोकि संस्कृतादिक द्राविड़ेतर भाषाओ मे नहीं बनता। भगवान के सर्वांग से जो ध्वनि निकली वह भी उपर्युक्त बिन्दी के रूप मे ही प्रगट हुई। इसलिए उसका लिपि आकार भी "०" ऐसा प्रचलित हुआ। इस प्रकार लिपि के आकार का और ध्वनि निकलने के स्थान का परस्पर में सम्बन्ध होने से इसी बिन्दी का दूसरा

नाम "गौड़" नाम पद है। इसी बिन्दी को कानड़ी भाषा में सोन्ने, प्राकृत में शून्य तथा हिन्दी भाषा में बिन्दी इत्यादि अनेक नामों से पुकारते है।

शून्य का अर्थ अभाव होता है और उस शून्य को काटकर ही कानडी भाषा के १ और २ बने। इन दोनों को मिलाकर ३ हुए और ३ को परस्पर में गुणा करने से ९ होते है, जोकि सद्‌भाव को सूचित करते है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अभाव और सद्‌भाव कथंचित् अभिन्न और कथंचित् भिन्न है। एवं भिन्नाभिन्न ही स्याद्वाद का मूल सिद्धान्त है। यहा तक ८७ श्लोक का अर्थ समाप्त हुआ।

ऋग्वेद जोकि भगवान-ऋषभ देव का यशोगान करने वाला है उस ऋग्वेद को देव, मानव और दानव ये तीनों ही गाते रहते है परन्तु उनमें परस्पर में कुछ विशेषता होती है। मनुज और देव ये दोनों तो सौम्य प्रकृति है इसलिए गो, पशु और ब्राह्मण इन तीनो की रक्षा करने वाले तथा शुभाशीर्वाद देने वाले है एवं जैन धर्म की प्रभावना करने वाले है। किन्तु दानव क्रूरप्रकृति वाले होते है इसलिए उसी ऋगवेद को क्रूरता के रूप से उपयोग में लाने वाले एवं हिसा का प्रचार करने वाले है। अब यह भूवलय अङ्क उन तीनों के परस्पर विरोध को मिटाकर उन्हें एकता के साम्राज्य में स्थापित करने वाला है।८८। तथा उपर्युक्त अद्वैत, द्वैत और अनेकान्त तीनों में भी परस्पर प्रेम बढ़ाकर समन्वय करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।८९।

यद्यपि ये तीनों धर्म परस्पर में कुछ विरोध रखने वाले है। फिर भी इन तीनों को यहां रहना है अतएव यह भूवलय-ग्रन्थ उन तीनों को नियन्त्रित करके निराकुल करने वाला है।९०।

यह भूवलल ग्रन्थ हम लोगों को बतलाता है कि सम्पूर्ण प्राणी मात्र के लिए समान रूप से एक ही धर्म का उपदेश देने वाला ऋग्वेदाङ्क है।९१।

यह भूवलय ग्रन्थ आदि में भी और अन्त में भी परिपूर्णाङ्क वाला है। सो बताते हैं—यह भूवलय ग्रन्थ—बिन्दु से प्रारम्भ होता है अतएव आदि अंक बिन्दु है उस बिन्दु को काटकर कानड़ी लिपि के १-२-३ आदि नौ तक के अंक बनते हैं। अन्त में जो नौ का अङ्क है वह भी बिन्दु के दोनों टुकड़ों से बनता है। ऐसा हम पहले भी अनेक स्थानों पर बता चुके है। यह भूवलय आदि में और अन्त में एकसा हैं।९२।

मनु और मुनि इत्यादि महात्माओं के ध्यान करने योग्य यह भूवलय ध्यानाङ्क हैं।९३।

यह भूवलय ग्रन्थ-स्वप्न में भी सब लोगों को सुख देने वाला है अतएव शुभाङ्क है।९४।

सभी मन्मथों का यह आद्यन्त अंक है।९५।

जिनरूपता को सिद्ध कर दिखलाने वाला यह अंक है।९६।

जिस प्रकार चन्द्रमा के प्रकाश में आदि से लेकर अन्त तक कोई भी अन्तर नही पड़ता उसी प्रकार इस भूवलय में भी आदि से अन्त तक कोई अन्तर नहीं है।९७।

इस भूवलय की भाषा कर्मा (र्णा) टक है जोकि ऋद्धि रूप है और अपने गर्भ में सभी भाषाओं को लिए हुए है।९८।

शरीर को पवित्र और पावन बनाने वाला यह अंक है अर्थात् महाव्रतों को धारण करने की प्रेरणा देने वाला है।९९।

आदि से अन्त तक यह भूवलय ब्राह्मी (लिपि) अंक है।१००।

अद्वैत का प्रतिपादन करने वाला एक का अंक पूर्वानुपूर्वी में जिस प्रकार प्रारम्भ में आता है उसी प्रकार पश्चादानुपूर्वी में नौ के समान सबसे अन्त में आता है, इस बात को बताने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१०१।

अद्वैत का अर्थ सम्यग्दर्शन है, क्योंकि सम्यग्दर्शन हो जाने पर यह जीव अपनी आत्मा के समान इतर समस्त आत्माओं को भी इस शरीर से भिन्न ज्ञानमय एक समान जानने लगता है। द्वैत का अर्थ सम्यग्ज्ञान है; क्योंकि ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण आत्माओं की या इतर समस्त पदार्थों की विशेषताओं को ग्रहण करते हुए आपापर का भेद व्यक्त हो जाता है। इसी प्रकार अनेकान्त का अर्थ सम्यक्चारित्र लेना चाहिए; क्योंकि वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान इन दोनों को एकता रूप करते हुए स्थिरतामय हो जाता है। अब पूर्वानुपूर्वी क्रम में सम्यग्दर्शन प्रथम आने से प्रधान है, तो पश्चादानुपूर्वी क्रम में सम्यक्चारित्र प्रधान बन जाता है। इसी प्रकार यत्रतत्रानुपूर्वी क्रम में सम्यग्ज्ञान मुख्य ठहरता

है। इस तरह अपने अपने स्वरूप मे सभी मुख्य और पर रूप से देखने पर गौण बनते रहते है। इस स्याद्वाद पद्धति से स्याद्वाद, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का पूर्णतया प्राप्त होना ही परमात्मा का स्वरूप है। और यही अद्वैत है।१०२।

इस प्रकार जो विद्वान पूर्वोक्त तीनो आनुपूर्वियो का ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसका हृदय विशाल बन जाता है, क्योंकि उसमे समस्त धर्मों का समन्वय करने की योग्यता आ जाती है। और उसके विचार मे फिर सभी धर्म एक होकर परम निर्मल अद्वैत स्थापित हो जाता है।१०३।

इस प्रकार अद्वैत का परम श्रेष्ठ हो जाना जैनियों के लिए कोई आपत्ति कारक नही है। क्योकि हम यदि गम्भीरता से अपने मन में विचार करके देखे तो जैनियो के जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित यह भूवलय शास्त्र अनुभय रूप है। अर्थात् अथचित् द्वैत रूप है, तो कथंचित् अद्वैत रूप है और कथञ्चित् द्वैताद्वैत उभय रूप है। अतएव अथंचित् दोनो रूप भी नही है। इस प्रकार उभय अनुभय इन दोनो की घनसिद्ध (समष्टि) रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१०४।

इसलिए यह भूवलय दिव्य सिद्धान्त ग्रन्थ है। यानी सर्व-सम्मत ग्रन्थ है अर्थात् सबके लिए माननीय है।१०५।

वस्तुत यह भूवलय ग्रन्थ जिन सिद्धान्त ग्रन्थ है।१०६।

प्रारम्भ से लेकर अन्त तक समान रूप से चलने वाला अंकमय यह भूवलय ग्रन्थ है।१०७।

आत्मा का स्वरूप घन स्वरूप है इसलिए यह घन धर्मांक भूवलय है।१०८।

अक मे संख्यात असख्यात और अनन्त ऐसे तीन भेद होते है। अनन्त केवली-गम्य है। उस अनन्त राशि को जनता को बतलाने वाला यह भूवलय है।१०९।

जब अनन्त अंक का दर्शन होता है तब सिद्ध परमात्मा का ज्ञान हो जाता है इसलिए नाम सिद्ध भूवलय है।११०।

यह भूवलय ग्रन्थ बिन्दी से निष्पन्न होने के कारण अणुस्वरूप है और अनन्तानन्त अर्थात् ९ तक जाने के कारण महान् भी है। इसलिए यह अणु-महान् काव्य है।१११।

यह भूवलय जिनेश्वर भगवान का वाक्यार्थ है।११२।

यह भूवलय मन शुद्ध्यात्मक है।११३।

शरीर विद्यमान रहने पर भी उसे अशरीर बनाने वाला यह भूवलय है ॥११६॥

जिसको कि तुम स्वयं अवगत किये हुए हो, ऐसे व्यतीत कल मे अनादि काल छिपा हुआ है। आज यानी—वर्तमान काल मे तुम मौजूद ही हो, अतः वह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार आने वाले कल मे अनन्तकाल छिपा हुआ है। परन्तु जब तुम रत्नत्रय का साधन कर लोगे तो बीते हुए कल के साथ में आने वाले कल को एक करके स्पष्ट रूप से जान सकोगे। एवं अपने आप मे तुम स्वयं अनाद्यनन्त हो जाओगे। अतः आचार्य का कथन है कि तुम भरसक रत्नत्रय साधन करने का सतत यत्न करो ॥११७।

इस प्रकार सच्चा रत्नत्रय प्राप्त हो जाने पर समतारूपी खड्ग के द्वारा क्रमश. क्रोध, मान, माया लोभ का नाश करके आत्मा विमलांक बन जाती है और इसी का नाम अनागत काल है। इसको बताने वाला भूवलय है ॥११८॥

मन के दोषो को दूर करने वाला अध्यात्मशास्त्र है, जो कि इस भूवलय में भरा हुआ है। बचन के दोषो को दूर करने वाला व्याकरण शास्त्र है, वह भी इसी भूवलय मे गर्भित है। इसी प्रकार शारीरिक वातादि दोषों को दूर करने वाला १३ करोड़ मध्यम पदात्मक वैद्यक शास्त्र भी इस भूवलय मे आ गया है। इसलिए मन, वचन व काय को परिशुद्ध बनाने वाला यह भूवलय है ॥११९॥

यह भूवलय भगवान् की दिव्य ध्वनि से प्रगट हुआ है। अतः यह श्री (शोभावान्) वचन होने से अत्यन्त मृदु, मधुर और मिष्ट है। तथा हृदय कमल पर आकर विराजमान होने से मन को प्रफुल्लित करने वाला है और मन प्रफुल्लित हो जाने पर भविष्यत् काल रूपी कल पूर्ण रूप से अवगत हो जाता है तथा आत्मा अद्वैत बन जाती है ॥१२०॥

यह भूवलय ग्रन्थ भूत भविष्यत् वर्तमान कालो को एक कर के बतलाने वाला, द्वैत अद्वैत और जय इन तीनो को एक कर, बतलाने वाला एवं देव,

दानव तथा मानन इन तीनों को एक साथ समता से रखने वाला है। इसलिये यह धर्मांक है ॥१२१॥

इन समस्त धर्मों को एकत्रित कर बतलाने वाले श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र भगवान् के धर्म का भी यह भूवलय प्रसिद्ध स्थान है। अतः धर्मांक है ॥१२२॥

वस्तुतः सभी मानवो का धर्म एक है, जिसका कि इस भूवलय में प्रतिपादन किया गया है ॥१२३॥

प्रति शरीर में जो आत्मा विद्यमान है, वह उत्तम धर्म वाली है ॥१२४॥

गत कल अनन्त काल तक बीता हुआ है और आने वाला कल भी अनन्त काल तक है अर्थात् आने वाला भूत काल से भी विशाल है इन दोनों को वर्तमान काल कड़ी के समान जोड़ता है ॥१२५॥

आदि में रहने पर भी आदि को देख नहीं सकते, और अंत मे रहने पर भी अंत को नही देख सकते, ऐसा जो अंक है वह ३×३ = ९ नौ अंक है।

जैन धर्म में अनेक भेद है उन भेदों को मिटा कर ऐक्य करने वाला यह नव पद जैन धर्म नामक ऐक्य सिद्धांत हैं ॥१२६॥

जगतवर्ती समस्त प्राणी मात्र के कल्याण करने वाले सभी धर्म नही हो सकते यद्यपि दुनिया में अनेक धर्म है परन्तु वे सभी धर्म कल्याणकारी नहीं है ॥१२७॥

जिस धर्मसे समस्त प्राणीमात्र का कल्याण हो उसी को सद्धर्म अथवा धर्म कहा जाता है, अन्य को नही ॥१२८॥

सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद है, उन विभिन्न ज्ञानों की योग्यता को बताने वाला यह भूवलय है ॥१२९॥

हमारा ज्ञान अधिक है और तुम्हारा ज्ञान अल्प है, इस प्रकार परस्पर विरोध प्रगट करके झगड़ने वालों के विरोध को मिटा कर सम्यग्ज्ञान को बतलाने वाला यह भूवलय है। अर्थात् परस्पर विरोध को मिटाने वाला तथा सच्चा ज्ञान प्राप्त करामे वाला यह भूवलय है ॥१३०॥

देव लोग और राक्षस (सज्जन और दुर्जन) एक ही प्राणी के सन्तान है। जैन जनता भगवान महावीर की परम्परा संतान रूप से अनुगामिनी हैं अर्थात् उनकी भक्त है। परन्तु कलिकाल के प्रभाव से जैसे पांडव और कौरवों ने एकता को तोड़ कर आपस में विरोध पैदा किया उसी प्रकार जैन भाई आपसी प्रेम को नष्ट करके विरोध पैदा करके एक ही धर्म को अनेक रूप मानने लगे हैं। द्वेष भाव मिटा कर ऐक्य के लिए प्रेरणा देने वाला यह भूवलय है ॥१३१॥

अन्य ग्रन्थों में अक्षरों को कम करके सूत्र की सूचना हो सकती है। परन्तु भूवलय ग्रन्थ में इस तरह नही हो सकता क्योंकि इसमें एक भाषा के साथ अनेक भाषाएं और अनेक विषय प्रगट होते है, अतः अन्य ग्रन्थों के सूत्रों के समान इस ग्रन्थ के सूत्र नही बन सकते। भूवलय के एक एक अक्षर में अनेकों सूत्र बनते हैं। इसलिए भूवलय ग्रन्थ सूत्र रूप है तथा यह ग्रन्थ विराट रूप भी है ॥१३२॥

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये परमेष्ठी विभिन्न गुणों के कारण भिन्न रूप दिखने पर भी आध्यात्मिक देव दृष्टि से पांचों समान है इनमे कोई भेद नहीं है। अथवा समस्त तीर्थंकर देवत्व की दृष्टि से समान है, पूर्ण शुद्ध परमात्मा मे जिन विष्णु शिव, महादेव और ब्रह्मा आदि नामों से कोई भेद नही होता ॥१३३॥

अर्हंदादि देवों के वाचक अक्षरों से बना हुआ मन्त्र भक्तों की रक्षा करता है ॥१३४॥

उपर्युक्त मन्त्रों को एकाग्रता के साथ जपने वाले को सातिशय पुण्य बन्ध होता है ॥१३५॥

इसी के साथ-साथ उनको विनत भाव और अहिंसात्मक सद्धर्म की भी प्राप्ति होती है ॥१३६॥

यह भूवलय ग्रन्थ परम सत्य का प्रतिपादन करने वाला होने से सभी के लिये कल्याणकारी है ॥१३७॥

यह भूवलय का नवमांक अणुव्रत और महाव्रत का स्पष्टरूप से प्रतिपादन करने वाला है इसलिये अणु महान् (हनुमान) जिन देव का कहा हुआ यह अङ्क है। उस हनुमान जिन देव की कथा रामाङ्क में आई हुई है और रामाङ्क यानी राम कथा भी मुनि-सुव्रतनाथ भगवान की कथा में आई है। श्री मुनि सुव्रतनाथ की कथा प्रथमानुयोग में अङ्कित है। प्रथमानुयोग शास्त्र श्री द्वादशाङ्ग वाणी का एक अंश है। यह भूवलय ग्रन्थ द्वादशाङ्गात्मक है, इसलिये यह जिन धर्म का वर्द्धमानाङ्क है ॥१३८॥

इस भूवलय ग्रन्थ मे अनेक महान् ऋद्धियों का वर्णन है। ऋद्धियां जैन मुनियों को प्राप्त होती है। जिन ऋद्धियों के प्राप्त होने पर शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है और सम्यक्त्व परिशुद्ध हो जाता है उन्ही ऋद्धि वाले महर्षियो मे से एक श्री वालि महामुनि भी है जोकि राम-रावरण के समय मे हो गये है। जब अपने बलके अभिमान मे आकर रावरण ने कैलाशगिरि को उठाकर समुद्र में डालना चाहा था उस समय श्री वालि मुनि ने अपने पैर के अंगुष्ठ से जरा सा दबाकर कैलास पर्वत के जिन मन्दिरो को रक्षा की थी और रावरण के अभिमान को दूर किया था। ऐसे शुद्ध सम्यक्त्व के धारक श्री बालि मुनि की बुद्धि ऋद्धि का यशोगान करने वाला यह भूवलय शुद्ध रामायणाङ्क है ॥१३९॥

द्वादशाङ्ग वाणी मे जो शुद्ध रामायण अंकि त है उसी रामायण को लेकर बालमीकि ऋषि ने कवि लोगों को काव्य रस का आस्वादन कराने के लिए काव्य शैली मे लिखा और उसमे महाव्रतो की महिम ा को बतलाया। उन महाव्रतो मे परिस्थिति के वश होकर यथा समय में आने वाले दोषों को दूर हटाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ परिशुद्धाङ्क है ॥१४०॥

जो परिशुद्धाङ्क—ससारी जीवों के महादुखो को दूर हटाने के लिए अणु-व्रतों की शिक्षा देता है, उन्हीं अणुव्रतो के अभ्यास से महाव्रतों की सिद्धि होती है। जो मनुष्य महाव्रतों को प्राप्त कर लेता है उसको मंगलप्राभृत की प्राप्ति हो जाती है। उस मगलमय महात्मा का दर्शन कराकर सम्पूर्ण जनता को परिशुद्ध बनाने वाला यह भूवलयाक है ॥१४१॥

विविध मगलरूप अक्षरो से समस्त संसार भर जावे फिर भी अक्षर बच जाता है। सबसे प्रथम उन सभी अक्षरो को भगवान आदिनाथ ने अमृतमय रस के समान यशस्वती देवी के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मी देवी की हथेली पर लिखा था वे ही अक्षर आज तक चले आये है। इन ६४ अक्षरों का ज्ञान होने से अनादि कालीन आत्माके विष के समान सलग्न अज्ञान दूर हो जाता है। इसलिये इन अक्षरों का नाम 'विषहर नीलकंठ' भी है। नीलकंठ का अर्थ ज्ञानावरणादि कर्म हैं। वे कर्म विषरूप है उन कर्मों का कथन करने वाला भगवान का कंठ है, इस कारण यह भूवलय का अक नोलकठ अक है ॥१४२॥

आदि मन्मथ बाहुबली की बहिन सुन्दरी को इस नवमांक रूप भूवलय का दर्शन तथा अनुभव कराकर अरहंतादि नव देवता सूचक जो ९ नौ अंक है, उस ९ अंक को शून्य के रूप मे अनुभव कराकर दिया हुआ ९ वां अंक है ॥१४३॥

जैन धर्म मे कहे हुए अर्हंतादि नव पद के समीप आकर ॥१४४॥

स्मार्त अर्थात् स्मृतियो के धर्म को और वैष्णव धर्म को इन्हीं अंकों मे समावेश और समन्वय करते हुए ॥१४५॥

इन धर्म वालो को अपने शरीर मे ही अपनी आत्मा को दिखला कर नव अंक मे शून्य बतलाकर इन धर्म वालो के शरीर के दोष एक ही-समान हैं कम अधिक नही है ऐसे बतलाते हुए सम्यग्नय और दुर्नय इन दोनों नामों को बतलाया। अंत मे दुर्नय का नाश करके सुनय में अतिशय को बताकर अन्त में उस अतिशय को अनेकांत में सम्मिलित कर दिया फिर चैतन्यमय आत्म तत्व को अपने हृदय में स्थापित करके हिंसामय धर्म से छुडा अहिसा में स्थापित कर देते है। इसी रीति से जिन मार्ग को सुन्दर बना कर और विनय धर्म के साथ सद्धर्मांक को जगत मे फैलाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४६-१५६॥

चौथे गुणस्थान से लेकर तेरहवे गुण स्थान तक उत्तरोत्तर आत्मा के सम्यक्त्व गुण की निर्मलता होती जाती है जिससे कि आगे आगे असख्यात गुणी निर्जरा होतो रहती है ॥१५७॥

ऊपर जो अनन्त शब्द आया है उसकी महिमा बतलाने के लिए सर्व-जघन्य संख्यात दो है। इस बात का खुलासा ऊपर वताया जा चुका है तथा एक का अंक अनन्त है यह बात भी ऊपर बता चुके है। अब एक और एक मिलाकर दो होता है इसलिए कुमुदेन्दु आचार्य कहते है कि सर्व जघन्य संख्यात भी अनन्तात्मक है। इतना होकर भी आगे आने वाली संख्याओं की अपेक्षासे बिल-कुल छोटा है। इस छोटे से छोटे अंक को इसी से वर्गित सम्वर्गित करे तो ४ महाराशि आती है $२^{२}$=४ इसको आगम की परिभाषा मे एकबार वर्गित सम्व-र्गित राशि कहते हैं।

इस राशि (४) को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करें तो दो सो छप्पन ४×४×४×४=२५६ आता है। इसका नाम दुबारा वर्गित सम्वर्गित राशि है। अब इस राशि को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करे तो २५६ = ६१७ स्था-नांक आते हैं इसको तीन बार वर्गित सम्वर्गित राशि कहते हैं।

२५६×२५६×२५६×२५६ × २५६ × २५६ इस प्रकार दो सो छप्पन बार गुणा करनेसे जो महाराशि उत्पन्न होती है उसका नाम ६१७ स्थानांक है । इसी रीति से बार-बार दो सो छप्पन वार करना ।

(१) २५६×२५६
(२) ६५५३६×२५६
(३) १६७७७२१६×२५६

इस तरह से सर्व जघन्य दो को सिर्फ तीन बार वर्गित सम्वर्गित करने से ही कितनी महान राशि हो गई । इससे भी अनन्त गुणा बढ़कर कर्म परमाणु राशि प्रत्येक संसारी जीव के प्रति सलग्न है । उन कर्म परमाणुओं को नष्ट कर दिया जावे तो उतने ही गुण आत्मा में प्रगट हो जाते है । अब सर्वोत्कृष्ट अनन्तानन्त संख्याङ्क को लाने की विधि श्री कुमुदेन्दु आचार्य बतलाते हैं—

उपर्युक्त तीन बार वर्गित सम्वर्गित राशि से वर्गित सम्वर्गित करे तो चार बार वर्गित सम्वर्गित राशि आती है । इस चार वार वर्गित सम्वर्गित राशि को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करने पर पांच बार वर्गित सम्वर्गित राशि बनती हैं इसी प्रकार छटवें वार, सातवें वार, आठवे वार और नौवें वार उत्तरोत्तर वर्गित सम्वर्गित करते चले जावे तो जो अन्त में महा-राशि उत्पन्न होती है उसका नाम नौ वार वर्गित सम्वर्गित राशि होता है । इस राशि का नाम उत्कृष्ट संख्यातानन्त है । इसके मध्य में दो से ऊपर जो भेद हुये सो सब मध्यम संख्यातानन्त के भेद हैं । इसमें एक और मिला देनें से जघन्य असंख्यात होता है यह असंख्यात का एक हुआ । इस असंख्यात मे इतना ही और मिलावें तो असंख्यात का दो हो जाता है । इस प्रकार करने पर उत्पन्न हुई महा राशि को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने असख्यात के दो माने हैं । इस दो को इसी दो से वर्गित सम्वर्गित करें तो असंख्यात की वर्गित सम्बर्गित राशि ४ हुई । यह असंख्यात की प्रथम वार वर्गित सम्वर्गित राशि हुई । असंख्यात ३= ४ इस चार को इसी चार से चार वार गुणा करने पर जो महा राशि उत्पन्न हो वह असंख्यात की दुबारा वर्गित सम्वर्गित राशि असंख्यात ४× असंख्यात ४× असंख्यात ४× असंख्यात ४× = असंख्यात २५६ होता है। इसी असख्यात महा राशि को इस महा राशि से इतनी ही वार वर्गित सम्वर्गित करने पर असंख्यात की तीन वार वर्गित सम्वर्गित राशि असंख्यात २५६ स्थानांक उत्पन्न होती है ।

इसी प्रकार चार बार असंख्यात सम्वर्गित, इत्यादि नौ बार वर्गित सम्वर्गित कर लेने पर जो महाराशि होती है वह उत्कृष्ट असंख्यातानन्त है । और इसके बीच के सब भेद मध्यम असंख्यातानन्त होते है । इसी में एक और मिला देने पर अनन्तानन्त का प्रथम भेद हो जाता है अर्थात् अनन्तानन्त का एक होता है और इसमें इतना ही और मिला देवे तब अनन्तानन्त का दो हो जाता है । इस दो को इसी दो से वर्गित सम्वर्गित करने पर अनन्तानन्त का ४ आता है जोकि अनन्तानन्त का एक बार वर्गित सम्वर्गित राशि होती है । अब इसको भी पूर्वोक्तरीत्य नुसार के पश्चात् नौ बार वर्गित सम्वर्गित करने से जो महाराशि होती है वह उत्कृष्टानन्तानन्त होता है । यह अनन्तानन्त परिभाषा तो गणना को अपेक्षा से बताई गई है इससे भी अपरिमित अनन्तानन्त और हैं जिन के नाम एकानन्त, विस्तारानन्त, शाश्वतानन्त इत्यादि ग्यारह स्थानों तक चलता है । जोकि छद्मस्थ के बुद्धि-गम्य न होकर केवलि-गम्य है । यह गणित-पद्धति विद्वानों के लिए आनन्द-दायक होनी चाहिए क्योंकि यह युक्ति-सिद्ध है ।

नवमांक में पहले अरहंत, दूसरे सिद्ध तीसरे आचार्य चौथे उपाध्याय, पांचवें में ।।१५८।।

पाप को दहन करने के लिए साधु समाधि में रत साधु छठा सच्चा धर्म, सातवां परिशुद्ध परमागम, आठवी जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति ।१५९।

नौवां गोपुर द्वार, शिखर, मानस्तंभ इत्यादि से सुशोभित जिन मन्दिर हैं, आगम परिभाषा में ऊपर कहे हुए नौ को नव पद कहते है ।।१६०।।

इस नव पद का पहला मूल स्वरूप अद्वैत दूसरा द्वैत है इन दोनों से समान रूप से मोक्ष पद प्राप्त करने की जो प्रवल इच्छा रखते है। उनको एक ही समान द्रव्य और भाव मुक्ति के लाभ दोनों को ।।१६१।।

जब मिलता है तब अनेकांत का मूल स्वरूप नय मार्ग मिलता है । हम लोग इसी तरह जैनत्व को प्राप्त करेंगे तो चौदहवें गुणस्थान की प्राप्ति हो सकती है ।।१६२।।

तब उसमे मन वचन काय योग की निवृत्ति होती है। उसी समय विश्व के अग्रभाग पर यह आत्मा जाकर स्थित रहता है ।।१६३।।१६४।।

उसी सिद्ध अवस्था प्राप्त किये हुए स्थान को मोक्ष या वैकुण्ठ कहते हैं ।१६५।

यह श्री वीर वाणी विद्या है ।१६६।

इसी विद्या के सिद्धि के लिए हम अनादि काल से इच्छा करते थे ।।१६७।।

केवली समुद्घात के अन्तर्गत लोक-पूरण समुद्घात मे भगवान के आत्म प्रदेश सर्वलोक को व्याप्त करते है उससमय केवली का आत्मा समस्त जीव राशि के आत्म प्रदेश मे भी स्थित होने के कारण उस प्रदेश को सत्यलोक ऐसे कहते हैं ।।१६८।।

उस केवली भगवान के परिशुद्ध आत्म-प्रदेश हमारे आत्म-प्रदेश मे सम्मिलित होने के बाद समस्त जीव लोक और भव्य जीव लोक इन दोनों लोक की शुद्धि होती है ।।१६९।।

उन भगवान के विराट् रूप का अन्तिम समय जन्म और मरण को नाश करने वाला है ।।१७०।।

और वही समस्त भाव और अभाव रहित है ।।१७१।।

इसलिए हे भव्य मानव प्राणियो ! तुम लोग इसी स्थान की हमेशा आशा करते रहो ।।१७२।।

इस प्रकार आशा को रखते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विश्वरूप भूवलय काव्य का महत्व बताया है ।।१७३।।

श्री विष्णु का कहा हुआ द्वैत धर्म, ईश्वर का कहा हुआ अद्वैत धर्म तथा जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ अनेकात इन तीनो धर्मोंका ज्ञान हो जाय तो ३६३ अनादि काल के धर्म का ज्ञान होता है। उन धर्मों के समस्त मर्म के ज्ञानी लोग अपने हृदय कमल की पाखडियो मे लिखे हुए अक्षरो मे श्रो अंक को गुणाकार रूप से गुणनकर के आये हुए अंक में अनाद्यनत काल के समयो को शलाका खड के साथ मिला देने से आया हुआ जो काव्य सिद्ध है वही भूवलय है ।।१७४।।

भूवलय के नौ-अंको के रहस्य को जो कोई भी मनुष्य जान लेता है, इन को वश में कर लेता है उसके निद्रा भूख प्यास इत्यादि अठारह दोष जोकि ससार के मूल हैं, सभी नष्ट हो जाते है इनका नाम-निशान भी नही रहता है। उसको चतुर्थ पुरुषार्थ हस्तगत हो जाता है ।।१७५।।

वह नवमाक सिद्धि किस प्रकार होती है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि—इस भूवलय ग्रन्थ मे द्रव्य प्रमाणानुगम अनुयोग द्वारान्तर्गत जो करण सूत्र है उसका पुन-पुन अभ्यास करके उपस्थित कर लेने से नवमाक की सिद्धि हो जाती है। और वह पुरुष विश्व भर मे होने वाली सातसो अठारह भाषाओ का एक साथ ज्ञाता हो जाता है। तथा तीन सौ त्रेसठ मतान्तरो का भी जानकार बन जाता है ।।१७६।।

इस ससार मे यह जीव अनादि काल से अशुद्ध अवस्था को अपनाये हुए है, अतः तीन काल मे एक रूप से बहने वाले अपने सहज भाव को न पहिचान कर भयभीत हो रहा है। इसलिए दोनो लोको मे सुख देने वाली अविनश्वर सर्वार्थ सिद्धि सम्पदा को प्राप्त करा देने वाले परिशुद्ध स्वभाव को प्राप्त नही किया है। इस भूवलय के द्वारा नवमांक-सिद्ध प्राप्त हो जाता है ।।१७७।।

विवेचन—परमाणु से लेकर तीनो वातवलय तक रहने वाले छः द्रव्यो से परिपूर्ण भरा हुआ क्षेत्र का नाम ही पृथ्वी है। एक परमाणु को जानने के लिए अनाद्यनत काल का परिचय कर लेने की भी जरूरत है। एक परमाणु के परिचय कर लेने में अनाद्यनन्त काल बीत जाता है तो असंख्यात अथवा अनन्तानन्त परमाणु के परिचय कर लेने मे कितना समय लगेगा ? इस प्रश्न के बारे मे श्री कुमुदेन्दु आचार्य से असख्याता सख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के अर्द्धच्छेद शलाका से भी इस परमाणु के कथन को घटा नही सकते ऐसा कहा है। इस प्रकार का महान ज्ञान इस भूवलय में भरा हुआ है। उस सभी ज्ञान को एक क्षण मे कह देने वाला केवल ज्ञान कितना बड़ा होगा ? इस विचार को आप लोग ही करे।

एक व्यापारी थोडा सा रुपया खर्च करके बहुत सा लाभ प्राप्त करलेता है उसके समान तीन काल और तीन लोक के ज्ञान को प्राप्त कर लेने के लिए-जो थोडी सी तपस्या की जाती है उससे महान लाभ होता है, रंचमात्र भी नुकसान नहीं है ।।१७८।।

इन सब में जो सच्चा लाभ है वह एक अरहंत भगवान को ही प्राप्त हुआ है, ऐसा समझना चाहिए। अर्थात् वही सच्चा लाभ है ॥१७९॥

दया धर्म को बेचकर उसके द्वारा आया हुआ जो लाभ है वही यथार्थ लाभ है ॥१८०॥

दया धर्म का महत्व—

एक दयालु धर्मात्मा श्रावक अपने काम के लिए परदेश जा रहा था। बीच में भयानक जंगल पडा गर्मी के दिन थे और उस जंगल की जितनी घास थी वह सभी सूख गई थी। भयानक जंगल होने से उस में बहुत झाड़ और झाड़ियां उपजी हुई थीं। इसलिए उस जंगल में बहुत बड़े-बड़े हाथी और अन्य अनेक जानवर इत्यादि रहते थे। एकाएक जंगल में चारों ओर आग लग गई, आग लगते ही उस जंगल में रहने वाले जीव अग्नि के भय से भयभीत होकर चिल्लाने लगे। उस चिल्लाने की आवाज उस दयालु श्रावक ने सुनकर देखा तो चारों ओर आग लगी हुई थी। और सभी प्राणी भयभीत होकर चिल्ला रहे है। तुरन्त ही वह दयालु श्रावक पहुंचकर उन सभी प्राणियों को बचाने का उपाय सोचने लगा। अर्थात् अग्नि को बुझाने की युक्ति सोचने लगा परन्तु गर्मी के दिन होने के कारण वह अग्नि बढ़ती जाती थी बुझने की कोई उम्मेद नही थी। वह विचारता है कि अगर इस समय पानी बरस जाय तो अग्नि ठण्डी हो जायगी अन्यथा नही परन्तु आकाश साफ अर्थात् एकदम निर्मल दीख रहा है, पानी बरसने की कोई उम्मीद नही है। अब क्या उपाय करना चाहिए ऐसा मनमें सोचते हुए उसने विचार किया कि इस अग्नि को शान्त करने के लिए एकान्त मे बैठकर प्रज्ञप्ति मंत्र का जाप जपना चाहिए ऐसा मन में निश्चय करके एक झाड़ के नीचे बैठकर एकाग्रता से मन्त्र का जाप करने लगा। ऐसे जाप करते-करते बहुत से जाप किये तब तुरंत ही बादल होकर खूब पानी बरसा जिससे अग्नि ठण्डी हो गयी और सभी जीव अपनी २ जान बचाकर शांत चित्त से विचरने लगे। परन्तु दयालु श्रावक अभी तक जाप में ही था जाप करते-करते उसी जाप मे निमग्न होकर अपने शरीर को भूल गया। उसे तुरन्त सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करली। तत्काल कठिन तप के द्वारा उसने केवल ज्ञान को प्राप्त कर लिया। यही परजीव पर दया करने का फल है।

यह ऊपर लिखे अनुसार गुरु हंसनाथ का सन्मार्ग है।१८१।

सभी तीर्थंकर परम देवों ने इसी मार्ग को अपनाया है।१८२।

यह सदाकाल रहने वाला आतमा का सौभाग्य रूप है।१८३।

यही धर्म विश्वकल्याणकारी होने से प्राणी मात्र के द्वारा आराधना करने के योग्य है। १८४।

यह अविच्छिन्न गुरु परम्परा से प्राप्त हुआ आदि लाभ है।१८५।

यही धरसेन गुरु का अंग है। अर्थात् काल दोष से जब अंग ज्ञान विछिन्न होने लगा तब श्रुत की रक्षार्थ अपने अन्तिम समय में बुद्धि विचक्षण श्री भूतवलि और पुष्प दन्त नामक महर्षियों की साक्षी देकर श्रुत देवता की प्रतिष्ठापना जिन्होंने की थी उन्ही गुरु देव का अनुयायी यह भूवलय है।१८६।

जिन लोगों ने अपने जन्म में सत्य श्रुत का अध्ययन करके प्रसन्नता पूर्वक जन्म बिताया उन महापुरुषों कामूल भूत गणित भंग यह भूवलय है।१८७।

युद्धार्थी शूरवीर को जिस प्रकार कवच सहायक होता है उसी प्रकार परलोक गमन करनेवाले महाशय के लिए परम सहायक सिद्ध कवच है।१८८।

हरि अर्थात् सबको प्रसन्न करने वाला और हर अर्थात् दुष्कर्मों का नाश करनेवाला इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ सिद्धान्त ग्रन्थ भी यही भूवलय है।१८९।

अरहन्त पदों की आशा को पूर्ण करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१९०।

रत्नत्रय के प्रकाश को बढाने वाला तथा सत्यार्थ का अनुभव करा देने वाला एवं सात तत्वों का समन्वय करने वाला तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ है। उस तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ को इतर अनेक विषयों के साथ मे सगठित करते हुए इस भूवलय ग्रन्थ में भगवान के मुख तथा सर्वाङ्ग से निकली हुई वाणी का सम्पूर्ण सार भर दिया गया है। इसलिए यह ग्रन्थ दिव्य-ध्वनि स्वरूप है।१९१-१९२।

यह छठवां ई इं नामक अध्याय है। इस अध्याय में सम्पूर्ण सिद्धान्त भरा हुआ है। इसलिए इसमें जो पद का अक्षर, अक्षर का अङ्ग, अङ्ग की

रेखा, रेखा का क्षेत्र क्षेत्र का स्पर्शन, स्पर्शन का काल, काल का अन्तर, अन्तर का भाव और अन्तिम मे अल्प बहुत्व इन अनुयोग द्वारो से उस महार्थ को मैने बन्धन बद्ध किया है अत जैन धर्म का समस्तार्थ इसमे है, जोकि मानव मात्र का धर्म है।१६३-१६४।

इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से सम्पूर्ण मानवो मे परस्पर एकता स्थापित होती है।१६५।

जिस एकता से उत्तरोत्तर प्रेम वढता जाता है।१६६।

एकता और प्रेम के वढने से सभी के दुष्कर्मो का नाश हो जाता है।१६७।

जैन शास्त्र किसी एक सम्प्रदाय विशेष के ही लिए नही किन्तु सवके लिये, है ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते है।१६८।

जैन धर्म मे विशेषत. विनय धर्म प्रधान है जोकि सवके प्रति समानता का पाठ सिखलाता है। १६६।

सब देशों मे रहने वाले तथा किसी भी प्रकार की भाषा के वोलने वाले सभी मनुष्यो के साथ मे यह सम्बन्ध रखता है।२००।

यह धर्म पंचम काल के अन्त तक रहेगा।२०१।

छठे काल मे धर्म नही रहेगा।२०२।

ऐसा कहनेवाले अङ्ग धरो का ज्ञान ही यह भूवलय ग्रन्थ है।२०३।

दूसरे इ अध्याय मे प्रतिपादन किये हुए धर्म का आराधन यदि सुगम नही है तो दुर्गम भी नही है किन्तु कुछ थोड़ा प्रयास करने पर प्राप्त हो जाता है।२०४।

प्रकाशमान हुआ द्वैत, अद्वैत और अनेकान्त इन तीनो का सूत्र ग्रन्थ इस अध्याय मे अङ्कित है। इस अध्याय मे आठ हजार सात सौ अड़तालीस श्रेणी मे ब्राह्मी देवी का अक्षर और सुन्दरो देवा के इतने ही अंक हैं।२०५।

आगम के जानकार लोग इस ई इ अध्याय मे से रागवर्द्धक और वैराग्य वर्द्धक दोनो ही प्रकार का मतलव ले सकते है। इसी अध्याय के अन्तर मे ग्यारह हजार नौसौ अट्ठासी अंकाक्षर रखनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।२०६।

ई इ—८७४८+अन्तर ११९८८=२०७३६

अथवा आ—ई इ तक ८४८५२+२०७३६= १०५५८८

ऊपर से नीचे तक प्रथमाक्षर जो प्राकृत गाथा है उस गाथा का अर्थ यहा दिया जाता है—

भगवान के मुखारबिन्द से निकले हुए वचनात्मक यह भूवलय ग्रन्थ होने से विलकुल निर्दोष है और शुद्ध है। इसलिए इसका दूसरा नाम महर्षियों ने आगम ऐसा वतलाया है। यह भूवलय ग्रन्थ समस्त तत्वार्थो का प्रतिपादन करने वाला है।२०६।

इसी के बीच मे से जो संस्कृत भाषा निकलती है उसका अर्थ लिखा जा रहा है—

(भव्य जीव मन प्रतिवोध) कारक होता है, पुण्य का प्रकाशक होता है, पाप का नष्ट करने वाला है ऐसा यह ग्रन्थ है जिसका नाम भवलय है इसका मूल ग्रन्थ —

सातवां अध्याय

उ* पपाद शाय्येय मारणान्तिकवाद । सफलद त्रस कोकदन् क* दुपरिम लोक पूरणदळतेयोळिह । उपमेय त्रस नालियन्क ॥१॥
व* रद समुद्घातदोळुलोकपूरण । सरिदोरि बरलात्म रूप॥ दो र* एताग अ इ उ ऋ ळ् ए ऐ ओ औ सर्व । बरेयलागद 'उ' भूवलय ॥२॥
वा* द वय्खरियोळु साधिसिदात्मन । साधनेयडगिदयोग॥ मोदव ता* गुव स्याद्वाद सिद्धिय । आदिगनादिय योग ॥३॥
द* रुशनशक्ति ज्ञानद शक्ति चारित्र । वेरसिद रत्नत्व र* व ॥ बरेयबारद बरेदरु ओदबारद । सिरिय सिद्धत्व भूवलय ॥४॥

परिशुद्धरात्म भूवलय (निर्मलद) ॥५॥ अरहन्त रूपळिदिरुव ॥६॥ गुरुवु सद्गुरुवाद नियम ॥७॥
हरि विरचिगळ सद्वलय ॥८॥ निरुपमवागिह उपमा ॥९॥ सिरि सिद्धरूपिन परम ॥१०॥
अरहंत राशा भूवलय ॥११॥ परमामृतसिद्धनिलय ॥१२॥ पुरुदेवनोलिदश्रीनिलय ॥१३॥
हर सिव मंगल वलय ॥१४॥ बरेयलागद चित्र सरल ॥१५॥ करुणेय फलसिद्धि निलय ॥१६॥
परिपूर्ण सुखदादि वलय ॥१७॥ गुरुपरम् परेयाशा वलय ॥१८॥ धरसेन गुरुविन निलय ॥१९॥
परमात्म रूपिन निलय ॥२०॥ बरुवकालदशान्ति निलय ॥२१॥ इरुव वस्तुवनोळ्प बुद्ध ॥२२॥
मरणवागद जीव वरद ॥२३॥ परमात्म सिद्ध भूवलय ॥२४॥

मा* न मायवु लोभ क्रोध कषायगळ् । तालव्प्श्र हदिनारु भन्ग ह* तानल्लि बिट्टोडे निजरूपदोळात्म । आनन्द रूपनागुवुदम् ॥२५॥
र* त्न मूरर रूप धरिसिद आ शुद्ध । नूत्नान्तरन्गद वर श* री ॥ यत्नदिम् नन्द सद्धर्म साम्राज्य । नित्यात्म रूपवी लोक ॥२६॥
ण* वदंक परिपूर्ण वागिसिदरहन्त । अवनिगे सिद्धत्व री* ति॥ अवतारदादिये लोकाग्र मुकतिय । नवमान्क प्राप्तिय लोक॥२७॥
न* रनु लोकद रूपपर्याय होन्दलु । हरि हर जिनरेम्ब सर स* तिरेयग्र लोकाग्र मुक्तिय साम्राज्य । हरुषद लोकपूरणवु ॥२८॥
ति* रेय रूपनु होन्दिदात्मन पर्याय । विरुवाग हदिनाल्कु स र* व ॥ वर साधु पाठक आचार्य ई मूरु । गुरुगळंकवु नवपदवु ॥२९॥
य* शदग्र सर्वस्ववा ससुद्घात । दिशेयग्रवेनिसिद सर् व* यशवेतल ओम्दाद सूर्तिये जिन बिम्ब । हसनाद विम्बदालयवु ॥३०॥

वशवाद सद्धर्म लोक ॥३१॥ यशद दिव्यध्वनि शास्त्र ॥३२॥ रससिद्धि नवकारर्थ ॥३३॥ विषहर सौख्यांक नवम ॥३४॥
असमान सिद्ध सिद्धान्क ॥३५॥ कुसुमायुधन गेलदन्क ॥३६॥ यसश्वतिदेविय पतिय ॥३७॥ यशद सुनन्देय पतिय ॥३८॥
रसऋषि वृषभनाथांक ॥३९॥ वशवादमृत निभान्क ॥४०॥ असदरुशअजित नाथांक ॥४१॥ वशदशम्भवर दिव्यांक ॥४२॥
रस अभिनन्दन सुमित ॥४३॥ वशद पद्म प्रभ विमल ॥४४॥ स सुपार्श्व चन्द्रप्रभांक ॥४५॥ वश पुष्पदन्त शीतलर ॥४६॥
सश्रेयाम्स वासु पूज्यांक ॥४७॥ ऋषि विसलानन्त धर्म ॥४८॥ वश शान्ति कुन्थु श्री अरह ॥४९॥ यशमल्लि मुनिसुव्रतांक॥५०॥
यश नमि नेमि सुपार्श्व ॥५१॥ रस ऋषि वर्धमानान्क ॥५२॥ यशविन्तु वर्तमानांक ॥५३॥ यशदिप्पत्नाल्कु मत्पुनह ॥५४॥
विषहर काव्यदोळ् बहुदु ॥५५॥

प* द भूतकालद् इप्पत्नालवरन्क । पद श्री शान्ति सर्व ज* न ॥ मुद इप्पत्मूरु अतिक्रान्त श्री भद्र । विदरंक वेप्पतुएरडु ॥५६॥

यशोधर हदिनेन्टरंक ॥५७॥
रि* षि इप्पत् ओमृदु श्री शुद्धमति देव । रस ज्ञानमति सुज् ञ* देव॥ वशदइप्पत् अन्ककरुणहत् ओम्बतम् । नव ऐदु उत्साहरंक ॥५८॥
ण* वपद्म विमलांक हदिन्एळु परमेश । अव हदिनार् एम्ब दे वा* ॥ नवमत्तु आरसक जिनह ज्ञानेश्वर । जिनरु सन्मतियु हत्अन्क ॥५९॥
द* नवर वन्दित शिवगण हदिमूऊरु । घन कुसुमान्जलि दे वा* जिनरु हन्एरडंक सिन्धुवु हन्ओमृदु ।

जिनरु अनुगोर ओम्बत्तु ॥६०॥ जिनरु उद्धररु एन्ट्न्क ॥६१॥ जिन अमलप्रभरेळु ॥६२॥
घन सुदत्त् आन्कवु आरु ॥६३॥ जिन श्री धरान्कवु ऐदु ॥६४॥ जिन विमल प्रभ नाल्कु ॥६५॥
जिन देव साधु मूरन्क ॥६६॥ घन सागर एरडन्क ॥६७॥ जिनरु निर्वाण ओमृदन्क ॥६८॥
अनुगाल विनिताद अंक ॥६९॥ जिन् भूत वर्तमानांक ॥७०॥ एनुवाग बन्द भूवलय ॥७१॥

एनुविप्पत्नाल्वरनागत तीर्थक। जिन सिद्धनाम स्वरवप ॥७२॥
त* नुवळिदतनुव गेल्दन्क विन्तागे । तनुवलिववरन्कम् स* व नव॥ तनुजिन ऐदवरन्क ॥७३॥
स* वण महापद्म मोदलागे सुरदेव । जिन एरडे सुसुपार्श्व ॥ त* नि मूरु स्वयंप्रभ नाल्कु सर्वात्म भू । श्री कर नवम प्रोष्ठिलरु ॥७४॥
लो* कयकर् देवपुत्राख्य आरन्कवु । आ कुल पुत्रर् सेरुवु दु* ॥ श्री कर एळु महोदन्क एन्टागे । वशवागे हदिमूररन्क ॥७५॥
य* श जयकीर्ति हत्ता मुनि सुव्रत ॥ ऋषिहत् ओमृदु एन्दुक् त* अ । यश अरद्वादश पुष्पदन्तेशरु ।

रस चतुर्दश विष्कषाय ॥७६॥ यश हदिनयदु श्री विपुल ॥७७॥ वश हदिनारु निर्मलरु ॥७८॥
रिषि चित्रगुप्त सप्तदश ॥७९॥ यशहदिनेन्दु समाधि ॥८०॥ वश गुप्त श्री जिनरन्क ॥८१॥
रस्वयम्भू हत्ओम्बत्अंक॥८२॥ यश अनिवृत्त इप्पत्तु ॥८३॥ रस विजयरु इप्पत् ओमृदु ॥८४॥
यशद विमल इप्पत् एरडु ॥८५॥ वश इप्पत्मूरु देवपाल ॥८६॥ असमान महानन्त वीर्य ॥८७॥
रस अनागतइप्पत् नाल्कु ॥८८॥ कुसुम कोदन्डदललणर ॥८९॥ रसदेप्पत् एरडन्क नेवम ॥९०॥
दिशेयन्क ओम्बत्तु काव्य ॥९१॥ रस काल तीर्थकरन्क ॥९२॥ यशदन्क काव्य भूवलय ॥९३॥
वशमूरु मूरळोम्बत्तम्॥९४॥ बेसदन्क काव्य भूवलय ॥९५॥

धर्म मुन्दण इप्पत्नाल्कु ॥९६॥
पू* र्वांपाराजित कर्मव केडिसिद । पूर्वदिप्पत्नाल्कु इनि त* ॥ निर्मलदीगण इप्त्नाल्कअन्कद । वशवदे मूरु कालान्क ॥९७॥ २४×३=७२
र* सद ई कालद श्रीतीर्थनाथर । रस कूटदलि एरडेळु॥ बेस र* त्नत्रय मूरु मूरल् ओम्बत्तु । दारदगुणकारदिन्द ॥९८॥ ३×३=९
णो* रदे ई मूरु गुणकारदिम्बन्द । हारमणियनगवद ॥ सार ग* रन्थद हदिनाल्कु गुणस्थान । दवतारदक्षरदंक ॥९९॥
ण* वपद प्राप्तिय गुणकार मग्गियिम् । सविहदिनाल्कन्क र* सदिम् ॥ सवनिसेसाविरदेन्दुदलद पद्म ।
[७३×१४=१००८]
ग* मनिसि साविरदेन्दु दलगळुळ्ळ । कमलगळ् एरड्उ काल् न* नूरु ॥ क्रमपाद ओमृदरिम् गुणिसे सोन्नेयु आ, विमल सोन्ने एन्टु आरेरडेरड्उ ॥१००॥ [१००८×२२५=२२६८००]

आ सिद्धरसव माडुवुदु ॥१०१॥
दो* ष विनाशनवादओमृदेपाद । दाशक्तियतिशयपुण्य ॥ राशिय य* रतर गणितदोळात्मन । लेसनु साधिसलहुदु ॥१०५॥
आशेयनेल्ल कूडिपुदुम् ॥१०२॥ राशिकर्मव कळेयुवुदु ॥१०३॥ श्रीशन माडुत बहुदु ॥१०४॥

राशि ज्ञानव होरडिपुदु ॥१०६॥ श्री सिद्ध पदवसाधिपुदु ॥१०७॥ राशियनोम्दुगूडिपुदु ॥१०८॥ ईशत्ववदनु साधिपुदु ॥१०९॥
ईषत्प्राग् भारकेय्दिपुदु ॥११०॥ राशि सूक्ष्मत्व साधिपुदु॥१११॥ आशेयव्याबाधवहुदु ॥११२॥ नाशत्वेल्लगेल्वुदु ॥११३॥
ओषध रूप वागिपुदु ॥११४॥ ओषधवमृत वागिपुदु ॥११५॥ राशिय वगाहवागिपुदु ॥११६॥ लेसिनगुरु लघुवहुदु ॥११७॥
लेसनेल्लरिगे तोरुवुदु ॥११८॥ आ शक्तियनुभव काव्य ॥११९॥ श्रीशक्तियाद्यन्कवलय ॥१२०॥ भूषणवाक्य भूवलय ॥१२१॥

के॥ ळुव भव्यर नालगेयग्रद । सालिनिम् परितन्दुदनु ॥ काल क॥ लापद अरवत्तु साविर । लीलेयशन्के गुत्तरवम् ॥१२२॥
व॥ रदवागिसि अतिसरलवनागिसि। गुरु गौतमरिन्द हरिसि॥ स र्॥ वान्कद् अरवत्नाल्क् अक्षरदिन्द । सरिश्लोक आरु लक्षगळोळ् ॥१२३॥
लि॥ पियु कर्माटक वागलेबेकेम्ब । सुपवित्र दारिय तोरि ॥ मप ता॥ ळलयगूडिद् आरुसाविर सूत्र । दुपसम्हार सूत्रदलि ॥१२४॥
णो॥ आगमद्रव्य शास्त्र वागिसिदन्क । ई आगम द्रव्य व र॥ द ॥ ऊ आगमद दिव्याक्षर स्वरदोळु श्री आगमद भूवलय ॥१२५॥

ता आगतद सिद्धान्त ॥१२६॥ को आगमवेनलेके ॥१२७॥ णो आगम भाव काल ॥१२८॥ णो आगमद (अनन्त) अन्तरवु ॥१२९॥
णो आगमतद्व्यतिरिक्त ॥१३०॥ श्री आगमक्षेत्र स्पर्श ॥१३१॥ णोआगमाल्प वहुत्व ॥१३२॥ श्रीआगतद सिद्धांत ॥१३३॥
गो आगम बंध द्रव्य ॥१३४॥ आ आगमद अबंध ॥१३५॥ श्री आगम सम्ख्यदन्क ॥१३६॥ श्री आगतदि बन्दिरुव ॥१३७॥
ई आगमद भूवलय ॥१३८॥

अ॥ ष्टमहाप्रातिहार्य वय्भववे । अष्टमहा पाडिहेरा ॥ उस ह॥ जिनेन्द्रादिगळिगे केवलज्ञान । वेसेद अशोकव्रुक्षगळ ॥१३९॥
व॥ रद नामगळोळु न्यग्रोधवु ओमुदु । वर सप्तपर्णन्क ग॥ ळु ॥ एरडागेशालसरलप्रियन्गु प्रियन्गुम । बरलु मूर्नाळ्कलदारु ॥१४०॥
ल॥ क्षणवा शिरीषवु एळु श्रीनाग । व्रुक्ष अक्षवु धूलियव ण॥ ॥ व्रुक्ष पलाश एन्टोम्बत्तु हत्ग्रंक । लक्षिसे हन्नोम्दरम्क ॥१४१॥
म॥ रळि पाटलवु नेरिल दधिपर्णवु । वर नन्दिहन्एरड्अ ध॥ र ॥ सरणि हदिमूर्हदिनाल्कूहदिनय्दु । बरलु तिलक हदिनारु ॥१४२॥
बि॥ ळिमावु कनकेलि सम्पगे बकुल । बळिहन्एल्हदिनेन्टु ॥ सळ र॥ स विहत्तोम्बत्इप्पत्तु मेषश्रुन्ग । आळिमलेयोळग् इप्पत्ओम्दु ॥१४३॥
य॥ श धूलियुधव शालविन्तिवुगळ । वशइप्पत् एरडदु वर दे॥ रसद् इप्पत्मूरिप्पत्नाल्कू एनुवन्क । रस सिद्धिगादि अशोक ॥१४४॥

यशद मालेगळ तोरणदि ॥१४५॥ असमान घंटेय सरदिम् ॥१४६॥ वश मन सोहक वेनिप ॥१४७॥
असमान रमणीयवेनिसि ॥१४८॥ यशदन्ग राग पल्लवदि ॥१४९॥ यशवे पुष्प सम्कुलदि ॥१५०॥
वशवप्प रससिद्ध हूवु ॥१५१॥ रसमणि गादिय हूवु ॥१५२॥ यशस्वति देविय मुडिपु ॥१५३॥
कुसुम कोदन्डलम्बेच्चु ॥१५४॥ असदृश कामित फलद ॥१५५॥ यशद् बळ्ळिगळ हुदुंग ॥१५६॥
विषहरवाद अमृतवु ॥१५७॥ कुसुमाजि मुडिदलनकार॥१५८॥ रस घट्टिगादिय भनग ॥१५९॥
यशद कोम्बेगळ भूवलय ॥१६०॥

स्॥ वणत्वसिद्धिय शोकवादिय दिव्य । नवव्रुक्ष जातीयव् वा॥ द ॥ अवुगळु तमगिन्त हनएरडण्दुह । नव रत्न वर्णशोभेगळ् ॥१६१॥
व्॥ र्णनवेके देवेनदरनुद्यानदि । निर्वाहवागद् अगिडदे ॥ ह॥ र्षवनीवुदेनदेनलेके साकदु । निर्मल तीर्थमनगलव ॥१६२॥
व॥ रद हस्तद तेरनाद छत्र त्रय । अरहंत शिरदलिर् प्॥ आग॥ हरुषदचन्द्रमण्डल मुक्ताफलज्योति। वेरसि निंदिहुदु शोभेयलि।१६३

ज॰ यद सिम्हासन नालमोर्गादिदिह । नयद निर्मलमार्गदि र॰ विमु। जयरत्न स्फटिकगळ् केत्तिरुवंकदे । नयप्रमाणगळु ओम्द् आगे॥१६४
गो॰ पुरदा हिन्दे इरुव सिम्हासन । रूपळिदिह ई गणित ॥ श्रीप ति॰ यडियु सोन्किद दिव्य मंगल । श्री पाहुडद शोभेयलि ॥१६५॥

कोपवळिद सिम्ह मुखगळ् ॥१६६॥　तापप्रतापद् अहिम्से ॥१६७॥　रूपदोळ् शौर्य प्रसिद्धि ॥१६८॥
व्यापित भव्याब्जहृदय ॥१६९॥　भूपरनेरगिप शक्ति ॥१७०॥　श्री पद्धतिय पाहुडवु ॥१७१॥
आ पाहुडवे प्राभृतवु ॥१७२॥　रूपस्थ वीररासनवु ॥१७३॥　दीपद ज्योतियादि भंग ॥१७४॥
रूपनेल्लरिगे तोरुवुदु ॥१७५॥　श्री पददंग तोरुवुद ॥१७६॥　श्री पद्धतियाद्यंक ॥१७७॥
यापनीयर दिव्य योग ॥१७८॥　कापाडुवुदु शान्तियनु ॥१७९॥　रूपागिबहुदु भारतिगे ॥१८०॥
श्री पदवलय भूवलय ॥१८१॥　रूप्य के बहुदु भारतदि ॥१८२॥

ह॰ रुषद स्फटिक सिम्हासन प्रतिहार्य । सरि मुन्दे देवर ग॰ णवु॥ निरुतवु कय्मुगिदिहप्रपुल्लितमुख । सरसिजदिन्द सुत्तिहरु ॥१८३॥
ओ॰ डुत बन्निारि दर्शनक् एन्नुवश्र । हाडो इदेम्ब दुन्दुभि ण॰ ॥ पाडिन गम्भीर नादविहुदु मुन्दे । नाडिन हूगळ मळेयु ॥१८४॥
दि॰ वदिन्द बीळ्वुदु वर सूर्य शोभेय । सविय भामण्डल बन् ध॰ नव पूर्णचन्दर अथवा शन्खदन्तिह । सवियु अरवत्नाल् चामरवु॥१८५॥

नवस्वर ह्रस्व दीर्घ प्लुत ॥१८६॥　अवर वर्णगळ् इप्पत् ऐदु ॥१८७॥　सवियह वेन्दु व्यन्जनवु ॥१८८॥
सव्अम् अहक्‌ह यह योगवाह ॥१८९॥　विवरवदेन्तेम्ब शन्के ॥१९०॥　अवतार दुत्तर विन्तु ॥१९१॥
नव स्वरवर्णव्यन्जनद ॥१९२॥　विवरद् योगवाहगळिम् ॥१९३॥　सविय्ओम्दु अक्षचामरवुम् ॥१९४॥
अवुगळु अरवत्त नाल्कु ॥१९५॥　अवनेल्ल कूडलु ओम्दु ॥१९६॥　इवु अष्ट महाप्रातिहार्य ॥१९७॥
नवम बन्धद मंगलद ॥१९८॥　विवर मंगलद प्राभृतवु ॥१९९॥　कविगे मंगलद आदि वस्तु ॥२००॥
शिव चन्द्रप्रभ जिनरन्क ॥२०१॥　नवमांक सिद्ध सिद्धांक ॥२०२॥　अवतार कामद वहुदु ॥२०३॥
शिव सव्ख्य रससिद्ध काव्य॥२०४॥　सवणर्गे अरवत्तनाल्कु ॥२०५॥　नवकार मंगल ग्रन्थ ॥२०६॥
भवहर सिद्ध भूवलय ॥२०७॥　नव मन्मथरादियन्क ॥२०८॥　नवब्राम्हिलिपिय भूवलय ॥२०९॥

त॰ स लोकनालियोळडगिह भव्यर। वशगोन्ड सम्यक्तवद र॰ स ॥ यशकाय कल्पद रससिद्धि हूगळो । कुसुम मंगलद पर्याय ॥२१०॥
स॰ मतेयोळक्षरदंकव तोरुव । गमकद शुभ भद्रअ वर दे॰ क्रमव सक्रमगेय्द चन्द्रप्रभ जिन । नमिसुव भक्तर पोरेयो ॥२११॥
ण॰ शवागदलिह अक्षरांक वनित्तु । आ सिद्ध पदविगेरिसु वा॰ ॥ राशियन्कवदनु भाषामवत्तरोळ् कट्टि । दाशेय पाहुड ग्रन्थ ॥२१२॥
ली॰ लांक ओम्बत्उ ओम्दु सोन्ने एन्टागे । मालेयल् अन्तर ह॰ रुष॥ दोलेयोळ्ओम्दुसूरोम्दुसूरोम्दुम्। बाळु'उ'काव्य भू(मिरय)वलय२१३

उ ८०१९+अन्तर १३१३१=२११६०=९,　अथवा अ–उ १०,५५,८८+२११५०=१,२६,७३८ ।

पहले श्लोक की श्रेणी से नीचे तक पढते जाय तो प्राकृत निकलती है ।

❖ उववाद मारणंतिय परिणदथसलोय पूरणेणगदो ।
केवलिणो अबलंबिय सव्वजगो होदित्तसणाली ॥

❖ बीच मे से पढने से सस्कृत भाषा निकलती है–
कर्तारह् श्री सर्वज्ञदेव स्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारह् गणधर देवहः ।
प्रति गणधर देवाह्...........।

सातवा अध्याय

सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद जीव स्वर्ग में उपपाद शय्या पर जन्म लेने से पहले मारणाँतिक रूप मे त्रस नाली मे गमन करते है। केवली भगवान के लोकपूरण समुद्घात का अवलम्बन करके इस त्रसनाली को नाप सकते है ॥१॥

जिस समय केवली भगवान समुद्घात में स्थित होते है तब एक जीव के परमोत्कृष्ट विस्तृत प्रदेशों मे आत्मरूप दिखाई देता है। एक जीव की अपेक्षा इससे अधिक विस्तृत जीव प्रदेश नही होते इसी को विराट् रूप पुकारते है। "अ इ उ ऋ ल् ए ऐ ओ औ" इन स्वरो के उच्चारण समय मे सम्पूर्ण भूवलय का ज्ञान हो जाता है। इस बात का "उ" अध्याय में उल्लेख न आने पर भी यहां लिखा है ॥२॥

अभी तक आत्मा सिद्ध करने के लिए वाक् चातुर्य का प्रयोग करना पड़ता था, पर अब वह वाक् चातुर्य बन्द हो गया है। अब स्याद्वाद सेआत्मा को सिद्ध किया जाता है। यह आत्मा आदि भी है और अनादि भी है ॥३॥

दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनो की सम्मिलित शक्ति को रत्नत्रय शक्ति या आत्म-शक्ति कहते है। इन तीनो से उत्पन्न हुए शब्द को लोकपूर्ण समुद्घात के समय में नही लिखा जाता। कदाचित् लिखा भी जाय तो पढ़ नहीं सकते। ऐसे सम्पत्ति शाली सिद्धत्व की प्रथम सिद्धि यह भूवलय है ॥४॥

ऐसे परिशुद्ध आत्मा के लिए यह भूवलय ग्रन्थ है ॥५॥

अब तक सिद्ध होने से पहले तीर्थंकर अवस्था थी अब वह नष्ट हो गई ॥६॥

अरहन्त थे तब तक सबके गुरु थे अब सद्गुरु बन गये ॥७॥

हरि और विरंचि शरीरवों के द्वारा भी आराधना करने योग्य सद्वलय है ॥८॥

इस तरह से निरुपमहोकर भो उपमा के योग्य है क्योंकि यह त्रसनाली के भीतर है और सिद्ध परमात्मा रूप होने वाला है ॥९-१०॥

अरहन्त भगवान जिस अवस्था को प्राप्त करने के सम्मुख थे उस अवस्था रूप यह भूवलय है ॥११॥

परमामृत रूप सिद्ध भगवान का यह आदि स्थान है ॥१२॥

सबसे पहले आदिनाथ भगवान ने इस निलय को अपनाया था ॥१३॥

यह हर तथा शिव का भी मङ्गल वलय है ॥१४॥

यह चित्र लिखने मे नही आ सकता फिर भी सरल है ॥१५॥

यह निलय दया धर्म का फल सिद्धि रूप है ॥१६॥

परिपूर्ण सुख को देनेवाला आदि वलय है ॥१७॥

गुरु परम्परा का आशा वलय है ॥१८॥

धरसेन गुरु का भी ज्ञान निलय है ॥१९॥

परमात्म स्वरूप का निलय है ॥२०॥

आनेवाले काल का शान्ति निलय है ॥२१॥

सम्पूर्ण वस्तुओं को देखने वाला होने से बुद्ध कहलाने योग्य है ॥२२॥

यह मरण को न प्राप्त होने वाला शुद्ध जीव है ॥२३॥

इस परमात्मा से सिद्ध किया गया हुआ यह भूवलय है ॥२४॥

विवेचन—लोक पूर्ण समुद्घात गत केवली भगवान के स्वरूप का वर्णन यहां तक हुआ। अब आगे अरहन्त भगवान से लेकर सिद्ध भगवान तक का वर्णन करेंगे ॥२४॥

क्रोध मान माया और लोभ इस तरह चार कषायें अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन रूप में परिणत होती है अतः कषाय के सोलह भेद हो जाते हैं। इन सबके नष्ट होजाने के बाद यह आत्मा अपने आत्म स्वरूप में लीन होकर आनन्द मय बन जाता है ॥२५॥

वह आनन्द रत्नत्रय का सम्मिलित रूप है। जोकि सर्व श्रेष्ठ, नूतनान्तरङ्ग श्री निलय रूप है। आत्मा अपने प्रयत्न पूर्वक सद्धर्म रूप साम्राज्य का आश्रय करते हुए इस रूप को प्राप्त कर पाता है। जब इस रूप को प्राप्त कर लेता है और अपने प्रदेशों के प्रसारण की पराकाष्ठा को यह आत्मा प्राप्त होता है उसी आकार में नित्य रहनेवाला यह लोक भी है ॥२६॥

यह पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ लोक का जो स्वरूप है वह अरहन्त वाणी से निकले हुए नवमांक के समान परिपूर्णतावाला है। जब अरहन्त दशा में यह परिपूर्ण अवस्था प्राप्त हो जाती है उसके अनन्तर यह आत्मा सिद्ध

बन जाती है ।अरहन्त अवस्था से जो सिद्ध दशा को प्राप्त होना है उसी का नाम अवतार है । इस प्रकार से आत्मा जब सिद्धावस्था के अवतार को प्राप्त कर लेता है तो नवमाक के जो दो टुकडे है वे स्वय आपस मे मिलकर शून्य बन गये हो तादृश हो जाता है । जिस शून्य मे सम्पूर्ण लोक समाविष्ट है ।२७।

इस उपर्युक्त दशा को प्राप्त हुआ आत्मा ही हरि, हर, जिन इत्यादि सरस नामों से पुकारने योग्य बनता है क्योकि इससे वह लोक के अग्रभाग में मुक्ति साम्राज्य को प्राप्त कर लेता है ॥२८॥

जब जीव ने लोक पूरण समुद्घात किया था एवं लोक का सर्व स्वरूपबना था तो तेरहवे गुण स्थान मे मिथ्या स्थान मे होनेवाला लब्ध्यपर्याप्त कर निगोदिया जीव जो क्षुद्रभव धारण करता है वह जीव लोक का सर्व जघन्य रूप है और लोक पूरण समुद्घात दशा उसी का अन्तिम (उत्कृष्ट) रूप है जोकि तेरहवे गुण स्थान मय है । अव तक नवपद का जघन्य रूप तीन था जोकि साधु उपाध्याय और आचार्य मय है वह नवमाक आद्य श है ॥२९॥

यह जीव सिद्धावस्था मे न तो क्षुद्र भव ग्रहणाकार रूप मे रहता है और न लोक पूरणाकार रूप मे किन्तु किञ्चिदून चरम शरीर के आकार मे रहता है वही जिन विम्ब का रूप है और वह जहा पर जाकर विराजमान होता है वह सिद्ध स्थान ही वस्तुत जिनालय है । उसी सिद्धालय का प्रतीक यह हमारा आजकल का जिनमन्दिर है और उस मन्दिर मे विराजमान जो जिन विम्ब है वह सिद्ध स्वरूप है तथा वैसा ही वस्तुत. हमारा आत्मा भी है ॥३०॥

अर्हंत सिद्ध आदि नवपद की प्राप्ति एक जिनेश्वर भगवान विम्ब से ही होती है । अथवा समस्त सद्धर्म भी प्रसिद्ध होता है और सम्पूर्ण लोक का परिज्ञान होता है ॥३१॥

एक जिनेश्वर बिम्ब के दर्शन से सम्पूर्ण दिव्य ध्वनि का अर्थ प्राप्त होता है ॥३२॥

इस संसार मे रस सिद्धि ही सम्पूर्ण सिद्ध रूप है और वही नवकार मन्त्र का अर्थ है तो भी परमार्थ दृष्टि से देखा जाय तो नवकार मन्त्र का अर्थ आत्म-सिद्धि है और वह जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन से होती है ॥३३॥

यही विषय रूप विष का नाश करके सुख उत्पन्न करनेवाला नवमांक है । अर्थात् जिन विम्ब का दर्शन करने से सब तरह का सुख होता है ॥३४॥

उपर्युक्त सिद्धाक यानी सिद्ध दशा जो है वह अनुपम है इसकी बराबरी करने वाली चोज दुनिया मे कोई नही है ॥३५॥

काम देव को भी जिसने जीत लिया है ऐसा यह अङ्क है ॥३६॥

विवेचन—अब आगे जिस-जिस नाम पर जिन विम्ब होता है उस बात को बतलावेगे—

यशस्वती देवी के पति और सुनन्दा देवी के पति श्री ऋषभदेव का यश गाने वाला १ अङ्क है जो ऋषभदेव महर्षि है जिन्होने सम्पूर्ण प्रजा को सञ्जीवित रहने का उपाय बतलाया था श्री ऋषभनाथ के बिम्ब दर्शन से अमृत यानी मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

अजित नाथ भगवान का जो दूसरा अक है वह भी असदृश्य है । सम्भव नाथ भगवान का तीसरा अंक है जोकि दिव्याक है । चौथा अंक अभिनन्दन का, पाचवा सुमतिनाथ का, छठा पद्म प्रभ का, सातवा सुपार्श्वनाथ का, आठवा चन्द्र प्रभ का, नववां पुष्पदन्त का, दसवा शीतलनाथ का, ग्यारहवा श्रेयासनाथ का, बारहवा वा सुपूज्य का, तेरहवा विमलनाथ का, चौदहवा अनन्त नाथ का, पद्रहवा धर्मनाथ का, सोलहवा शान्ति नाथ का, सत्रहवा कुन्थुनाथ का, अठारह वा अरनाथ का, उन्नीसवा मल्लिनाथ का, बीसवा मुनि सुव्रतका, इक्कीसवा नमिनाथ का, बाईसवा नेमिनाथ का, तेईसवा पार्श्वनाथ का और चौवीसवां अक श्री वर्द्धमान भगवान का है । ये ऋषभादि वर्द्धमानात अक है सो सब वर्तमान काल के अंक है जोकि चौवीस है । और भी चौवीस अक इस विष हर काव्य मे आने वाले है ।३७ से ५५ तक ॥

अब भूतकाल के चौवीस तीर्थंकरो का नाम बतलाते समय प्रतिलोम क्रम से कहने पर चौबीसवां भगवान शान्ति है. तेइसवा अतिक्रान्त वाइसवा श्रीभद्र इक्कीसवा, श्रीशुद्धमती, बीसवा ज्ञानमति, उन्नीसवा कृष्णमति, अठारहवा यशोधर, सत्रहवा विमल वाहन, सोलहवा परमेश्वर, पन्द्रहवां उत्साह, तेरहवां शिवगण, बारहवा कुसुमाञ्जलि, ग्यारहवां सिन्ध, दसवां सन्मति, नौवा आगर, आठवा उद्धर, सातवा अमलप्रभ, छठवा सुदत्त, पाचवां श्रीधर, चौथा विमलप्रभ, तीसरा साधु, दूसरा सागर और पहिला निर्वाण इस

रीति से चौबीस तीर्थंकर इस भरत क्षेत्र में हुए हैं तथा होते रहेंगे। अबतक भूत तथा वर्तमान भगवानों का कथन हुआ ऐसा कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ हैं। ५६-७१ तक।

अब तक मन्मथ को जीतकर अशरीरी होने वाले भूतकालीन भगवान तथा वर्तमान कालीन भगवानों का कथन हुआ। अब मन्मथ को जीतकर अशरीरी बननेवाले आगामी कालीन चौबीस तीर्थंकरों का कथन कर देने से नवमांक पूर्ण हो जाता है ॥७२॥

पहिला महापद्म, दूसरा सूरदेव, तीसरा सुपार्श्व, चौथा स्वयंप्रभ, पांचवां सर्वात्मभूत, छठा देव पुत्र, सातवां उदङ्क, आठवां श्रीकद, नवमां प्रोष्ठिल, दशवां जयकीर्ति, ग्यारहवां मुनि सुव्रत, बारहवां अर, तेरहवां पुष्पदंत, चौदहवां निष्कषाय, पन्द्रहवां विपुल, सोलहवां निर्मल, सतरहवां चित्रगुप्त, अठारहवां समाधिगुप्त, उन्नीसवा स्वयम्भू, बीसवां अनिवृत, इक्कीसवां विजय बाईसवां विमल, तेईसवां देवपाल, चौबीसवां अनन्त वीर्य, ये भविष्यत काल में होने वाले चौबीस तीर्थंकर है। ७३ से ८९ तक।

ये सब तीर्थङ्कर कुसुम वारण कामदेव का नाश करनेवाले होते है।७६।

उपर्युक्त तीन काल के तीर्थंकरों को मिलाकर बहत्तर संख्या होती हैं जिसको कि जोड़ने पर (७+२=९) नव बन जाता है ॥९०॥

जिस काल में तीर्थंकर विद्यमान रहते है उसको महापवित्र काल समझना चाहिए। उन तीर्थङ्करों का यशोगान करनेवाला यह भूवलय काव्य है।

नवमांक गणित पद्धति से उपलब्ध होने के कारण इस काव्य को भी नवमांक कहते है।

नव का अंक विषमांक है जो कि तीन को परस्पर गुणा करने पर आता है। तीन का अंक भी विषमाकं है जो कि तीनों कालों का द्योतक है एवं विषमांक से उत्पन्न होने के कारण इस भूवलय काव्य को विषमांक काव्य भी कहते हैं ॥९१-९५॥

प्रत्येक प्राणी को अपने पूर्वोपार्जित कर्मों का ज्ञान कराने के लिए भूतकाल चौबीसी बतलाई गई है तथा उन कर्मों को किस उद्योग से नष्ट करना है, यह बतलाने के लिए वर्तमान तीर्थंकरों का नाम निर्देश किया गया है। और आगामी काल में समस्त कर्मों को नष्ट करके आप भी उन तीर्थंकरों के समान निरञ्जन बन जावें, इस बात को बताने के लिए भावी तीर्थंकरों का निर्देश किया हुआ है।

३×३ = ९

२४×३ = ७२

ये तीन चौबीसी के मिलकर बहत्तर तीर्थंकर हुये जो कि एक माला के मणियों के समान हैं। इनको यदि चौदह गुण स्थानों के अंकों से गुणा कर लिया जाय तो एक हजार आठ हो जाते हैं, यही एक हजार आठ श्री भगवान के चरणों के नीचे आने वाले कमल के दल, होते हैं। इस १००८ को भी जोड़ दें तो नव हो जाता है। भगवान जब बिहार करते है और डग भरते हैं तो हरेक डग के नीचे २२५ कमल होते हैं उन दो सौ पच्चीस कमलों के पत्तों को मिलाकर कुल २२५×१००८=२२६८०० पत्ते हो जाते है। ९६ से १०० तक।

उपर्युक्त दो लाख छब्बीस हजार आठ सौ दल भगवान के प्रत्येक ही चरण के नीचे होते हैं जो कि दूसरा चरण रखने के क्षण तक सब घूम जाते है। जब भगवान दूसरा रखते हैं उसके नीचे भी इतने ही कमल और इतने पत्ते होते है अतः उन दोनों को परस्पर गुणा करने पर लब्धांक ५१४३८२४०००० आये इन सब को परस्पर जोड़ देने पर भी नव ही आता है। इस प्रकार गुणाकार करते चले जावें उतना ही अतिशय भगवान का उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है तथा उनके भक्त भव्य पुरुषों का पुण्य भी बढता जाता है। इसलिए हे भव्य जीवो ! इस भूवलय की पद्धति के अनुसार भगवान के चरण कमलों को गुणा करते हुये तुम लोग गणित शास्त्र में प्रवीण हो जावो।

जिस प्रकार रसमणि के सम्पर्क से हरेक चीज पवित्र बन जाती है उसी प्रकार इस गणित पद्धति का ज्ञान हो जाने से यह जीव भी परमपावन सिद्ध रूप हो जाता है ॥१०१॥

यह गणित शास्त्र जीवों की सम्पूर्ण आशाओं को पूर्ण करने वाला है ॥१०२॥

यह गणित शास्त्र दुष्ट कर्मों की महाराशि को नष्ट करने वाला है ॥१०३॥

अन्तरात्मा को परमात्मा वनाने जाने वाला है ॥१०४॥

उत्तमार्थ को साधन करने वाला है ॥१०५॥

ज्ञान की राशि को बढाने वाला है ॥१०६॥

श्री सिद्ध पद का कारण भूत है ॥१०७॥

पुण्य पुञ्ज को वटोर कर इकट्ठा करने वाला है ॥१०८॥

ईशत्व प्राप्त करा देने वाला है ॥१०९॥

ईष आभार नाम की आठवी भूमि जो सिद्ध शिला है वहा पर पहुंचा देने वाला है। क्योकि आठवे चन्द्रप्रभ भगवान के चरण कमलो को स्मरण करके प्रारम्भ किया हुआ यह भूवलय है ॥११०॥

यह महा शास्त्र गणित की महाराशि को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम बना देने वाला है ॥१११॥

इस शास्त्र के द्वारा महाराशि को अल्पाति स्वल्प रूप मे लाने पर भी उसमें कोई वाधा नही आती ॥११२॥

यह नाश को जीतने वाला है इसलिए अविनश्वर रूप है ॥११३॥

यही औषध रूप मे परिणमन करने वाला है ॥११४॥

यह शास्त्र औषध के समान प्रारम्भ काल मे कुछ कटु प्रतीत होने पर भी अन्त मे अमृतमय है ॥११५॥

सिद्ध की आत्मा मे जिस प्रकार अवगाहन शक्ति है जिस से कि एक सिद्धात्मा मे अनन्त सिद्धात्माये विराजमान हो रहती है उसी प्रकार इस भूवलय शास्त्र मे भी अनेक भाषाओ मे होकर आने वालें अनेक विषयो को समाविष्ट करने की अवगाहन शक्ति है ॥११६॥

सिद्ध भगवान के समान यह शास्त्र भी अग्ररुलघु गुण वाला है ॥११७॥

अतः यह शास्त्र सब जीवों को अच्छी से अच्छी दशा पर पहुचा देने वाला है ॥११८॥

उस महान् अपूर्व शक्ति का अनुभव करा देने वाला यह काव्य है ॥११९॥

यह श्री शक्ति को बढ़ाने वाला है अर्थात् अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी को प्राप्त करा देने वाला यह आद्याकवलय है ॥१२०॥

इत्यादि विशेषण वाक्यो से विभूषित यह महा काव्य है ॥१२१॥

भगवान की वाणी को सुनने वाले भव्य जीवो ने तात्कालिक परिस्थिति को लेकर जो साठ हजार प्रश्न किये थे। जिनमे कि प्राय. सभी विषयो की बात थी, उन प्रश्नो का उत्तर जो अत्यन्त मृदुल और मधुर भाषा मे श्री गौतम गणधर ने दिया था। वह चौसठ अकाक्षरो के बानवे वर्ग स्थानान्तर्गत जिन वाणी मे था। उसी को श्री गौतम गणधर के वाद मे कुमुदेन्दु आचार्य तक होने वाले प्रत्येक बुद्ध महर्षियो ने छ हजार सूत्रो मे उपसहृत करके रखा था जोकि गहन था उसी विषय को सरल करते हुये श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने कन्नड भाषात्मक छह लाख सांगत्य छन्दो मे वर्णित किया है। जो कि मृदुता ललयात्मक होने से श्रोताओ के लिये हृदयग्राही वन गया है, वही भूवलय है। जो पूर्व महर्षियों के द्वारा छः हसूत्रों मे बद्ध हुआ था वह नौं आगम द्रव्य शास्त्र था। उसका अध्ययन करते हुए तत्पर्यांय रूप से परिणत होकर कुमुदेन्दु आचार्य ने उसी के भाव छ लाख सागत्य छन्दो मे वद्ध किया। इसलिए इस भूवलय ग्रन्थ का नाम श्री आगम है जिसका कि यह सातवा "उ" नाम का अध्याय है ॥१२५॥

आगामी काल में यह भूवलय ग्रन्थ सदा बना रहेगा ॥१२६॥

इस भूवलय की रीति से बाहर का बना हुआ जो शास्त्र है वह आगम नही होगा ॥१२७॥

यह द्रव्यागम शास्त्र भाव, काल, अन्तर (अनन्त), तद्वितिरिक्त, क्षेत्र स्पर्शन, और अल्पबहुत्व इन अनुयोग द्वारा मे बटा हुआ है। १२७-१३४ तक।

वन्द पाहुड के आगम अबन्ध पाहुड का विषय लिखा हुआ है ॥१३५॥

अबन्ध पाहुड को श्री आगम संख्याङ्क कहते है ॥१३६॥

भगवान के श्री मुख से निष्पन्न हुआ यह भूवलय नामक श्री आगम है ॥१३७॥

इसीलिए इस भुवलय को आगम ग्रन्थ कहते है ॥१३८॥

अष्टमहाप्रातिहार्य अर्थात .—

अशोकवृक्षः सरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च ।
भाभंडलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणं ॥

अशोकवृक्ष देवताओ के द्वारा भगवान के ऊपर पुष्प की वर्षा होना, दिव्य

वृक्षोंके १८००० जाति के पुष्पों की वर्षा होती है और इससे सकल रोग निवारण रूप दिव्यौषधि बनती है, इससे खेचरत्व सिद्धि, जल गमन, दुलेहि सुवर्ण सिद्धि इत्यादि क्रियाओं को बतलाने वाले भूवलय के चतुर्खंड रूपी प्राणवाय नामक विभाग में वर्णित है। इसे पुष्पायुर्वेद भी कहते है ७१८ भाषात्मक दिव्यध्वनि, ६४ अक्षर रूपी चामर, एक मुख होने पर भी चतुर्मुख दीख पड़ने वाला सिंहासन, ज्ञानज्योति को फैलानेवाला भामंडल, प्रचार करनेवाली दुन्दुभि, भगवान के ऊपर रहकर तीनों लोको के स्वामित्व को दिखाने वाला छत्रत्रय ये आठ प्रकार की भगवान की संपदाये समस्त जीवों को हित करने वाली है।

प्रश्न—यह कैसे ?

उत्तर—कुमुदेन्दु आचार्य कहते है कि प्राकृत में अष्टमहाप्राप्ति हार्यों को पाडिहेर कहते हैं उनमें सर्व प्रथम अशोक वृक्ष प्रातिहार्य है जोकि जनता के शोक का अपहरण करनेवाला है। उस वृक्ष का विवरण यो है —

ऋषभादि तीर्थंकरों को जिन जिन वृक्षों के मूल भाग में केवल ज्ञान प्राप्त हुआ उसको अशोक वृक्ष समझना चाहिए ॥१३९॥

न्यग्रोध १, सप्तपर्ण २, शाल ३, सरल ४, प्रियङ्ग (श्वेता) ५, प्रियङ्ग (रक्त) ६। ॥१४०॥

शिरीस ७, श्रीनाग ८, अक्ष ९, धूलि १०, पलाश ११। ।१४१।

पाटल १२, जामून १३, दधिपर्ण १४, नन्दी १५, तिलक १६। ॥१४२॥

श्वेताम्र १७, कङ्केलि १८, चम्पा १९, वकुल २०, मेषशृंग, २१ ॥१४३॥

धूलि (लाल) २२, शाल २३, धव २४, ये चौबीस क्रमशः अशोक वृक्ष हैं। इन वृक्षों के फूलों कीभावना देकर अग्नि पुट करने पर पारा सिद्ध रसायन रूप मणि बन जाती है ॥१४४॥

ये सब वृक्ष रसमणि के लिए उपयोगी होने के कारण माङ्गलिक होने से इन्हीं वृक्षों के पत्तों की बन्दन वार बनाई जाती है ॥१४५॥

उस वन्दन वार के बीच बीच में उस रस मणि का बना हुआ घण्टा लगा रहता है ॥१४६॥

यह वन्दनमाला देखने में अत्यन्त सुन्दर मन मोहक हुआ करती है।१४७।

इस बन्दन माला की छटा एक अनुपम रमणीय हुआ करती है जिसके प्रत्येक पक्ष मे से राग की परम्परा प्रगट होती रहती है।१४८-१४९।

यह अशोक वृक्ष अधिक मात्रा में फल और पुष्पों से व्याप्त हुआ करता है।१५०।

अगर रससिद्ध करना हो तो इन वृक्षों के क्षुद्र पुष्प न लेकर विशाल प्रफुल्लित पुष्प लेना चाहिए।१५१।

और उसी को फिर यदि रस मणि बनाना हो तो इन्हीं वृक्षों के क्षुद्र (मञ्जरी रूप) फूल लेना चाहिए।१५२।

सबसे पहलान्यग्रोध नाम का अशोक वृक्ष है। उसके फूल को यश-स्वतीदेवी अपनी चोटी में धारण करती रहती थी।१५३।

इसी प्रकार प्रथम कामदेव बाहुबलि भी कुसुमबाण प्रयोग के समय इसी फूल को काम में लेते थे।१५४।

इसीलिए सभी महात्माओं ने इस फूल को कामितफल देने वाला मानकर अपनाया है ॥१५५॥

इस फूल के उपयोग से भव्यों को जो सम्पदा प्राप्त होती है वह वृक्ष की बेल के समान उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है।१५६।

जिस किसी पुरुष ने विष पान किया हो तो उसकी बाधा को दूर करने के लिए इस फूल को औषधि रूप में देना।१५७।

श्री भरत चक्रवर्ती की पत्नी कुसुमाजी देवी अपने सब अलंकार इसी पुष्प द्वारा बनाती थी।१५८।

पारा को धनरूप बनाना हो तो इस पुष्प को काम में लेना।१५९।

जिस प्रकार भगवान का अशोक वृक्ष अनेक शाखा प्रति शाखाओं को लिए हुए होता है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी अनेक भाषा तथा उप-भाषाओं को लिए हुए है।१६०।

भगवान के जो अशोक वृक्ष बतलाये गये है वे सब अपने प्रत्येक भाग में नवरङ्ग मय होते हैं जोकि नवरस के उत्पादक माने गये हुए हैं। इस प्रकार के महत्व को रखने वाला अशोक वृक्ष श्रवण सिद्धि के लिए भी परम सहायक

होता है। और अपने अपने तीर्थंकर के शरीर से बारह गुणा समुन्नत होता है।१६१।

निर्मल तीर्थ तथा मङ्गल स्वरूप रहने वाले इन अशोक वृक्षो का वर्णन करे तो कहा तक करे।

जो अशोक वृक्ष सौ धर्मेन्द्र के उद्यान मे गुप्त रूप से विद्यमान है और जो समवशरण रचना के समय मे भगवान के पीछे में हुआ करता है उस वृक्ष की वात यहा पर नही है परन्तु भगवान ने जिस वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान पाया उसकी बात यहा पर की गई हे। १६२ यहा तक अशोक वृक्ष का वर्णन समाप्त हुआ.

वरदहस्त के समानभगवान अरहन्त के मस्तक पर जो छत्रत्रय होता है वह मोतियो की लूम से युक्त होता है अत ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ताराओ से मण्डित पूर्ण चन्द्र मण्डल ही हो।१६३।

भगवान के सिंहासन प्रातिहार्य मे जो सिंह होता है वह यद्यपि एक मुख वाला होता है फिर भी चार मुख वाला दीख पड़ता है, क्योकि वह स्फटिकमणि निर्मित होता हे। एव वह सिंहासन भगवान के नय और प्रमाणमय सन्मार्ग का प्रतीक रूप से प्रतीत होता है।

उस सिंह के ऊपर एक हजार आठ दलका कमल होता है जिसकी लाल परछाई उस स्फटिकमणिमय सिंह मे झलकती रहती है। इसीलिए दर्शको को उसके रत्नमय होने मे सन्देह नही रहता जहा पर कमल की परछाई नही रहती वहा पर सिंह सफेद रहता है।१६४।

बारह सभाके बहिर्भाग की ओर जो प्राकार है उसमे जो गोपुर द्वार होते है वहा से लेकर सिंहासन प्रातिहार्य तक एक रेखा कल्पित करके उस रेखा को अर्द्धच्छेद शलाका रूप से उतनी वार काटना जितने कि इस मङ्गल प्राभृत मे अंकाक्षर है। मङ्गल प्राभृत मे २०७३६०० इतने अक्षर है।१६५।

यद्यपि सिंह का मुख देखने में क्रूर भयावना हुआ करता है किन्तु भगवान के आसन रूप जो सिंह होता है वह लोगो को भय उत्पन्न नही करता, प्रत्युत शौर्यप्रदर्शित करता है हिंसा को रोककर बल पूर्वक अहिंसा को अस्पष्ट करने वाला होता है। अव्रती लोग जब क्रूरता धारण कर लेते है तथा समवशरण मे आते हैं तो उस सिंह का दर्शन करते हो उनका हृदय रूपी कमल प्रफुल्लित हो उठता है। और अपनी शक्ति की प्रबलता पर गर्व रखने वाले राजा महाराजा लोग जब इस सिंह के दर्शन करते है तो सरल होकर नतमस्तक ही रहते है।१६६ से १७० तक।

उपर्युक्त सिंह शरीर की शौर्यवृत्ति के धारक तथा अहिंसादि महाव्रतों के अक्षुण्णपालक श्री दिगम्बर जैन परमर्षि लोग ही इस मङ्गल प्राभृत की नवमाक पद्धति को पूरी तौर से जान सकते है। प्राभृत का ही प्राकृत भाषा मे पाहुड हो जाता है। दिगम्बर महर्षि लोग जिस आसन से बैठकर इस मङ्गल प्राभृत को लिखते है या इसका उपदेश करते हैं उस आसन को ही वीरासन समझना चाहिए। इसी वीरासन का दूसरा नाम श्री पद्धति है। इस आसन के द्वारा ही मङ्गल प्राभृत की झाकी होती है। तथा यह आसन ही भगवान के रूप को स्पष्ट कर दिखलाने वाला है। इस आसन से मुनि लोग जब उपदेश करते है तो वह उपदेश दीपक के प्रकाश की भाति अपने आपको फैलाता है। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय मे ही यापनीय संघ नाम का एक मुनि संघ था। जो द्राविड देश मे विचरण करता था उस संघ मे इस वीरासन की बड़ी महिमा थी। उन लोगो की मान्यता थी कि इस वीरासन से अशान्ति मिटकर शान्ति होती है। तथा यह आसन भारत वर्ष की कीर्ति को बढाने वाला है। यह भूवलय ग्रन्थ भी श्री पद अर्थात् भगवान के चरण कमल की गणित पद्धति से बना हुआ है। जिस गणित पद्धति को जान लेने पर श्वेत लोह से चान्दी बनाने की विधि भी भारतियो को प्राप्त हो जाती है।१७१ से १८२ तक।

भगवान के दिव्य स्फटिक मय सिंहासन से कुछ दूरी पर हाथ जोडे हुए प्रफुल्लित मुख होकर वलयाकार रूप से देव लोग खड़े रहते है जोकि गम्भीर दुन्दुभिनाद करते रहते है सो सब आम जनता को मानो ऐसा कहते हैं कि दौड़कर आओ भगवान के दर्शन करो। भगवान के पीछे मे जो अशोक वृक्ष होता है उसके फूलों की वरसा होती रहती है एक वार में अठारह हजार फूल वरसते है एवं बार-बार बरसते रहते हैं। भगवान के परमौदारिक शरीर मे से जो कुण्डलाकार दिव्य अखण्ड ज्योति निकलती रहती है उसको भामण्डल कहते हैं। उसके आगे करोडो सूर्यों की ज्योति भी मात खा जाती है। अत उस

भामण्डल को भानुमण्डल भी कहा जा सकता है। इस भामण्डल का तेज सूर्य के तेज के समान आँखों को अखरने वाला न होकर चन्द्रमा की ज्योति के समान प्रसन्नता देनेवाला होता है। उपर्युक्त अशोक वृक्ष के फूलों की जो वृष्टि होती है वह इस भामण्डल के दिव्य तेज में होकर आती है। अतएव दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता है मानो ये फूल देवलोक से ही बरस रहे हों। भगवान के दोनों बगलों में चमर ढुरते रहते हैं जोकि दोनों बगलों को मिला कर चौंसठ होते है और पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति वाले या शंख के समान धवल कान्ति वाले होते हैं। भगवान के चमर भी चौसठ होते हैं तो अक्षरों का रङ्ग भी श्वेत ❖ माना हुआ है। अक्षर चौसठ इस प्रकार हैं कि अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ये नौ स्वर है। जो कि ह्रस्व दीर्घ और प्लुत के भेद से सत्ताईस हो जाते हैं। कवर्गादि पांच के पच्चीस अक्षर है य र ल व श ष स ह ये आठ है (अं अः क ⏜ प ⏜ ०, ००, ००० प ००००) ये चार योग वाह अक्षर है १८६ से १८६ तक।

इन चौसठ अक्षरों का लिपि रूप कैसा है ? यह प्रश्न हुआ।१९०।

इसका उत्तर ऊपर पहले आ चुका है।१९१।

अ कार से लेकर योग वार पर्यन्त चौसठ अक्षरों का एक अक्षर (समूह) बन गया वही चामर का रूप है। इस प्रकार आठ प्रातिहार्यों का वर्णन हुआ। यह सब नवमांक बन्धन से बद्ध हुआ मङ्गल वस्तु रूप है। जिसका कि यहाँ वर्णन है इसलिए इस भूवलय के पहले विभाग का नाम मङ्गल प्राभृत है। मङ्गल काव्य बनाने के लिए कवि लोगों को यहां सब प्रकार की सामग्री प्राप्त हो जायेगी। १९२ से २०० तक।

शिव पद को प्राप्त किये हुये श्रीचन्द्र प्रभ जिन भगवान का यह अङ्क है।२०१।

नवमांक से सिद्ध किया हुआ यह सिद्धांक है।२०२।

यह सिद्ध परमेष्ठी का अङ्ग होने से इच्छित वस्तु को देने वाला है।२०३।

इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से गणित पद्धति के द्वारा गुणाकार करने से रस सिद्धि होकर सांसारिक तृप्ति तथा आत्म योग प्राप्त होकर पारलौकिक सुख सिद्धि प्राप्त होती है।२०४।

जैनियों के लिए तो भगवान का चौसठ चामरों का दर्शन होने के साथ-साथ ही चौंसठ अक्षरों का ज्ञान हो जाता है।

विशेष विवेचन—

आचाराङ्गादि द्वादश अङ्ग और उत्पादादि चौदह पूर्व तथा धर सेनाचार्य तक कम होते हुए आया हुआ कर्म प्रकृति प्राभृत शास्त्र एवं गुणधरादि द्वारा बनाया हुआ कषाय पाहुड आदि महा ग्रन्थ, कुन्दकुन्दु के द्वारा बनाये हुए समय सारादि चौरासी पाहुड ग्रन्थ और तत्वार्थ सूत्रादि सभी शास्त्रों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना एक असम्भव-सी बात है परन्तु कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि चौसठ अक्षरों को जानकर उनके असंयोगी द्विसंयोगी इत्यादि चतुःष्टि संयोगी पर्यन्त करले तो परिपूर्ण द्वादशाँग वाणी को जानकर सहज में हो सकता है जिसमें कि समस्त विश्वभर के शास्त्र समाविष्ट हो रहे हैं। तथा संसार में अनेक भाषायें प्रचलित है उनकी लिपियां भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं एक भाषा के जानकार को दूसरी भाषा तथा उसकी लिपि का बोध भी नहीं होता है परन्तु इस भूवलय की पद्धति के अनुसार अङ्ग लिपि से लिखने पर हर भाषा के जानकार के लिए वह एक ही लेख पर्याप्त हो जाता है भिन्न-भिन्न लिखने की जरूरत नहीं पड़ती। मतलब यह है कि दुनिया भर में जितनी पाठशालायें है उनमें यदि भूवलय की अङ्क लिपि पढ़ाना शुरू कर दी जावे तो

❖ १ प्रसिद्ध कर्णाटक भाषा के व्याकरण के आदि रचियता श्री नागवर्म दिगम्बर जैनाचार्य ने अपने छन्दोऽम्बुधि नामक ग्रन्थ मे ऐसा लिखा है कि जब मानव को बोलने की इच्छा होती है तो नाभि मण्डल पर से शब उत्पन्न होकर प्राण वायु के सयोग से तुरई की आवाज के समान प्रवाह रूप होकर निकलता है उसका वर्ण श्वेत होता है।-देखो— अनुकूल पवन निम् जीवनिप्टरिम् कहते पागिन ओल नाभि पोगेदु पट्टगु शब्द अदखण्ण श्वेतं।

फिर उनको भिन्न-भिन्न लिपिया पढने की कोई आवश्यकता नही रह जाती ।२०५।

यह भूवलय ग्रन्थ नवकार मन्त्र रूप मङ्गल पर्याय से बनाया हुआ है ।२०६।

इस भूवलय के अध्ययन करने से ससार का नाश होकर सिद्धता प्राप्त हो जाती है ।२०७।

इस भूवलय ग्रन्थ के जो अक है वे सब नवमन्मथ यानी आदि कामदेव श्री बाहुवली स्वामी के द्वारा प्रकट किये हुए है ।२०८।

तथा उन्ही अङ्काक्षरो को भरत चक्रवर्ती ने सर्व प्रथम लिपि रूप मे अवतरित किया था वह लिपि ब्राह्मी लिपि थी, जोकि कर्माष्टक भाषा रूप थी ।२०९।

वृद्ध से नौजवान बनने रूप काया कल्प करने वाली महौषधि उपर्युक्त चौबीस तीर्थंकरो के दीक्षा कल्याणक के वृक्षो के रस से बनती है (जिसकी विधि भूवलय के चौथे खण्ड प्राणावाय पूर्व मे बतलाई गई है) परन्तु इस त्रसनाली मे होने वाले समस्त ससारी भव्य जीवो का काया कल्प करने वाला एक सम्यक्त्व रूप महौषधि रस है। मङ्गल पर्याय रूप से उस सम्यक्त्व रूप महौषधि रस को प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।२१०।

श्रीचन्द्रप्रभ भगवान ने समाक तथा विषमाक को एक कर दिखलाने कतिथा अङ्क और अक्षर को भी एक कर दिखलाने को पद्धति बतलाई जोकि पद्धति विश्वभरके लिए शुभ श्रेष्ठ और वरप्रद है तथा सर्व कलामय है ऐसा परमोत्तम उपदेश करनेवाले उन चन्द्रप्रभ भगवान को नमस्कार करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य कहते है कि हे भगवान हम सबकी आप रक्षा करे ।२११।

अब कुमुदेन्दु आचार्य उसी चन्द्रप्रभ भगवान की ही जयध्वनि रूप इस भूवलय श्रुतज्ञान को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि जिन वाणी माता हमे नाश न होने वाले अक्षराक को दिया जिसको कि साधन स्वरूप लकर हम यह सिद्ध प्राप्त कर सकेगे। सिद्धावस्था मे जिस प्रकार अनन्त गुण एक साथ रहते है उसी प्रकार तुम्हारी कृपा से बने हुए इस भूवलय ग्रन्थ मे भी नवमाक पद्धति के द्वारा तीन काल और तीन लोक के समस्त विषय समाविष्ट है इसीलिए यह पाहुड ग्रन्थ है ।२१२।

इस अध्याय मे श्रेणि बद्ध काव्य मे ८०१९ आठ हजार उन्नीस अक्षराक है। अब इसी माला के अन्तर काव्य के पत्रो मे १३१३१ तेरह हजार एक सौ इकतीस अक्षर है। इन सब अक्षरो से निर्मित किया हुआ यह भूवलय काव्य चिरस्थायी हो ।२१३।

उ ८०१९+अन्तर १३१३१=२११५०=९

अथवा

अ—उ १०, ५५, ८८+२११५०=१,२६,७३८

इस अध्याय के प्रथम श्लोक के आद्यक्षर से प्रारम्भ करके क्रमश: ऊपर से नीचे तक पढते आवे तो जो प्राकृत श्लोक निकलता है उसका अर्थ कहते है—(उपपाद मारणान्तिक इत्यादि)।

उपपाद और मारणान्तिक समुद्घात मे परिणत त्रस तथा लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवली का आश्रय करके सारा लोक ही त्रसनाली है। विशेपार्थ-विवृश्रित भव के प्रथम समय मे होनेवाली पर्याय की प्राप्ति को उपपाद कहते हैं। वर्तमान पर्याय सम्बन्धी आयु के अन्तर्मुहूर्त मे जीव के प्रदेशों के आगामी पर्याय के उत्पत्ति स्थान तक फैल जाने को मारणान्तिक समुद्घात कहते है। (तिं० द्वि० अ. ८) इसी अध्याय के श्लोकों के अट्ठाईसवे अक्षर को क्रमश ऊपर से नीचे तक लेकर लिखे तो इसी ग्रन्थ के अध्याय के अन्त तक आकर जो सस्कृत गद्य अधूरा रह गया था वहा से चालू होता है सो—'ग्रन्थ—कर्ता श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थ कर्तारह गणधर देवाह प्रति गणधर देवाह,' अर्थात् इस भूवलय नाम के ग्रन्थ के सर्व प्रथम मूल भूत कर्ता श्री सर्वज्ञ भगवान है उसके बाहु मे इसको गणधर देव गौतमादि ने फिर उनको ईर्ष्य प्रति गणधरों ने प्राप्त किया था।

इति सप्तमो 'उ' नामक अध्याय समाप्त हुआ।

आठवां अध्याय

ऊ॥ नविल्लदे सिद्धवाद सिम्हासन । तानदु जिननेरिर्दागल् । ते॥ नम वेम्बाग मूरने प्रतिहार्य । दानम्म बळकेयन्कगळम् ॥१॥
ए॥ वंवु अष्टम सप्त षष्टम पन्चम । दवनु चतुर्थं त्रये षा॥ म् ॥ सवरा द्वितीयवु एकांक शून्यद । नवकार सिम्हासनद ॥२॥
प॥ द सिद्धियागलु वरुवष्टु शन्केगे । ओदगे उत्तर काव्य स॥ गळलि ॥ सुदवीव ओमदने शन्केय पेळुव । पद पूर्वपक्ष सिद्धांत ॥३॥
मा॥ टद सिम्हासन शब्द ओमद् अरोळ् । कूटद सिम्ह आसवम् व॥ कूटव बिट्आग ओमदने सिम्हद । कूट सिद्धान्तद शन्के ॥४॥
ए॥ रु बेंच्चुव जीव सहितद सिम्हवो । गुरु वर्धमान वाहन च॥ आ ॥ मरद सिम्हवो जीव रहितद सिम्हवो । अरहंत नेरिद सिम्ह ॥५॥
म्॥ नुजरेरुव सिम्हासनदि बन्दिह सिम्ह । घन जाति सिम्हवो ना॥ ना॥ वनदोळु चलिप सिम्हवो अल्लवो एम्ब। घनशन्केयागे भूवलय ॥६॥

मुनिगळ शन्के गुत्तरवु ॥७॥ तनगे बन्द आरु शन्केगळ ॥८॥ घनवादुत्तर सिद्धाविन्तु ॥९॥ तनि शन्केगे जीव रहित ॥१०॥
एनुव शब्ददे काण्ब दृष्टि ॥११॥ घन प्रातिहार्य मूरन्क ॥१२॥ घन सिम्हवदु शुद्ध स्फटिक ॥१३॥ मणियिन्द रचितवागिहुदु ॥१४॥
चिनुमयनेरिद सिम्ह ॥१५॥ कोनेय कर्माटक सिम्ह ॥१६॥ जिन मुनियन्ते सुशांत ॥१७॥ घन मुनिगळ शूर वृत्ति ॥१८॥
अनुभवदाटद सिम्ह ॥१९॥ कोनेय भवान्तर सिम्ह ॥२०॥ घनद पुराकृत सिम्ह ॥२१॥ जिन वर्धमानरु सिम्ह ॥२२॥
घनद सिम्हासन वलय ॥२३॥

द॥ वनिय निज सिम्ह नाल्मोगवागिह । नव सिम्हमुख उद्दव नु॥ अवभरिसलु आदिनाथ जिनेन्द्रर । नव दोहदष्टिह अळते ॥२४॥
नृ॥ व पादपद्मद केळगिह सिम्हद । विविधदुत्सेधवदनुम् सा॥ अवरवरेने आदिनाथरिग् एनूरु । नवधनुवष्टिह अळत ॥२५॥
ड्॥ एाडएारेन्तुव जयघंटे नादद । घन शब्ददनुभववस र॥ जिननन्ग अजितनाना रिगेनाल्करे नूरु । एनुव धनुविनष्टु सिम्ह ॥२६॥
आ॥ दआमेले शम्भवरिगे नाल्नूऊरु । मोदद अभिनन्दनर ॥ आद मा॥ टदसिम्ह मूरुनूर य्वत्तु । नाथ सुमुतिगे मूर्नूरु ॥२७॥

ऐदने जिनगइन्नूररेयु ॥२८॥ मोद सुपार्श्व इन्नूर ॥२९॥ मोददेन्टके नूरय्वत्अम् ॥३०॥ आद ओम्वत्त के नूरु ॥३१॥
मोद शीतलर्गे तोम्बत्तु ॥३२॥ आदि अनन्त ऐवत्तु ॥३३॥ श्रीद हन्एरडे इप्पत्तु ॥३४॥ मोद विमल अरवत्तु ॥३५॥
आदि अनन्त ऐवत्तु ॥३६॥ आदि धर्मवुनलवत् ऐदु ॥३७॥ श्री दिव्य शांति नल्वत्तु ॥३८॥ आद कुन्थुवु मूवत्ऐदु ॥३९॥
आदाग अरवु मूवत्तु ॥४०॥ श्रीद मल्लियु इप्पत्ऐदु ॥४१॥ आदि इप्पत्तु इप्अत्तु ॥४२॥ मोदद नमि हदिनैदु ॥४३॥
आदि नेमिय अंक हत्तु ॥४४॥ श्रीधव पार्श्वव ओन्बत्तु ॥४५॥ आद्यन्त वीरांक एळु ॥४६॥ आदि इप्पत्एरळ् धनुष ॥४७॥
नेद अंक इगळेल्ल इनितु ॥४८॥ मोददन्तिमंगळु मोळवु ॥४९॥ साधित सिम्ह भूवलय ॥५०॥

को॥ ष्टक बन्धांकदोळु कूडिदक्षर । दाशमिक क्रम गणित ॥ सा॥ ष्टम निर्मल स्फटिकद बण्णद । भौष्टद सिम्ह वर्णगळ ॥५१॥
डि॥ गदअ गणितदे तेगेयालादी एन्दु । भगवन्त पुष्पदन्ता दृ॥ य ॥ सोगसिन कुन्दपुष्पद बण्ण एरडके । मिगिलाद सिम्हशरीर ॥५२॥
ति॥ रेयेलिल हरितवर्णपार्श्वव सुपार्शव । हरवर्ण नील यृ॥ सुव्रत । बरुवुदिदे नेमि पद्मप्रभ मत्तु । वरवासु पूज्यगें केम्पु ॥५३॥
य॥ शदेन्दु सिम्ह बण्ण बिळिदु हळदि । वशनीलकेम्पु इन्त् आ॥ गे । ऋषि हदिनारर सिम्हगळ् चिन्नद । रसद स्फटिकद वर्णगळु ॥५४॥
मृ॥ हवीर देवन सिम्हासन चिन्न । महद्आदि वृषभ जिनम् चा॥ ॥ मिह सिम्हवदनोडे चिन्नद नाडाद । इहके नन्दियु लोक पूज्य ॥५५॥

महदादि गान्गेय पूज्य ॥५६॥ महावीर नन्दपुदकुलवु ॥५७॥ महति महावीर नन्दि ॥५८॥ इहलोकदादिय गिरिय ॥५९॥
सुहुमांक गरिणतदबेट्ट ॥६०॥ महसीदु महाव्रत भरत ॥६१॥ वहिसिदणुव्रत नन्दि ॥६२॥ सहनेय गुरुगळ बेट्ट ॥६३॥
संहचर मूरारु मूरु ॥६४॥ महनीय गुरुगरण भरत ॥६५॥ महिय गरगरसरगरिणत ॥६६॥ गहन विद्ययेगळाळ गिरियु॥६७॥
गहगहिसुव नगु भरित ॥६८॥ अहमीन्द्र स्वर्गवी भरत ॥६९॥ इह कल्पवृक्षद भरत ॥७०॥ महिय कल्वप्पु कोवळला ॥७१॥
महवीर तलेकाच गंग ॥७२॥ महदादि शिवभद्र भरत ॥७३॥ महिमेय मंग भूवलय ॥७४॥

ए* ळु कमल मुन्देळु कमल हिन्दे । सालु मूवतएरड् अन्क ॥ पाल र्* कूडिसल् काल्नूरु । श्री लालित्यद कवल ॥७५॥
क्* रणेयग्र धवलवर्णद्अग्र पादगळिह । परमात्म पादद्व य* दे ॥ सिरविहनाल्कंकवेरसिसिम्हद मुख । भरतखंडद शुभ चिन्हे ७६
क* विदिह मृगपक्षि मानव वर्गव । प्रवधरिसुत शान्तद श्* री॥ अवतारवो इदु वीरश्री एन्देम्ब। सुविवेकि भरत चक्रांक॥७७॥
वी* र जिनेन्दरन वाहनवी सिम्ह । मूरने पडिहारवदु ॥ सार श् री* वीरश्री सारस्वत धीर । रारय्केवदनद सिम्ह ॥७८॥
स* मचतुरस्र सम्स्थान सम्हननद । विमल वय्भवविह कु* न्द॥ अमहरवर्णद धवल मंगल भद्र । गमकदशिव मुद्रे सिम्ह ॥७९॥
क्रमदन्क वेरडन्क सिम्ह ॥८०॥ अमलात्म हर शम्भु सिम्ह ॥८१॥ नमि से सौभाग्यद सिम्ह ॥८२॥ समवसरणदग्र सिम्ह ॥८३॥
क्रम नाल्कुचरण एन्टक ॥८४॥ गमक केसर सिम्ह नाल्कु ॥८५॥ विमल सिम्हद प्रतिहार्य ॥८६॥ सम विषमान्कदे शून्य ॥८७॥
गमक लक्षणद अहिम्से ॥८८॥ श्रम हर पाहुड ग्रन्थ ॥८९॥ समद नाल्मोगदादि सिम्ह ॥९०॥ क्रमद महाव्रत सिम्ह ॥९१॥
क्रम सिम्हक्रीडित तपन ॥९२॥ श्रमहर गजदग्र क्रीडे ॥९३॥ नमिसिदरगणुव्रत शुद्धि ॥९४॥ श्रमद महाव्रत शुद्धि ॥९५॥
विमलान्क काव्य भूवलय ॥९६॥

ल* क्षरण जारदे सिम्हगळ् बाळुव । तक्षणवेने आगाग ॥ लक्षा न्* क मीरिद वरुषगळेन्टन्क वीक्षितियोळगे बाळुवुदु ॥९७॥
क्* डिमेयायुविन श्री महावीर देव । नडिय सिम्हासनदल्लि ॥ ओ द* गिद सिम्हदायुपु हत्तु वरुषवु । विडदे समवसरणदलि ॥९८॥
खा* ति के यग्र पार्श्व जिनेन्द्र । ख्यातिय सिम्हद अयु ॥ पूत कु* शल वर्षगळ् अरवत् ओम्बत्तु । नूतन मासगळ् एन्दु ॥९९॥
ण* भदिह नेमि स्वामिय सिम्हदायुवु । शुभवर्ष एळ्नूरक्के न्* दे। शुभदऐवत्आरुदिनगळ् कडिमेयु । विभुविन सिम्ह बाळुवुदु॥१००
मृ* रळिश्री नमि देवर सिम्हदायुवु । एरडूवरे साविरके ॥ बर द* ओम्बत्तु वर्षगळनक कडिमेयु । सिरि सुव्रतर सिम्हदायु ॥१०१॥
परिदेळूवरे साविरवु ॥१०२॥ सिरि मल्लि जिन सिम्हदायु ॥१०३॥ बरे ऐद्नाल्केन्ट्सोन्ने सोन्ने ॥१०४॥ अरद्विसोन्ने नवेन्ट्उ नाल्कु ॥१०५॥
सिरि कुन्थेरळ्मूरेळ् मूर्नाल्कु ॥१०६॥ वरशान्तेरळ्नालनवेन्ट् नाल्कु ॥१०७॥ धर्म नवन्नाल्कु नाल्केरडु ॥१०८॥ धर्ममरंकवु बिडियारु ॥१०९॥
सिरि अनन्तवेन्टोम्बत्तु ॥११०॥ वरुष मुन्दे नव नाल्केळु ॥१११॥ गुरु विमल वेळोम्बत्तुगलु ॥११२॥ बरे नाल्कन् कवु नाल्कु ओम्दु ॥११३॥
वर वासुपूज्यरय्दु नव ॥११४॥ वरे मूरु ऐदन्क वरुष ॥११५॥ सिरि श्रेयान्सेन्दु नवगळ् ॥११६॥ बरे नाल्कन्कवु सोन्ने एरडु ॥११७॥
सिरि शीतल पूर्व अंग ॥११८॥ बरलोम्बत्तुगळय्द् मूरेन्दु ॥११९॥ वर वेलु नववु नाल्कुगळु ॥१२०॥ बरे मुन्दे मूरेन्दु वरुष ॥१२१॥
गुरु पुष्पदन्तरु पूर्व ॥१२२॥ वरुष ओम्बत्तुगळ् ऐदु ॥१२३॥ गुरु ववरन्क पूर्वान्ग ॥१२४॥ अरुह् ओम्देळ्नव मूर् मूरेन्दु ॥१२५॥
वरुषवार्नवनाळ् मूरेंदु ॥१२६॥ वर चन्द्रप्रभ रोम्बत्तुगळु ॥१२७॥ सरि- पूर्वेगळु मन्दन्ग ॥१२८॥ सरि एळु बिडियन्कय्दारु ॥१२९॥

वरे मूर् श्रोम्बत्तु मूरेन्दु ॥१३०॥ व्रुपव् श्रय्दोम्बत्तुगळ ॥१३१॥ बरेवुदु मूरु मत्तेन्टम् ॥१३२॥ सरि मास मुक्कालु वरुष ॥१३३॥
विरुवुदु श्रा सिम्हदायु ॥१३४॥ वरदु सुपार्शव पूर्वेगळ ॥१३५॥ बरुवुदु नवदन्क ऐदु ॥१३६॥ श्ररि मुन्दे पूर्वान्ग एळस् ॥१३७॥
वरे नव एळु मूरोम्बत् ॥१३८॥ सरि मूरु एन्दुगळन्क ॥१३९॥ बरि श्रन्गविन्इतागे गरुव ॥१४०॥ बरे श्रोम्दु नाल्नव मूरेन्दु ॥१४१॥
वरुपगळन्कवष्टिहुदु ॥१४२। गुरु पद्म प्रभर पूर्वेगळ ॥१४३॥ बरे श्रोम्बत्तुगळ नय्दु सल ॥१४४॥ इरे इन्तु पूर्वान्ग दंक ॥१४५॥
मुरेन्दु मूरोम्बत् मूरेन्दु ॥१४६॥ बरेवुदेम्भत् नाल्कु लक्ष ॥१४७॥ दिरविनोळोम्दून वरुष ॥१४८॥ वर सुमति नव वय्दपूर्व ॥१४९॥
श्ररि पूर्वांगदविडिएळ ॥१५०॥ वरे श्रादयन्त वेम्बत्तुमूर ॥१५१॥ सरिम ध्य नव नवम ॥१५२॥ श्ररि वर्ष विडियन्क एळ ॥१५३॥
गुरु सोन्ने एन्टोम्बत् नवव ॥१५४॥ श्ररि मत्ते नव मूरु एन्टम् ॥१५५॥ सर श्रभिनन्दन पूर्वे ॥१५६॥ बरुव पूर्वेगळ् श्रोमबत् ऐदु ॥१५७॥
श्ररि श्रंग नाल्नव मूरु एंदु ॥१५८॥ वरुषादि एरडेन्द् श्रोम्बत्तु ॥१५९॥ बरे तोम्बत् श्रोम्बत् मूरेन्दु ॥१६०॥ वर शम्भवर्उ नववय्दु ॥१६१॥
वर पूर्वगळ मुन्दे श्रंक ॥१६२॥ बरलादु देम् भत्नाल्लक्ष ॥१६३॥ दिरविनोळ् ऐदन्क ऊन ॥१६४॥ वरुषवे म् भत्नाल्कु लक्ष ॥१६५॥
दिरविगे हदिनाल्कु ऊन ॥१६६॥ एरडने श्रजितर पूर्वे ॥१६७॥ सरियाद् श्रोम्बत्तुगळ् ऐदु ॥१६८॥ वर श्रंगवेम्भत्नाल्लक्ष ॥१६९॥
दरविनोळेरडन्क ऊन ॥१७०॥ वरुषगळेम्भत्नाल् लक्ष ॥१७१॥ दिरविनोळून हन्नेरडु ॥१७२॥ पुरुदेव पूर्व लक्षगळ्गे ॥१७३॥
सिरियोम्दु ऊनवादन्क ॥१७४॥ वरुषवेम्भत्नाल्कु लक्ष ॥१७५॥ दिरविनोळ् साविर खन ॥१७६॥ इरुव सिम्हगळ् श्रायुविनितु॥१७७॥
भरत खण्डद सिम्हदायु ॥१७८॥ भरतद सिम्हगळायु ॥१७९॥ सिरियु पश्चादानु पूर्वी ॥१८०॥ इरु वष्ट महाप्रातिहार्य ॥१८१॥
दिरविनोळ् पडिहार मूरु ॥१८२॥ बरुवन्क सिम्हलांछनवु ॥१८३॥ गुरु वीरनाथ भूवलय ॥१८४॥ गुरु मुनि सुव्रत नमिय ॥१८५॥
वर सिम्हदुपदेश वेरडु ॥१८६॥ परम्परे सिम्ह भूवलय ॥१८७॥

(पश्चादानु पूर्विय महावीर भगवान वाहन का सिम्ह और सिम्हासन के तीसरे प्रातिहार्यके सिम्हको जिन्दे वरुष (१०) दश,)

(पार्श्व नाथके ३ रे प्रातिहार्य की सिम्हद आयु वरुष ६९ ८, इसी तरह आगे भी गिनती कर लेनी चाहिए)

वा॰ सव निर्मित समवसरण बाळ्व । लेसिन कालदन्कगळस् ॥ श्रा॰ सरेयष्टिह भरत खण्डद सिम्ह । दाशेय प्रातिहार्यांक ॥१८८॥
स॰ म नाल्कु पादगळादरु एन्टिह । कर्म सिम्हव कायव्कव चा॰ विमल ज्ञानदवृषभादितीर्थंकयक्ष । रमल यक्षियर रक्षितवु ॥१८९॥
ट्॰ एाटएावाद्य गोवदन चक्रेश्वरि । घन महायक्ष रोहिणी र्॰ श्रा । मणित्रिमुखनुप्रज्ञापतियक्षेश्वर । जिनयक्षिवज्रश्रृंखलेयु॥१९०॥
टि॰ तुम्बुर वज्रांकुश राग । मुद मातंग यक्षांक ॥ सद य्॰ श्रनातन पत्नि श्रप्रति चक्रेशि । ठिद विजय पुरुषदत्ते ॥१९१॥
न्॰ व श्रजित मनोवेगे व्रह्मनु काळि । सवरण ब्रह्मेश्वरर् श्रा॰ द॥ नव ज्वालामालिनि देवियु हत्तंक । छविकुमार महाकाळि ॥१९२॥
च॰ रितेय षण्मुखस् गउरि हन्नेरडंक । नव पातालरवर द्॰ यक्ष॥ श्रवन गान्धारियु किन्नर वइरोटि। नवकिम्पुरुष सोलसेयु ॥१९३॥
स॰ व गारुड मानसि देवि हदिनारु । नव गन्धर्व यक्षेश ॥ नव या॰ महा मानसि देविहदिनेळु । सवरण कुबेर देवि जया ॥१९४॥
ह॰ रुषद वरुणनु विजया देवो । सिरि भृकुटि श्रपराजितेयु ॥ वर स्॰ हा गोमेध बहुरूपिणि देवि । सिरि पार्शव कुष्माण्डिनियु ॥१९५॥
स॰ रण मातंग पद्मावति देवियु । वर गुह्यक सिद्धायिनियु ॥ ना॰ रक तिरियु गतिगे सल्लद इन्न । सार भव्यर जीव देवर ॥१९६॥
सा॰ विरदेन्दु दलगळ तावरेयनु । कावुत तलेयोळु हात्त ॥ तावु ई॰ नाल्मोग सिम्हरूपव काव्य । पावन यक्ष यक्षियरु ॥१९७॥

दवन यक्ष यक्षियरु ॥१९८॥ बेविन हूवनित्तवरु ॥१९९॥ तावरे हूविन रसदे ॥२००॥ ई विश्व रसव कायुदवरु ॥२०१॥
जीवकोटिगळ काय्दवरु॥२०२॥ कावरु अणुव्रत गळनु ॥२०३॥ तावु बेट्टगळ तावरेय ॥२०४॥ ईवरु नेलद तावरेय ॥२०५॥
श्रीवीर जलद तावरेय ॥२०६॥ ई विध मूरु तावरेय ॥२०७॥ काविनोळ् रसमणिसिद्धि॥२०८॥ गोवरु हूविन वरव ॥२०९॥
कावरु हूवेप्पत्तेरडम् ॥२१०॥ तावु सिम्हगळ लेक्कदलि ॥२११॥ कावरु भरतार्य भुविय ॥२१२॥ कावरु महाव्रतिगळनु ॥२१३॥
श्री वीर विक्रम बलरु ॥२१४॥ जीव हिम्सेयनु निल्लिपरु ॥२१५॥ कावरहिम्हिसेय बलदि ॥२१६॥ तावु दर्शनिकरागिरुत ॥२१७॥
कावरु व्रतिकादि नेलेय॥२१८॥ श्री वीरवाणि सेवकरु ॥२१९॥ तावरे दलगळोळिहरु ॥२२०॥ देव वैक्रियर्कधि धररु ॥२२१॥
कावरु औदारिकर ॥२२२॥ देव देवियर तिद्दुवरु ॥२२३॥ पावन धर्म होत्तवरु ॥२२४॥ नोवुगळळलनिल्लिपरु ॥२२५॥
श्री वीर देव पूजकरु ॥२२६॥ तावु सिद्धरनु सेविसलि ॥२२७॥ श्री वीरगणितव काय्द॥२२८॥ दव देवियर भूवलय ॥२२९॥
श्री वीर सिद्ध भूवलय ॥२३०॥

इ॰ रुव श्री समवसरण नाल्मोग सिम्ह । अरुहन पाद कमल श्॰ री॥ सरद नालियहोत्तुतिरुगुत बरुतिर्प । सिरिय देवागम पुष्प॥२३१॥
गि॰ डवु अशोकवु पोडविय भव्यर । सडगरवनु वर्धिसिरे श् री॰ जडद देहद रोग आतंक वार्धिक्य । गडिय सावुगळनु केडिसि ॥२३२॥
दा॰ नगळन्नेल ज्ञानदोळडगि । आनन्दवनेल्ल तर्रिसि ॥ ज्ञाने पु॰ ण्यवनीव पुष्पवृष्टियनीडु । वा नम्र प्रातिहार्यांक ॥२३३॥
ल॰ क्षणवाद चामर अरवत्नाल्कु । अक्षर अरवत्नाल्कु ॥ ष्॰ इक्षेयक्षरदंक नवम दिव्य ध्वनि । रक्षिपुद् ओम् ओम्बत्तुगळ ॥२३४॥
तक्षण कर्म विनाश ॥२३५॥ सिक्षिप हन्नेरडंग ॥२३६॥ हक्देळु मूवत् एरडम् ॥२३७॥ प्रकटवादेरडु काल्नूरु ॥२३८॥
ईक्षिप भामन्डलांक ॥२३९॥ लक्षद दुन्दुभिनाद ॥२४०॥ रक्षेयद्वादश गणवे ॥२४१॥ अक्षरदंक हन्नेरडु ॥२४२॥
अक्षर वेद हन्नेरडु ॥२४३॥ लक्षिप प्रातिहार्याष्ट ॥२४४॥ अक्षरदष्टु मंगलवु ॥२४५॥ शिक्षण काव्यांक वलय ॥२४६॥
श्रीक्षण मन्ग प्राभृतवु ॥२४७॥ अक्षरदन्क सान्गत्य ॥२४८॥ कुक्षि मोक्षद सिद्ध बंध ॥२४९॥ अक्षय पद प्रातिहार्य ॥२५०॥
शिक्षण लब्धान्क शून्य ॥२५१॥ अक्करदन्क भूवलय ॥२५२॥ शिक्षण ग्रन्थ भूवलय ॥२५३॥
दु॰ रितव हरिसुव अष्ट मन्गल द्रव्य । वेरसि प्राभृत प॰ दवदनु ॥ परमात्म पादद्वयद एन्टक्षर बरेदिह पाहुड ग्रन्थ ॥२५४॥
ति॰ रेय जमबू द्वीपद एरडु चन्द्रादित्य । रिहवष्ट रूप द॰ अमल॥ सरसिजाक्षरकाव्यगुरुगळ्ऐवर दिव्य। करयुगदानांक ग्रन्थ॥२५५॥
भा॰ रत देशदमोघ वर्षषनराज्य । सारस्वतवेम्बन्ग ॥ सारा न्॰ क गणित दोळक्षर सक्कद । नूरु साविर लक्ष कोटि ॥२५६॥
या॰ ह्तिराप्नसहाम्सिएनदु[अष्टम]मुवकाल्। सारविकेरडेऊन॥स् त॰ र अनन्तर हदिनेळु साविरगळगे। सार[नेर] नालवत्नाल्कुम्ऊनम् ॥२५७॥
८ ने ऊ ८७४८+ अन्तर १६९५६=२५७०४=१८=९ अथबा अ से 'ऊ' तक १,२६,७३८+ऊ २५७०४=१,५२,४४२।
ऊपर से नीचे तक प्रथमाक्षर पढते आने से प्राकृत गाथा बन जाती है वह इस प्रकार है
ऊणपमाणंदड कोडितियं एक बोसलवखाणं । बासट्टं चेसहस्साइगिदालदुति भाया ॥७॥
अगर बीच मे से लेकर पढे तो—क्रमश ऊपर से नीचे तक पढने पर इस प्रकार सस्कृत निकलती है—
उनकी रचनानुसार लेकर, आचार्य श्री कुमुद कुमुद आचार्यादि आम्नाय से श्री पुष्पदंत...

आठवां अध्याय

अब इस अध्याय में सिंहासन 'नाम के प्रातिहार्य का 'विशेष' व्याख्यान के उपयोग में आनेवाले अङ्कों का वर्णन किया जा रहा है। नवम अङ्क जिस प्रकार परिपूर्णाङ्क है उसी प्रकार भगवान का सिंहासन भी परिपूर्ण महिमा वाला होता है। उस पर जबकि भगवान विराजमान हैं। अतएव भव्य जन तेनमः कहते हैं जो कि तीसरा प्रातिहार्य है।

श्री जिनभगवानसिंहासन पर विराजमान रहते हैं अतएव वह सिंहासन भी भव्य जीवों का कल्याण करने वाला होता है। जिनेन्द्र भगवान का होना तो बहुत मोटी बात है बल्कि जिन भगवान की प्रतिमा भी जिस सिंहासन पर विराजमान हो जाती है तो उस सिंहासन की महिमा अपूर्व बन जाती है। यदि स्वयं श्री जिन भगवान या उनकी प्रतिमा ये दोनों भी न हों तो अपने अन्तरङ्ग में ही भाव रूपी सिंहासन पर भगवान को विराजमान करके गणित से गुणा करते हुये उस काल की महिमा को प्राप्त कर लेना। १।

नवम, अष्टम, सप्तम, षष्ठ, पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीत, प्रथम और शून्य इस रीति से नवकार सिंहासन❖ है। २।

इस प्रकार नवकार सिंहासन की सिद्धि के विषय मे अनेक तरह की शकायें उत्पन्न होती हैं। उन सब में पहली जो शङ्का है उसको हम यहां पर पूर्व पक्ष रूप में लिखते हैं। और उसका सिद्धान्त मार्ग से उत्तर देते हैं जो कि भव्य जीवों के लिये सन्तोष जनक है। ३।

सिंहासन यह समासान्त 'शब्द है जो कि सिंह और आसन इन दो शब्दों से बना हुआ है। उनमें से अगर आसन शब्द को हटा दिया जाय तो सिर्फ सिंह रह जाता है यही वाद विवाद का विषय है। ४।

सिंह जो कि वन में विचरण करता है जिसके कन्धे पर सटा की छटा रहती है जिसे देखते ही मानव भयभीत हो जाता है क्या यहां पर वही सिंह है? अथवा वर्द्धमान जिनेन्द्र का जो, लाञ्छन (चिन्ह) रूप है वह सिंह है! या लेप्य कर्मात्मक (चित्र) सिंह है! अथवा अरहन्त भगवान् जिस पर विराजमान थे वह सिंह है? अथवा सर्व साधारण जिस पर बैठते हैं वह सिंह है? अथवा सजातीय विजातीय एक वर्णात्मक अनेक वर्णात्मक विभिन्न वनों में नाना प्रकार से निवास करते हैं वह सिंह हैं क्या? या इन सभी से एक निराले प्रकार का सिंह है? कौन सा सिंह! इन सब शङ्काओं का उत्तर नीचे दिया जाता है। ४-६-७।

ऊपर छह तरह की शंका है। ८।

उसके उत्तर में आचार्य महाराज कहते हैं कि यह निर्जीव सिंह है। फिर भी दर्शक लोगों के अन्तरङ्ग में जिस जिस प्रकार का कषायावेश होता है उसी रूप में उसका दर्शन होता है। ९-१०-११।

वह सिंह शुद्ध स्फटिक 'मणिका' बना हुआ है।

उस पर भगवान विराजमान होते है। १३ से १४ तक

जिस सिंहासन पर भगवान विराजमान होते है वह सिंह भी कर्माटक है कर्मो का नष्ट करने वाला है और जब भगवान उस सिंहासन पर से उतर कर चौदहवें गुण स्थान में पहुंच जाते हैं तब भगवान की कर्माटक (सर्वजीवों के कर्माष्टक को नष्ट कर देने वाली) भाषा रूपी दिव्यध्वनि भी बन्द हो जाती है। यह भगवान के आसन रूप में आया हुआ सिंह मुनि के समान शान्त दीख पड़ता है। १५ से १७।

यहां पर सिंह को आसन रूप में क्यों लिया? इसका उत्तर यह कि दिगम्वर जैन मुनि लोगसिंह के समान शूर वीरता पूर्वक क्षुधातृषादि वाईस परीषहों का सामना करते हैं और उन पर विजय पाते हैं। १८।

योगी लोग अपने आत्मानुभव के समय में इस सिंह के द्वारा क्रीड़ा किया करते है। १९।

संसार का अन्त करनेवाले चरम जन्म में इस सिंह की प्राप्ति होती है। २०।

अनादिकाल से आज तक के भव्यों को यह सिंह अन्तिम भव में ही मिलता आया है और आगे अनन्त काल तक होने वाले भव्य जीवों को भी अन्तिम

❖शून्य सिंहासन, दन्त सिंहासन, रत्न सिंहसन, शारदासिंहासन इत्यादि नामों से गुरु पीठ या राज पीठ आज भी दक्षिण में महिशूर (मैसूर) में क्रमशः चित्र वर्ग, दिल्ली, मार्र्-शूद नरसिंह राज पुत, श्रवणबेल गोल और शृंगेरी आदि स्थानों में मौजूद हैं।

जन्म में ही इसकी उपलब्धि होगी । २१ ।

वर्द्धमान जिन भगवान भी एक प्रकार से सिंह हैं । २२ ।

इस सिंहासन प्रातिहार्य से वेष्टित हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है । २३ ।

अब इस सिंह की ऊंचाई आदि के बारे मे बतलाते है ।

भगवान समवशरण मे एक मुख होकर भी चार मुख वाले दीख पडते हैं उसी प्रकार यह आसन रूप सिंह भी एक होकर भी चार चार मुँह दीखा करता है। इस सिंह की ऊँचाई भगवान के शरीर प्रमाण होती है । २४ ।

आदिनाथ भगवान के चरण कमलो के नीचे रहने वाले सिंह की ऊँचाई पाँच सौ धनुष की थी । २५ ।

घण्टा के बजाने से जो टन टन नाद होता है उसको परस्पर मे गुणाकार करते जाने से जो गुणनफल आता है वही श्री अजितनाथ भगवान के साढे चार सौ (४५०) धनुष सिंह का प्रमाण है । २६ ।

तत्पश्चात् श्री संभवनाथ भगवान का ४०० धनुष श्री अभिनन्दन का साढे तीन सौ (३५०) धनुप तथा श्री सुमतिनाथ भगवान् का ३०० धनुष सिंह का प्रमाण है । २७ ।

श्री पद्मप्रभ भगवान् का २५० धनुषप्रमाण सिंह की ऊँचाई है । २८ ।

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का दो सौ (२००) धनुष ऊँचा सिंह का प्रमाण है । २९ ।

आठवे श्री चन्द्र प्रभु भगवान के सिंह की ऊँचाई १५० धनुष प्रमाण है ।३०।

नौवे श्री पुष्पदन्त भगवान के सिंह की ऊंचाई १०० धनुप प्रमाण है ।३१।

श्री शीतलनाथ भगवान के सिंह की ऊंचाई ९० धनुष प्रमाण है । ३२।

श्री श्रेयांस नाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ८० धनुष प्रमाण है । ३३।

श्री वासुपूज्य भगवान के सिंह की ऊंचाई ७० धनुष प्रमाण है । ३४।

श्री विमलनाथ भगवान के सिंह की ऊंचाई ६० धनुष प्रमाण है ।३५।

श्री अनन्त नाथ भगवान के सिंह की ऊंचाई ५० धनुष प्रमाण है ।३६।

श्री धर्मनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ४५ धनुष प्रमाण है । ३७ ।

श्री दिव्य शांतिनाथ भगवान के सिंह की ऊंचाई ४० धनुष प्रमाण है । ३८ ।

श्री कुंथुनाथ भगवान के सिंह की ऊंचाई ३५ धनुष प्रमाण है । ३९ ।

श्री अर्हनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ३० धनुष प्रमाण है । ४० ।

श्री मल्लिनाथ भगवान के सिंह की ऊंचाई २५ धनुष प्रमाण है । ४१ ।

श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर के सिंह की ऊंचाई २० धनुष प्रमाण है । ४२ ।

श्री नमिनाथ भगवान के सिंह की ऊंचाई १५ धनुष प्रमाण है । ४३ ।

श्री नेमिनाथ भगवान के सिंह की ऊंचाई १० धनुष प्रमाण है । ४४ ।

श्री पार्श्वनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ९ हाथ प्रमाण है । ४५ ।

अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान के सिंह की ऊँचाई ७ हाथ प्रमाण है । ४६ ।

उपर्युक्त २४ तीर्थकरो मे से प्रथम तीर्थकर श्री आदिनाथ भगवान से लेकर २२ वे तीर्थकर श्री नेमिनाथ भगवान पर्यन्त धनुष की ऊंचाई है । ४७ ।

उपर्युक्त सभी अङ्क गुणाकार से प्राप्त हुये है । ४८ ।

श्री पार्श्वनाथ भगवान तथा महावीर भगवान के सिंह की ऊंचाई का प्रमाण धनुष न होकर केवल हाथ ही है । ४९ ।

इस अंक को साधन करने वाला भूवलय ग्रन्थ है । ५० ।

आगे भूवलय के कोष्ठक बंधाक मे मिलने वाले अक्षर को दाशमिक (दशम) क्रम से यदि गणित द्वारा निकाले तो आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु पर्यन्त जो सिंह का वर्णन किया गया है वह निर्मल शुभ्र स्फटिक मणि के समान है । इस प्रकार इस स्फटिक मणिमय वर्ण के सिंह का ध्यान करने से ध्याता को अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है । ५१ ।

इसी गणित को आगे बढाते जाने से भगवान पुष्पदन्तादि दो तीर्थंकर के सिंह-लांछन का वर्ण कुन्द पुष्प के समान है ५२ ।

श्री सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ भगवान के सिंह का वर्ण हरित है, श्री

सुव्रत तीर्थंकर के सिंह का वर्ण नील है तथा श्री नेमिनाथ, पद्मप्रभु और वासुपूज्य इन तीनों तीर्थंकरों के सिंह का वर्ण रक्त है। ५३।

आठ तीर्थंकरों के सिंहों का वर्ण श्वेत, पीत, नील तथा रक्त वर्ण का है किन्तु शेष सोलह तीर्थंकरों के सिंहों का वर्ण स्वर्ण रस तथा स्फटिक मणि के समान है।५४।

महावीर भगवान का सिंहासन स्वर्ण मय तथा आदि तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान का नन्दी पर्वत पर स्थित सिंहासन स्वर्ण मय है। क्योंकि यह स्वाभाविक ही है, कारण यह स्वर्ण उत्पत्ति का ही देश है। यह नन्दी पर्वत अनादि काल से लोक पूज्य है।५५।

गंग वंशीय राजा इस अनादि कालीन पर्वत को पूज्य मानते थे।५६।

महावीर भगवान के निकट नाथ वंशीय कुछ राजा दक्षिण देश में आकर नन्दी पर्वत के निकट निवास करते थे। वे "नन्द पुद" कुलवाले कहलाते थे।५७।

महावीर भगवान के कुल से सेव्य होने के कारण इस नन्दीगिरि को महति महावीर नन्दी कहते है।५८।

अनेक जैन मुनियों का निवास स्थान होने से इस पर्वत को इह लोक का आदि गिरि भी कहते हैं। ५९।

अनेक सूक्ष्म गणित शास्त्रज्ञ दिगम्बर जैन मुनि यहां निवास करते थे इसलिये इस गिरि का 'सुहुमाक गणित का गिरि' भी नाम है।६०।

इस पर्वत पर निवास करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय महर्षि लोग उग्र-उग्र तपस्या करने वाले हो गये है जिनको घोराति घोर उपसर्ग आये हैं फिर भी क्षत्रियत्व के तेज को रखने वाले उन महर्षियों ने उन उपद्रवों का सहर्ष सामना किया था और उन पर विजय पाई थी। इसलिए इसको महाव्रत भरतगिरि भी कहते हैं यहाँ पर भरत के माने शिरोमणि के है। ६२।

इन महर्षियों की सिंहनि.क्रीडितादिसरीखी तपस्या को देखकर आश्चर्य चकित होकर अनेक अव्रती लोग भी अणुव्रतादि स्वीकार करते थे इसलिये इस पर्वत को अणुव्रतनन्दी भी कहते हैं।

इस पर्वत पर रहने वाले मुनि लोग अनुपम क्षमाशील हो गये हैं इसलिये इस पर्वत को 'सहन करने वाले गुरुओं का गिरि' भी कहते है।६३।

इस पर्वत पर रहने वाले जैन मुनियों के पास सभी धर्मवाले आकर धर्म के विषय में पूछताछ करते थे और समाधान से सन्तुष्ट हो जाते थे इसलिए इसको तीन सौ त्रेसठ धर्मों का सहचरगिरि भी कहते है।६४।

मुनियों के नाना गण गच्छों की उत्पत्ति भी इसी पर्वत पर हुई थी इस लिये इस गिरि का नाम गुरु गण भरत गिरि भी है।६५।

जिन गङ्ग वंशी राजाओं का वर्णन ऋग्वेद में आता है वे सब राजा जैन धर्म के पालने वाले थे तथा गणित शास्त्र के विशेषज्ञ थे। उन सब राजाओं की राजधानी भी इस पर्वत के प्रदेश में ही परम्परा से होती रही थी इसलिए इस को गंग राजाओं के गणित का गिरि भी कहते हैं।६६।

विद्याधरों की भांति इस पर्वत पर अनेक मान्त्रिकों ने विद्यायें सिद्ध की थी इसलिए इसको गहन विद्याओं का गिरि भी कहते हैं।६७।

इस पर्वत के आठ शिखर बहुत ऊंचे ऊचे है। इसलिए इसको 'अष्टापद भी कहते है। इस पर्वत पर से नदी भी निकल कर बहती है तथा इस पर्वत पर अनेक प्रकार की जड़ी बूटी भी है जिनको देखकर लोगों का मन प्रसन्न हो जाता है और हंसी आने लगती है। इसलिए इस पर्वत का नाम 'हँसी पर्वत' भी है।६८।

जिस प्रकार सभी अहमिन्द्र एक सरीखे सुखी होते हैं उसी प्रकार इस पर्वत पर रहने वाले लोग भी सुखी होते है। इसलिए इसको भूलोक का अहमिन्द्र स्वर्ग भी कहते हैं।६९।

कल्प वृक्ष कहां है ऐसा प्रश्न होने पर लोग कहा करते थे कि इस नन्दी गिरि पर है इसलिए इसका नाम 'कल्पवृक्षाचल' भी है।७०।

कल्वप्यूतीर्थ, कावलाला और तालेकाया यह सब नंदी गिरि पर राज्य करने वाले गंग राजाओ की राजधानी भी थी।७१-७२।

विशेष विवेचन—जहां पर जगदाश्चर्यकारी श्री बाहुबली की प्रसिद्ध मूर्ति है जिसको आज श्रवण वेलगोल कहा जा रहा है उस क्षेत्र को पहले कल्वप्युतीर्थ कहते थे वह प्रदेश भी गंग राजाओं की अधीनता में था जो कि नान्दी गिरि से एक सौ तीस मील पर है और नन्दी गिरि से तीस मील की दूरी पर एक कोवलाला नाम तीर्थ था जिस को आज 'कोलार' कहते हैं जिस पर सोने

की खानि है तथा नन्दी गिरि से डेढ सौ मील दूर पर तालेकाड्ढ नाम का गाव है जो कि पूर्व मे इन गंग राजाओ की राजधानी था। इसके तालेकाड्ढ के आस-पास मे मलपूर नाम का एक पहाड है जिस पर पूज्यपादाचार्य के आदेश से इन्ही गंग राजाओं के द्वारा बनाया हुआ विशाल जिन मन्दिर है तथा पद्मावती की मूर्ति भी है जिस मूर्ति की बडो महिमा है। जैन ही नही अजैन लोग अपना इच्छित पदार्थ पाने की इच्छा से उसकी उपासना किया करते है और यथोचित फल पाकर संतुष्ट होते हैं। इसी नन्दी गिरि से पांच मील दूर पर यलव नामक एक गांव है जो कि पूर्व जमाने मे एक प्रसिद्ध नगर के रूप मे था। वही पर कुमुदेन्दु आचार्य रहते थे। यलव के आगे भू लगाकर उसे प्रतिलोम रूप पढने से भूवलय हो जाता है।

यह नान्दी गिरि प्राचीन काल से श्री वृषभनाथ के समय से बहुत बडा पुण्य क्षेत्र माना गया है।७३।

महावीर भगवान का सिंहासन सोने का बना हुआ था और महद आदि ऋषभ जिनेन्द्र की प्रतिमा के नीचे रहने वाले सिहासन का सिंह भी सोने का ही है। क्योकि इस पर्वत के नीचे सोने की खान पाई जाने से मंगल रूप बतलाने वाला सोने की वस्तु बनाने मे क्या आश्चर्य है। इस पर्वत मे ही भूवलय ग्रन्थ को आचार्य कुमुदेन्दु ने लिखा है।७४।

भगवान के चरणो के नोचे रहने वाले सिह के ऊपर के कमलो की बत्तीस लाइनें है जिनमे एक-एक लाइन मे सात-सात कमल है। (३२×७=२२४) कमल हुए। भगवान के नीचे रहने वाले एक कमल को मिलाकर २२५ कमल हो जाते है। उन कमलो का आकार स्वर्ण से बनाकर नन्दी पर्वत के अग्रभाग मे बनाये हुए विशाल मंदिर मे गग राजा शिवमार ने रक्खा था।७५।

दया धर्म रूपी धवल वर्ण भगवान का पादद्वय कमल के ऊपर विराजमान था। वहाँ सिंह का मुख एक होते हुए भी चारों तरफ चार मुख दीखते थे, क्योकि यह चतुर्मुखी सिंह के मुख का चिन्ह गग राजा का राज्य चिन्ह अर्थात् भरत खण्ड का शुभ चिन्ह था।७६।

विवेचन—आज के भारत का जो राज्य-चिन्ह चौमुखी सिह है वह अशोक चक्रवर्ती का राज्य चिन्ह था, ऐसी मान्यता प्रचलित है। अशोक से भी पूर्व गंग वंश के राज्य काल मे भी यह चतुर्मुखी सिंह भारत का राज्य चिन्ह रहा है। यह सिह ध्वज का लाछन चिन्ह चौबीसों तीर्थंकरों के समवशरण मे रहने वाला होने के कारण अथवा प्रत्येक तीर्थंकर के समय मे होनेवाले सिह की आयु, मुख, प्रमाण, देह प्रमाण आदि का विवरण इस भूवलय ग्रन्थ के इसी अध्याय मे आने वाला है। अत प्रमाणित होता है कि यह चतुर्मुखी सिह का चिन्ह बहुत प्राचोन समय से चला आ रहा है।

इस मन्दिर के ऊपरी भाग मे मृग, पक्षी, मानव आदि के सुन्दर चित्र बनाए हुए थे। उन सब मे वीर श्री का द्योतक यह सिहासन था। यह सब भरत चक्रवर्ती का चलाया हुआ चक्राक क्रम था।७७

यह सिह वीर जिनेन्द्र का वाहन (पगचिन्ह) था और प्रातिहार्य भी था। जैन धर्म, क्षत्रिय धर्म, शौर्य श्री, सारस्वत श्री इन सब विद्याओ का प्रतीक यह सिह था।७८।

यह सिंह समचतुरस्र सस्थान और उत्तम सहनन से युक्त रचना से बना हुआ था, एवं मंगलरूप था, विमल था, वैभव से युक्त था, भद्रस्वरूप था तथा भगवान के चरणो मे रहने से इस सिंह को शिव मुद्रा भी कहते हैं।७९।

ऋषभ आदि तीर्थंकरों से क्रमागत सिह की आयु और ऊंचाई, चौड़ाई सब घटती गई है। अन्यत्र ईश्वर इत्यादि का वाहन भी सिंह प्रतीक दीख पडता है।८०-८१।

भगवान के इन सिंहो को नमस्कार करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है।८२।

सब सिहों मे समवशरण के अग्र भाग में रहने वाले सिह को ही लेता।८३।

एक सिह के चार पैर होते है। अब यहा चारो तरफ आठ चरण दीख पड़ते है।८४।

प्रत्येक सिंह के मुख पर केश विशालता से दीख पड़ते है।८५।

इस सिह को इतना प्राधान्य क्यों दिया गया? इसका उत्तर यह है कि भगवान के ८ प्रातिहार्यों मे एक प्रातिहार्य होने से इसका महत्व इतना हुआ।८६।

एक सिह होते हुए भी चार दीख पड़ने से गणित शास्त्र के क्रमानुसार

समांक को विषमांक से भाग देने से शून्य आ जाता है ।८७।

नाट्य शास्त्र के अभिनय के लक्षण में इस सिंह का भाव प्रकट करे तो अहिंसा का भाव पैदा होता है ।८८।

पाहुड ग्रन्थों में इस सिंह प्रातिहार्य को श्रमहारक लाछन माना गया है ।८९।

चारों ओर रहने वाले सिंह के मुख समान होते हैं ।९०।

सिंह के समीप महाव्रतियो के बैठने के कारण इस सिंह का भी महाव्रती सिंह नाम आया है ।९१।

समवशरण में सिंहासन के पास महाव्रती बैठकर जो सिंह निष्क्रीड़ित तप करते हैं उसी के कारण इस को सिंह निष्क्रीड़ित कहते है ।९२।

इसका नाम गज अग्रकीड़े अथवा गजेन्द्र-निष्क्रीड़त तप भी है ।९३।

इस सिंह प्रातिहार्य को यदि नमस्कार करे तो अणुव्रत की सिद्धि हो जाती है ।९४।

इस गजेन्द्रनिष्क्रीड़ित❖ महातप को करने वाले महात्माओं के महाव्रतों मे अपूर्व शुद्धि भी प्राप्त हो जाती है ।९५।

ऐसा कहने वाला यह निर्मलांक महाकाव्य भूवलय है ।९६।

मध्य सिंहनिष्क्रीडित एक से आठ अंक तक का प्रस्तार बनाना चाहिये । उसके शिखर पर अन्त में (मध्य में) नौ का अंक आ जाना चाहिये और जघन्य निष्क्रीडित के समान यहां भी दो दो अक्षर की अपेक्षा से एक एक उपवास का अंक घटाना बढ़ाना चाहिये । इस रीति से इस मध्य सिंहनिष्क्रीडित में जितनी अंकों की संख्या हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात्

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ८ ९
१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
८ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

❖सिंहनिष्क्रीडित व्रत जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट भेद से तीन प्रकार का है । उनमें जघन्य सिंहनिष्क्रीडित इस प्रकार है । एक ऐसा प्रस्तार बनावे कि अन्त में (मध्य में) उसमें पांच का अंक आ जाय और पहिले के अंकों में दो दों अंकों की सहायता से एक एक अंक बढ़ता जाय और घटता जाय इस रीति से जितने इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित में अंकों के जोड़ने पर संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझना चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिए अर्थात् इस प्रस्तार का

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ५ ५ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

पारणा करनी चाहिये । पश्चात् दो में से एक उपवास का अंक घट जाने से एक एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अंक घट जाने से दो उपवास एक चार-में से एक उपवास का अङ्क घट जाने से तीन उपवास एक पारणा, चार उपवास का अंक घटा देने पर चार उपवास एक पारणा, चार मे एक उपवास पांच का अंक आ जाने से पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ । आगे उल्टी संख्या से पहिले अंक घटा देने पर चार उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अंक बढ़ा पर तीन उपवास एक पारणा, तीन मे से एक उपवास का अंक घटा देने पर वास एक पारणा, दो में से एक उपवास का अंक घटा देने पर एक उपवास एक चाहिये । इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित मे अंकों की संख्या साठ है । इसलिए साठ अस्सी ८० दिन में जाकर समाप्त होती है ।

यह आकार है । यहां पर पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक उपवास एक पारणा, दो में एक उपवास का अंक बढ़ जाने से तीन उपवास पारणा, तीन में एक उपवास का अंक बढ़ जाने से चार उपवास एक पारणा, में एक उपवास का अङ्क बढ जाने से पांच उपवास एक पारणा, पांच में से एक का अंक बढ़ा देने पर पांच उपवास एक पारणा होती हैं । यहां पर अन्त में पांच उपवास एक पारणा करनी चाहिए । पश्चात् पांच में से एक उपवास का देने पर पांच उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अंक घटा देने दो उपवास एक पारणा, दो में से एक उपवास का अंक बढ़ा देने से तीन उपवास एक पारणा, पश्चात् दो उपवास एक पारणा, एक उपवास एक पारणा करनी उपवास होते है और स्थान बीस है, इसलिये पारणा बीस होती है । यह विधि

इसके प्रस्तार का आकार इस प्रकार है। यहा पर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिए। पश्चात् दो मे से एक उपवास का अंक घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, दो मे एक उपवास का अंक जोड़ देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन मे से एक का अक घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, तीन मे से एक उपवास का अंक बढा देने पर चार उपवास एक पारणा होती है। इसी प्रकार जघन्य सिहनिष्क्रीडित के समान आगे भी समझ लेना चाहिये। इसमे अंको की संख्या एक सौ तिरपन है। इसलिए एक सौ तिरपन तो उपवास होते हैं और स्थान तैंतीस हैं। इसलिये तैंतीस पारणा होती है। इसलिये यह मध्य सिनिष्क्रीडित व्रत एक सौ छियासी दिन मे समाप्त होता है।

उत्तम सिंहनिष्क्रीडित—एक से पन्द्रह अंक तक का प्रस्तार बनाना चाहिये। उसके शिखर पर अन्त मे (मध्य मे) सोलह का अक आ जाना चाहिये और उपर्युक्त सिहनिष्क्रीडितों के समान यहा पर भी दो दो अक्षरो की अपेक्षा से एक एक उपवास का अंक घटा बढा लेना चाहिये। इस रीति से जोडने पर जितनी इसमे अंकों की सख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिये। इसके प्रस्तार का आकार

१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११
१३ १२ १४ १३ १५ १४ १५ १६ १५ १४ १५ १३ १४ १२ १३
११ १२ १० ११ ९ १० ८ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

इस प्रकार है। यहां पर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये। पश्चात् दो में से एक उपवास का अङ्क घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, दो मे एक उपवास का अक बढा देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन मे से एक उपवास का अ क घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, तीन में एक उपवास का अंक मिला देने से चार उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अंक घटा देने पर तीन उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अ क बढा देने से पाच उपवास एक पारणा,

पाच मे से एक उपवास का अंक घटा देने से चार उपवास एक पारणा, पांच में एक उपवास का अंक जोड़ देने से छै उपवास एक पारणा, छै मे से एक उपवास का अंक घटा देने पर पाच उपवास एक पारणा, छै में एक उपवास का अंक बढा देने पर सात उपवास एक पारणा, सातमें से एक उपवास का अंक घटा देने पर छै उपवास एक पारणा, सात मे एक उपवास का अंक मिला देने से आठ उपवास एक पारणा, आठ मे से एक उपवास का अंक घटा देने पर सात उपवास एक पारणा, आठ मे एक उपवास का अंक मिला देने पर नौ उपवास एक पारणा, नौ मे से एक उपवास का अक घटा देने पर आठ उपवास एक पारणा, नौ मे एक उपवास का अक जोड देने पर दश उपवास एक पारणा, दश मे से एक उपवास का अक घटा देने पर नौ उपवास एक पारणा, दश मे एक उपवास का अंक बढा देने पर ग्यारह उपवास एक पारणा, ग्यारह मे से एक उपवास का अक घटा देने पर दश उपवास एक पारणा, ग्यारह मे एक उपवास का अक बढ़ा देने पर बारह उपवास एक पारणा, बारह में एक उपवास का अक मिला देने पर तेरह उपवास एक पारणा, तेरह मे एक उपवास का अक बढा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, चौदह मे से एक उपवास का अक घटा देने पर तेरह उपवास एक पारणा, चौदह मे एक उपवास का अंक बढा देने पर पन्द्रह उपवास एक पारणा, पन्द्रह मे से एक उपवास का अंक घटा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, पुन पन्द्रह उपवास एक पारणा और सोलह उपवास एक पारणा, सोलह मे से एक उपवास का अ क घटा देने से पन्द्रह उपवास एक पारणा, पन्द्रह मे से एक उपवास का अक घटा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, चौदह मे एक उपयास का अंक बढा देने पर पन्द्रह उपवास एक पारणा, चौदह मे से एक उपवास का अ क घटा देने से तेरह उपवास एक पारणा, इत्यादि रीति से आगे भी समझना चाहिये। इस रीति से इस उत्तम सिंहनिष्क्रीडित व्रत मे अ को की मिलकर संख्या चारसौ छियानबे है। इसलिए इतने तो इसमे उपवास होते है और स्थान इकसठ है इसलिये इकसठ पारणा होती है। यह व्रत पाच सौ सत्तावन दिन मे समाप्त होता है।

ग्रन्थकार ने तीनों प्रकार के सिहनिष्क्रीडित व्रतों की संख्या और पारणा गिनकर बतलाने की यह सरल रीति बतलाई है। जघन्यसिंहनिष्क्रीडित व्रत में साठ उपवास और पारणा बतलाई है एवं उसका प्रस्तार पांच अंक तक

रखकर उनका आपस में जोड दें और जोड़ने पर जो संख्या आवे उसका चार से गुणा करदें, इस रीति से गुणा करने पर जो संख्या सिद्ध हो उतने तो उप-वास और जितने स्थान हो उतनी पारणा समझनी चाहिए अर्थात् इस जघन्य सिंहनिष्क्रीड़ित व्रत में एक से पाच तक की संख्या जोड़ने पर १५ होते हैं और पंद्रह का चार से गुणा करने पर साठ होते है। इसलिए इतने तो उपवास है और स्थान बीस होते हैं इसलिए पारणा बीस हैं। मध्य सिंहनिष्क्रीडित मे तिरेपन उपवास और तैंतीस पारणा बतला आये है और नौ के अंक को शिखर पर रखकर आठ अंक तक का प्रस्तार बतला आये है। वहां पर एक से लेकर आठ तक संख्या रखकर आपस में जोड़ दें और जोड़ने पर जितनी संख्या आवे उसका चार से गुणा करे तत्पश्चात् गुणित संख्या में जो नौ का अंक शिखर पर बतला आये है उसे जोड़ दे इस रीति से जितनी संख्या सिद्धहो उतने इस मध्यसिंहनिष्क्रीडितमे उपवास है और जितने स्थान हैं उतनी पारणा है अर्थात् एक से आठ तक की संख्या का जोड़ देने पर छत्तीस होते है। छत्तीस का चार से गुणा करने पर एकसौ चौवालिस होते है और उसमे नौ जोड़ देने पर एकसौ तिरपन हो जाते है। इसलिए इस व्रत मे एकसौ तिरेपन तो उपवास होते है और स्थान तैंतीस है इसलिए तैंतीस पारणा होती हैं। उत्तम सिंहनिष्क्रीडित में चारसौ छियानबे उपवास और पारणा इकसठ कही हैं। इसका प्रस्तार सोलह के अंक को अधिक रखकर पंद्रह तक बतला आये है। वहां पर भी एक से लेकर पंद्रह तक की संख्या का आपस में जोड़ देने पर जितनी संख्या आवे उसका चार से गुणा करे और गुणित संख्या में जो सोलह का अंक अधिक बतला आये है उसे जोड़ दे और जोड़ गुणा करने पर जितनी संख्या निकले उतने इस व्रत में उपवास समझने चाहिए और जितने स्थान हों उतनी पारणा जाननी चाहिए अर्थात् एक से पद्रह तक जोड़ने पर एकसौबीस होते हैं। एकसौबीस का चार से गुणा करने पर (१२० × ४ = ४८०) चारसौ अस्सी होते हैं और इनमें जो सोलह अधिक बतला आये है उन्हें मिला देने से चारसौ छियानबे हो जाते हैं। सो चारसौ छियानबे तो इस व्रत में उपवास होते है और स्थान इकसठ है इसलिये पारणा इकसठ होती है। इस क्रम से जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट सिंहनिष्क्रीडित की उपवास और पारणाओं की संख्या जाननी चाहिए। जो मनुष्य इस परम-पावन सिंहनिष्क्रीडित व्रत का आचरण करता है उसे वज्रवृषभ नाराचसंहनन की प्राप्ति होती है, अनन्त पराक्रम का धारक हो, सिंह के समान वह निर्भय हो जाता है और शीघ्र ही उसे अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों की भी प्राप्ति हो जाती है।

ना अध्याय
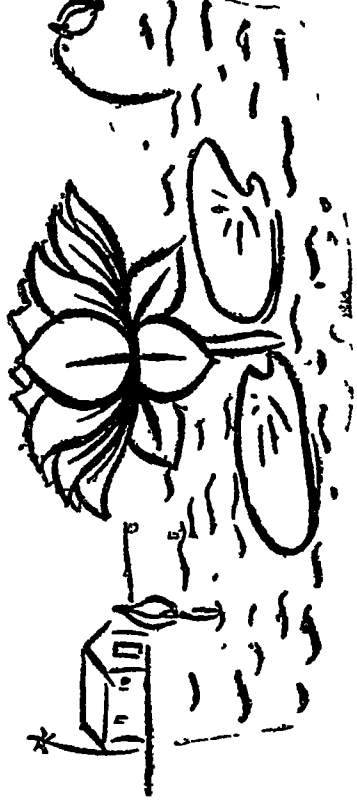
ऊ* काव्यदतिशय ज्ञान साम्राज्य । श्रीकर वय्भव भद्र ॥ भू* करवाद भूवलय सिद्धान्तके । ऊ काव्यदादियोळ् नमिपे ॥१॥
व* शवा लोक अलोक भूवलयद । त्रस नाळियोळहोरगिरुव ॥ यश त* नियाद ज्ञानद घनवदनाळ्व । रसवे मनुगळद प्राभृततवे ॥२॥
मु* नदि प्रकाशवागुव सूर्यनो एम्ब । जिनदेवनन्तरदन ब* दनुभव तावरेयग्र सिम्हद अग्र । वनुमेट्टदिरुव नाल्वेरळ ॥३॥
व* तियोळु निन्तिह अथवा कुळितिरप । स्थितिय द्रव्यवरिय लि* क्कें॥ अतिशय मूवत्नाल्कर काव्यद। हितदक्षरदनक ई'ऊ' ॥४॥
र* सिकद बेवरिल्ल निजदेह निर्मल। होसदेहरक्त बिळियो गु* तसमानवज्र व्रुषभ नाराचद । यशदादि सम्हनननाग ॥५॥

वश सम चतुरस्रवेनिप ॥६॥ असमान देह सम्स्थान ॥७॥ यशद्अनुपमरूप कान्ति ॥८॥ रसगन्ध सम्पगेयन्द ॥९॥
यशद साविरदेन्टु चिन्ह ॥१०॥ यश बल वीर्य अनन्त ॥११॥ हस मित मधुर भाषणवु ॥१२॥ दशभेदवु स्वाभाविकवु ॥१३॥
वशविवु जननातिशयवु ॥१४॥ रसद हत्त् अनकद चिन्हे ॥१५॥ विषहरदमृत शरीर ॥१६॥ कुसुमदग्रद जिन-देह ॥१७॥
ऋषिगळाराधिप देह ॥१८॥ जसवे महोन्नत देह ॥१९॥ रससिद्धि गादिय देह ॥२०॥ बिशमसमान कद देह ॥२१॥
कुशदग्र बुद्धिर्धिदेह ॥२२॥ रसरत्न मूराव्म देह ॥२३॥ उसहादि महावीर देह ॥२४॥ यशविह काव्य भूवलय ॥२५॥

भू* वलयवनेल्ल नाल्कु दिशेगळलि । कावुत नूरु योजनद । ठाव ण* सुभिक्षतेयनुउन्दु माडुत । ताउ आकाशदे गमन ॥२६॥
व* रे हिम्सेय् अभाव उण्णद लिरुवन्थ । परिपरियुपसर्ग धं* रिस॥ दिरुवनाल्दिशेमुखनेरळुबीळदलिह। परियन्दरेप्पेयनोट ॥२७॥
ल* क्षण विद्येगळेल्लर ईशत्व । रक्षिप उगुर कोळदिह ॥ र* क्षिसि कूदलु समनागिर्पुदु । रक्षेय हदिनेन्टु भाषे ॥२८॥
य* शद लिपियनक क्षुद्र एळ्नू अनक । वश सम्ज्ञरिजीव आ* वाव॥ यशदनकाक्षर अक्ष भाषामय । वशभव्यर्गुपदेशवीव॥२९॥
म* नद अस्खलित स्वभावद अनुपम । वनधिघोषद दिव्य त र* आद । जिनरदिव्यध्वनिमूरुसनजंगेबर्प । धनद्ओम्वत्मुहूर्त्तगळु॥३०॥

जनिसदु तुटियळाटदलि ॥३१॥ जनिसे सल्लुगळाट रहित ॥३२॥ घन तालु ओष्ट बेकिल्ल ॥३३॥ जनकेल्ल ओम्दे समयदि ॥३४॥
जिननुपदेशवागुवुदु ॥३५॥ घन ओम्दु योजन हरिदुम् ॥३६॥ गणधर परश्नेगुत्तरदे ॥३७॥ जिनवाणि बेकागे बहुदु ॥३८॥
मनुज चक्रियप्रश्नेयन्ते ॥३९॥ जिनवाणि युत्तर बहुदु ॥४०॥ कोनेमोदलनु तुळुवुदु ॥४१॥ घनद्रव्य आरम् पेळुवुदु ॥४२॥
घन तत्व एळर कथन ॥४३॥ दनुभव नववस्तु कथन ॥४४॥ तनि ऐद् अस्थिकायगळम् ॥४५॥ घन हेतुगळिम् पेळुवुदु ॥४६॥
जिन दिव्यध्वनि सार ॥४७॥ कोनेय प्रमाण भूवलय ॥४८॥

ति* रेयोळाश्चर्यद हत्ओमद् अरतिशय वेरसिद जिन देव य* शद॥ परियुकेवलज्ञानवागलुबरुवुदु । अरुहगे घातिय क्षयदि ॥४९॥
ब* बेय कालिन अष्टकर्मवु निलदिरे । सवेयदलिह अनुभव म* । अवतारदनिशयहन्ओम्दर् अनकके । सवि घातिक्षयजातिशयं ॥५०॥
र* संदात्मनेनुवरहन्त पप प्राप्त । यशदिव्यात् मनन न* त॥ वश गुणसमृद्धनाद तेजोनिधि । रससिद्धिगादिय वस्तु ॥५१॥
ण* वकार मन्तरद मूरुमूरलोम्बत्त । रवरलि गुणाकार च क* षु॥ विवरदद्रुष्टिभेदगळनुतिळिदिह । नवकारदतिशय वस्तु ॥५२॥

३ × ३ = ९ जवननोडिप दिव्य चक्षु ॥५३॥ नवकारकादिय वस्तु ॥५४॥ सुविशाल जगद साम्राज्य ॥५५॥
नवनवोदित दिव्य ज्योति ॥५६॥ कविगे सिक्कद दिव्य रूप ॥५७॥ अवयव सुपवित्र पूतम् ॥५८॥

जवसृजंव हरणद रूपु ॥५९॥ सुविशाल दिव्यवय् भववु ॥६०॥ गवसणिगेयळिद वेहं ॥६१॥
सविवचनाम् रुत शरधि ॥६२॥ नवपद भक्तिय शुद्धि ॥६३॥ नवपद भक्तिय सिद्धि ॥६४॥
नवपद ज्ञानद शक्ति ॥६५॥ नवदमक सिद्धि चारित्र्य ॥६६॥ अवसर्पिणियादि रूपु ॥६७॥
अवसर्पिणिय भव्यान्क ॥६८॥ नवदेरडने भागदन्क ॥६९॥ भवहर सिद्ध भूवलय ॥७०॥
सु॥ रकुरुतहदिमूर् अतिशय काव्यदे । सिरि जिन महिमेगळर षु॥ तिरुवल्लिमोदलिगेसनख्यातयोजन । दिरुववनगळ वृरुक्षदोळु ॥७१॥
द॥ रुशिसल्अल्लि एलेयु हूवु हणगळ्उ । बरुवुवसमयदोळा ना॥ परियतिशय ओम्दु मरळुमुळ्ळिल्लद । धरेयोळु चलिसुव पवन ॥७२॥
धे॥ नुवुहोक्कन्ते सुखदायकवु । एनेम्बे एरडनेय महा ॥ ताना ग॥ तवायु परिवुदु मूरने । तानुवयृरव बिटुदु जीवर् ॥७३॥
ण॥ व नवोदित दिव्य प्रेमदिन्दिरुवरु नवरत्न केत्तिद ह॥ सेय ॥ सुविशाल दर्पणदन्ते होळेवनेल । दवनियु नाल्कनेयन्क ॥७४॥
दवनिय समवसरणवु ॥७५॥ कविगे नाल्कनेयतिशयवु ॥७६॥ नवरन्नकणनेलेकट्टु ॥७७॥ दवनमोल्लेय चित्रदच्चु ॥७८॥
सवि गन्ध माधव हूवु ॥७९॥ नवगन्ध माधव बळ्ळि ॥८०॥ सुविशाल चित्रवल्लियदु ॥८१॥ नव सम्पगे पडियच्चु ॥८२॥
नव गन्धराज बळ्ळिगळ ॥८३॥ अवयव कमल जातिगळ् ॥८४॥ गवसणिगेय चित्रदच्चु ॥८५॥ तवे कामकत्तुरि झल्लि ॥८६॥
विविध चेन्नगणजिल वेला ॥८७॥ नवमालती मुडिवाळ ॥८८॥ नव पगडेय बन्धूक ॥८९॥ छवि तांळेयवतार चित्र ॥९०॥
भूविय पादरिय नामद हू ॥९१॥ दवनिय रेखेयन्तिहुदु ॥९२॥ दवनिय काव्य भूवलय ॥९३॥
ण॥ व सुगन्धद पन्नीरिन मळेयनु । अवनिगे सुरिसुत सवन ॥ स॥ विजलवृरुष्टिय देवेन्द्र नाग्नेयिम् । भुविगे सुरिव मेघकुवर ॥९४॥
म॥ ळेयु ऐदागे देवरु विक्रियेयिन्द । फल भारअनम्रद शालि ॥ ति॥ ळियाद पयरनु हरडुवुद आरअन्क । विविधजेवरनित्य सवख्य ॥९५॥
सृ॥ रेयबारद एळु देवर्विक्रियेयिन्द । सर तणपिन् वृआयु य॥ शव॥ आरनिगेबीसुवुद्एन्ट्अन्ककेरेभावि। सिरिशुद्धजलपूरणनवम ९६
सिं॥ डिलु कार्मोडउल्कापातविल्ल । विडियाद आकाशदशम ॥ वड ति॥ यागिरे सर्व जीवर्गे रोगादि । भिडेयिल्लदिहुदु हन्ओम्दु ॥९७॥
गडिय दाटिहरु हरषदलि ॥९८॥ जडतेयनळिदिहरल्लि ॥९९॥ फडेगळिल्लद निरामयरु ॥१००॥ गडिगळळिदु बाळुवरु ॥१०१॥
मृरुढ बाधेयळिदिहरेल्ल ॥१०२॥ एडरुगळळिवरु एल्ल ॥१०३॥ ओडवेगळळिवरु जनरु ॥१०४॥ कडवनु कळेदु कोळ्ळुवरु ॥१०५॥
जडतेयनळिदु बाळुवरु ॥१०६॥ झडतिय नळियदिहरेलूल ॥१०७॥ तोडरुगळळिदरु जनरु ॥१०८॥ तडेगळिल्लदे सुखदिहरु ॥१०९॥
सडगरवेनिल्लवल्लि ॥११०॥ कुडुकेगळळिदिहरळ्लि ॥१११॥ नडे मुडियलिदु बाळुवरु ॥११२॥ पडिगळ बाधेयल्लिळ्ल ॥११३॥
बडतनवेनिळ्ळवळ्लि ॥११४॥ मडिगळिल्लदे बालुवरु ॥११५॥ यडरळिदिहरु नोडळ्लि ॥११६॥ षडक्षरवलिद भूवलय ॥११७॥
ऊ॥ नवळिद तेजदतिशय रत्न । काणुव बेळकिनुज्वलद ॥ ताण व॥ असुधरिसिद धर्म चक्रवुनाल्कु ॥ आनन्ददिम् यक्षेन्द्ररुगळ् ॥११८॥
ण॥ णविधदलन्कारव धरिसिह । जानपदद तेरदिन्द ॥ आनद रु॥ चियदुहत्तएरड् अन्कवु तानु मूवत्तएरळ् दिशेयोळ् ॥११९॥
ह॥ रडिद एळेळु पन्क्तिये हदिमूरु । बरे स्वर्ण कमलद ष॥ रधि ॥ विरचितपादपीठवुहदिनाल्कदु । सरिपूजेवस्तुहुण्णमेयु ॥१२०॥
सृ॥ न पादपीठ पूजाद्रव्य एरळ् पोगे । जिनर मूवत्नाल्कु शु भ॥ द ॥ घनवादतिशयगळनेल्ल पेळ्व । विनयावतारि यावनिह ॥१२१॥
जनरु भूतलदोळगिल्ल ॥१२२॥ जनरु भूतलदोळेल्लिहरु ॥१२३॥ सनुनय वादियारिह्नु ॥१२४॥ जिन मार्गलक्षण धर्म ॥१२५॥

जनर कन्टक हरणान्क ॥१२६॥ घन भद्र मन्गल रूप ॥१२७॥ जिन शिव भद्र कय्लास ॥१२८॥ जिन विष्णु भवन वय्कुन्ठ ॥१२९॥
विनय सत्यद ब्रम्हलोक ॥१३०॥ जनतेय सर्वार्थ सिद्धि ॥१३१॥ जनरिगे सर्वान्क सिद्धि ॥१३२॥ इन चन्द्र कोटिय किरण ॥१३३॥
कनक रत्नगळ मेल्कट्टु ॥१३४॥ घन रस सिद्धिय मणियु ॥१३५॥ कुनय विनाशक मणियु ॥१३६॥ केनेवालन्तिह शुद्ध स्वर्ण ॥१३७॥
कोनेगात्म सिद्धिय नेलनु ॥१३८॥ तनय तनुजेयर त्याग ॥१३९॥ दनुज किन्नर शिल्प काव्य ॥१४०॥ घनपुण्यभवन भूवलय॥१४१॥

भ॥ वनासर व्यन्तरद ज्योतिष्कर। नव नव कल्पद सिरि वी॥ रवन भक्तरु जयध्वनियिन्द पाडुव सुविशाल कलरवरुतिय ॥१४२॥
व॥ रदमन्गलद प्राभ्रुतद महा काव्य। सरणियोळ् सिरि वी र॥ सेन॥ गुरुगळमतिज्ञानदरिविगे सिलुकिह। अरहतकेवलज्ञान ॥१४३॥
व॥ शवागे मूवत्नाल्कउगळतिशय । ऋषि मार्ग धर्मव धरि से॥ असद्रुशवाद त्रय्लोकाग्र सिद्धियु वशवागलेमगेम्ब ज्ञान ॥१४४॥
ज॥ निसलु सिरि वीरसेनर शिष्यन। घनबादकाव्यद कथेय ॥ जि न॥ असेन गुरुगळ तनुविन जन्मद । घनपुण्यवर्धन वस्तु ॥१४५॥
ण॥ णा जनपदवेल्लदरोळु धर्म। तानु वशीणिसि मर्पाग ॥ तान् आ॥ लिल मान्यखेटद दोरे जिन भक्त। तानु अमोघवर्षांक ॥१४६॥
ण॥ व पद भक्तियिम् जन पदवेल्लवु। तव निधियागिसिर्दाग म॥ अवर भव्यत्वद आसन्नतेयिन्द । नवदन्क मूर्तियादन्ते ॥१४७॥

सविवर मतिज्ञान धरनु ॥१४८॥ अवनिय ज्ञान सम्प्राप्ति ॥१४९॥ भुवियतिशयद सत्भाग्य ॥१५०॥
नवविध ब्रह्मवनरिव ॥१५१॥ अवर पालिसुव सद्गुरुवु ॥१५२॥ सुविशाल कीर्तिय देह ॥१५३॥
नवनवोदित शुद्ध जयद ॥१५४॥ अवतारदाशा वसविय ॥१५५॥ भुवि कीर्तियह सेनगणदि ॥१५६॥
अवतरिसिदज्ञातवम्शि ॥१५७॥ अवन गोत्रवदु सद्धर्म ॥१५८॥ अवन सूत्रवु श्री व्रुषभ ॥१५९॥
अवन शाखेयु द्रव्यान्ग ॥१६०॥ अवन वम्शवदु इक्ष्वाकु ॥१६१॥ अवनेल्ल त्यजसिद सेन ॥१६२॥
नव गण गच्छव सारि ॥१६३॥ नव भारतदोळु हरिसि ॥१६४॥ सविय कर्माटक दोरेगे ॥१६५॥
विवरदोळ् कर्मव पेळ्द ॥१६६॥ अवनन्क काव्य भूवलय ॥१६७॥ भुवन विक्ख्यात भूवलय ॥१६८॥

प॥ दविगळ् ऐदु सन्जनिसिद राजगे। सधवलद् आदिम् व्रुध् या॥ स्पदवागे एरडने जयधवलान्कद। वदिगे मूरने महा धवल ॥१६९॥
दी॥ नत्ववळिसुत जनतेय पालिप। भूनुत वर्धमानान्क॥ आन म॥ अजनतेय जयशील धवलद। शाने पदवियदु नाल्कु ॥१७०॥
व॥ शवादतिशय धवल भूवलयद। यशवागे ऐदने अंक ॥ रस वि॥ स्मयवाद विजयधवलविन्तु । यशद भूवलयद भरत ॥१७१॥
म॥ हिय गेलदन्कव वशगेय्द राजनु। वहिसिद दक्षिणद् भ र॥ त ॥ सिहिय खण्डदकर्माटकचक्रिय। महिये मण्डलवेसरान्तु ॥१७२॥

कहिय हिम्सेयनोडि सिद ॥१७३॥ गहनद् अहिम्सेय मेरेसि ॥१७४॥ वहिसिदणुव्रत ख्याति ॥१७५॥
इह सौख्य करवाद ख्याति ॥१७६॥ छह खण्ड वशशास्त्र ख्याति ॥१७७॥ महियतिशय स्वर्गवेसरिम् ॥१७८॥
इहवे स्वर्गवो एम्ब तेरदिम् ॥१७९॥ वहिसि अमोघवर्षन्रुप ॥१८०॥ नहि नहि न्रुपनेनुवन्ते ॥१८१॥
दहिसुत कर्माष्टकव ॥१८२॥ मह विश्व कर्माटकव ॥१८३॥ विहरिसुतिरुव सद्धर्म ॥१८४॥
सिहिय अहिम् सेय राज ॥१८५॥ इह पर सुखद सर्वस्व ॥१८६॥ सहकार धर्म साम्राज्य ॥१८७॥
इहवेल्ल सौभाग्य रूप ॥१८८॥ महावीर धर्म मान्गल्य ॥१८९॥ गुहेय तपश्चर्य सिद्ध ॥१९०॥

कुहक विनाशक राज्य ।।१९१।। सुह शिव भद्र वश्भाळ ।।१९२।। महा सिद्ध काव्य भूवलय ।।१९३।।
महावीर नडियिट्ट राज्य ।।१९४।।
वो॰ दिनोळन्तर्मुहूर्तदि सिद्धान्त । दादि अन्त्यवनेल चि॰ त्तु।। साधिपराज अमोघवर्षन गुरु । साधितश्रम सिद्ध काव्य ।।१९५।।
च्॰ रितेय सान्गत्यवेने मुनि नाथर । गुरुपरम्परेय विरचि त॰ सिरि वीरसेन सम्पादित सद्ग्रन्थ । विरचितवाचक काव्य ।।१९६।।
छा॰ येयोळ् आचार्यनुसुरिद वाणिय । दायवनरियुत नान्तु।। आय म्॰ न्गल पाहुडद क्रमान्कद । दायदि कुमुदेन्दु मुनि ।।१९७।।
मि॰ गिलादतिशयदेळ्नूर हदिनेन्दु । अगणितदक्षर भाषे ।। श्॰ गणादि पद्धति सोगसिनिम् रचिसिहे मिगुव भाषेयु होरगिल्ल ।।१९८।।
सोगसाथ कर्माटदादि ।।१९९।। सुगुण सम्पूर्णान्ग भाषे ।।२००।। बगेयतिशय शुद्ध काव्य ।।२०१।।
जगदोळिन्निल्लद भाषे ।।२०२।। अगणित जीवर भाषे ।।२०३।। बिगिदिह सव्दरियन्क ।।२०४।।
सोगवीव श्री चक्रबन्ध ।।२०५।। बगे बगेयतिशय बन्ध ।।२०६।। मृग पक्षि भाषेय भन्ग ।।२०७।।
दिगिलळिदिह स्वर्ग बन्ध ।।२०८।। अगणित गणित अनन्त ।।२०९।। जगवेल्ल बिगिदिह भन्ग ।।२१०।।
मिगवु मानवनप्प भंग ।।२११।। खगवु स्वर्गके पोप भंग ।।२१२।। जगवेल्ल सिद्ध भूवलय ।।२१३।।
युग परिवर्तनदन्म ।।२१४।।
ति॰ रेथ जीवरनेल्ल पालिप जिन धर्म । नर पालिसुवुद्ए न री॰ दे ।। गुरु धर्मदाचारवनु भीरदिह राज । धरेय पाळिवुदेनरिदे ।।२१५।।
लो॰ कद त्रस नालियोळगिह जीवर । साकुव जैन धर्म विड्डु ।। शो॰ करवेने सर्व लक्षण परिपूर्ण । नाक मोक्षव नीयुवुदु ।।२१६।।
य॰ श कर्मदुदयव तन्दीव जिन धर्म । रसेगे सौभाग्यवनित् ता॰ यशकाय जीवर शोकव हरिसुत । रससिद्धियन्तागिपुदु ।।२१७।।
विषहर गारुड मणिय ।।२१८।। असद्रुश ज्ञान साम्राज्य ।।२१९।। दिशेयन्तवदनु काणिपुदु ।।२२०।।
उसह सेनरनु तोरुवुदु ।।२२१।। असमान सान्गत्य वहुदु ।।२२२।। कुसुमायुध तापहरवु ।।२२३।।
कसद कर्मद तोलगिपुदु ।।२२४।। विसमान्कवनु भागिपुदु ।।२२५।। सुषम कालवनु तोरुवुदु ।।२२६।।
वशदात्म सिद्धि भूवलय ।।२२७।।
भू॰ तबल्याचार्य नवन भूवलयद् । अख्यातिय वैभव भद् र॰ नूतन प्रावतन वेरडर सन्धिय । ख्यातिय सारुव सूत्र ।।२२८।।
व॰ र भूतबलि नामवदनतिशेयवेन् । दोरेवाग अतिशयवेनु ।। ह॰ रुष वर्धनवाद भारत देशद । गुरु परम्परेयाद राज्य ।।२२९।।
ल॰ वण वारिधियदु बळसुत बन्दिरे । सविय श्वर्धमान पुर ।। सा॰ विर पुरद नाडाद सौराष्ट्रद । ई विश्व कर्माट देश ।।२३०।।
अवरोळु मागधदन्ते ।।२३१।। सवि त्रिसिनीरिन बुग्गे ।।२३२।। अवितिहुददरोळु रसवु ।।२३३।। अवरुपयोगवु मुन्दे ।।२३४।।
य॰ शवदु भारत त्रिकळिन्गवेनिसिद । रसेयेल्ल कन्नाडद व॰ वशगेय्दन्तर हदिनय्दु साविर । दिशेगे नूररवत्तेन्टून ।।२३५।।
म्॰ नद 'अ' काव्यदोळेन्दु नाल्कोळिन् । टेनुवाग बन्दन्कव धा॰ जिनरूपिनाशेय कोनेगे ओम्बत्तन्क । एनुवष्टु (जिनर भूवलय) महाप्रातिहार्य ।।२३६।।

ऊ ८, ७४८+अन्तर १४, ८३२=२३, ५८० । अथवा अ—उ ग, ५२, ४४२+२३,५८०=१, ७६, ०२२ ।

नौवां अध्याय

'ऊ' तो नवम् अ क है। इसमे अतिशय ज्ञान भरा होने से ज्ञान साम्राज्य-काव्य भी कहते है। अनेक वैभवो को मङ्गलरूप से प्राप्त करने वाला पृथ्वी रूप पर्याय धारण करनेवाला और आत्मा का स्वरूप दिखाने वाले इस भूवलय के सिद्धान्त काव्य को आदि मै नमस्कार करता हू ॥१॥

'भूवलय' के दो अर्थ है एक समस्त पृथ्वी और दूसरा आत्मा। समस्त पृथ्वी को भूलोक कहते है। लोक के बाहर अलोक को भी पृथ्वी ही कहते है। यह लोक त्रसनाली के अन्दर और बाहर रहता है। उन सबको जाननेवाला ज्ञान ही है। आत्मा ज्ञान धनस्वरूप है। ज्ञान का रस ही मगल प्राभृत रूपी इस भूवलय का प्रथम खण्ड है ॥२॥

सूर्य तो बाहर प्रकाश करता है और मन के अन्दर जो प्रकाश होता है वह ज्ञान-सूर्य है। उस ज्ञान-सूर्य मे जिनेन्द्र देव की स्थापना करनी चाहिए। जैसे जिनेन्द्र देव समवशरण मे सिहासन के ऊपर रहने वाले १००८ दल वाले कमल के ऊपर चार अँगुल अधर मे स्पर्श नही करते हुए कायोत्सर्ग मे खडा हुआ अथवा पल्यंकासन मे बैठा हुआ ऐसे जिनेन्द्र देव की मन मे स्थापना करनी चाहिए। जब जिनेन्द्र देव जी की स्थापना मन मे होती है उस समय उनका पवित्र ज्ञान भी हमारे अज्ञान-तिमिर को नष्ट करता रहता है। उस जिनेन्द्र भगवान मे ३४ अतिशय रहते है। अष्टमहाप्रातिहार्य के स्वरूप को पहले कह चुके है। अब ३४ अतिशय का वर्णन करने वाला यह "ऊ" अध्याय है।३-४।

कर्मोदय से दुर्गन्धरूपी पसीना शरीर से निकलता है। घातिया कर्मक्षय मे यह पसीना आना भगवान का बन्द हो गया। इसलिए भगवान का परमोदारिक दिव्य शरीर निर्मल है। उस परमोदारिक शरीर मे बहने वाला रक्त हमारे शरीर की भाति लाल नही है बल्कि उस रक्त का रङ्ग सफेद है। यह शुक्ल ध्यान की अन्तिम दिशा का द्योतक हैं। हड्डी की रचना मे अनेक नमूने है। सबसे पहले को उत्तम हड्डी की रचना को वज्रवृपभ नाराचसहनन कहते है। जोड़, आदि वज्र से बने रहने के कारण इसको वज्रवृषभनाराच सहनन कहते है। यह वज्रवृषभ नाराच सहनन उसी भव मे मोक्ष को जाने वाले प्राणी को होता है अन्य को नही। किसी तीक्ष्ण तलवार से आघात करने पर भी यह वज्रवृपभ नाराच सहनन से बना शरीर नष्ट नही होता है। दृष्टांत के लिए भगवान बाहुबली देव का शरीर लीजिए। जब भरत चक्रवर्ती ने अद्भुत शक्ति मान चक्र रत्न को रणभूमि मे भगवान बाहुवलि पर छोड़ा तो वह चक्र कुछ नही कर सका, क्योकि बाहुबलि जी का शरीर वज्रवृषभ नाराच संहनन से बनाया हुआ था। यहा अतिशय जन्म से ही था ॥५॥

सस्थान अर्थात् शरीर की रचना को कहते है। सस्थान भी विभिन्न है। इनमे प्रथम समचतुरस्र सस्थान है। शिल्प शास्त्रानुसार समस्त लक्षण से परिपूर्ण अङ्ग रचना को समचतुरस्र सस्थान कहते है, अर्थात् प्रत्येक अङ्ग की लम्बाई चौडाई की समानता होने को समचतुरस्र सस्थान कहते है। इसके दृष्टान्त के लिएदक्षिण मे श्रवण बेलगोल मे रहने वाली बाहुबलि स्वामी की विशालकाय मूर्ति ही है। ऐसा शिल्पशास्त्र से बना हुआ होने से भगवान का रूप वर्णनातीत है और अतिशय काति वाला है। उनकी नाक चम्पे के पुष्प के समान है। श्रीमद् स्वस्तिका नन्द्यावर्ता आदि १००८ शुभ चिन्ह भगवान के शरीर मे दीख पड़ते है। और भगवान मे अनन्त बल तथा वीर्य रहता है। अनन्त वल अर्थात् चौदह रज्जु परिमित जगत को आगे पीछे हिलाने की शक्ति रहती है। लेकिन हिलाते नही। हिलाते रहे तो भगवान बच्चे के खेल खेलते हैं ऐसा कहने लगे।६ से ११ तक।

भगवान हमारी तरह मुँह खोलकर जीभ हिलाते हुए दातों का सहारा लिए वचन प्रयोग नही करते है। अपने सर्वाग से ही ये भाषण करते है। वह वचन बहुत सुन्दर होते हैं। जितनी बात करनी चाहिए उतनी ही करते हैं अधिक नही। वह भाषा मधुर होता है। यह दस भेद—(१) पसीना नही रहना [२] रक्त सफेद होना (३) वज्रवृषभ नाराच संहनन [४] समचतुरस्र संस्थान, [५] अनुपम रूप [६] चम्पा पुष्प के समान नासिका [७] १००८ शुभ चिन्ह, (८) अनन्त वल [९] अनन्त वीर्य [१०] मधुर भाषण भगवान मे जन्म सिद्ध है तथा स्वाभाविक हैं। इसको जननातिशय कहते हैं।

इन दस अतिशयों को ध्यान में रखते हुए भगवान के दर्शनकरना भगवान के जन्मातिशय का दर्शन करना है। भाव शुद्धि से यदि दर्शन करें तो शरीर में रहने वाले रोग नष्ट हो जाते है। १००८ पखुड़ियो के अग्रभाग मे रहने वाले जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से अपने शरीर मे भी वह स्थिति प्राप्त होती है। महर्षि इस प्रकार दस अतिशयो से युक्त जिनेन्द्र भगवान की उपासना करते है। शरीर की ऊंचाई की अपेक्षा न रखते हुए महिमा की अपेक्षा से महोन्नत शरीर वाले भगवान की पूजा करते है। जब इस रीति से जिनेन्द्र भगवान को अपने मन मे धारण करके प्रसन्नता से व्यावहारिक कार्य करे तो कार्य की सिद्धि होती है। इतना ही नहीं बल्कि पारा [एक धातु] की सिद्धि भी हो जाती है। भगवान के शरीर की इस दस विधि अतिशय को गुणन क्रम से सम और विषमांक को लेकर गिनती करते जाय तो परमोत्कृष्ट (**Higher Mathe matics**) गणित शास्त्र का ज्ञान भी हो जाता है उपरोक्त रीति से भगवान की आराधना करे तो बुद्धि ऋद्धि की कुशाग्रता भी प्राप्त होती है। । ६ से २२ तक।

अध्यात्म रस परिपूर्ण रत्नत्रयात्मक यह देह है।२३।

यही वृषभादि महावीर पर्यन्त तीर्थकरों की देह है।२४।

ऐसा विशालकाय यह भूवलय ग्रन्थ है।२५।

एकसो योजन तक सुभिक्ष होकर उतने ही क्षेत्र में होनेवाले जीवों की रक्षा होती है। भगवान का समवशरण आकाश मे अधर गमन करता है। ।२६।

हिसा का अभाव, भोजन नही करना, उपसर्ग नही होना, एक मुख होकर भी चार मुख दीखना, आंखों की पलक नही लगना।२७।

समस्त विद्या के अधिपति, नाखून नही बढना, बाल जैसा का वैसा ही रहना अर्थात् बढ़ना नही तथा अठारह महाभाषा ये भगवान के होती है।२८।

इसके अतिरिक्त सातसो छोटी भाषाये और सइनी जीवों के अंकों से मिश्रित अक्ष भाषाये और भव्यजनों सम्पूर्ण जीवों को उन्हीं के हितार्थ विविध भाषाओं में एक साथ उपदेश देने की शक्ति भगवान में विद्यमान रहती है।२९।

संसारी जीवों के मन को आकर्षित करने की शक्ति तथा, समुद्र की लहरो में उठने वाले शब्द के समान भगवान की निकलने वाली दिव्य ध्वनि है। यह दिव्यध्वनि प्रातः, मध्यान, शाम को इस प्रकार तीन संध्या समय में निकलती है। और यह दिव्यध्वनि ९ महूर्त प्रमाण तक रहती है। इसके अतिरिक्त यदि कोई भव्य पुण्यात्मा जीव प्रश्न पूछता है तो उनके प्रश्न के अनुकूल ध्वनि निकलती है।३०।

संसारी जीवों की जब ध्वनि निकलती है तब तो होठ के सहारे निकलती है। परन्तु भगवान को दिव्य ध्वनि इन्द्रियादि होंठ से रहित निकलती है।३१।

भगवान की दिव्यध्वनि दांत से रहित होकर निकलती है।३२।

भगवान की दिव्य ध्वनि तालू से रहित होकर निकलती है।३३।

अनेक भव्य जीवों को एक समय में ही जिनेन्द्र देव सभी को एक साथ उपदेशपान कराते है।३४-३५।

एक योजन की दूरी पर बैठे हुए समस्त जीवों को भगवान की दिव्य वाणी सुनाई देती है।३६।

शेष समय में गणधर देव के प्रश्न के अनुसार उत्तर रूप दिव्य ध्वनि निकलती है।३७।

इस प्रकार से भगवान की अमृतमय वाणी जब चाहें तब भव्य जीवों को सुनाई देती है।३८।

मानव में जो इन्द्र के समान चक्रवर्ती है उन चक्रवर्ती के प्रश्न के अनुसार उत्तर मिल जाता है।३९-४०।

आदि से लेकर अन्त तक समस्त विषयों को कहनेवाली यह दिव्य ध्वनि है।४१।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ द्रव्य हैं। ये ६ द्रव्य जिस जगह रहते है उसको लोक कहते है। दिव्य ध्वनि इन सम्पूर्ण ६ द्रव्यों के स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन करती है।४२।

जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

भगवान की दिव्य वाणी इन सात तत्वो का वर्णन करती है ।४३।

सात तत्त्वों मे पुण्य और पाप को मिलाने से ९ तत्त्व होते है । भगवान की दिव्य वाणी उन ९ तत्त्वों का वर्णन करती है ।४४।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये पाच पंचास्त काय का भी वर्णन करती है ।४५।

इन सबको प्रमाण रूप से बतलाने के समय सुन्दर २ मार्मिक तत्व का वर्णन करती है ।४६।

जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि से ही यह दिव्य वाणी निकलती है अन्य के सहारे से नही ।४७।

यह दिव्य वाणी भगवान जिनेन्द्र देव की वाणी द्वारा निकलने के कारण अन्तिम प्रमाण रूप भूवलय शास्त्र है ।४८।

उपर्युक्त समस्त दस अविराम दुनिया को आश्चर्य चकित करने वाली है । अरहत भगवान को घाति कर्मके (ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनी, अन्तराय) नाश होने से केवल ज्ञान की उत्पत्ति होती है और केवल ज्ञानके साथ ही इन दस अतिशयों के उत्पन्न होने से इसका नाम घाति क्षय और जाति क्षय भी है ।४९।।

जो क्षेत्र मे भी कर्म रह गये तो यह अतिशय आत्मा को नही मिलता। ये आठ कर्म निर्मूल करने के मार्ग है और इसलिए इसका नाम घाति क्षय, और जाति क्षय पड़ा ।५०।

जीव को जब अरहत पद प्राप्त होता है तब अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख इत्यादि अनन्त गुण प्राप्त हो जाते हैं। उन अनन्त गुणों से, आत्मा करोडों चन्द्र सूर्य प्रकाश जैसा तेजोनिधि हो जाता है। ऐसे अरहंत भगवान की पूजा करते हुये पारा की सिद्धि करने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है ।५१।

नवकार मंत्र के आदिमे तीन अक है, तीन को तीन से गुणा कर दिये तो विश्व का समस्त अङ्क नौ आ जाता है । नौ का परिज्ञान ही दिव्य चक्षु है, और नौ अङ्क का विवरण करने से ही विश्व का समस्त दृष्टि भेद अर्थात् तीन सौ त्रेषठ धर्म का और उनमे रहने वाले भेद और अभेद का ज्ञान हो जाता है। अर्थात् अरहंत सिद्धादि नव पद का अतिशय वस्तु रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ।५२।

३×३ = ९ यह अतिशय से युक्त दिव्य चक्षु का प्रभा से यम धर्मराज (मृत्यु) भाग जाता है ।५३।

यह वस्तु नामक ज्ञान चक्षु अरहत सिद्धादि नवकार मन्त्र का आदि मन्त्र है ।५४।

ज्ञानियो के अन्तर्गत ज्ञानरूपी विश्व का साम्राज्य यह भूवलय है ।५५

ज्ञानियो के ज्ञान मे झलकने वाली नव नवोदित दिव्य ज्योति रूप यह महा काव्य है ।५६।

कवियों की कल्पना मे न आनेवाला दिव्य रूप यह काव्य है ।५७।

इस ग्रन्थ का सर्वावयव अर्थात् सभी भाषाओ का ग्रन्थ परम पवित्र है ।५८।

यह सभी भाषाओ का ग्रन्थ ससारापहरण का मुख्य मार्ग है ।५९।

समवशरणादि महावैभव को दिखलाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।६०।

यह भूवलय ग्रन्थ दिगम्बर मुनियो के समान निरावरण है ।६१।

यह काव्य मिष्ट वचन रूपी जल बिन्दु से भरा हुआ ज्ञान का सागर है ।६२।

यह काव्य नव पद भक्ति को शुद्ध करनेवाला है ।६३।

यह भूवलय ग्रन्थ नव पद भक्ति द्वारा प्राप्त होने वाले फल को देने वाला है ।६४

नव पद के ज्ञान से समस्त भूवलय का ज्ञान आ जाता है ।६५।

नव अक की सम्पूर्ण सिद्धि ही चारित्र की सिद्धि है ।६६।

यह भूवलय ग्रन्थ अवसर्पिणी काल के समस्त विषयो को दिखाता है ।६७।

यह काव्य अवसर्पिणी काल का सर्वोत्कृष्ट भव्यांक रूपी है ।६८।

इस काव्य के अध्ययन से गणित शास्त्र का मर्म मालूम होकर ९ अङ्क २ अङ्क से विभाजित हो जाता है ।६९।

इस रीति से समस्त विद्याओं को प्रदान करके अन्त मे भव विनाश करके सिद्धि पद को देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।७०।

देव गण भगवान् के १३ अतिशयों को करते हैं। उसमें पहले के अतिशय संख्यात योजन तक रहने वाले सभी जंगली वृक्षों मे पत्ते, पुष्प, फल आदि एक ही समय मे लग जाते है और उतनी दूर तक एक भी कांटा तथा कण मात्र रेत का संचार न हो, ऐसी हवा चलने लगती है।

कामधेनु के द्वारा अपने घर के आंगन में अनेक सामान की प्राप्ति तथा पवन कुमार द्वारा चलने वाली अत्यन्त सुखकारक और आनन्ददायक हवा का चलना दूसरा अतिशय हैं।।

समवसरण में सिह, हाथी, गाय, पक्षी, सर्प इत्यादि ने अपने परस्पर वैर को छोड़कर जैसे एक ही जगह मे रहते है वैसे अपने कुटुम्ब इत्यादिक जन वैर-रहित आपस मे प्रेम से अपने-अपने स्थान मे रहना तीसरा अतिशय है।

जैसे विवाह मंडप के बीच वर वधू को बिठाने के लिए नव रत्न से निर्मित वेदिका तैयार की जाती हैं उसी तरह स्फटिक मणि के प्रकाश के समान चमकने वाली यह भूमि चौथा अतिशय है। समवशरण में रहने वाला यह चौथा अतिशय कवि लोगों के द्वारा भी अवर्णनीय है।७१-७६।

उस भूमि के अतिशय को पांच पांच हाथ के नौ पार्ट के विभाग तक किया गया है।

अन्तर श्लोक का विवेचन—उपर्युक्त ६ भागो का विवेचन शिल्पशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। शिल्प शास्त्र के विद्वानों का कथन है कि ऊपर के नियम से ही मठ, मन्दिर तथा महल मकान आदि बनाना चाहिये; क्योंकि यदि ऐसा न होकर कदाचित् अग्नि कोड़ में मकान एक इंच भी शास्त्रोक्त नियम से अधिक हो जाय तो गृह एवं गृह स्वामी दोनो के लिए अनिष्ट होता है। इसी प्रकार ज्योतिप शास्त्रानुसार भली भांति शोधकर भवन निर्माण किया जाय तब तो ठीक है किन्तु यदि ऐसा न करके सूर्य चन्द्रादि नव-ग्रहों के विपरीत स्थान मे बनाया जाय तो वह भी महान कष्टदायक होता है।७७।

वन वाटिका में दवन, जुही, मालती (मोल्ले) आदि सुगंधित पुष्पों के समूह रहते है।७८।

इसी प्रकार गन्ध माधव (गन्ध मादन) पुष्प भी उस पुष्प वाटिका में रहता है।७९।

इसी भांति नव जात गंध माधव लता भी वहां रहती है।८०।

वहां पर सुविशाल रूप से फैली हुई चित्रवल्ली नामक वेला भी रहती है।८१।

विवेचन:—श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस चित्रवल्ली नामक लता का वर्णन श्री भूवलयान्तर्गत चतुर्थ खण्ड में विस्तृत रूप से किया है और उसके संस्कृत विभाग में आया है कि—

नमः श्री वर्धमानाय विश्व विद्याऽवभासिने।
चित्रवल्ली कथाख्यानं पूज्यपादेन भासितम ॥

विश्व विद्या के प्रकाशक श्री वर्धमान भगवान् को नमस्कार करके श्री पूज्य पाद स्वामी ने चित्रवल्ली का व्याख्यान किया है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने सूचित किया है कि इसी प्रकार मंगल प्राभृत के समस्त विषयों को सभी जगह जानना चाहिये।

समवशरण के अन्तर्गत पुष्प वाटिका भित्ती के ऊपर चम्पा पुष्प का भी वर्णन किया गया है।

नोट—इस चम्पक पुष्प के विषय में श्री समन्तभद्राचार्य ने बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।८२।

इसी प्रकार गन्धराज [सुगन्ध राज] का मेला भी वहां चित्रित है।८३।

कमल पुष्प के जल कमल, थल कमल आदि अनेक भेद हैं। उन सबका चित्र समवशरण मे चित्रित है।८४।

वहां पर समस्त पुष्पों की कली चित्रित रहती है।८५।

कामकस्तूरी की टोकरी भी वहा बनो रहती है।८६।

उस वाटिका में कर्नैल के श्वेत और रक्त वर्ण के पुष्प बने रहते है।८७।

वहां पर नव मालती और मुड़िवाल भी भित्तिका में चित्रित हैं।८८।

पाशा खेल मे प्रयुक्त बन्धूक, ताड़ वृक्ष के चित्र तथा केतकी पुष्प,

भूपादरी आदि पुष्पो का समूह पृथ्वी के ऊपर अक्ष रेखा के समान प्रतीत होता है। इस समवशरण का वर्णन करने वाला यह भूवलय है।८९-९३।

विवेचन—भूवलय के चतुर्थ खण्ड मे श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने श्री समन्त भद्राचार्य के श्लोकों द्वारा केवड़ा पुष्प का विशेष महत्व दिखलाया है। उन श्लोकों का वर्णन निम्न प्रकार से है—

"कुप्या तं भरिताग्र केतकिसुमुं कर्णोन्मुखे कुंजरम ।
चक्रं हस्तपुटे समन्त विधिना सिंधूर चन्द्रामये ।।

इत्यादि रूप से रहने पर विज्ञान सिद्धि के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। अतः इन श्लोकों का विशेष लक्ष्य से अध्ययन करना चाहिए। नित्य नये-नये सुगंधित गुलाब जल की जो वृष्टि श्री जिनेन्द्रदेव के ऊपर अभिषेक रूप से होती है वह सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देवों द्वारा होती है। ९४।

यह जलवृष्टि पांचवां अतिशय है। इसे देव अपनी वैक्रियिक शक्ति द्वारा बनाते हैं, फल भार से नम्रीभूत शाली [जडहन] की पतली तथा हरे रग की जड पृथ्वी पर उगना छठवा अतिशय है। विविध जीवों को सदा सौख्य देना सातवा अतिशय है।९५।

देवगण अपनी विक्रिया शक्ति से चारो ओर ठण्डी वायु फैला देते हैं। यह आठवां अतिशय है। तालाब तथा कुये मे शुद्ध जल पूर्ण होना नौवां अतिशय है।९६।

आकाश प्रदेश मे बिजली [सिडलु] काले बादल उल्कापात आदि न पड़ना १०वां अतिशय है। सभी जीव रोग रहित रहे, यह ११वा अतिशय है।९७।

समवशरण के चलने के समय मे सभी जीव हर्षित रहते है।९८।

समवशरण के विहार के समय मे सभी जीव अपनी आलस्य को त्याग कर प्रश्न चित्त से रहते हैं।९९।

रोगादि बाधाओं से रहित होकर सभी जीव सुखपूर्वक रहते हैं।१००।

समवशरण मे आते ही सभी जीव माया मोह इत्यादि सासारिक ममता से विरक्त हो जाते है और उनको समवशरण के प्रति आस्था हो जाती है।१०१

समवशरण मे सभी जीव मृत्यु की बाधा से रहित रहते है।१०२।

सासारिक जीवो को चलते, फिरते उठते बैठते आदि प्रकार के कारणो से कष्ट मालूम पडता है परन्तु समवशरण के अन्दर आने से सभी कष्टो से जीव रहित हो जाता है।१०३।

बहुत से व्यक्तियो मे समवशरण को देखते ही वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वैराग्य पैदा होते ही वे लोग दीक्षा ले लेते हैं।१०४।

ससार में रहते हुए कई जीव अनादि काल के कर्म रूपी धन को अपना समझ करके उसी मे रत रहते है परन्तु वे जीव समवशरण के अन्दर आते ही उस कर्म रूपी धन से विरक्त हो गये।१०५।

समवशरण मे रहनेवाले जीवो को आलस्य नही रहता है।१०६।

समवशरण मे रहनेवाले जीव राग द्वेष से रहित रहते है।१०७।

समवशरण मे रहनेवाले जीवो के मार्ग मे किसी भी प्रकार की अडचने नही पड़ती है।१०८।

वहा रहनेवाले जीवो को सर्वदा सुख ही मालूम पडता है।१०९।

वहा रहनेवाले जीवो को किसी भी कार्य मे आतुरता इत्यादि नही रहती।११०।

वहां रहनेवाले जीवो को सताना दुःख इत्यादि किसी भी प्रकार की बाधाये नही रहती है।१११

समवशरण में रहनेवाले जीवो को धर्मानुराग के अतिरिक्त अन्य आलोचना नही रहती है।११२।

हम बहुत ऊपर आगये है नीचे किस प्रकार से उतरे इस प्रकार की आलोचना भी जीवो को नही रहती।११३।

वहां रहने वाले जीवों को दरिद्रता का भय नही रहता है।११४।

हम स्नानादि से पवित्र है। और वह स्नानादि से रहित है इस प्रकार की शकाये मन के अन्दर नही पैदा होती है।११५।

बहुत वर्णन करने की आवश्यकता नही वहा पर सभी जीव सुख पूर्वक रहते है।११६।

६ अक्षर अर्थात् ६ प्रकार के द्रव्यो का वर्णन इस भूवलय में है।११७।

कान्ति कम न होनेवाला अतिशय प्रकाशमान रत्न रचित चार धर्म चक्र को यक्षदेव आनन्द से धारणा किये रहते हैं ।११८।

नाना प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित सांगत्य नामक छन्द जिस प्रकार सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म चक्र बारहवां अतिशय है और ३२ दिशाओं में अर्थात् एक एक दिशा में सात-सात पंक्ति रूप रहनेवाला स्वर्ण कमल तेरहवां अतिशय है। और भगवान के बाद पीठ मे रक्खी हुई पूजन की सामग्री पूर्णिमा के समान सफेद वर्ण वाला चौदहवा अतिशय है ।११९-१२०।

पाद पीठ में रहनेवाली पूजन की सामग्री और उपकरण इन दोनों को घटा देने से चौतीस शुभ अतिशय हो जाता है। इन सब अतिशयों का वर्णन करनेवाला विनयावतारी अर्थात् विद्वान् कौन है ।१२१।

इस प्रकार का वर्णन करनेवाले कवि लोग इस पृथ्वी पर कही भी नही है ।१२२।

इस प्रकार का व्यक्ति पृथ्वी पर कहां है बताओ ।१२३।

यदि नये मार्ग का ज्ञाता हो तो उनसे भी पूरा वर्णन नहीं हो सकता है। १२४।

जिनेन्द्र भगवान का बताया हुआ मार्ग धर्म को लक्षण देनेवाला है ।१२५।

यह भूवलय का जो अंक है वह अंक प्राणी के कष्ट को दूर करने वाला है ।१२६।

यह अंक भद्र स्वरूप है और मंगल रूप है ।१२७।

जिनेन्द्र भगवान को शिव शब्द से भी कहने से यह समवशरण कैलाश भी है।१२८।

जिनेन्द्र भगवान को बिष्णु कहते हैं इसलिए समवशरण बैकुंठ भी है ।१२९।

इसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान को ब्रह्मा भी कहते हैं इसलिए यह समवशरण सत्य लोक भी है ।१३०।

यह समवशरण जनता का सर्वार्थ सिद्धि साधक होने से सर्वार्थ स्वर्ग भी यही है ।१३१।

जनता को सब अंक के दिखलानेवाला होने के कारण यह समवशरण सर्वाङ्क सिद्धि भी है ।१३२।

समवशरण में कोटि चन्द्र और कोटि सूर्य का प्रकाश भी रहता है। ।१३३।

स्वर्ण में रत्न मन्डित होकर तोरण में विराजमान रहता है ।१३४।

उन तोरणों में पारा को सिद्ध करके बनाया हुआ मणि भी लटका हुआ रहता है ।१३५।

जिस प्रकार समस्त दुर्गुणों को विनाश करनेवाला रत्नत्रय है इसी प्रकार रसमणि भी जनता के दरिद्रता को नाश कर देती हैं ।१३६।

स्वर्ण तो हल्दी के रंग के समान रहता है उस वर्ण को दूध के समान सफेद बनानेवाला यह पारा का मणि है ।१३७।

विवेचनः—इसी भूवलय में आने वाले श्री समतभद्र आचार्य के वचनों को देखिये।

स्वर्णश्वेतसुधामृतार्थं लिखितिं नानार्थरत्ना कर्म। अर्थात् सफेद स्वर्ण बनाने की विधि अनादि काल से जैनाचार्य को मालूम थी। आज कल इसको पलाटिनम् कहते है और वह पल्टी पलाटिनम् बहुमूल्य है।

अन्तिम में आत्मसिद्धि को प्राप्त करनेवाला यह समवशरण भूमि है ॥१३८॥

लड़के लड़कियों को अर्थात् समस्त बन्धु बान्धवों को त्याग कराने वाला यह काव्य है ॥१३९॥

राक्षस और किन्नर इत्यादि देव लोगों ने इस समवशरण को वनाने की विद्या को सीखा है। उस विद्या को बतलाने वाला यह भूवलय काव्य है ॥१४०॥

इस प्रकार भव्य जीवों के पुण्य से बनाया हुआ महल रूपी यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४१॥

भवनवासी, व्यन्तरवासी, भवनामर, व्यन्तरामर, ज्योतिषक और स्वर्ग

लोक के सभी देव अर्थात् श्री महावीर भगवान के भक्त जन कलकलाहट के साथ जै जै शब्द का गाना गाते है ॥१४२॥

सम्पत्ति युक्त मगलप्राभृत्त महाकाव्य के रास्ते से श्री गुरु वीरसेन आचार्य के मतिज्ञान मे मिले हुए अरहत भगवान का केवल-ज्ञान ही यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४३॥

ऊपर कहे हुये ३४ अतिशय यदि अपने वश मे हो जायें तो ऋषियों के मार्ग से धर्म धारण हो जाता है। तत्पश्चात् असदृश ज्ञान विकसित होकर आत्मा को मोक्ष सिद्धि हो जाने के समान भाव बढ जाता है ॥१४४॥

ऐसा ज्ञान बढ जाने के बाद हमे (कुमुदेन्दु मुनि को) अर्थात् श्री वीरसेनाचार्य के शिष्य को भूवलय जैसे महान् अद्भुत काव्य की कथा बिरचित्त करने की शक्ति उत्पन्न हो गई और श्री जिन सेनाचार्य का ज्ञान सहायक हुआ। इसीलिए इस भूवलय काव्य की रचना में हमारा अपूर्व पुण्य वर्धन हुआ। इसका नाम बस्तु है ॥१४५॥

इस भारत के कोने २ मे धर्म की अवनति दशा मे श्री जिनेन्द्रदेव का भक्त मान्यखेट का राजा श्री जिनदेव का भक्त अमोघवर्ष नामक राजा ने ॥१४६॥

नव पद भक्ति प्रदान करके समस्त जनता को धर्म मे श्रद्धा उत्पन्न कराके धर्म की स्थापना की। उन समस्त धार्मिक प्रजाओ मे भव्य जीव, और भव्यो मे आसन्न भव्य अपने भव्यत्व लक्षण को प्रकट करते हुये नवमाक सिद्धि हसे प्राप्त हो गई, ऐसा जानकर बड़े आनन्द के साथ रहने लगे ॥१४७॥

विवेचन—कन्नड भाषा मे प्रकट हुये भूवलय ग्रन्थ के उपोद्घात मे राष्ट्रकूट राजा, नृपतुङ्ग को अमोघवर्ष मानकर उपोद्घात कर्त्ता, ने श्री कुमुदेन्दु आचार्य के समय की ८ वी शताब्दी के अन्तिम भाग अर्थात् क्रस्ताब्द ७८३ माना है। अब उन्ही महाशय ने इस नवम अध्याय का अथवा ४० अध्याय से ऊपर के विषयो का अध्ययन करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य, नृपतुङ्ग के गुरु नहीं, बल्कि गंग वंश के राजा प्रथम शिवमार गुरु थे। उस शिवमार ने हैदराबाद के मड़खेड़ नही, मैसूर प्रांत के बेगलोर से ३० मील दूरी पर मण्ये नामक ग्राम में राज्य किया। उनका समय क्रस्ताब्द लगभग ६८० वर्ष था। इसलिये श्री कुमुदेन्दु आचार्य का समय ७८३ वर्ष नही बल्कि ६८० वर्ष है।

दूसरे शिवमार के पास अमोघ वर्ष नामक पदवी थी। उसे राष्ट्र कूट नृपतुङ्ग ने युद्ध मे पराजित करके कारागार मे डाल दिया था। चाहे वे वही पर ही मर गये हों पर ऐसी विकट परिस्थिति मे भूवलय जैसे महान् ग्रन्थ का उपदेश वे कैसे दे सकते थे? कदापि नही। किन्तु प्रथम शिवमार ने सम्पूर्ण भरत खण्ड को अपने स्वाधीन करके हिमवान पर्वत के ऊपर अपना विजय-ध्वज फहराया था इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रथम शिवमार ही श्री कुमुदेन्दु आचार्य के शिष्य थे।

अभिप्राय यह निकला कि कुमुदेन्दु आचार्य का समय प्रथम शिवमार का था, न कि द्वितीय का। इस विषय में इतिहास वेत्ताओं की मंत्रणा से मैसूर विश्व विद्यालय के अन्तर्गत की गई वार्तालाप का विवरण संक्षेप से यहा दिया गया है।

आचार्य कुमुदेन्दु द्वारा विरचित श्री भूवलय—

ऐतिहासिज्ञों का कथन है कि १८-७-५७ को एक बातचीत मे वाइस चासलर डा० के० वी० पुटप्पा ने उनसे यह भाव प्रकट किया कि यदि कुमुदेन्दु विरचित श्री भूवलय का संक्षिप्त विवरण ३६ देशों के विद्वान और विद्यार्थियो की विश्व विद्यालय सेवा समाज मे, जो कि २५-७-५६ को मैसूर में होने वाली थी, प्रस्तुत किया जाय तो अधिक उचित हो।

जब श्री भूवलय के कुछ हस्तलेख और छपे हुए लेख भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी को दिखाए गए तो उन्होने अचानक इसे विश्व का आठवां आश्चर्य बताया और एक वाद-विवाद के समय डा० पुटप्पा ने कहा कि श्री भूवलय ग्रन्थ को विश्व का प्रथम आश्चर्य भी कह सकते है।

लेकिन दुर्भाग्य का विषय है कि इतना आश्चर्य जनक ग्रन्थ मैसूर रियासत तथा इसके बाहर के बहुत कम विद्वान तथा अन्वेषणकारी ही जानते हैं जो कि अभी भी इसके आश्चर्य से पूर्ण परिचित न होते हुए अपना मार्ग खोजने की कोशिश मे है।

आज विश्व के अनेकों विद्वान महत्वपूर्ण प्रयत्नों द्वारा विभिन्न नवीनताओ की खोज मे लगे हुए हैं। अत: यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि

भाषाओं के जन्म और विकास पर भी ध्यान दिया जाय। हमारा प्राचीन साहित्य, विज्ञान, आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, धर्म, इतिहास, गणित आदि यदि पुनः प्रकाश में लाए जाएँ तो मानव जाति की अधिक उन्नति और उद्धार हो।

ऐसा कहा जाता है कि श्री कुमुदेन्दु जी बेंगलोर से ३८ मील दूर नन्दी पर्वत के समीप 'येलेवाली' के निवासी थे और भूवलय ग्रन्थ में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि श्री कुमुदेन्दु आचार्य राष्ट्रकूट के राजा अमोघ वर्ष और शिवमार गंग राजा के धर्म प्रचारकों के गुरु थे।

श्री भूवलय ८ — १२६, ९ — १४६
८ — ६६, और ७२

और यह भी वर्णित है कि प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ "धवल" के लेखक श्री वीरसेन जी भूवलय के रचयिता श्री कुमुदेन्दु जी के गुरु थे। ध्यानपूर्वक गणना के पश्चात् इस बात की जांच की गई है कि वीरसेन के धवल ग्रन्थ की समाप्ति के ४४ वर्ष पश्चात् उनके शिष्य कुमुदेन्दु जी ने अपना स्मरणीय ग्रन्थ श्री भूवलय को लिखकर समाप्त किया था।

लेकिन विद्वानों में धवल ग्रन्थ की समाप्ति और कुमुदेन्दु जी के जीवन काल तथा भूवलय की समाप्ति के समय के विषय में पर्याप्त अन्तर है। अतः समय को ध्यान में रखते हुए उनके विचारों में काफी विवाद है।

प्रो० हीरालाल जैन और डा० एस० श्री कन्था का विचार है कि धवल ग्रन्थ ई० सन् ८१६ के लगभग समाप्त हो गया होगा, जबकि जे० पी० जैन कहते हैं कि धवल ग्रन्थ ई० सन् ७८० के लगभग समाप्त हुआ था तथा अन्य विद्वानों का कथन है कि धवल ६३६ ई० मे समाप्त हुआ था।

समंगद (Samangada) शिलालेख से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रकूट राजवंश ई० सन् ७५३ में राज्य कर रहा था।

तृतीय राष्ट्रकूट राजा गोबिन्दा जो कि सर्वख्या अमोघवर्ष का पिता था ई० सन् ८१२ के अपने एक शिलालेख मे लिखता है। डेन्टीदुर्गा भी अमोघ नाम से पुकारा जाता था और इस शिलालेख के समय सर्वख्या अमोघवर्ष एक बालक ही था इसलिए विद्वान निश्चित रूप से इस विषय का ज्ञान नहीं कर सके है कि वह कौनसा अमोघवर्ष था जिसे गोबिन्दा राजा का पुत्र मानकर 'भूवलय ग्रन्थ' पढाया गया था।

यह एक मान्य ऐतिहासिक सत्य है कि प्रथम शिविमार जोकि सत्यप्रिय भी पुकारा जाता था और नवकामा ने ई० सन् ६७९ से ई० सन् ७२६ तक राज्य किया था।

वीरसेन ने अपने धवल ग्रन्थ को विक्रमी राज्य (अट्टाठीसाम्मी शिष्य विक्रम राय) के ३८ वे साल में समाप्त किया और यह विक्रम राय वही है जो कि गंग राजा विक्रम था। और सभी इतिहासज्ञों ने इसको भी सत्य-रूप ही मान लिया है कि विक्रम राजा ६०८ ई० में गद्दी पर बैठा था।

कनाड़ी भाषा का शब्द "अट्टावीसाम्मी" कुछ विद्वानों द्वारा "अट्टाटीसाम्मी" भी पढ़ा गया है।

श्री विक्रम राजा ई० सन् ६०८ में राजगद्दी पर बैठा था और यदि ई० सन् ६०८ में २८ साल जोड़ दिए तो "धवल ग्रन्थ" की पूर्ति का समय सन् ६३६ पड़ता है। नक्षत्र स्थिति जो कि "धवल" की पूर्ति के दिन वर्णित की गई थी वह कार्तिक सुदी त्रैयोदशी एक सम्बत् ५५८ को सिद्ध करने से ठीक ई० सन् ६३६ ठहरता है।

कुछ विद्वान सोचते हैं कि "श्री भूवलय" का समय ७ वीं शताब्दी के अंतिम चौथाई में होगा जबकि दूसरे विद्वान कहते है कि इसका समय दसवीं अर्ध शताब्दी होगा, कुछ अन्य विद्वानों का कथन है कि 'श्री भूवलय ग्रन्थ' का समय संगथ्या पीरियड में अर्थात् १२ वीं या १३ वी शताब्दी रहा होगा। क्योंकि कुमुदेन्दु द्वारा रचित "श्री भूवलय ग्रन्थ" संगत्या छंद में ही लिखा हुआ है। और कुछ यहां तक भी कहते है कि यह ग्रन्थ अभी थोड़े ही समय का पुराना है अधिक नहीं क्योंकि श्री भूवलय की भाषा आधुनिक कन्नड़ भाषा से मिलती जुलती है।

समय की कमी के कारण अधिक विस्तार में न जाकर मैं इसी बात पर जोर देना चाहता हूं कि संगथ्या छंद बारहवीं और इसकी बाद की शताब्दी का नहीं है जैसा कि कुछ व्यक्ति गलती से सोचते हैं।

जिनसेन (Jinasene) अपने महापुराण मे कहते है—

यमि···समम् तलम् सरॉसु सॉगत्य एव सगतिहि ॥

वह यह भी कहते है कि संगथ्या एक बहुत पुराना छंद था जिसका प्रयोग उनसे पहले होने वाले भी बहुत से बडे वडे कवियो ने किया था। स्वीकृत समय जिनसेन के महापुराण का नवी शताब्दी का प्रथम चौथाई भाग है।

और आधुनिक कन्नड़ भाषा का प्रयोग इस ग्रन्थ को अपनी प्राचीनता से नही हटा सकता क्योकि आधुनिक कन्नड भाषा की तरह की ही भाषा निम्नलिखित शिलालेखो मे मिलती है—

(१) भूविक्रम का बीडारपुर शिलालेख।

(२) नीति मार्ग का नरसापुर ग्रन्थ। अत पाठको को इस ग्रन्थ की पौराणिकता पर विश्वास करना ही पड़ेगा।

इस ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता के समय के विषय मे जो विवाद है उसका प्रधान कारण चार अमोघवर्षों का होना है। डैन्टीदुर्गा भी अमोघवर्ष ही पुकारा जाता था। और शिवमार जोकि कुमुदेन्दु जी से सम्बन्धित था वह पहला शिवमार ही है द्वितीय नही।

अब ग्रन्थ को ही लीजिए। कुमुदेन्दु जी ने कन्नड़ भाषा के ६४ वर्ण बताए हैं जिनमे ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भी मिले हुए हैं और अपना गणित विभाग तथा पूर्ण ग्रन्थ कन्नड़, प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, तामिल, तैलगू आदि भाषाओं मे लिखा।

डा० एस० श्रीकान्त जी कहते हैं कि यदि भूवलय के प्रकाशित भाग (चैप्टर १-३३) का संतोषजनक अध्ययन किया जाए तो निम्नलिखित वाते इस ग्रन्थ से पता लगती है—

(१) कनाड़ी भाषा और उसके साहित्य का ज्ञान कराने के लिये यह ग्रन्थ प्राचीन ग्रन्थो मे से एक है तथा अन्य अनेकों विद्वानों के ग्रन्थों के विषय में भी, जो कि क्रिश्चियन शताब्दी के प्रारम्भ में ही लिखे गये थे, ज्ञान प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये यदि यह ग्रन्थ पूर्ण प्रकाशित हो जाये तो चूड़ामणि जैसे प्राचीन विद्वानों के ग्रन्थों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

(२) संस्कृत, प्राकृत, तामिल और तैलगू भाषा के इतिहास के लिये यह हमारी आखे खोलने वाला ग्रन्थ है।

(३) हमारे भारतीय दर्शन और धर्म तथा विशेष तौर से जैन धर्म को ज्ञान प्राप्त कराने के लिए यह अपूर्व ग्रन्थ है, इससे प्राप्त सिद्धान्त आज भी हमारे विचारो को विशुद्ध कर हमे सद्मार्ग पर ला सकते है।

(४) कर्नाटक और भारत के राजनैतिक इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ एक नवीन सामग्री प्रदान करता है। क्योकि इसमे राष्ट्रकूट के राजा अमोघवर्ष और गग राजा सैगोत शिवमार के विषय में वर्णन है।

(५) भारतीय गणित शास्त्र के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ विशेष महत्व रखता है। वीरसेन जी की 'धवल ग्रन्थ' की टीका के आधार पर जो आजकल जैन गणित शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया गया है उससे पता लगता है कि अधिक पहले नही तो नवी शताब्दी मे ही भारतीयो ने गणित के अनेको तरीके—स्थानाक मूल्य (Place value) जोड़ के तरीके, समयोग भग, विभाजन के विशेष तरीके, परिवर्तन के नियम, ज्यामिति और रेखा गणित के नियम (Geometrical and mensuration formulas) अनंतांक गणित विधि—(Theouries of Infinily) प्रथम समयोग, द्वितीय समयोग आदि (The value of Permutation and combination) को भी जानते थे। कुमुदेन्दु जी का ग्रन्थ 'भूवलय' वीरसेन जी के ग्रन्थ से भी कही अधिक महत्वपूर्ण और आगे है। इस ग्रन्थ के लिए गम्भीर अध्ययन को आवश्यकता है।

(६) हिन्दुओं के स्पष्ट विज्ञान के लिए भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण सहायता देता हैं क्योंकि इसमे अणु विज्ञान (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), जीव-विद्या (Biology), औषध शास्त्र (प्राणव्य और आयुर्वेद), भूगर्भ शास्त्र (Geology), ज्योतिष शास्त्र (Astronomy) इत्यादि का वर्णन है।

(७) भारतोय कला का इतिहास भी यह ग्रन्थ बतलाता है क्योंकि यह भारतोय मूर्तिकला, चित्र कला तथा (Ioonography) के लिए एक अपूर्व साधन है।

(८) रामायण, महाभारत और भगवद्गोता के दोहो की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, जोकि इस प्रकार से गुथे हुए है कि यह पहचानना कठिन हो जाता है कि इसमें आधुनिक व्यक्तियो ने कितने नए क्षेपक

(झूठे पद अपनी तरफ से मिलाना) मिलाए हैं। कुमुदेन्दु जी के मतानुसार इस ग्रन्थ में लगभग एक से ८ या १० गीता के पद है जिनको पांच भाषाओं में समझ सकते है। नेमो तीर्थंकर के गोमट्ट की अनादि गीता, कृष्ण की गीता, व्यास की गीता जोकि अपने मौलिक रूप में व्याख्यान के नाम से महाभारत में पाई जाती है और कन्नड़ भाषा में कुमुदेन्दु जी की गीता है। इस ग्रन्थ में गीता की पैशाची भाषा मे भी आलोचना मिलती है और बाल्मीकी रामायण के मौलिक पद भी इसमें पाए जाते हैं। आगे ऋगवेद के तीन पद (एक गायत्री मन्त्र से प्रारम्भ, तथा दो अन्य) भी इस ग्रन्थ के अध्यायों में पाये जाते है। भारतीय सभ्यता को पढने और पहचाने के लिए ये तीन पद ही ऋगवेद के प्रमुख हैं।

(९) भारतीय सभ्यता के अध्ययन के लिए इस मनोरंजक ज्ञान के अतिरिक्त भूवलय में कुछ निम्नलिखित जैन ग्रन्थों के शुद्ध पद मिलते हैं— भूतबाली का सूत्र, उमास्वामी, समन्त भद्र का गंदहस्थी महाभाष्य, देवगामा स्तोत्र, रत्नकरंड श्रावकाचार, भरत स्वयंभू स्तोत्र, चूडामणी, समयसार, कुन्द-कुन्द का प्रवचन सार, सर्वार्थ सिद्धि, पूज्यपाद का हितोपदेश, उर्गदित्या का कल्याणकरिका, प्राकेशरी स्तोत्र, मंत्रवम्भर स्तोत्र, ऋषिमंडल, कुछ तॉत्रिक अंग और अंग बाहिरा कानून, कुछ पारिभाषिक ग्रन्थ जैसे सूर्य प्राग्नेपति, त्रिलोक प्राग्नेपति, जम्बू द्वीप प्राग्नेपति आदि।

(१०) यह ग्रन्थ १८ बड़ी भाषाएँ और ७०० छोटी-छोटी भाषाओं को निहित किये हुये हैं। इस ग्रन्थ में जो भाषाएँ है उनमें कुछ प्राकृत, संस्कृत, द्रविड़, आंध्र, महाराष्ट्र, मलाया, गुजराती, हम्मीरा, तिब्बती, यवन, बोलिदी, ब्राह्मी, खरोष्टी, अपभ्रंश, पैशाची, अरिस्ता, अर्धमागधी टर्की, सैंधव, देवनागरी, पारसी आदि हैं। जितना यह ग्रन्थ छपा हैं उसमें से संस्कृत, विभिन्न प्राकृत, कन्नड़, तामिल, तैलगू को बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। यदि इस विषय पर अनेकों विद्वान गंभीर अध्ययन करें तो इससे और भी अनेकों भाषाएँ और उनके शब्द प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए भाषा विज्ञान के विषय में भी यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सौभाग्य से इस सम्पूर्ण ग्रन्थ को माइक्रो फिल्म (Micro Filmed) कर लिया है और यह नई दिल्ली के राष्ट्रीय ग्रन्थ रक्षा गृह मे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के अधिकार मे रखा हुआ है। और इसकी कुछ हस्तलिखित प्रतियां भी राष्ट्रकूट राजकुमार मल्लिकाब्बे के नेतृत्व और सहायता से की गई थी अब वे छानबीन द्वारा सिद्ध की जाएंगी। बड़े-बड़े विद्वान और मुनि इस हस्तलिखित प्रतियों की ओर विशेष ध्यान दे रहे है।

इस ग्रन्थ में कुछ इस प्रकार की विद्या भी है जिससे कुछ ऐसे नम्बरों का पता लगता है जिनको कि यदि अक्षरो में लिखा जाए तो वह प्रश्न ही उस का उत्तर बन जाता है। किसी प्रश्न का उसके उत्तर मे बदल जाना गणित शास्त्र का ही नियम है जोकि अभी पूर्ण रूप से विदित नही हुआ है। एक बार ओटी (Ooty) के कोफीप्लैंटर के किए गए प्रश्न के उत्तरमें ३०० ब्राह्मी षटपदी कविता बन गई थी।

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जोकि अपने भूत और भविष्य के विषय में सोचता ही रहता है। अपने हृदय में यदि वह कोई इच्छा न रखे तो उसका जीवन शून्य ही माना जाता है। लेकिन व्यक्ति जो कुछ भी अच्छा या बुरा सोंचता है। वह उन सभी को कार्य रूप में परिणित नही कर सकता। और न ही वह इतना पराधीन भी है कि वह ष्पपनें विषय में सोच भी न सके। जिनका कुछ ऐसे नियम कर्म, ईश्वर के नाम पर बने है मनुष्य पालन करता है।

यदि 'श्री भूवलय' को व्यक्ति ठीक समझले और कुछ पाना चाहे तो मनुष्य की कल्पना, ज्ञान बढ़ना जरूरी है। 'भूवलय' ज्ञान का भंडार है।

कुछ समय पहले मैने यह ग्रन्थ शिक्षामंत्री श्री ए० जो० रामचन्द्र राव को दिखाया व बताया था! उन्होंने कुछ आर्थिक सहायता और सरकारी कार्य की सहायता शीघ्रातिशीघ्र देने का वचन दिया था।

अन्त में, यदि मैसूर के रायल हाउस की पूर्ण सहायता भी मिलती रहे तो यह कन्नड़ ग्रन्थ (कुमुदेन्दु जी का भूवलय) राष्ट्र के लाभ के लिए छप सकेगा।

औम सत संत

इस शिवमार का सैगोट्ट शिवमार नाम भी था। कानड़ी भाषा मे सैगोट्ट शब्द का अर्थ कथा के श्रवण मे केवल हाँ हाँ की स्वीकृति देना है। किन्तु कुमुदेन्दु आचार्य अपने शिष्य शिवमार सैगोट्टा को जब भूवलय की कथा सुनाते रहे और शिवमार आदि से लेकर अन्त तक भक्ति भाव से कथा सुनते रहे, तब उन्हें मतिज्ञान की सिद्धि हुई ॥१४८॥

मति ज्ञान प्राप्त हो जाने से पृथ्वी के सम्पूर्ण ज्ञान शिवमार को प्राप्त हो गये ॥१४९॥

ऐसे ज्ञान की प्राप्ति तत्कालीन भारतीयों के सौभाग्य का प्रतीक था ॥१५०॥

नवविध ब्रह्म अर्थात् पंचपरमेष्ठी अक्षर और अङ्क रेखा वर्ण का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया, ऐसे शिवमार की रक्षा करके सद्गुरु अर्थात् कुमुदेन्दु आचार्य की कीर्ति बढ गई ॥१५१-१५२॥

कुमुदेन्दु आचार्य कहते है कि यह कीर्ति ही हमारा शरीर है ॥१५३॥

इस कीर्ति से शिवमार को जो विशुद्ध प्राप्त हुआ वह नव नवोदित था ॥१५४॥

वह कीर्ति दसों दिशाओ में वस्त्र के समान फैल गई, अर्थात् कु० दिगम्बराचार्य आशवसनी थे ॥१५५॥

भूवलय विख्यात कीर्ति वाले सेडगण नामक गुरुपीठि के आचार्य थे ॥१५६॥

कुमुदेन्दु आचार्य का जन्म ज्ञातवश मे अर्थात् महावीर भगवान का वंश था ॥१५७॥

कुमुदेन्दु आचार्य का गोत्र सद्धमप्रकीर्णक था ॥१५८॥

उनका सूत्र श्री वृषभ सूत्र था ।१५९।

आचार्य की शाखा द्रव्यांग वेद की थी ॥१६०॥

उनका वश इक्ष्वाकु वंशान्तर्गत ज्ञात वश था ।१६१।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य जब दिगम्बर मुद्रा धारण करके सेनगण के आचार्य बन गये तब उन्होंने वंश, गोत्रसूत्र, शाखा आदि सभी को त्याग दिया। ।१६२।

अर्हद्वल्याचार्य के समय मे जैसे गणगच्छ का विभाग हुआ तो इसी रीति से श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भी गणगच्छ की स्थापना की थी ।१६३।

इस गणगच्छ को ९ भाग मे विभाजित हुए भारतवर्ष मे सेनगण के ९ गुरु पीठ को स्थापित करके अखिल भारत मे सर्वधर्म समन्वय ने दिगम्बर जैन धर्म को स्थिर रक्खा।

विवेचन.—आचार्य कुमुदेन्दु के समय मे हमारा भारतवर्ष नौ भागो मे विभक्त था। जिस प्रकार राज्य नौ भागो मे विभाजित था उसी प्रकार धर्म राज्य अर्थात् गुरुपीठ भी नौ भागो मे स्थापित हुआ था। अब इन गुरु पीठों में कोल्हापुर काचीवर पेनावड ये ही तीन गद्दिया चल रही है। रत्नगिरि दिल्ली इत्यादि का गुरुपीठ नामवशेष हो गया है।

कुमुदेन्दु आचार्य और उनके शिष्य शिवमार के राज्य काल में सारे भारत खण्ड मे कर्नाटक भाषा राज्य थी। कर्नाटक भाषा मे ही भूवलय ग्रन्थ लिखा गया है। उस कर्नाटक राजा का कर्म बिस्तार पूर्वक कर्म सिद्धांत का कुमदेन्दु आचार्य ने दिया ।१६५-१६६।

उनको पठाया हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ।१६७।

इस प्रकार से यह भूवलय ग्रन्थ विश्व में बिख्यात हो गया ।१६८।

उस कर्माटक चक्रवर्ती सैगोट्ट शिवमार को पांच पदवी प्राप्त हुई थीं। पहले का पद धवल, दूसरा पद जयधवल, तीसरा महाधवल इसी रीति से बढते हुए ॥१६९॥

जनता की दीनवृत्ति को नाश करके कीर्ति लक्ष्मी और शील को धवल रूप मे बढाते हुए आनेवाला अतिशय धवलापर नामधेय भूवलय रूपी चौथा और विविध भांति विस्मय कारक शब्दों से परिपूर्ण पांचवां विजय धवल है।

ये पाचों धवल भी भूवलय रूपी भरतखण्ड सागर को वृद्धिङ्गत करने-वाले पांच पद हैं। अर्थात् सैगोट्ट शिवमार नृप को राज्याभ्युदय काल में १—

धवल, २--जयधवल, ३--महाधवल, ४--अतिशय धवल (भूवलय) और पांचवां विजय धवल रूपी पांच पदवियां प्राप्त हुई थीं ॥१७०-१७१॥

इस प्रकार भरतमही को जीत करके सैगोट्ट शिवमार दक्षिण भरत खण्ड में राज्य करता था। ३ कर्माटक चक्री उनका नाम पड़ा अर्थात् उस समय सारे भरत खण्ड में कानड़ी भाषा ही राज्य भाषा थी। उनके राज्य का दूसरा नाम मण्डल भी था ॥१७२॥

हिंसामयी धर्म सब को दुःख देनेवाला है इसलिए वह अप्रिय हैं। इस प्रकार का उपदेश देते हुए उस चक्री ने राज्य दण्ड और धर्म दण्ड से हिंसा को भगा दिया ।१७३।

अहिंसा धर्म अत्यन्त गहन है। इस प्रकार के गहन धर्म को चक्री ने सबको सिखा दिया था ।१७४।

जब अहिंसा धर्म की ख्याति बढ़ गई तब अणुव्रत का पालन करनेवाले भी बढ़ गये ।१७५।

यह ख्याति सबको सुख कर है ।१७६।

भरत खण्ड की ख्याति ही यह ६ खण्ड शास्त्र रूपी भूवलय की ख्याति है ।१७७।

जब इस भूवलय शास्त्र की ख्याति बढ़ गई तब यह भरत खन्ड इस लोक का स्वर्ग कहलाया। और यह प्रथम अमोघवर्ष राजा इस भूलोक स्वर्ग का अधिपति कहलाया। इस प्रकार से राज्य करनेवाला अभी तक नहीं हुआ और न आगे ही होगा इस प्रकार से सभी जनता कहने लगी। १७८ से १८१ तक।

❖**नोट:**—एक समय में सैगोट्ट शिवमार चक्री अपने राजसी वैभवों के साथ हाथी के ऊपर बैठकर जा रहे थे। उस समय वृष्टि होने के कारण सारी पृथ्वी पंकमयी थी। दूर से देखने पर श्री आचार्य कुमुदेन्दु अपने गुरु और शिष्यों के साथ अपनी ओर विहार करते हुए देखकर अपनी सारी सेना रोक दिये तथा स्वयं हाथी से उतरकर पादमार्ग से श्री गुरु के सन्मुख जाकर गुरुओं की बन्दना की। तत्पश्चात् शिवमार सैगोट्ट चक्री ने जो अपने मस्तक में अमूल्य जवाहरात से जड़ित किरीट बांध रक्खा था, वह गुरु देव के चरण कमलों में गिर पड़ा। किरीट के गिरते ही उसमें से अमूल्य नायक मणि (तत्कालीन विख्यात मणि) गुरु के चरण समीप कीचड़ में सन गई और उसकी देदीप्यमान कान्ति मलिन हो गई। गुरुदेव ने अपने शिष्य को शुभाशीर्वाद देकर प्रस्थान करा दिया। इधर शिवमार परम सन्तुष्ट होकर गजारूढ़ हो राजसभा में जाकर सिंहासन पर आसीन हो गया। इससे पहले राजसभा में बैठकर सभा सद्रों के समक्ष वार्तालाप करते समय तथा अपने मस्तक को इधर उधर फेरते समय किरीट में जड़ित उपर्युक्त अमूल्य रत्न की कान्ति सभी सभासदों को चकाचौंध कर देती थी किन्तु आज उसकी चमक कीचड़ लगजाने के कारण नहीं दीख पड़ी। सभासदों ने मन्त्री से इङ्गित किया कि किरीट में लगे हुए कीचड़ को वस्त्र से साफ करदो। यह सुनते ही मन्त्री कीचड़ को वस्त्र से स्वच्छ करने के लिए राजा के निकट खड़ा हो गया। वार्तालाप करने में मग्न राजा की दृष्टि समीपस्थ मन्त्री के ऊपर सहसा जैसे ही पड़ी वैसे ही राजा ने विस्मित होकर पूछा कि तुम यहां क्यों खड़े हो? मन्त्री ने उत्तर दिया कि आपके किरीट में लगे हुए कीचड़ को साफ करने के लिए मैं खड़ा हुं। राजा ने मंत्री से कहा कि गुरु की अहैतुकी कृपा से प्राप्त चरण रज को हम कदापि नहीं पोंछने देंगे। क्योंकि इसे हम सदा काल अपने मस्तक पर धारण करना चाहते हैं। राजा की अपूर्व गुरुभक्ति को देखकर सभी सभासद आश्चर्य चकित हो गये।

जब एक साधारण शिष्य की गुरुभक्ति का माहात्म्य इतना बड़ा विलक्षण था तब उनके पूज्य गुरुदेव की महिमा कैसी होगी?

उत्तर—राज्य शासन करते समय शिवमार राजा को जो उपर्युक्त धवल जय धवलादि पांच उपाधियां प्राप्त थीं उन्हीं उपाधियों के नाम से अपने शिष्य शिवमार राजा का नाम अमर रखने के लिए गुरुदेव ने स्वविरचित पांच ग्रन्थों का नामकरण धवल जयधवलादि रूप से ही किया। इन दोनों गुरु शिष्यों की महिमा अपूर्व और अलभ्य है।

ज्ञानवर्ण आदि आठ कर्मो को दहन करते हुए आत्म कल्याण कराने वाला यह भरत खण्ड है ।१८२।

कर्माटक अर्थात् आठ कर्म के उदय से जगत के समस्त जीव कर्म मे फंसे हुए है । इसलिए कानडी भापा ही सभी जीवो की भाषा है । उदाहरण के लिए सर्व भाषामय काव्य भूवलय ही साक्षी है ।१८३।

इस भारत वर्ष मे सद्धर्म का प्रचार बहुत बढ़ जाने से सभी जनो मे धार्मिक चर्चा चलती थी ।१८४।

राज्य को अहिंसा धर्म से पालन करनेवाला चक्रवर्ती राजा राज्य करे तो उनके शासनकाल मे स्वभाव से ही अहिंसा धर्म का प्रचार रहता है ।१८५।

अहिंसा धर्म ही इस लोक और 'परलोक के सुख का कारण' है और सुख का सर्वस्व सार है ।१८६।

परस्पर प्रेम से यदि जीवन निर्वाह करना होतो परस्पर मे सहकार ही मुख्य कारण है और वही धर्म का साम्राज्य है ।१८७।

इस लोक मे सभी को शौभाग्य देनेवाला यह अहिंसा धर्म है ।१८८।

महावीर भगवान ने इस धर्म को मङ्गल स्वरूप से दान दिया है ।

।१८९।

गुफा में रहते हुए तपस्या द्वारा सिद्ध किया हुआ अहिंसा धर्म है ।१९०।

हिंसा को विनाश करके अहिंसा की स्थापना करके सन्मार्ग बतलाने वाला यह राजा का राजभार कर्म है ।१९१।

सुख शिवभद्र इत्यादि सभी शब्द मङ्गल वाचक हैं । यह सब इस राज्य में फैला हुआ था ।१९२।

महानभावों को पैदा करनेवाला अर्थात् उन सभी का वर्णन करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।१९३।

महावीर जिनेन्द्र जी इस राज्य में बिहार किये थे ।१९४।

सिद्धान्त को पढ़ते हुए अन्तर्मुहूर्त में सिद्धान्त के आदि अन्त को साध्य करनेवाले राजा अमोघव केर्ष गुरु (आचार्य कुमुदेन्दु) के परिश्रम से सिद्ध किया हुआ यह भूवलय काव्य है ।१९५।

कानडी भापा मे चरित नामक छन्द को सागत्य कहते हैं। सागत्य अर्थात् दिगम्बर मुनि राजो का समूह ऐसा अर्थ होता है उन गुरु परम्परा से आये हुए अर्थात् श्री वीरसेनाचार्य द्वारा सम्पादन किये हुए सद्ग्रन्थ को लेकर रचना किये हुए इस भूवलय काव्य को वाचक काव्य भी कहा जाता है ।१९६।

हमारे (कुमदेन्दु आचार्य के) गुरु श्री वीरसेन स्वामी ने छाया रूप से हमें उपदेश दिया उस गुरु का अमृत रूपी वाणी को गणित शास्त्र के सांचे में ढाल कर प्राचीन काल से आये हुए पद्धति के अनुसार मङ्गल प्राभृत के कर्मानुसार गुणाके सांचा मे ढालकर हम (कुमदेन्दु आचार्य) ने अत्यन्त उन्नत दशा को पहुंचे हुए सात सौ अट्ठारह असंख्यात अक्षरात्मक भाषा युक्त रीति से इस ग्रन्थ को बनाया । इस ग्रन्थ की पद्धति बहुत सुन्दर शब्द गंगा से लिखा है, अक्षर गंगा से नही । इसलिए सभी भाषाये इसके अन्दर आगई हैं । इस ग्रन्थ के बाहर कोई भी भाषा नही है ।१९७-१९८।

अत्यन्त सुन्दर रचना से युक्त कर्नाटक भाषा यह आदि काव्य है ।१९९।

यह काव्य अंग ज्ञान द्वारा निकलने के कारण समस्त भाषा से भरा हुआ है । अंक लिपि सौंदरी देवी का है । उस अंक लिपि द्वारा हम बांधकर इस ग्रन्थ की रचना किये हैं । यह हृदय का अतिशय आनन्द दायक काव्य है। इस काव्य के बाहर कोई भी भाषा नही है । अगणित जीव राशि आदि की सभी भाषा इसके अन्दर विद्यमान है। अंक अधि-देवता के गणित द्वारा यह काव्य बांधा हुआ हैं ।२०० से २०४।

यह काव्य अनेक चक्र बन्धों से बंधित हैं ।२०५।

अनेक प्रकार का जो भी चक्र बन्ध है वह सब इस भूवलय मे उपलब्ध हो जाता है ।२०६।

गणित मे अनेक भङ्ग (गणित का नियम) होते है उनमे यदि मृग, पक्षी की भाषा निकालनी हो तो इसी गणित भङ्ग से निकालनी चाहिए ।२०७।

उस भङ्ग का नाम स्वर्ग बन्ध चक्रबन्ध भी है ।२०८।

गणित में [१] अगणित (२) गणित (३) अनन्त इस प्रकार से अनेक भेद होते है ।२०९।

इन तीनों विधि और विधान द्वारा सारे विश्व को इस ग्रन्थ में बांध दिया है ।२१०।

मृग अर्थात् तिर्यंच जीव किस प्रकार से मालूम होते है उस विधि को बतलाया गया है ।२११।

पक्षी जाति किस प्रकार से स्वर्ग में जाती है इस विधि को भी इस ग्रन्थ में बतलाया गया है ।२१२।

इस भूवलय में विश्व का सारा विषय उसके अन्दर भरा हुआ है ।२१३।

इस भूवलय काव्य में यदि काल के दृष्टिकोण से देखा जाय तो युग परिवर्तन की विधि भी इसके अन्दर विद्यमान है ।२१४।

सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करनेवाला यह जैन धर्म क्या मानव की रक्षा नही कर सकता है अर्थात् अवश्य कर सकता है । इसी प्रकार गुरु के कहे हुए धर्म का आचरण करने से राजा शिवमार द्वारा पृथ्वी की रक्षा करने में क्या आश्चर्य है ।२१५।

इस तृष्णादि मे सम्पूर्ण जोव भरे हुए है । इन सब जीवों की रक्षा करनेवाला यह जैन धर्म शुभकर है सर्व लक्षणों से परिपूर्ण है और स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा करनेवाले की इच्छा पूर्ण करता है ।२१६।

सम्पूर्ण जीवों को यश कर्म उदय को लाकर देनेवाला यह जैन धर्म जीव निर्वाह करनेवाले मनुष्य को सौभाग्य किस तरह देता है इसका समाधान करते हुए आचार्य जी कहते हैं कि यशकायी जीवों के दुःख को दूर करने के लिए पारा सिद्धि के उपाय को बताया है ।२१७।

यह जैन धर्म विष से व्याप्त मानव को गारुणमणि के समान विष से रहित करनेवाला है ।२१८।

जैन धर्म के अन्दर अपरिमित ज्ञान साम्राज्य भरा हुआ है ।२१९।

दश दिशाओं का अंत नही दिखाई पड़ता इस भूवलय रूपी ज्ञान के अध्ययन से अपना ज्ञान दिशा के अंत तक पहुंचाता है ।२२०।

यह धर्म हुडांवसर्पिणीकाल का आदि ऋषभसेन आचार्य के ज्ञान को दिखाता है ।२२१।

ऋषभसेन आचार्य से लेकर वर्तमान काल तक तीन कम नौ करोड़ मुनियों के सब ज्ञान का सांगत्य (अर्थात् भूवलय का छन्द है) से युक्त है ।२२२।

यह धर्म अनादि काल से आये हुए मदनोन्माद का नाश करनेवाला है । ।२२३।

इस काव्य रूपी ज्ञान के हो जाने पर दुर्मल रूपी कर्म को नष्ट कर देता है ।२२४।

तीन, पांच, सात और नौ यह बिषय अंक हैं । सामान्य से २ अंक से अर्थात् समान अङ्क से भाग नहीं होता है इस भूवलय ग्रन्थ के ज्ञान से विषम अङ्क सम अङ्क से भाग होते हुए अन्त में शून्य आता है ।२२५।

इस अंक के ज्ञान से सूक्ष्म काल अर्थात् भोग भोगी काल की सम्पदा को दिखाता है ।२२६।

इस प्रकार समस्त ज्ञान को दिखाते हुए अन्त में आत्म सिद्धि को प्रदान करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।२२७।

श्री धरसेनाचार्य के शिष्य भूतवल्य आचार्य ने द्रव्य प्रमाण अनुवाम शास्त्र से अंक लिपि को लेकर भूवलय ग्रन्थ की रचना की थी । यह भूवलय ग्रन्थ उस काल में विशेष विख्यात और वैभव से परिपूर्ण था । नूतन प्राक्तन इन दोनों कालों के समस्त ज्ञान को संक्षेप करके सूत्र रूप से भूवलय ग्रन्थ की रचना की थी । इस भूवलय ग्रन्थ के अन्तर्गत समस्त ज्ञान भण्डार विद्यमान है ।२२८।

श्री भूतवली आचार्य का अतिशय क्या है ? तो हर्षवर्द्धन उत्पन्न करने वाला इस भारत देश का जो गुरु परम्परा से राज्य की स्थापना हुई है यही इसका अतिशय है ।२२९।

यह भारत लवण देश से घिरा हुआ है और इसी भारत देश के अंतर्गत एक वर्द्धमान नामक नगर था । उस वर्द्धमान नगर के अन्तर्गत एक हजार नगर थे । उस देश को सौराष्ट्र कहते थे और सौराष्ट्र देश को कर्माटक (कर्नाटक) देश कहते थे ।२३०।

उस देश मे मागध देश के समान कई जगह उष्ण जल का झरना निकलता था। उसके समीप कही कहीं पर रमकूप (पारा कुआं) भी निकलते थे। उसके उपयोग को आगे करेंगे। २३१ से।२३४।

सौराष्ट्र देश का पहले का नाम निर्कालिंग था। भारत का त्रितलिं नाम इसलिए पड़ा क्योकि भारत के तीन ओर समुद्र है यह भूमि सकनड़ देश थी इस अध्याय के अन्तर्काव्य में १५६ हजार मे १६८ अक्षर कम थे।२३५।

इस भूवलय के प्लुत नामक नववे अध्याय के श्रेणी काव्य मे आठ हजार सात सौ अड़तालिस (८७४८) अंकाक्षर है। इसका स्वाध्याय करनेवाले भव्य जीव श्री जिनेन्द्र देव के स्वरूप को प्राप्त करने की कामना करते हैं। उस कामना को पूर्ण करने वाला ९ अंक है। अर्थात् श्रेणी काव्य के ८७४८ अंक आड़ा जोड़ देने से ९ आ जाता है। यह ९ वां अक श्री जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रतिपादित भूवलय की गणित पद्धति है। और यही अष्टम महाप्रातिहार्य वैभव भी है ।२३६।

इति नवमोऽध्यायः

ऊ ८७४८+अन्तर १४८३२=२३५८०

अथवा

अ से लेकर ऊ पर्यन्त

१, ५२, ४४२+२३, ५८०=१, ७६, ०२२

इस अध्याय को उपर्युक्त, कथनानुसार यदि ऊपर से नीचे तक पढ़ते जाएँ तो जो प्राकृत काव्य निकलकर आ जाता है उसका अर्थ इस प्रकार है:—

इस परम पावन भूवलय ग्रन्थ को हम त्रिकरण शुद्धि पूर्वक नमस्कार करते है। यह भूवलय ग्रन्थ भव्य जीवों के अज्ञानान्धकार को नाश करने के लिए दीपक के समान है। इस दीपक रूपी ज्योति का आश्रय लेकर चलनेवाले भव्य जीवों के कल्याणार्थं हम त्रिलोक सार रूप भूवलय ग्रन्थ को कहते है।

इस अध्याय का स्वाध्याय यदि मध्य भाग से किया जाय तो संस्कृत भाषा इस प्रकार निकलकर आ जाती है.—

भूतवलि, गुणधर, आर्यमंक्षु, नागहस्ती, यतिवृषम, वीरसेनाभ्याम् विरचितम् श्री श्रोतारः सावधा। इन आचार्यों द्वारा विरचित ग्रन्थ को आप लोग सावधान पूर्वक श्रवण करे।

दसवां अध्याय

ऋ* दधि सिद्धिगळनु होन्दिसि कोडुवंक । सिद्धिय सर्वज्ञ न* वन ॥ शुद्ध केवलज्ञानदतिशय धवलदे । सिद्धवागिरुव भूवलय ॥१॥
सि* रि वीरसेन भट्टारकरुपदेश । गुरु वर्धमान श्री मुखदे । त* रतर वागि बन्दिरुवुदनेल्लव । विरचिसि कुमुदेन्दु गुरुवु ॥२॥
ओ* दिसिदेनु कर्माटद जनरिगे। श्री दिव्य वाणिय क्रमदे । श्री द या* धर्म समन्वय गणितद । मोदद कथेयनालिपुदु ॥३॥
आदिय कथेय नालिपुदु ॥४॥ नादिय कथेयनालिपुदु ॥५॥ वेद हन्एरडनालिपुदु ॥६॥ इ दिनदादिय काव्य ॥७॥
सादि अनन्तद ग्रन्थ ॥८॥ वेदागम पूर्व सूत्र ॥९॥ वेदद हदिनाल्कु पूर्व ॥१०॥ श्री दिव्य करण सूत्रांक ॥११॥
आदिगनादि सद्वस्तु ॥१२॥ साधिक वय्भव बंध ॥१३॥ ओदिनध्यात्मद बन्ध ॥१४॥ श्री धन घी धन रिद्धि ॥१५॥
ओदिनोळव्षध सिद्धि ॥१६॥ ओदिनोळव्षध रिद्धि ॥१७॥ कादियिम् वर्णमालान्क ॥१८॥ कादियिम् नवमान्क बंध ॥१९॥
टादियिम् नवमान्कदंग ॥२०॥ पादियिम् नवमान्क भंग ॥२१॥ याद्यष्टरळ कुल भंग ॥२२॥ साद्यन्त अं अः कः पः द ॥२३॥
मोददइप्पत्तेळु स्वरद ॥२४॥ ओदिन अरवत्नाल्क् अन्क ॥२५॥ साधित सिद्ध भूवलय ॥२६॥

सु* रनर नागेन्द्र तिरियन्च नारक । ररियुवेळ्तूर् एम्ब श्* ॥ वरभाषे हदिनेन्ट बेरसिनाम् बरेदिहे । गुरु वीर सेन सम्मतदिम् ॥२७॥
ग्* मनिसि अखत्नाल्क् अक्षर सम्योग । विमल भंगांक रु* व्रुद्धि॥ क्रमविह अपुनरुक्तान्कद अक्षर । विमल गुणाकार मगि॥२८॥
गि* डिदु तुम्बिरुवनु लोमांक पद्धति । पोडवियोळतिशुद्धव ण्* ण ॥ गडियोळगदनुम् प्रतिलोमदन्कदिम् । बिडिसलु बहुदेल्ल भाषे ॥२९॥
व* र भाषेगळेल्ल समयोग वागलु। सरस शब्दागम हुट्टि॥ सर व* दुमालेयादतिशय हारद । सरस्वति कोरळ आभरण ॥३०॥
परि परि वर्णद कुसुम ॥३१॥ अरहन्त वाणिय महिमा ॥३२॥ सरळवागिह कर्माटकद ॥३३॥ परम वय्विध्यांक पूर्ण ॥३४॥
गुरु परम्परेय सूत्रान्क ॥३५॥ परमात्म नोरेद रहस्य ॥३६॥ वर कुसुमाक्षर दनक ॥३७॥ सरळवादरु प्रउड विषय ॥३८॥
गरुडगमन रिद्धि गमन ॥३९॥ शरीर सवन्दर्यद अक्ष ॥४०॥ विरचित कुमुदेन्दु काव्य॥४१॥ अरवत् नाल्क क्षरदन्ग ॥४२॥
गुरुगळ वाक्य भूवलय ॥४३॥

ह* रुष वर्धनवा जीव राशिय काव्य । सरुवान्क सरुवाक्षर न* अम् ॥ बरेयदे वरुव रेखांक समरुद्धिय । परमामरुतद रचनेयिम् ॥४४॥
णु* णुपाद दुन्डाद लिपिय कर्माटक । दनुपम र ळ कुळवेरसि॥ स्* अनुजर देवर जीवराशिय शब्द । दनुपम प्राकरुत द्रविड ॥४५॥
मो* क्ष मार्गोपदेशकवाद् एळोम्देन्दु । साक्षर अक्षरद तु* हिन ॥ रक्षेय जगद समस्त भाषेगळिह । शिक्षेये भव्यर वस्तु ॥४६॥
रक्षणेगादिय वस्तु ॥४७॥ अक्षयानन्त सुवस्तु ॥४८॥ आक्षरद् एरडने भग ॥४९॥ आक्षर दादि त्रिभंग ॥५०॥
शिक्षण अरवत् नाल्क् अंग ॥५१॥ सूक्ष्मांकदनुपम भग ॥५२॥ अक्षय सुखद स्रूप ॥५३॥ शिक्षेयनादिय वस्तु ॥५४॥
लक्ष कोटिगळ श्लोकॉक ॥५५॥ कक्षद पिन्छद गणित ॥५६॥ कुक्षियोळ् हुगिदिरुवक ॥५७॥ कक्ष खगोळ मंगलद ॥५८॥
लक्षण पाहुडदन्ग ॥५९॥ दीक्षावसनद त्याग ॥६०॥ तीक्षण वाग्बाणदे म्रुदुल॥६१॥ कक्षपुटदे चक्र भंध ॥६२॥
अक्षर बन्धद मनेगळ् ॥६३॥ चक्षुरुन् मीलनदन्क ॥६४॥ चक्षु अचक्षु सज्ञान ॥६५॥ यक्ष सम्रक्षण दक्ष ॥६६॥
[illegible] लय ॥६८॥

ग* मनि सलिन्तु ई सर्वविषयगळ । क्रम मार्ग गणितदेसर मं* विमल विहारदे अ चरिसुव मुनिगळ गमकदतुल कलेयन्क ॥६९॥
व* शवागदेल्लरिग् ई कालदोळगेम्ब । असद्रुश ज्ञानद साम् ग* तय ॥ विषहर 'सर्व भाषाम ई' कर्माट । दसमान दिव्य सूत्रार्थ ॥७०॥
य* वेय काळिन क्षेत्रदळतेयोळ् जोविप । सविवरानन्त जीव ल क् ॥ सुविख्यात कर्माट देशप्रदेश । सविवर कर्माटकवु ॥७१॥
ग* णित शास्त्र वदेल्ल मुगिदरु मिक्कुव । गणितव नणुरूप म* गेयुदु॥ क्षणवेने समयओमद्रोळसम् ख्यातद । गुणितदकेडिसुवक्रमवु॥७२॥
व* र विश्वकाव्यदोळडगिर्प कारण । सरणियनरितवर् शु भ* द ॥ गुरुवर वीरसेनर शिष्य कुमुदेन्दु । गुरु विरचितदादि काव्य ॥७३॥
क्* र्मदक्षयवेन्तो अनु्तु बन्दक्षर । निर्वाहदोळनग ग* ळ ॥ सर्वव अनुलोम् प्रतिलोम हारद । सर्वांक मगल विषय ॥७४॥
खो* डिकर्मवगेलव हाडनुम् हा डद । रूढियम् हळेय कन्नड वा* ॥ गाढ प्रगाढ समृरूढियज्ञानद । कूडणेयतिशय बन्ध ॥७५॥

हाडलु सुलभवादनग ॥७६॥ नोडलु मेच्चुव गणित ॥७७॥ जोडियन्कद कूटदनग ॥७८॥ कुडुव पुण्यानग भंग ॥७९॥
कूडुवागले बंद लब्ध ॥८०॥ गूढ रहस्यद अग ॥८१॥ मूढ प्रउदरिग् ओसदे भंग ॥८२॥ गाढ रहस्य कर्मांग॥८३॥
ओडि बरलु पुण्यदग ॥८४॥ श्रे ढिय कळेव भागांग ॥८५॥ गाढ श्री गुणकार भंग ॥८६॥ माडिद पूजानग भंग ॥८७॥
रूढियिम् बंद पुण्यानग ॥८८॥ औडिनोल् हाडुव अनग ॥८९॥ काडिन तपदे बन्दनग ॥९०॥ तौडिनोळ् गणिपन्तरनग॥९१॥
ताडनवळिव दिव्यानग ॥९२॥ माडिद पुण्यानग गणित ॥९३॥ रूढियागमद सूक्ष्मानग ॥९४॥ याडिल्लदणु महा भंग ॥९५॥
गाढ भक्तिय भव्यरनग ॥९६॥ कूडिद भव्य भूवलय ॥९७॥

य* शकीर्ति नाम कर्मोदयवळिदस । दयशद दिव्यात्म निसब न* द ॥ असमान द्रव्यागमद पाहुडदनग । कुसुम वर्णाक्षर माले ॥९८॥
णी* लमहानीलनामद ऋषिगळ। सालिनिसबन्दिहगणित॥ दोलेय वो* र जिनेन्द्रन वाणिय । सालिनिम् बंदिह गणित ॥९९॥
ल* क्षमणनर्ध चक्रीश्वर नवनंग । लक्मान्कदक्ष रो* चनव॥ लक्षमवभावदिगुणिसुतगणिसिह। लक्षयांक दनुबंधकाव्य ॥१००॥
सु* नुमथननुपमदेह सम्स्थानद । घन बन्ध समृहननव मं* त्रनवकारद सिद्धरतिशय सम्पद । देणेकेय सौन्दर काव्य ॥१०१॥
जिन चन्द्रप्रभरनग धवल ॥१०२॥ मुनिसुव्रतरन्क कमल ॥१०३॥ जिन मुनिमालेय कमल ॥१०४॥ घनरत्नत्रय दिव्य धवल ॥१०५॥
जिन माले मुनिमालेयन्क ॥१०६॥ गणित दोळक्षर ब्रह्म ॥१०७॥ अनुभव गोचर गणित ॥१०८॥ जिनमतवर्धन धवल ॥१०९॥
तनगे आत्मध्यान धवल ॥११०॥ कुनय विधूर साम्राज्य ॥१११॥ कनकव धवलगेयवन्क ॥११२॥ तनुमन वचन शुद्ध धन ॥११३॥
विनुतद लौकिक गणित ॥११४॥ जिनर केवल ज्ञान गणित॥११५॥ थणंथणवेने श्वेतस्वर्ण ॥११६॥ चणक प्रमाणवे मेरु ॥११७॥
जण जण होळेव दिव्यांक ॥११८॥ पण वळिदिह सद्गणित ॥११९॥ गुण स्थानदनुभव गणित ॥१२०॥ जिनर अयोगद गणित॥१२१।
सनुमत काव्य भूवलय ॥१२२॥

म* रळि मार्गणस्थानदनुभव योगद । मर जीवरसमास दरि ग* ॥ वरुषव समयव कल्पव समयव । वह समयदोळनन्तान्क ॥१२३॥
ह* रडुत तनगुत बेरेयुत हरियुत । सरुव पुद्गल होन्दि सर लं* बरुत होगुत निळव जोवराशिगळन्क । करगदे तोरुवनन्त ॥१२४॥
णी* चातिनीच जीवनद जीवरनेल्ल। आचेगे सागिप दिव्य॥ राचमं भ* द्र् मन्गलद पाहुड काव्य । ईचेगाचेगे अनन्तरदिम् ॥१२५॥
लो* कदोळगे भद्रवागिसि पिडिदिर्दु । लोकदग्रके बन्धिसि ग* ॥ श्री करवागिरिसिर्प कल्याणद । शोकापहरणद अन्क ॥१२६॥

नाकागृ श्री सिद्ध काव्य ॥१२७॥ व्याकुल हरि सिद्ध काव्य ॥१२८॥ आकाररहित दिव्यानृग ॥१२९॥ एकाग्र ध्यान सम्प्राप्त ॥१३०॥
ओकार वरजित शब्द ॥१३१॥ ओम्कार गोचर वस्तु ॥१३२॥ ह्रोम् कार दाराध्य वस्तु ॥१३३॥ ह्रूम्कार दतिशय वस्तु ॥१३४॥
ह्लूम्कार राराध्य सम्ज्ञा॥१३५॥ हरीम्कार गोचर वस्तु॥१३६॥ ह्रोम्कार पूजित गर्भ ॥१३७॥ ह्र्औम्कार दतिशय वस्तु॥१३८॥
ह्रम्कार राराध्य सञ्ज्ञ ॥१३९॥ ह्रह्कार गोचर वस्तु ॥१४०॥ शम्का विरहित भूवलय ॥१४१॥
ण॥* वकारमन्त्रदोळादिय अरहन्त । शिव पद कय्लास गिरि वा॥* सवे श्री समवसरण भूमियतिशय । जवम्जव समृहार भूमी ॥१४२॥
व॥* र भद्र कारणवदनु मंगलवेन्दु । गुरु परम्परेय अ नृ॥* गवदु॥ परमात्म सिद्धिय कारणागमन व। सिरिवर्धमान वाक्यांक॥१४३॥
ण॥* र सुर तिरियन्च नारकि जीवर्गे । परि परि सम्यक्त्वद गौ॥* चरियद चारित्र्य लब्धि कारणवागे । अरहन्त भाषित वाक्य ॥१४४॥
उ॥* सह तीर्थन् करवादि इप्पत्नाल्कु । यश धर्ध तीर्थर त त्व ॥ वशवाद भव्यर सम्सारदन्त्यवु । जसदन्ते वन्दोदगेवुदु ॥१४५॥
दी॥* व सागर गिरिगुहे कन्दरवा। ठाविनोळिरुव निर्वाण॥ भूवि मो॥* क्षदनेलेवनेयद तोरुव । पावन मंगल काव्य ॥१४६॥
श्री वीरवाणि ओम्कार ॥१४७॥ कावन समृहार नेलवु ॥१४८॥ आ विश्व काव्यांग धर्म ॥१४९॥ ई विद्य अरवत् नाल्क् अंक ॥१५०॥
वय्विध्य कर्म निर्जरेय ॥१५१॥ श्री विद्य पुण्य बन्धकर ॥१५२॥ पावन शिव भद्र विश्व ॥१५३॥ ई विश्व वय्भवद् अंक ॥१५४॥
काव पुण्यान्कुर वृक्ष ॥१५५॥ देवर देवन क्षेत्र ॥१५६॥ ई विश्वदर्शन ज्ञान ॥१५७॥ एवेळ्वेनतिशय विदरोळ् ॥१५८॥
श्री वीरनुपदेशदनक ॥१५९॥ आ विश्वदनुचिन चित्र ॥१६०॥ कावनेरिद दिव्य भूमी ॥१६१॥ श्री विश्व काव्य भूवलय ॥१६२॥
को॥* टा कोटि सागरगळनळेयुवा । पाटिय कर्म सिद्धांत ॥ दाटव ग॥* णिसुव विधिय द्रव्यागम भाटानक वय्भववमल ॥१६३॥
ड॥* मरुगदिन्द शब्दवु हुट्टे जडवदु । क्रमवल्लवदर ए णी॥* केयु॥ विमलजीवद्रवदिम्बंदद्रव्यवे। अमलशब्दागमवरियय् ॥१६४॥
ई॥* गणहिन्दण नादिय मुनदण । तागुवनन्त कालवनु ॥ श्री गुरु मं॥* गल पाहुडदिम् पेळ्द । रागविराग सद्ग्रन्थम् ॥१६५॥
ओ॥* कारदोळु विन्दुवदनु कूडिसलन्त । ताकिदक्षर ओम् अन् गं॥* श्रीकर सुखकर लोक मंगल कर । दाकार शब्द साम्राज्य ॥१६६॥

वयाकुल हरदनक भंग ॥१६७॥ साकारदतिशयदनग ॥१६८॥ आकार रहित दाकार ॥१६९॥
आकारवदे निराकार ॥१७०॥ एक द्वि त्रि चतुह् भंग ॥१७१॥ आकडे ऐदारु भंग ॥१७२॥
ज्योकेयोळ् एळेन्टु भंग ॥१७३॥ साकु भाषे एळ्नूर् हदिनेन्टु ॥१७४॥ 'ओ' कार'अ'क्षर कळेय ॥१७५॥
लोकद भाषेगळ् बबुदु ॥१७६॥ श्री कारवदु द्वि संयोग ॥१७७॥ नूकलु मूरु अक्षरवम् ॥१७८॥
आकारद् आरु भनगविदे ॥१७९॥ हाकलु नाल्कु भनगदोळु ॥१८०॥ जोकेयोळ् हदिनारु भनग ॥१८१॥
बेकागे ऐदु अक्षरवम् ॥१८२॥ आकार इप्पत्ऐद् अनग ॥१८३॥ एक मालेयोलारक्षरद ॥१८४॥
आ कारद एप्पत् एरडु ॥१८५॥ हाकलु एलु अक्षरव ॥१८६॥ साकार नूरिप्पत् अनग ॥१८७॥
बेकागे एन्टु अक्षरव ॥१८८॥ साकलु एळ्नूरिप्पत्तु ॥१८९॥ ताकुव भाषे भूवलय ॥१९०॥

तु॥* ळियुवुदादि अनृत्यदेरळ् अक्षरगळ । बळि सार्वु लं॥* भाषे॥ बळिसार्दक्षुल्लकद्एलनूररभाषे। वळेसिरिमहाहदिनेन्टम्१९१
नृ॥* वदनकवनेरडनकवन् आगिसे । सवियादि देव मानवरु ॥ तवए कं॥* दद महाभाषेगळ् पुट्टलु । भुविय समस्त मातुगळु ॥१९२॥
गि॥* रवागवाणि सरसवति रूपिन । सर्वज्ञ वाणियोम्दागि॥ सार् द॥* द्रव्यागम् श्री जिनवाणिय । निर्वाहदतिशय पाठ ॥१९३॥

गि* रि गुहे कन्दरदोळगे होकगे निन्दु । अरहन्त वाणिय बळि कु* सर मालेयोळगेल्ल भाषेय बलेसुव । गुरु परम्परे यादि भंग ॥१९४॥
रि* षि वर्धमानर मुखदन्गवेन्देने । होसेदेल्ल मेय्इन्द् दा* होरटु॥ रस वस्तु पाहुड मंगल रूपद । असद्रुश वय्भवभाषे ॥१९५॥
वशवाद दिव्याक्षरान्क ॥१९६॥ रिषिवम्श दादिय भाषे ॥१९७॥ कसिय द्रव्यागम भाषे ॥१९८॥
विष वाक्य सम्हार भाषे ॥१९९॥ वशवागलात्म सम्सिद्धि ॥२००॥ विषयाशा हरण दिव्यांग॥२०१॥
रसद् अरवत् नाल्कु भंक ॥२०२॥ यशवेरळ् अन्गय् बरेह ॥२०३॥ रस वस्तु त्याग धर्व्योग॥२०४॥
यशदंक भन्ग भूवलय ॥२०५॥ रस सिद्धियादिय भन्ग ॥२०६॥ यशस्वति पुत्रियरन्गम् ॥२०७॥
रस रेखेयतिशय काव्य ॥२०८॥

रिण* ज तत्व एळर भाजितदिम् बन्द । अजनादि देवन वाणि॥ बिज द* वय विजय धवलदन्क राशिय। सुरुजसिद अतिशय धवल ॥२०९॥
व्* रदवाद एळतूर हृदिनेन्दु भाषेय । सरमालेयागलुम् विद् या* सरणियोळ् मूरुतूररवत्मूर् अंकदे । परितरलागिदेमतवम् ॥२१०॥
वु* ळिद धवलवु महा धवलांकद । बळिसार लेरडे भाषे ॥ कळे जो* व धर्मोस्तु मन्गलम् काव्यवु । बळिक श्री जय धवलांग ॥२११॥
दे* वागम स्तोत्रवादि महोन्नत । पावन पाहुड ग्रन्थ ॥ तीवे व* र्पागम वेल्लवु तुम्बिह । श्री विजयद भूवलय ॥२१२॥
पावन महासिद्ध काव्य ॥२१३॥ देवन वचन सिद्धान्त ॥२१४॥ श्री वीर वचन साम्राज्य ॥२१५॥
श्री वनवासिय काव्य ॥२१६॥ देव जिनेन्द्रर वचन ॥२१७॥ देवरष्टम जिन काव्य ॥२१८॥
देव शान्तोशन मार्ग ॥२१९॥ देव आदीशन चरण ॥२२०॥ काव दोर्वलिय सौन्दर्य ॥२२१॥
श्री विश्व सिद्धांत वचन॥२२२॥ देववाणिय दिव्य भाव॥२२३॥ भाव प्रमाणद काव्य ॥२२४॥
देवन भाव प्रमाण ॥२२५॥ पावन तीर्थद गणित ॥२२६॥ ई वनवासद तीर्थ ॥२२७॥
भावद भल्लातकाद्रि ॥२२८॥ श्री विश्व भ्यषज्य ग्रन्थ ॥२२९॥ पाव कर्मोदय नाश ॥२३०॥
साविर रोग विनाश ॥२३१॥ श्री वर सौभाग्य मंग ॥२३२॥ देवन वचन भूवलय ॥२३३॥

व* शवहुद् इल्लि श्री स्वसमय सारद । रसिकात्म द्रव्य ध* र्मोस्तु ॥ वशवाद ध्यातमद सारसर्वस्ववे। रसद मंगल पाहुडवु ।२३४।
न्* वदन्कदिम् बन्द कर्मांक गणितदे । अवतरिसिरुव ध र्* माक्ष ॥ रव अंकद ध्यान स्वसमय काव्यद। सवियिह भद्र मंगलवु।२३५।
दे* व जिनेन्द्रन वाणिय प्राभृत । दाविश्व काव्य दर्शन मो* क्षावनि गोय्युव नेराद मार्गद । ई विश्व वतिशय धवल ॥२३६॥
प* डिहार दतिशय वेन्टन्क वागलु । गुडियतिशय काव्य सद स्* त् वडगुडिदागिल्लि बरुवंक वय्भव। मरुडनङ्ग धवल शुभ्रांक ॥२३७॥
व्* वएसदतिशय महनीय वाणिय । सविय लाञ्छनदुदयवृग्र तु* विवरदजगोसाञ्ग मिदु मधुरतेयिह । सविवर दिव्य मन्गलवु ॥२३८॥
द* रुशिसे 'ऋ' अक्षर हत्तनन्तर । दिरुवन्कवदरलि बरुव ॥ म* रकतवय्दोम्बत् एळु ऐद्ओम्दु । सरि गूडिसल् 'ऋ' भूवलय ॥२३९॥
ए* रिसि बरुवन्कदा मूलदक्षर । दारय्केयतिशय्अद् अन्ञ ग* सेरलेन्ट् नाल्केळु एन्टाद काव्यदु । दारते यरसुव (दारतेये बरुप)
भञग ॥२४०॥

ऋ+८७४८+अन्तर १५,७९५=२४,५४३ अथवा अ—ऋ ग, १७६,०२२+२४,५४३=२,००,५६५ ।

दसवां अध्याय

धवल, जयधवल, विजय धवल, महाधवल इन चारों धवलों में रहने वाले अतिशय को अपने अन्दर समावेश करने वाला यह भूवलय सर्वज्ञ देव के शुद्ध केवल ज्ञान रूपी अतिशय के द्वारा निकलकर आया हुआ है। केवल ज्ञान में जगत के सम्पूर्ण ऋद्धि और सिद्धि इन दोनों को अपने अन्दर जैसे वह समावेश कर लिया है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी अपने अन्दर विश्व के सम्पूर्ण पदार्थ को अन्दर कर लिया है।१।

जैसे श्री भगवान महावीर के श्री मुख कमल से अर्थात् सर्वांग से तरह तरह की आई हुई सर्व भाषाओं को श्री वीरसेन आचार्य ने संक्षेप मे उपदेश किया था उन सबको मै श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने सुनकर इन सब विषयों को भूवलय ग्रन्थ के नाम से रचना की।२।

श्री दिव्य ध्वनि के क्रम से आये हुए विषय को दया धर्म के साथ समन्वय करके समस्त कर्माटक देशीय जनता को एक प्रकार की विचित्र गणित कथा श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने जो बतलाया है उसे हे भव्य जीवात्मन्! तुम सावधान होकर श्रवण करो।३।

आदि तीर्थंकर श्री वृषभ देव से लेकर आज तक चलाये गये समस्त कथाओं को हे भव्य जीव! तुम सुनो।४।

इतना ही नही बल्कि इससे बहुत पहले यानी अनादि काल से प्रचलित की गई कथा को हे भव्य जीव तुम! सुनो।५।

हे भव्य जीव! तुम आचारांगादि द्वादशॉग वाणी को सावधानतया सुनो।६।

यह भूवलय काव्य अनादि कालीन है, किन्तु ऐसा होने पर भी गणित के द्वारा गुणाकार करके इसकी रचना वर्तमान काल में भी कर सकते है, अतः यह आधुनिक भी है।७।

अनन्त के अनाद्यनन्त, साद्यनन्त, सादिसान्त, साद्यनन्त इत्यादिक भेद हैं। उन भेदों में से यह भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ साद्यनन्त है।८।

भगवान् जिनेन्द्र देव की वाणी, वेद, आगम, पूर्व तथा सूत्र इत्यादिक विविध भेदों से युक्त है और वह सब इस भूवलय में गर्भित है।९।

भगवान् की उपर्युक्त वाणी अग्रेयणीयादि चौदह पूर्व भी है।१०।

नौ अंक को घुमाकर सकलागम निकालने की विधि को श्री दिव्य कर्णांक सूत्र कहते है।११।

चौदह पूर्व मे अनेक वस्तुये है और वे सभी आदि व अनादि दोनों प्रकार की है। अत. यह भूवलय वस्तु भी है।१२।

द्वादशांग वाणी का बन्धपाहुड भी एक भेद है। और बन्ध में सादि-बन्ध, अनादि बन्ध, ध्रुव बन्ध, अध्रुव बन्ध, क्षुल्लक बन्ध, महा बन्ध, इत्यादि विविध भांति के भेद है। उपर्युक्त सभी बन्ध इस भूवलय में विद्यमान हैं।१३।

जो महात्मा योग में मग्न हो जाते हैं उसे आध्यात्मिक बन्ध कहते है।।१४।

श्री धन अर्थात् समवशरण रूपी वहिरङ्ग लक्ष्मी और धन अर्थात् केवलज्ञान ये दोनों ऋद्धियाँ सर्वोत्कृष्ट है।१५।

औषधिऋद्धि के अंतर्गत मल्लौषधि जल्लौषधि इत्यादि आठ प्रकार की ऋद्धियाँ होती है। वे सभी ऋद्धियां इस भूवलय के अध्ययन से सिद्ध हो जाती है। इन सबको पढने के लिये क अक्षर की वर्णमाला से प्रारम्भ करना चाहिये।१६-१७-१८।

कादिसे नवमाङ्क बन्ध, टादि से नवमाङ्कदंग, पादि से नवमाङ्क भग, याद्यष्टरलकुल भंग, साद्यन्त से ०, :, .˙., :: और २७ स्वर से भङ्गाङ्क, वर्णमालाङ्क, तथा बन्धाङ्क इत्यादि अनेक गणित कला से सभी वेद को ग्रहण करना चाहिये। अथवा ६४ अक्षराङ्क के गुणाकार से भी वेद को ले सकते है। ऐसे गणित से सिद्ध किया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है।

।१९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६।

देव, मानव, नागेन्द्र, पशु, पक्षी, इत्यादि तिर्यञ्च समस्त नारकी जीवों की भापा ७०० और महाभाषा १८ है। इन दोनों को परस्पर में मिला कर इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हमने (कुमुदेन्दु मुनि ने) की है। इस रचना की शुभ सम्मति हमे पूज्य पाद श्री वीरसेनाचार्य गुरुदेव से उपलब्ध हुई है।२७।

हमने ६४ अक्षरो के सयोग से वृद्धि करते हुये अपुनरुक्ताक्षराङ्क रीति से गुणाकार करके इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की है ।२८।

जिस प्रकार षड् द्रव्य इस ससार मे एक के ऊपर दूसरा कूट कूटकर भरा हुआ है उसी प्रकार ६४ अक्षरो के अन्तर्गत अनुलोम क्रम से समस्त भापाये भरी हुई है। ससार मे यह पद्धति अद्भुत तथा परम विशुद्ध है। इस भरे हुए अनुलोम क्रम को प्रति लोम क्रम से विभाजित करने पर ससार की समस्त भापाये स्वयमेव आकार प्रकट हो जाती है ।२९।

इसी प्रकार समस्त भाषाओ का परस्पर मे सयोग होने से सरस शब्दागम की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् समस्त भापाये परस्पर मे गुंथी हुई सुन्दर माला के समान सुशोभित हो जाती है और वह माला सरस्वती देवी का कठाभरण रूप हो जाती है ।३०।

उस माला मे विविध भाँति के पुष्प गुथे रहते है। उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ मे भी ६४ अक्षराक रूपी सुन्दर २ कुसुम है ।३१।

यह भूवलय रूपी माला अर्हंत भगवान् की वाणी की अद्भुत् महिमा है ।३२।

यह भूवलय समस्त कर्मबद्ध जीवो की भाषा होने पर भी अर्थात् कर्माटक भाषा की रचना सहित होते हुए भी बहुत सरल है ।३३।

यह भूवलय परमोत्कृष्ट विविधांक से परिपूर्ण है ।३४।

यह-वृषभ सेनादि सेन गण की गुरुपरम्पराओं का सूत्रांक है।३५।

अर्हन्त भगवान् की अवस्था मे जो आभ्यन्तरिक योग था वह रहस्यमय था, किन्तु उसका भी स्पष्टी करण इस भूवलय शास्त्र ने कर दिया ।३६।

जिस प्रकार पुष्प गोलाकार व सुन्दर वर्ण का रहता है उसी प्रकार ६४ अक्षराक सहित यह कर्माटक भाषा गोलाकार तथा परम सुन्दर है ।३७।

इस भूवलय का सागत्य नामक छन्द अत्यन्त सरल होने पर भी प्रौढ विषय गर्भित है।३८।

आकाश मे गरुड़ पक्षी के समान गमन (उड्डान) करना एक प्रकार की ऋद्धि है किन्तु वह भी इस भूवलय मे गर्भित है ।३९।

कामदेव के शरीर मे जितना अनुपम सौंदर्य रहता है उतना ही सौदर्य ६४ अक्षराकमय इस भूवलय मे है ।४०।

इस प्रकार विविध भाति के सौंदर्य से सुशोभित श्री कुमुदेन्दु आचार्य विरचित यह भूवल काव्य है ।४१।

अनादिकाल से दिगम्बर जेन साधुओं ने इन्हीं ६४ अक्षरों के द्वारा ही द्वादशाङ्ग वाणी को निकाला था ।४२।

इस प्रकार समस्त गुरुओं का वाक्य रूप यह भूवलय है ।४३।

किन्तु उन सबको दु खो से छुडाकर सुखमय बनाने के लिए सर्वांक अर्थात् ९ तथा सर्वाक्षर अर्थात् ६४ अक्षर हैं। क्षर का अर्थ नाशवान् है, किन्तु जो नाश न हो उसे अक्षर कहते है। और एक एक अक्षरों की महिमा अनन्त गुण सहित है। इन ६४ अक्षरो का उपदेश देकर कल्याण का मार्ग दिखलाना महत्व पूर्ण विपय है। इतना महत्वपूर्ण अक्षर अक के साथ सम्मिलित होकर जब परम सूक्ष्म ९ बन जाता है तो उसकी महिमा और भी अधिक बढ जाती है। इसके अतिरिक्त ९ अक सूक्ष्म होने पर भी गणित द्वारा गुणाकार करने से जब अत्यन्त विशाल बन जाता है तब उसकी महानता जानने के लिए रेखागम का आश्रय लेना पड़ता है। अंको को रेखा द्वारा जब काटा जाता है तब यह भूवलय परमामृत नाम से सम्बोधित किया जाता है ।४४।

र ल कू ल ये कर्णाटक भापा मे प्रसिद्ध विपय है। यह लिपि अत्यन्त गोल व मृदुल है। अतः मानव, देव तथा समस्त जीवराशियो का शब्द संग्रह करने मे समर्थ है। वह अनुपम भापा प्राकृत और द्रविड़ है ।४५।

भाषात्मक तथा अक्षरात्मक भगवान् की दिव्य वाणी रूपी ७१८ भाषाये संसार के समस्त जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश देनेवाली हैं। और अखिल विशव की रक्षा करती हुई भव्य जीवो को शिक्षा देनेवाली है ।४६।

यह भगवद् वाणी समस्त जीवों की रक्षा के लिए आदि वस्तु है। ।४७।

यह अक्षयानन्तात्मक वस्तु है ।४८।

यह आ अक्षर का द्वितीय भग है ।४९।

यह आ २ (प्लुत) अक्षर का तृतीय भंग है ।५०।

इस रीति से भंग करते हुए ६४ अक्षर तक शिक्षण देनेवाला यह गणित का अंग ज्ञान है अर्थात् द्रव्य प्रमाणानुगम द्वार है ।५१।

यह सूक्ष्मांकरूपी अनुपम भग है ।५२।

यह अक्षय सुख को प्रदान करनेवाला गणित का रूप है ।५३।

इसी प्रकार यह अनादि काल से शिक्षा देनेवाला गणित शास्त्र है ।५४।

यह लाख लाख तथा करोड़ करोड़ सख्या को सूक्ष्म मे दिखानेवाला अंक है ।५५।

दिगम्बर जैन मुनि अहिंसा का साधन भूत अपने बगल में जो पीछी रखते है उसके अत्यन्त सूक्ष्म रोम की गणना करने से द्वादशांग वाणी मालूम हो जाती है ।५६।

विवेचन—श्री भूवलय के प्रथम अध्याय के ४८ वे श्लोक में नागार्जुन सिद्ध का विषय आया है। उन्होंने अपने गुरु देव श्री पूज्यपाद आचार्य जी से कक्षपुट नामक रसायन शास्त्र का अध्ययन करके रसमणि सिद्ध किया था। उस मणि से उन्होंने गगनगामिनी, जलगामिनी तथा स्वर्णवाद इत्यादि ८८ महाविद्या का प्रयोग बतलाकर संसार को आश्चर्य चकित कर दिया था। और इसी ८८ महाविद्या के नाम से ८८ कक्षपुट नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह समस्त ग्रन्थ "हक" पाहुड से सम्बन्धित होने के कारण भूवलय के चतुर्थ-खण्ड प्राणावायपूर्व विभाग मे मिल जायगा।

ये समस्त विद्याये दिगम्बर जैन मुनियों के हृदयङ्गत है ।५७।

यह समस्त कक्षपुट मंगल प्राभृत से प्रकट होने के कारण खगोल विज्ञान सहित है ।५८।

यह पाहुड ग्रन्थ अङ्ग ज्ञान से सम्बन्ध रखता है ।५९।

जो व्यक्ति दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जब अपने समस्त वस्त्रो को त्याग देता है तब उसे इस कक्षपुट का ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।६०।

इस कक्षपुट की यदि व्याख्या करने बैठे तो वाक्य तीक्ष्ण रूप से निकलता है, पर ऐसा होने पर भी वह मृदुल रहता है ६१।

भूवलय को यदि अक्षर रूप में बना लिया जाय तो चतुर्थ खण्ड में कक्षपुट निकलता है। उसी कक्षपुट को चक्रबन्ध करने से एक दूसरा कक्षपुट तैयार हो जाता है। इसी प्रकार बारम्बार करते जाने से अनेक कक्षपुट निकलते रहते है ।६२।

इन्ही कक्षों में जगत् के रक्षक अक्षर बन्धों में समस्त भाषायें निकलकर आ जाती है। ६३।

यह कक्ष पुटाङ्कन पढ़नेवालों के चक्षु को उन्मीलन करके केवल अक मात्र से ही समस्त शास्त्रो का ज्ञान करा देता है ।६४।

शास्त्रों में दर्शन और ज्ञान दोनों समान माने गये है। दर्शन में चक्षु दर्शन व अचक्षु दर्शन दो भेद है। इन दोनों दर्शनों का ज्ञान इस कक्षपुट से हो जाता है ।६५।

यह कक्षपुट विविध विद्याओं से पूरित होने के कारण यक्षों द्वारा संरक्षित है ।६६।

यह कक्षपुट भूवलय ग्रन्थ के अध्येता के वक्षः-स्थल का हारपदक है अथवा भूवलय रूपी माला के मध्य एक प्रधान मणि है ।६७।

यह भूवलय ग्रन्थ जिस पक्ष में व्याख्यान होता है उसे पराकाष्ठा पर पहुंचाने वाला होता है ।६८।

उपर्युक्त समस्त विषयों को ध्यान में रखते हुए क्रमागत गणित मार्ग से दिगम्बर जैन मुनि अपने विहार काल में भी शिष्यों को सिखा सकते है ।६९।

इस समय यह अद्भुत् विषय सामान्य जनों के ज्ञान में नही आ सकता। यह सांगत्य नामक छन्द असदृश ज्ञान को अपने अन्दर समा लेने की क्षमता रखता है। और सर्वभाषामयी कर्माटभाषात्मक है। इसलिए यह दिव्य सूत्रार्थ भी कहलाता है ।७०।

यव (जौ) के खेत में रहकर अनन्तानन्त सूक्ष्म कायिक जीव अपना जीवन निर्वाह करते है। इस रीति से सुविख्यात कर्माट देश एक प्रदेश होता हुआ भी समस्त कर्माष्टक अर्थात् समस्त विश्व की कर्माष्टक भाषा को अपने अन्दर समाविष्ट करता है ।७१।

गणित शास्त्र का अन्त नही है। किन्तु उन सबको अणुरूप में बनाकर एक समय में असंख्यात गुणित क्रम से कर्म को नाश करनेवाली विधि को वह बतलाता है ।७२।

यह गणित शास्त्र इस विश्व व्यापक भूवलय काव्य के अन्तर्गत है। अतः गुरु श्रेष्ठ श्री वीरसेनाचार्य का शिष्य मै (कुमुदेन्दु मुनि) इस गणित शास्त्रमय भूवलय काव्य की रचना करता हूं।७३।

जिस प्रकार कर्मों का क्षय होता है उसी प्रकार अक्षरो की वृद्धि होती रहती है। वृद्धिगत उन समस्त अक्षरो को गणित शास्त्र में बद्ध करके अनुलोम प्रतिलोम भागाहार द्वारा मंगल प्राभृत नामक एक खण्ड बना दिया।७४।

दुष्कर्मों का कथनाक प्राचीन कन्नड़भाषा मे रूढि के अनुसार वर्णन किया गया था। वह गाढ प्रगाढ शब्द समूहों से रचित होने के कारण कठिन था। किन्तु भगवान् जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी समस्त जीवो को समान रूप से कल्याणकारी उपदेश प्रदान करती है। इस उद्देश्य से इसे अतिशय बन्ध रूप में बांधकर अत्यन्त सरल बना दिया।७५।

ऐसा सुगम हो जाने के कारण सर्व साधारण जन इस समय इस भूवलय का स्तुति पाठ सुमधुर शब्दो मे प्रसन्नता पूर्वक गान करते रहते है।७६।

भूवलयान्तर्गत इस अद्भुत् गणित शास्त्र को देखकर विद्वज्जन आश्चर्य चकित हो जाते हैं।७७।

यह गणित शास्त्र युगल जोडियो के समूह से बनाया गया है।७८।

इन युगलों को जब परस्पर मे जोड़ते जाते है तब अपने पुण्याङ्क का भंग भी निकलकर आ जाता है।७९।

जोड़ने के समय मे ही लब्धांक आ जाता है।८०।

यह गणित शास्त्र द्वादशाग वाणी को निकालने के लिए गूढ रहस्यमय है।८१।

सांगत्य नामक सुलभ छन्द होने के कारण यह भूवलय मूढ और प्रौढ दोनों के लिए सुगम है।८२।

यह भूवलय प्रगाढ रहस्यो से समन्वित होने पर भी अत्यन्त सरल है।८३।

सुन्दर शब्दों में गान किये जाते हुए इस भूवलय ग्रन्थ को अत्यन्त उत्कण्ठा से श्रवण करने के लिए दौड़कर आये हुए श्रोतागण पुण्यबन्ध कर लेते हैं।८४।

महाक राशि को श्रेणी कहते है। उन श्रेणियो को छोटे अंक से घटाकर भाग देने की विधि भी इस भूवलय मे बतलाई गई है।८५।

इसके साथ साथ इसमे महान् अंको को महान् अंको द्वारा गुणाकार करने का भग भी है।८६।

बहुत दिनों से श्री जिनेन्द्र देव की, की हुई पूजा का फल कितना है? वह सब गगित द्वारा मालूम किया जा सकता है।८७।

ऐसी गणना करते हुए वर्तमान काल में भी पूजा करने का पुण्यबन्ध हो जाता है।८८।

सगीत शास्त्र के घंटावाद्य नामक नाद मे भी इस भूवलय कागान कर सकते है।८९।

दिगम्बर जैन मुनि, जगलो मे तपस्या करते समय इन समस्त विद्याओ को सिद्ध किये है।९०।

धान के ऊपर का मोटा छिलका निकाल देने के बाद चावल के ऊपर एक हल्का बारीक छिलका रहता है। उस बारीक छिलके को कूटने से जो सूक्ष्म कण तैयार होते है उन कणों की गणना करके दिगम्बर जैन मुनि अपने कर्म कणो को भी जान लेते है।९१।

यह भूवलयान्तर्गत गणित शास्त्र अन्य गणितो से अकाट्य है।९२।

इस गणित से किये हुए पुण्य कर्मों की गणना भी कर सकते हैं।९३।

यह परम्परागत रूढि के आगम से आया हुआ सूक्ष्मांक गणित है।९४।

यह परमाणु भग भी है और वृहद् ब्रह्मान्ड भग भी। इसलिए इसकी समानता अन्य कोई गणित नही कर सकता।९५।

परम प्रगाढ भक्ति से अध्ययन करनेवाले भव्य भक्तो के अंतरंग में झलकने वाला यह गणित शास्त्र है।९६।

पुण्योपार्जनार्थ एकत्रित होकर परस्पर मे चर्चा करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।९७।

नामकर्म मे अनेक उत्तर प्रकृतियां है। उनमें एक यश कीर्ति नामक प्रकृति भी है। उस प्रकृति का उदय यदि जीव मे हो जाय तो सर्वत्र प्रशंसा हो जाती है। सामान्य जीव प्रशंसा प्राप्त हो जाने से गर्वित हो जाते हैं; किन्तु

जो महापुरुष समुद्र के समान गम्भीर रहते हैं उन्हीं महात्माओं की कृपा से असमान द्रव्यागम पाहुड ग्रन्थ कुसुम- वर्णाक्षर माला से विरचित है।९८।

इस गणित शास्त्र से १२ अंग शास्त्र को निकालकर रामचन्द्र के काल से नील और महानील नामक ऋषि ने इस भूवलय नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उसी पद्धति के अनुसार श्री महावीर भगवान् की वाणी के प्रवाह से इस भूवलय शास्त्र का गणित उपलब्ध हुआ।९९।

लक्ष्मण अर्द्धचक्री थे। उनके द्वारा छोड़ा गया बाण बड़े वेग से जाता था। उस वेग की तीव्रतर गति को भाव से गुणा करके आये हुए गुणनफल के साथ मिला हुआ यह भूवलय काव्य का गणित है। इसलिए इसकानाम अनुबन्ध काव्य भी है।१००।

मन्मथ का शरीर अनुपम था। संस्थान और संहननबन्ध भी उत्तम था तथा नवकार मन्त्र के समान वह पूर्णता को प्राप्त कर लिया था। इन सबका और सिद्ध परमेष्ठी के आठ मुख्य गुण रूप अतिशय सम्पदा की गणना करते हुए लिखित काव्य होने से इसे सुन्दर काव्य भी कहते है।१०१।

श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र देव का शरीर धवल वर्ण होने से यह भूवलय ग्रन्थ भी धवल है। अथवा इस भूवलय ग्रन्थ से धवल ग्रन्थ भी निकलता है इस अपेक्षा से भी यह धवल है।१०२।

मुनि सुव्रत जिनेन्द्र के समय में पद्मपुराण प्रचलित हुआ इसलिये यह भूवलय ग्रन्थ पद्मपुराण कहलाता है।१०३।

तीनों काल में ७२ जिनेन्द्र देव, अनेक केवली भगवान् तथा तीन कम ९ करोड़ आचार्य होते है। उन सबका माला रूप कथन इस प्रथमानुयोग में है और वह प्रथमानुयोग इसी भूवलय मे गर्भित है।१०४।

रत्नत्रयात्मक धर्म शुद्ध धवल है। गणित शास्त्र से ही जिन माला और मुनिमाला दोनों को ग्रहण कर सकते है। गणित से ही अक्षर ब्रह्म का स्वरूप निकलता है और यह गणित कठिन न होकर अनुभव गोचर है। यह धवल रूप जिन धर्म वृद्धिगत वस्तु है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से आत्मध्यान की सिद्धि प्राप्त होती है। एकान्त हठको दुर्नय कहते हैं। उस दुर्नयको दूर करके अनेकान्त साम्राज्य को लाने वाला यह ग्रन्थ है।१०५ से १११ तक।

इस संसार में काले लोहें को विज्ञान अथवा विद्या के बल से सोना बनाया जा सकता है; पर इस भूवलय में उस स्वर्ण को धवल वर्ण बना सकते हैं।११२।

यह तन, मन वचन शुद्ध धन है।११३।

यह समस्त संसार के द्वारा पूजनीय लौकिक गणित है।११४।

यह भगवान जिनेश्वर के केवल ज्ञान से निकला हुआ भूवलय है।११५।

यह संतप्त स्वर्ण के समान चमकनेवाला है।११६।

चने के बराबर सुमेरु पर्वत है।११७।

अत्यन्त तेजस्वी किरणों से दीप्तिमान यह दिव्याङ्ग है।११८।

मलिनता से रहित परम निर्मल यह गणित शास्त्र है।११९।

यह गुण स्थान के अनुभव द्वारा आया हुआ गणित है।१२०।

यह भगवान् जिनेन्द्र देव का अयोगरूप गणित है।१२१।

यह भूवलय शास्त्र समस्त जीवों के लिए सन्मति रूप है।१२२।

गति, जाति आदि १४ मार्गणा स्थान अनुभव करने के योग में एकेन्द्रियादि १४ जीव समासों का ज्ञान पैदा होता है और ज्ञान के पैदा होने के समय मे काल गणना रूप ज्ञान आवश्यक है। वह इस प्रकार है कि जैसे एक वर्ष में १२ माह होते हैं, १ माह में ३० दिन होते है, १ दिन मे २४ घंटे होते है, १ घंटे में ६० मिनट होते हैं और १ मिनट मे ६० सैकण्ड होते है उसी प्रकार सर्वज्ञ देव ने जैसा देखा है वैसे ही काल के सर्व जघन्य अंश तक अभिन्न रूप से चले जाने पर सबसे छोटा काल मिल जाता है। ऐसे काल को एक समय कहते हैं। जिस प्रकार १ वर्ष का काल ऊपर बतलाया गया है उसी प्रकार उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों को समय रूप से बना लेना चाहिये। इतने महान् अंक मे सबसे छोटे एक समये को यदि मिला लिया जाय तो उसमे अनन्ताङ्क मिल जाता है।१२३।

छिपे हुए अंक को प्रकट करते समय, स्थापित करते समय, परस्पर में मिलाते समय तथा प्रवाहित होते समय पुद्गल द्रव्य सहज में आकर काल द्रव्य को पकड़ लेता है। उस प्रदेश में आते जाते और खड़े होते हुये अनन्त जीव राशि का अंक मिल जाता है।१२४।

एक प्रदेश मे काल, जीव और पुद्गल द्रव्य जब आकर मिल जाते है तव अनन्ताङ्क मिल जाते है। उन नीचातिनीच योनि मे जीनेवाले जीवो को बाहर लाकर भव्य जीवो को मगल पाहुड काव्य के अन्दर लाकर, स्थित करके।१२५।

लोक मे भद्र पूर्वक रक्षा करके गुण स्थान मार्ग से बद्ध करके पाचों कल्याणो की महिमा दिलाकर ऊपर चढाते हुये लोकाग्र अर्थात् सिद्ध लोक मे स्थिर करते हुये शोकापहरण करने वाला यह अंक है।१२६।

नाकाग्र अर्थात् लोक के अग्रभाग का सिद्ध रूपी काव्य है।१२७।

समस्त व्याकुलता को नाश करनेवाला यह काव्य है।१२८।

यह आकार रहित दिव्याक काव्य है।१२९।

यह एकाग्र ध्यान को प्राप्त कर देने वाला काव्य है।१३०।

यह ओकार वर्जित शब्द है।१३१।

यह ओकार गोचर वस्तु है।१३२।

यह ह्रीकार के द्वारा आराध्य वस्तु है।१३३।

यह ह्रोंकार के द्वारा पूजित गर्भ है।१३४।

यह ह्लुंकार के द्वारा आराध्य संज्ञा है।१३५।

ह्लंकार गोचर वस्तु है।१३६।

ह्लोकार पूजित गर्भ है।१३७।

यह ह्लोकार अतिशय वस्तु है।१३८।

यह ह्लंकार आराध्य सर्वज्ञ है।१३९।

यह ह्लकार गोचर वस्तु है।१४०।

इस प्रकार मत्राक्षरांक युक्त होने से यह भूवलय शंका रहित है।१४१।

नवकार मंत्र के आदि मे अरहन्त शिवपद कैलाश गिरि है, उनका निवास स्थान अतिशय श्री समवशरण भूमि है तथा जन्म और मरण का नाशक सहार भूमि है।१४२।

यह श्रेष्ठ भद्रकारण होने से मगल मय है, गुरु परम्परागत अङ्ग ज्ञान है, परमात्म सिद्धि के गमन मे कारण भूत होने से यह भूवलय श्री वर्धमान भगवान का वाक्याङ्क है।१४३।

नर, सुर तिर्यञ्च तथा नारकी जीवो को विविध भाति से सम्यक्त्व प्राप्त होता है। और उस सम्यक्त्व के प्रभाव से गोचरी वृत्ति द्वारा आहार ग्रहण करने वाले दिगम्बर मुनियो को चारित्रलब्धि प्राप्त होने का कारण हो जाता है, ऐसा श्री जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित वचन है।१४४।

यह वाक्य श्री ऋषभ तीर्थकरादि २४ तीर्थकरो के धर्म तीर्थ मे प्रवाहित होता हुआ आया तत्व है और यह तत्व जिन भव्य जीवो के वश में हो जाता है उनके संसार का शीघ्र ही अन्त हो जाता है।१४५।

द्वीप, सागर, गिरि, गुफा तथा जल गिरने के झरने आदि स्थानों मे जो निर्वाण भुमि है, वह मोक्ष गृह की नीव है, उस नीव को, बतलाने वाला यह परम मंगल भूवलय काव्य है।१४६।

वीर वाणी ओंकार स्वरूप है। उस ओकार से आया हुआ यह भूवलय काव्य है।१४७।

दिगम्बर योगिराजों ने उपर्युक्त तपोभूमियो मे ही काम राज का संहार किया है।१४८।

उपर्युक्त तपोभूमियो तथा दिगम्बर महामुनियों के कथन करने का धर्म ही विश्व काव्यांग रचना का धर्म है।१४९।

उस काव्य रचना की विद्या ६४ अक्षरों को घुमाना ही है।१५०।

इस क्रिया के द्वारा कर्मों की निर्जरा भी होती है।१५१।

यह श्री विद्या पुण्यबन्ध की इच्छा करनेवालों को पुण्यबन्ध करा सकती है।१५२।

इस परम पावनी विद्या के साधको को अखिल विश्व भंगलमय दृष्टि-गोचर होता है।१५३।

यह मंगलमय ६४ अंक विश्व का वैभव है।१५४।

जिस प्रकार एक छोटे से बीज का अंकुर कालान्तर मे महान् वृक्ष बन जाता है उसी प्रकार यह पुण्यांकुर वृद्धिगत होकर बहुत बड़ा वृक्ष बन जाता है।१५५।

यह मंगलमय क्षेत्र श्री जिनेन्द्रदेव भगवान का है।१५६।

इस क्षेत्र का ज्ञान अर्थात् विश्व दर्शन से समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है।१५७।

इस भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ में रहनेवाले अतिशयो का कथन वर्णनातीत है ।१५८।

यह श्री जिनेन्द्रदेव के उपदेश का अंक है ।१५९।

यह अंक विश्व के किनारे लिखित चित्र रूप है अर्थात् सिद्ध भगवान का स्वरूप दिखलाने वाला है ।१६०।

यह श्री बाहुबली भगवान के द्वारा विहार किया गया अंक क्षेत्र है ।१६१।

इसलिए यह भूवलय काव्य विश्व काव्य है ।१६२।

ऊपर द्वितीय अध्याय मे जो अंक लिखे गये है उन अंकों से समस्त कर्मो की गणना नहीं हो सकती । उन समस्त कर्मों की यदि गणना करनी हो तो १००००००००००००००० सागरोपम गणित से गिनती करनी होगी या इससे भी बढकर होगी । इन कर्मों की गणना करनेवाले शास्त्र को कर्म सिद्धात कहते है । वह सिद्धात भूवलय के द्रव्य प्रमाणानुग में विस्तृत रूप से मिलता है । वहां पर महांक की गणना करनेवाली विधि को देख लेना ।१६३।

अन्य ग्रन्थो मे जो डमरू बजाने मात्र से शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति बतलाई गई है, वह गलत है; क्योंकि डमरू जड़ है और जड़ से उत्पन्न हुआ शब्द ब्रह्म नहीं हो सकता । इतना ही नहीं उसमे गणित भी नहीं है और जब गणित नही है तब गिनती प्रामाणिक नहीं हो सकती यहां पर प्रमाण शब्द का अर्थ प्रकर्ष-माण लिया गया है । शुद्ध जीव द्रव्य से आया हुआ शब्द ही निर्मल शब्दागम बन जाता है । और वही भूवलय है ।१६४।

वर्तमान काल, व्यतीत अनादिकाल तथा आनेवाले अनन्त काल इन तीनों को सद्गुरुओं ने मंगल प्राभृत नामक भूवलय में कहा है । इसलिए यह भूवलय काव्य राग और विराग दोनों को बतलानेवाला सद्ग्रन्थ है ।१६५।

ओ एक अक्षर है और बिन्दी एक अङ्क है । इन दोनों को परस्पर में मिला देने से समस्त भूवलय 'ओं' के अन्दर आ जाता है । इसका आकार शब्द साम्राज्य है । इसलिए यह ओंकर, सुखकर तथा समस्त संसार के लिए मंगल कारी है ।१६६।

इस अङ्क को भंग करते आने से सारी व्याकुलता नष्ट हो जाती है ।१६७।

साकार रूपी अतिशय अङ्क ज्ञान है ।१६८ ।

यह अंग ज्ञान अथवा शब्दागम आकार रहित होने पर भी साकार है ।१६९।

जो साकार है वही निराकार है ।१७०।

इन अंकों को लाने के लिए एक, द्वि, त्रि चतुर भंगकरना चाहिए ।१७१।

इसी प्रकार पांच व छः का भी भग करना चाहिए ।१७२।

प्रयत्नों द्वारा सात व आठ भङ्ग करना चाहिए ।१७३।

इसी प्रकार उपर्युक्त भंगों में से यदि अन्तिम का दो निकाल दिया जाय तो ७१८ भाषाये आ जाती है ।१७४।

"ओ" और "अ" इन दो अक्षरों को निकाल देना चाहिए ।१७५।

संसार की समस्त भाषायें आ जाती हैं ।१७६।

श्री कार द्विसंयोग मे गर्भित है ।१७७।

यहां से यदि आगे बढ़ें तो ३ अक्षरों का भंग आता है ।१७८।

आकार का ६ भंग है । उन भंगो को ४ भंग में मिलाना चाहिए ।

।१७९-१८०।

आगे १६ भंग लेना ।१८१।

और ५ अक्षरों का भंग आता है ।१८२।

पुनः २५ अंग आ जाता है ।१८३।

उपर्युक्त समस्त अक्षरों को माला रूप में बनाना ।१८४।

तत्पश्चात् ७२ आ जाता है ।१८५।

और ५ अक्षरों का भङ्ग निकलकर आ जाता है ।१८६।

तदनन्तर १२० अंग आ जाता है ।१८७।

और ८ अक्षरों का भंग बन जाता है ।१८८।

तब ७२० अङ्क आ जाता है ।१८९।

इसमें से यदि २ निकाल दें तो ७१८ भाषाओं का भूवलय ग्रन्थ प्रकट हो जाता है ।१९०।

वह इस प्रकार है:—

१×२×३×४×५×६=७२०—२=७१८ ।

उपर्युक्त ७२० संख्या मे से यदि आदि और अन्त की २ सख्या निकाल दी जाय तो सर्व भापा निकलकर आ जाती है। उसमें ७०० क्षुद्र भाषा तथा १८ महाभाषा है ।१९१।

प्रतिलोम क्रम से आये ९ अक मे अनुलोम क्रम से आये हुये ९ अंक का भाग देने सें मृदु तथा मधुर रूपी देव-मानवों की भाषा उत्पन्न हो जाती है। इसका नाम महाभाषा है। जब महाभाषा उत्पन्न हो जाती है तब संसार की समस्त भाषाये स्वयमेव बन जाती है ।१९२।

ये सभी भाषाये सर्वज्ञ वाणी से निकली हुई है। सर्वज्ञ वाणी अनादि कालीन होने से गीर्वाग्वाणी कहलाती हैं। यही साक्षात् सरस्वती का स्वरूप हैं तथा सभी एक रूप होने से ओकार रूप है। अपने आत्मा की ज्ञान ज्योति प्रकट होने के कारण जिनवाणी द्वारा पढाया गया यही पाठ है ।१९३।

गिरि, गुफा तथा कन्दराओ मे ब्राह्याभ्यन्तर कायोत्सर्ग खडे होते हुये योग मे मग्न योगियो को यह अर्हन्त वाणी सुनाई पडती है। और ऐसा हो जाने पर योगी जन अपने दिव्य ज्ञान द्वारा सभी भाषाओ को गणित से निकाल लेते हैं। इसलिये इस भूवलय को गुरु परम्परागत काव्य कहते है ।१९४।

श्री वर्धमान जिनेन्द्र देव के मुख कमल अर्थात् सर्वांग से प्रकटित मगल-प्राभृत रूप तथा असदृश वैभव भाषा सहित है ।१९५।

इस काव्य को पढने से दिव्य वाणी के अक्षराङ्क का ज्ञान हो जाता है ।१९६।

यह भाषा ऋद्धि वश की आदि भाषा है ।१९७।

यह भाष, द्रव्यागम की भाषा है ।१९८।

यह भापा विष वाक्य अर्थात् दुर्वाक्य का संहार करने वाली है ।१९९।

इस भाषा को वशीभूत करने से आत्म ससिद्धि प्राप्त हो जाती है ।२००।

इस भाषा को सीखने से विषयों की आशा विनष्ट हो जाती है ।२०१।

६४ अक्षरो के भंग मे ही ये समस्त भाषाये आ जाती है ।२०२।

यह भाषा ब्राह्मी और सौन्दरी देवी की हथेली मे लिखित लिपि रूप मे है ।२०३।

यह रस त्यागियो का धर्म स्वरूप है ।२०४।

यह भूवलय ग्रन्थ अंक भंग से बनाया गया है ।२०५।

पारा सिद्धि के लिए यह आदिभंग है ।२०६।

यह यशस्वती देवी की पुत्री का हस्त स्वरूप है ।२०७।

उस यशस्वती देवी की हथेली कीरेखा से रेखागम शास्त्र की रचना हुई और वह शास्त्र भो इसी भूवलय मे है ।२०८।

सात तत्व के भागा हार से आये हुये आदि ब्रह्म वृषभ देव भगवान् के द्वारा प्राप्त यह भूवलय नाम की वाणी है। समस्त अकाक्षर को अपने अन्दर समावेश कर लेने के कारण इसमे विजय धवल के अन्तर्गत अक राशि ढेर ढेर रूप मे छिपी हुई है। इसलिये इस भूवलय को अतिशय धवल कहा गया है ।२०९।

इसमे ७१८ भाषाये माला के रूप मे देखने मे आती है। वे सभी अतिशय विद्या के श्रेणी से मिली हुई है। ३६३ मतो का अक के रूप से वर्णन किया गया है ।२१०।

इस भूवलय मे आने वाले धवल और महाधवल को यदि इसमे से निकाल दिया जाय तो इसमे दो ही भापा देखने मे आयेगी। तो भी उसमे ७१८ भाषाये सम्मिलित है। मगल पाहुड ऐसे इस भूवलय मे जीव के समस्त गुण धर्म का विवेचन किया गया है। इसलिये यहा इसमे से जय धवल ग्रन्थ को भी निकाल सकते है ।२११।

द्वादशाग वाणी मे अनेक पाहुड ग्रन्थ है। और अनेक आगम ग्रन्थ है। उन सब को विजय धवल भूवलय ग्रन्थ से निकाल सकते है। और उसी विजय धवल ग्रन्थ के विभाग मे अत्यन्त मनोहर देवागम स्तोत्र निकल आता है ।२१२।

इसलिये यह भूवलय काव्य महासिद्ध काव्य है ।२१३।

भगवान का वचन ही सिद्धान्त रूप होकर यहां आया है ।२१४।

श्री वीर जिनेन्द्र भगवान का वचन ही साम्राज्य रूप है ।२१५।

यह वनवासी देश मे तप करने वाले दिगम्बर मुनियों का भूवलय नामक काव्य है ।२१६।

विवेचनः—आदि पुराण मे दंडक राजा का वर्णन आया है। उन्हीं के

नाम से दंडकारण्य प्रचलित हुआ। वह राज्य कर्णाटक के दक्षिण भाग में हैं। आचार्य कुमुदेन्दु के समय मे इसे वनवासी देश कहते थे। उस समय में चत्ताण (चतु: स्थान) तथा बे दंडे (द्विपाद) इन दो नमूने का काव्य प्रचलित था। बे-दंडे काव्य का नमूना श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने १२ वें अध्याय के ३१ वें श्लोक में निर्दिष्ट किया है और "चत्ताण" काव्य भी समस्त भूवलय का सांगत्य नामक छन्द है।

यह भूवलय श्री जिनेन्द्र देव का वचन है।२१७।

यदि गणित की पद्धति से देखा जाय तो यह भूवलय अष्टम जिनेन्द्र श्री चन्द्रप्रभ भगवान के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।२१८।

इसी प्रकार यह भूवलय श्री शान्तिनाथ भगवान् का मार्ग भी है।२१९।

विवेचन:—श्री शान्तिनाथ भगवान् अगणित पुण्यशाली है। श्री ऋषभ नाथ तीर्थंकर भगवान भरत जी चक्रवर्ती तथा बाहुबली स्वामी कामदेव पद के धारी थे। किन्तु श्री शान्तिनाथ भगवान् अकेले तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा कामदेव तीनों प्रकार के वैभवों से सयुक्त थे। अत: वे बहुत बडे पुण्यात्मा कहलाते है। उनके द्वारा प्रतिपादित प्रशस्त मार्ग भी इस भूवलय के अन्तर्गत है।

यह "वेदंडे" काव्य श्री ऋषभनाथ भगवान् के समय से आया हुआ है।२२०।

श्री बाहुबली स्वामी अत्यन्त सुन्दर थे। उसी प्रकार यह भूवलय काव्य भी परम सुन्दर है।२२१।

इस भूवलय मे विश्व का समस्त सिद्धान्त गर्भित है २२२।

यह काव्य श्री जिनेन्द्रदेव की वाणी मे विद्यमान समस्त भावों को प्रदान करने वाला है।२२३।

यह भूवलय भाव प्रमाण रूप काव्य है।२२४।

यह श्री जिनेन्द्र देव का भाव प्रमाण है।२२५।

समस्त विश्व के अन्दर जितने भी तीर्थ है उन सबका वर्णन इस काव्य में दिया गया है।२२५।

यह भूवलय काव्य वनवासी देश के तीर्थ नन्दी पर्वत पर लिखा गया।२२७।

इसमें जो प्राणावाय (आयुर्वेद) विभाग है वह भल्लातकाद्रि अर्थात् "गुरु सुप्पे" (भिलावाद्रि) पर्वत पर जैन मुनियों द्वारा लिखा गया है।२२८।

इस विभाग में संसार की कल्याणकारी समस्त औषधियाँ निकल कर आ गई है।२२९।

इस ग्रन्थ के अध्ययन मात्र से पाप कर्मों द्वारा उत्पन्न सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते है।२३०।

इस ग्रन्थ के स्वाध्याय से आगन्तुक सहस्रों व्याधियां विनष्ट हो जाती है। इस लिये यह महा सौभाग्यशाली ग्रन्थ है।२३२।

यह भूवलय भगवान् का वचन रूपी महान् ग्रन्थ है।२३३।

भूवलय की व्याख्या में ३ क्रम है १ ला स्वसयम वक्तव्यता, २ रा पर-समय वक्तव्यता तथा ३ रा तदुभय वक्तव्यता है। इन तीनों वक्तव्यों में प्रधान स्व-समय है। सद्धर्म सागर में गोता लगाने वाले रसिक जनों के लिये यह परमा-नन्द दायक है। इस अध्याय में अध्यात्म सर्वस्व सार ओत-प्रोत भरा हुआ है। इसलिये यह मंगल प्राभृत नामक भूवलय का प्रथम भाग प्रसिद्ध है।२३४।

विवेचन—आत्म-तत्त्व का विवेचन करना स्वसमय वक्तव्यता है, इसके अतिरिक्त बाह्य शरीरादि का विवेचन करना पर-समय वक्तव्यता है तथा दोनों का साथ २ विवेचन करना तदुभय वक्तव्यता है।

नौ अंक से आया हुआ अर्थात् कर्म सिद्धान्त गणित से अवतार लिया हुआ धर्माक्षर रूपी यह अंक ध्यान है। इसयिये यह भूवलय काव्य स्व समय रूप, भद्ररूप तथा मंगल स्वरूप है।२३५।

यह भूवलय ग्रन्थ श्री जिनेन्द्र देव की वाणी से निष्पन्न होने से प्राभृत तथा विश्व काव्य है। इसका स्वाध्याय करने से मोक्ष पद प्राप्त हो जाता है और मोक्ष के लिए सरल मार्ग होने से यह अतिशय धवलरूप है।२३६।

जिस प्रकार श्री जिनेन्द्र देव के ८ प्रातिहार्य होते है उसी प्रकार नन्दी पर्वत भी ८ विभागों से विभक्त होने से अष्टापद पर्वत कहलाता है। अष्टम जिनेन्द्र देव श्री चन्द्रप्रभ का वैभव होने से यह अतिशय-धवल नामक शुभ्रांग है।२३७।

श्री जिनेन्द्र देव के आराधक भक्त जन अर्थात् दिगम्बर जैन मुनि अपनी बुद्धि की विशेपता से विविधि भाति की युक्तियो से श्री भूवलय का व्याख्यान वडे सुन्दर ढग से किया है। इसलिये समस्त भाषाओ से समन्वित भूवलय मृदु एव मधुर है और मगलकारी है।२३८।

यह दशवाँ ऋ अक्षर का अध्याय है। जिस प्रकार मरकत मणि अत्यन्त शुभ्र व दीप्तवान् होती है उसी प्रकार इस अध्याय के अन्तर काव्य मे पाँच, नौ, सात, पाच और एक अर्थात् १, ५, ७, ६, ५, अक्षर रहने वाला ऋ भूवलय है।२३६।

श्रेणीबद्ध काव्य मे मूलाक्षर का अक आठ, चार, सात और आठ अक प्रमाण है। यही श्रेणीबद्ध काव्य का भंगाक है।२४०।

ऋ ८, ७,४,८+अन्तर १५७६५=२४, ५४३

अथवा

अ—ऋ १, ७६, ०२२+२४, ५४३ = २,००,५६५ ।

सम्पूर्ण

ऊपर से नीचे तक यदि प्रथमाक्षर पढते जायँ तो प्राकृत भाषा निकलती है। उसका अर्थ इस प्रकार है:—

ऋपिजनो मे सुग्रीव, हनुमान, गवय, गवाक्ष, नील, महानील, इत्यादि ९९ कोटि जनो ने तु गीगिरि पर्वत पर निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया। उन सबको हम नमस्कार करेंगे।

इसी प्रकार ऊपर से यदि नीचे तक २७ वां अक्षर पढते जायँ तो सस्कृत गद्य निकल आता है। वह इस प्रकार है—

नतया शृण्वन्तु— मंगलं भगवान् वीरो मंगल भगवान् गौतमोगणी।
मंगल कुन्दकुन्दाद्या जीव धर्मोऽस्तु मंग ॥

दसवां अध्याय

ऋ॰ पि अरूपियागिरुव द्रव्यागम । दापद्धतियोळगंक ।। ताप लं॰ नक्षर दोळगे कूडिसुवन्क । श्री पद द्वयवु भूवलय ।।१।।

आ॰ दिय अतिशय मंगल पर्याय । दादियन्काक्षर कूट ।। नाद म॰ अदे जीवनरि वेन्नुतिह ज्ञान । साधने यध्यात्म योग ।।२।।

म॰ नदर्थियिन्द मगल पर्यायवनोदे । जिन धर्म तत्व ञ॰ लेलल ।। तनगे ताने तन्न निजवनु तोरिप । घनविद्यासाधने योग ।।३।।

सु॰ न्नर किन्नर ज्योतिष्क लोकद । घनव श्री जिन देवालयद् ।। ल॰ णधव्य श्री जिन बिम्ब कृत्रिमा कृत्रि । मेनेसान्क गणनेयोळदिवु ।।४।।

दो॰ षविनाशन श्रीश श्री मन्दर । देशन दरुशन माडि ।। राशिय म॰ पुण्यव रूपिनिम् गळिसुव । ईशर भजिसे मन्गलवु ।।५।।

श्री शन पुण्य सद्ग्रन्थ ।।६।। राशिय पाप विनाश ।।७।। ईशनु पेळिद ग्रन्थ ।।८।। राशिय पुण्यद गणित ।।९।।

ईशन भक्तिय गणित ।।१०।। दोष अष्टादश गणित ।।११।। श्री शन सद्धर्म गणित ।।१२।। राशिय पुण्यद गणित।।१३।।

ईशन ज्ञानद गणित ।।१४।। दोष अष्टादश गुणित ।।१५।। श्रीशन सद्धर्म गुणित।।१६।। राशिय पुण्यद ज्ञान ।।१७।।

ईशन चारित्र गणित ।।१८।। दोष अष्टादशदरित ।।१९।। श्रीशन सद्धर्म ज्ञान ।।२०।। कोशद ज्ञान विज्ञान ।।२१।।

ईशन चारित्र सार ।।२२।। दोष अष्टादश रहित ।।२३।। श्रीशन सद्धरम गुणित।।२४।। आशेय भव्यर भक्ति ।।२५।।

ईशरिप्पत् नाल्वरन्क।।२६।। कोषद काव्य भूवलय ।।२७।।

दो॰ षगळलियबेकेम् बाशेयिहरेल्ल । राशेयम् गुरुतिस्इ हरु स॰ ।। देश ज्ञानव सम्पूर्ण वागिसि कोन्ड । देसिय भाषांक काव्य ।।२८।।

ण॰ वदन्क वेन्देने अरहन्त रादियिम् । नव तीर्थगळन् द र॰ शनदि ।। अवनिय पूजेगे विनयोगवेन्नुद । शिव पददन्तवेदरिया ।।२९।।

णि॰ जदहत् अन्कवे साधित भव्य । विजयांक वेन्दरि अ व॰ नु ।। भजिसुत बरुवाग नवपद सिद्धियु । विजय माडुवुदेन् अरिदे ।।३०।।

ज॰ य सिद्धियाद हत्न्क महाव्रत । दयतदे बंद सन् मा॰ र्ग ।। दये दानवेल्लव निरदित्तु भजकर्गे । नय प्रमाणवनु तोरुवुदु।।३१।।

ण॰ णद सामान्य प्रस्थारदन्कव । ज्ञान साम्राज्य ध्वज न॰ व ।। श्री नेमिनाथांक वेन्दरि परमात्म । अनन्द कल्याण करण ।।३२।।

ज्ञान वरभवकर काव्य ।।३३।। श्रीनिवासद दिव्य काव्य ।।३४।। आनन्ददायक काव्य ।।३५।। ऊनवळिद दिव्य काव्य ।।३६।।

काणिय भद्र मन्गलवु।।३७।। तानल्लि काणिप मन्त्र ।।३८।। ताने शुद्धोपयोगांक ।।३९।। आनन्द साम्राज्य गणित ।।४०।।

काणिप शिव सव्ख्यभद्र ।।४१।। तानल्लि काणिप तन्त्र।।४२।। जोणि पाहुडदानि ग्रन्थ ।।४३।। आनन्द साम्राज्य गुणित।।४४।।

काणिप सूक्ष्म विन्यास ।।४५।। तान्ल्लि काणिप मूर्ति।।४६।। क्षोणियनलेव सत्कीर्ति ।।४७।। आनन्द साम्राज्य ज्ञान ।।४८।।

दान दयामय ग्रन्थ ।।४९।। मानवरेल्लर कीर्ति ।।५०।। जैनागमद दर्शनवु ।।५१।। क्षोणि जगानन्द रूप ।।५२।।

ताने तानाद भूवलय ।।५३।।

ला॰ वण्य लिपियन्द वेन्तेम्ब ब्राह्मिगे । देवनु नन्नय म ग ळे ।। नाविल्लि अक्षर ब्राह्मियोळ् पेळ्ळवु । देवाधिदेव वाणियणु ।।५४।।

ड॰ ण ठण वेन्नुत येळलागुव मात। जिनवाणि श्रीभद्रिसपरिय ल॰ ।। घनवाद अक्षरदादिय 'अ' क्षर । कोनेगे 'पः' अक्षर बरलु ।।५५।।

ण॰ वदंक गणनेय नवपद भक्तियिम् । सविय क्षरद् अव य॰ ववम्।। सवणर्गेअरवत् नाल्कन्कदिम्पेळुव। नवम बंधांक वंदरिया।।५६।।

[illegible] ।।वशगोन आ [illegible] ये अरव नाल्क अंकद । यशव [illegible] खियाङ ।। [illegible]

न्* ववक वरुवन्दवेन्येनुदु केळुव । युवति सवनुदरिगे स* मस्त।। सवियंक ओमुदेरळमूरुनाल्कयुदारेलु। नवसृष्टिएन्दु ओम्वत्तुगळु।५८
दा* न माडिद देव तन् एडगय्यिन । अनन्ददमुरुतान्गुलिय र्* ताणवनाकेय एडगय्य अमृरुतद । ताणदनुगुलिय मूलदलि ।।५९।।
ण* मोकार मन्त्रद क्षरगळनाकेयु । गमनिसिरनुअ च्चोत्तिरु व* विमलांक रेखेय आदिमदनुत्यद । सम विषम स्थानगळनु ।।६०।।

अमलद् अनुतरद रूपवनु ।।६१।। क्रम बंद्धगोळिप योगवनु ।।६२।। सम विषमादि सर्ववनु ।।६३।।
अमलद् अनुतरद रेखेयनु ।।६४।। क्रम बद्धगोळिप भाववनु ।।६५।। सम विषमांक भागवनु ।।६६।।
विमलद् अनुतरद सत्ववनु।।६७।। क्रम बद्धगोळिप भागवनु ।।६८।। सम विषमांक लेक्कवनु ।।६९।।
कमलद् अनुतरद सत्ववनु ।।७०।। क्रम बद्धगोळिप द्रव्यवनु।।७१।। मम विषमांक गणितव ।।७२।।
गमकद् अनुतरद सत्ववनु ।।७३।। क्रम बद्धगोळिप गमकवम् ।।७४।। सम विषमांक कूटवनु ।।७५।।
यमकद् अनुतरद सत्ववनु।।७६।। क्रम बद्धगोळिप शून्यवनुम्।।७७।। रस विषमांक लब्दवनु ।।७८।।
श्रम हरद् अतिशयांकवनु।।७९।। क्रम बद्धगोळिप विद्येयनुम् ।।८०।। सम शून्य काव्य भूवलय ।।८१।।

प* ददक्षरांकद भागव तरुवनुक । विधवनु तिळियमुम स क* ल।। विधद द्रव्यागम श्रुतविद्येयनुकद । पदवे मंगलद पाहुडवु ।।८२।।
न्* वपद बद्धदक्षर विद्ये बेकेम्ब । निवगीग अतिशय क ल्* या ।। रणव पेळ्व आगम कर्म सिद्धांतद । अवयव विदरोळ् पेळुवेवु।।८३।।
च* रितेयोळ् बरेदिह सरस्वतियम्मन । परियनरितु साकल् या* अरहन्त विद्यद केवलज्ञानद । परियतिश यव केळमुम ।।८४।।

करुणेयक्षरव केळम्म ।।८५।। अरिय गेल्लुवुद केळमुम ।।८६।। परमन अतिशय धमुम ।।८७।।
धरेय मंगल काव्यवम्म ।।८८।। करुणेय क्षरदनुकवम्म ।।८९।। अरिय गेल्लुवुदे सिद्धांत ।।९०।।
परमन अतिशय धवल ।।९१।। धरेय मंगलद पाहुडवु ।।९२।। करुणेय साम्राराज्यवम्म।।९३।।
अरिय गेल्लुवुदे मंगलवु ।।९४।। परमन भूवलयांक ।।९५।। धरेय जीवर काव्यानुग ।।९६।।
गुरुगळ साम्राज्य वम्म ।।९७।। अरि गेल्दवरंक वम्म ।।९८।। परमन गम्भीरदनुक ।।९९।।
धरेय जीवर सौभाग्य ।।१००।। अरहन्त साम्राज्यवम्म ।।१०१।। अरिय गेल्दवर क्षरांक ।।१०२।।
परमन गम्भीर वचन ।।१०३।। धरेय जीवर चारित्र ।।१०४।। सरस्वती साम्राज्य वमुम।।१०५।।
अरिद गेल्दवर सिद्धांत ।।१०६।। परमन गम्भीर दान ।।१०७।। परमात्म सिद्ध भूवलय ।।१०८।।
नरसुरवनुद्य भूवलय ।।१०९।। परमाप्तअ सिद्ध भूललय।।११०।। गुरुगळनुगय्य भूवलय ।।१११।।

को* टि कोटाकोटि सागरदळतेय। गूट शलाके सूचिगळ।। मेटियपद ण* वकार मन्त्रदे बह । पाटियक्षरद लेक्कगळम् ।।११२।।
ङ्* क्कामुरुदनुगादि सर्व शब्दागम । दकुकदक्षरद अन् का* दि।। तक्करेरवागमवर्णदागमकाव्य। सिक्कदुकुरनवुर्यदागमदि।।११३।।
ङि* नुडीरदोळु बंद सर्व शब्दागम । अन्डदक्षरद् वश र* ववु ।। खन्डित वागु वुदरि काल क्षेत्रद । पिण्डवु नित्य बाळुवुदु।।११४।।
ओ* मुकारदिम् बंद सर्व शब्दागम । दन्कदक्षरद् अन् क* नित्य।। शमुकेगलेळ्ळव परिहर माडुव। समुकर दोष विरहित ।।११५।।

ओम्कार भद्र स्वरूप ।।११६।। ओमुदनुक ओमुदे अक्षरवु ।।११७।। ओमुदनु बिडिसुव क्षरवु ।।११८।।

ओम्दंक स्वर नव पदवु ॥११९॥ ओम्कार भद्र मंगलवु ॥१२०॥ ओम्दंक भन्ग अक्षरवु ॥१२१॥
ओम्दनु बिडिसुव अन्क ॥१२२॥ ओम्दन्क वदुवे वर्णगळु ॥१२३॥ ओम्कार सर्व मंगलवु ॥१२४॥
ओम्दन्क वदु शुद्धाक्षरवु ॥१२५॥ ओम्दनु बिडिसलु सर्व ॥१२६॥ ओम्दन्क वदयोग वाह ॥१२७॥
ओम्कार दिव्यनिनाद ॥१२८॥ ओम्दन्क परमात्म वाणि॥१२९॥ ओम्दनु भजिपनु योगि ॥१३०॥
ओम्दन्क अरवत्नाल्कागि॥१३१॥ ओम्कार ताने तानागि ॥१३२॥ ओम्दन्क सिद्ध स्वरूप ॥१३३॥
ओम्दनु सर्ववेन्दरिया ॥१३४॥ ओम्दन्कव् इप्पत्तु बिडिय॥१३५॥ ओम्कारदन् एरड्अन्ग ॥१३६॥
ओम्दन्क भन्गव माडे ॥१३७॥ ओम्ददु तोम्बत् एरडन्क ॥१३८॥ ओम्दन्क भन्ग भूवलय ॥१३९॥

पा॰ पविनाशक पुण्य प्रकाशक । लोपविल्लद शुद्धरूप ॥ ताप म॰ लिसि मोक्षव तोर्प ओम्कार । श्रो पद ओम् बत्तरन्क ॥१४०॥
व॰ शवागलके ओम् कारव कूडलु । यशदादि हत्अन्कवदनु ॥ प्र॰ शमादि गुणठाणदतिशयदन्कवु । ओसरुत ज्ञानाक्षरांकम् ॥१४१॥
आ॰ शेय अक अइउऋऌए ऐ ओ औ । राशियोम् बत्त स्वर धा॰ ॥ आशेयिम ह्रस्व दीर्घ प्लुत मूरिम । राशिय गुणव् इप्पत्एळु॥१४२॥
गि॰ रियन्रदन्दद आआईअरी। सर ऊऊऋ ऋॡ ॡ ॥ वर एएऐऐ नं॰ ओ ओ औ औ । सवरगळे दीर्घ प्लुतगळु ॥१४३॥
रि॰ द्धिय ओम्बत्उ स्वरगलु मूररिम् । शुद्धियिम् गुउएइ स॰ लु बरुव॥ मुद्दिन्इप्पत् एळुक् खगघ्ज् ऐदु। शुद्ध च्छ्ज्झ्ञ् ऐदु॥१४४॥

होद्दिसि ट् ठ् ड् ढ् ण् गळ ॥१४५॥ सिद्धसि त् थ् द् ध् न् वनु ॥१४६॥ शुद्धद प् फ् ब् भ् म ऐदु ॥१४७॥
रिद्धियोळ् गुणिस् इप्पत्ऐदु॥१४८॥ बद्धयर् ल् व् श् ष् स् ह् व ॥१४९॥ सिद्धअंअ:क:फः नाल्क्अम॥१५०॥
शुद्धव्यन्जन मूवत्मूरम् ॥१५१॥ इद्द नाल्क्अ योगवाहगळ ॥१५२॥ होद्दलु मूवत्एळ अंक ॥१५३॥
बद्धवाद अरवत्नाल्कु ॥१५४॥ शुद्धदक्षरदंक गळनु ॥१५५॥ उद्दव कूडलु हत्तु ॥१५६॥
होद्दिसला हत्ते ओम्दु ॥१५७॥ शुद्ध १ दे ओम्दु अंक ॥१५८॥ शुद्धांक ओम्दे अक्षरवु ॥१५९॥
रिद्धियोळ् आदिम् भंग ॥१६०॥ बुद्धिगे सिलुकिहुद् अंग ॥१६१॥ सिद्धान्त सागरदंग ॥१६२॥
सिद्धर तोरुव भन्ग ॥१६३॥ शुद्धांक गुणकारद् अंग ॥१६४॥ रिद्धिय तोरुव भन्ग ॥१६५॥
सिद्ध सम्सिद्धद भन्ग ॥१६६॥ बुद्धि प्रकर्षाणु भंग ॥१६७॥ रिद्धि प्रकाशदणु भंग ॥१६८॥
सिद्धत्व दर्वादि भंग ॥१६९॥ सद्दलिदरे सिद्धरन्ग ॥१७०॥ शुद्ध साहित्य भूवलय ॥१७१॥

व॰ शवाद कर्माटक देनुदु भागद । रस भंगद् दक्षरद स र॰ व॥ रस भावगळनेल्लव । कूडलु बनुदु । वशव एळनूरह दिनेनुदुभाषे॥१७२॥
र॰ मणीयवादादिम भन्ग समयोग । दमलांकद् ओन्दु अक्षर व ॥क्रमदोळग्ओम्दरिम् गुणिस् अरवत्नाल्कु। विमलांक हुद्दवुद्अरिया॥१७३॥
सि॰ रिसिद्धम ई ओम्दम् बरेदुकोन्डदरोलु । अरहन्त शुद् ध॰ रोळ्'अ'वनु॥ सिरिअशरीररसिद्धर'अ'आदि। सिरिआइरियदोळ्'आ'दि१७४
ह॰ रडिद ई मूरु'आआआ' अक्खव।बरेदुकूडलु 'आ'बहुदु॥ वरध र्मा॰ चरणेगादिय 'आ' बरे मुन्दे। बरेवुदु उवज्रूयदादि ॥१७५॥
रे॰ खेयोळ् अनतदे साधुगळ् मउनिगळ। श्रीकरदादिम'म' श्रम णां॰ ॥ साकल्यव कूडे ओमकारवप्पुदु । सौख्य सर्वद मंत्र बहुदु ॥१७६॥

- ह ·र ॥ ७८॥ साकल्यव ‍डे ओमद ॥१७९॥

परा़कट परब्रह्म दत्तग ॥१८०॥ आकलन कद जीव तत्व ॥१८१॥ साकल्य भंगद अंत ॥१८२॥
साकल्यव कूडे सर्व ॥१८३॥ प्राकट परब्रह्म भग ॥१८४॥ आकर द्रव्यागमवु ॥१८५॥
साकल्य भंगद मध्य ॥१८६॥ साकल्यव कूडे मध्य ॥१८७॥ प्राकट परब्रह्म भद्र ॥१८८॥
आकरवा द्रव्य भावा ॥१८९॥ साकल्य अरवत्नालकु ॥१९०॥ साकल्य शब्दागमद १९१॥
प्राकट परब्रह्म तत्व ॥१९२॥ साकल्यानकद कक्र मोत्त ॥१९३॥ शाफट कर्म समहारि ॥१९४॥
साकलागम द्रव्य रूप ॥१९५॥ एकान्क सिद्ध भूवलय ॥१९६॥

रिण* ज शब्ददादिय ओम्कार ओम्दनु । विजय धवलवन्आगिसि जी* ॥विजयव होन्दिद परब्रह्म विन्तागे भजिय योगिगळन्द बेरे ॥१९७॥
व* शवाद् इप्पत् एळु स्वरदोलु 'ओ' बरे । हुसिय ऐदक्षर व* शद॥ रसकूटवेतके ओ ओम्दु एननदे। ऋषिगळन्कवेओ ओम्दंक ॥१९८॥
वा* दिगळेल्लर वादवदिन्तागे । श्री दिव्यवाणिय मर्म॥ दादिय म* भेदिसि तिळिव सम्यग्ज्ञान साधनेय् अरवत्नालक् अन्क ॥१९९॥
ण* वदन्कवदनु ओम्बत्एन्दु पेळुव । नव पद भक्तिय वि ज* य ॥ दवनिय हत्अलु अरवत्नालक्अन्क। दव नयल्लवु ओम्दक ॥२००॥
ग* मनिसि नोडलन्द अक्षर ओम्दु । समदन्क बिडियागे ज य* दे॥ क्रमद् ओम्दु कर्माटकद समन्वय। अमम विस्मयद सामान्य।॥२०१॥
या* वाग कर्म सामान्यव नोडेवेवो। आवाग एनदु रूप्गि॥ तावदु तु* ळियलु सम्ख्यात । दा विश्वानन्तान्क बहुदु ॥२०२॥

दाविश्व व्यापियागुवुदु ॥२०३॥ जीवर नन्तान्क गणित ॥२०४॥ सावु हुद्उगळ अनन्त ॥२०५॥
देवन अरिकेयनन्त ॥२०६॥ श्री वीरनरिकेय अन्क ॥२०७॥ जीवरनलेसुव कर्म ॥२०८॥
जीवराशिय कर्माटकवु॥२०९॥ दा विश्व कर्मदनन्त ॥२१०॥ कावववरारिल्लद अन्क ॥२११॥
जोवर नलेसुव अन्क ॥२१२॥ जीव राशिय गणितांक ॥२१३॥ पावन जीव घातांक ॥२१४॥
भावद कर्मांक गणित॥२१५॥ जीवर नलेसुव गणित ॥२१६॥ जीव जीवर गणितांक ॥२१७॥
पावन जीव ज्ञानांक ॥२१८॥ तीवलक्षरव् अर्वत्नालकु ॥२१९॥ तावल्लि ओम्दे आदन्क ॥२२०॥
श्रो वीरवाणि ओम्बत्तु ॥२२१॥ ई विश्व काव्य भूवलय ॥२२२॥

ण* वपद भक्तिये अणुव्रतकादियु । अवरु श्री जिनदीक्षे वहि श्* ए ॥ नवदक एंटरिम् एळरिम् । सव भाग 'सोन्ने काणुवरु ॥२२३॥
मो* हदंकवदेष्टु रागदन्कवदेष्टु । साहसि द्वेषांकद आ* ळा ॥ मोहद्वेषवळिदाग आत्मन । रूहिद ज्ञान्क्वेष्टु ॥२२४॥
ते* रस गुणठाणदेरिद आत्मन । सारॉक दर्शनदक ॥ भार स* गुरुठाण सार चतुर्दश । वेरिनन्तांक (सन्ख्यात) वेष्टु ॥२२५॥
सि* ववागलात्मनेरिद सिद्धलोकद । अवतारदादिम जोव ॥ अव न* ष्ट गुणगळ (अवनष्टु ज्ञानद) व्यापृति एष्टेम् बन्क दवनु (अतिशय धवल) सिद्ध भूवलय ॥२२६॥
म्* नसिज हणनवु हदिनाल्कु साविर मुन्नूए। तनि मूत्तर्हत् ओ म्* वत् अंत ॥ (एंदु साविरद्हत् ओम्) ओन्बत् ओमदु सोन्नेयु एंदु॥ तनुवेल्ल ओमद् 'ऋ' भूवलय ॥२२७॥

ऋ ८,०१९—अन्तर १,४३१९=२२,३३९ अथवा अ-ऋ २,००,५६५+ऋ २२,३३८=२,२२,९०३

ग्यारहवां अध्याय

यह भूवलय सिद्धान्त रूपी द्रव्यागम भी है और अरूपी द्रव्यागम भी। इसलिए इसकी रचना अंक पद्धति रूप से की गई है ऐसा होने से अक्षर मे अंक मिलाने की शक्ति उत्पन्न हुई। अंक और अक्षर दोनों भगवान के दो चरण स्वरूप है और वही यह भूवलय है।१।

श्री ऋषभनाथ भगवान के समय में सर्व प्रथम अतिशय मंगल पर्याप्त रूप से अंक और अक्षर का सम्मेलन हुआ। तत्पश्चात् दोनों के संघर्षण से जो नादब्रह्म (शब्द ब्रह्म) प्रकट हुआ वही जीव द्रव्य का ज्ञान है और सभी जोवों को इसी ज्ञान की साधना करनी चाहिए, क्योकि यह अध्यात्म योग है।२।

उस अकाक्षरी विद्या को योगी जन प्रत्यक्ष रूप से देखते है; किन्तु सामान्य जन भूवलय रूप उस ज्ञान निधि का स्वाध्याय करते है। तदनन्तर जैन धर्म का समस्त तत्त्व अपने अपने स्वरूप से प्रत्यक्ष हो जाता है। इस प्रकार धन विद्या साधन रूप महायोग है।३।

सुर, नर, किन्नर तथा ज्योतिष्क लोक के घन स्वरूप को, उस लोक में रहनेवाले कृत्रिम-अकृत्रिम श्री जिनेन्द्र देव के देवालय तथा जिनविम्ब इन सबको अङ्क गणना से योगी जन यथावत देखकर ठीक ठीक जान सकते हैं।४।

समस्त दोषों के नाशक विदेह क्षेत्र में रहनेवाले श्री सीमन्धर स्वामी का दर्शन करके, अतिशय पुण्य कर्मराशि का संचय करके तथा निरन्तर श्री जिनेन्द्र देव का भजन करके योगी जन मंगल पर्याय रूप बन जाते है।५।

यह भूवलय ग्रन्थ भगवान के अतिशय पुण्य का गान करने वाला है।६।

इस सिद्धान्त ग्रन्थ के स्वाध्याय से शनैः शनैः समस्त पापों का नाश हो जाता है।७।

इस सद्ग्रन्थ का उपदेश श्री जिनेन्द्र भगवान ने स्वयं अपने मुख कमल से किया है।८।

भगवद्भक्ति से उपार्जित हुई पुण्य राशि की गणना विधि को सिखलाने वाला यह गणित शास्त्र है।९।

भगवान की भक्ति का जितना अंक है वह भी सिखानेवाला यह गणित है।१०।

समस्त संसारी जीवों में क्षुधा-तृषा आदि अठारह दोष हैं। इन सबकी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।११।

श्री जिनेन्द्र देव ने धर्म के साथ सद्धर्म को जोड़कर उपदेश दिया है। उस सद्धर्म के स्वरूप की गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१२।

अगणित पुण्यराशि की भी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१३।

भगवान का केवल ज्ञान अनन्तानन्त है अर्थात् भगवान में अनन्तानन्त जीवादि पदार्थो को देखने तथा जानने की अद्भुत शक्ति होती है। उन सबको अलौकिक गणित से गिनने वाला यह गणित शास्त्र है।१४।

अठारह प्रकार के दोषो की गणना को गुणा करके सिखानेवाला यह गणित शास्त्र है।१५।

इसी प्रकार श्री जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये सद्धर्म को भी गुणा करके सिखलानेवाला यह गणित है।१६।

यह गणित शास्त्र स्वयमेव उपार्जन किये हुए पुण्य की गणना सिखाने वाला है।१७।

भगवान जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित चारित्र की गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१८।

अठारह प्रकार के दोषों के विनाश होने से जो गुण उत्पन्न होता है उन सबकी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१९।

सद्धर्म पालने से जितने आत्मिक गुणों की वृद्धि होती है उन सबका ज्ञान करानेवाला यह गणित शास्त्र है।२०।

यह गणित शास्त्र समस्त ज्ञान-विज्ञान-मय शब्द कोष से परिपूर्ण है।२१।

यह गणित शास्त्र अंतरंग चारित्र को बतलानेवाला है।२२।

यह चारित्र में आनेवाले दोषों को हटा देने वाला है।२३।

यह भगवान के द्वारा प्रतिपादित सद्धर्म मार्ग में सभी को लगानेवाला है।२४।

भक्ति की आशा रखकर भव्य जन गणित शास्त्र के ज्ञान को बढा लेते हैं। २५।

चौबीस तीर्थंकरों के गुणगान करने से ही समस्त गणित शास्त्रों का ज्ञान हो जाता है।२६।

समस्त भाषाओ के समस्त शब्द कोष इस भूवलय ग्रन्थ मे उपलब्ध हो जाते हैं।२७।

समस्त दोषों को नाश करने की आशा रखनेवाले भव्य जनों की वांछा को योगी जन इस गणित शास्त्र द्वारा जान लेते है। और एक देश ज्ञान को सम्पूर्ण बनाने का जो उपदेश देते हैं वह देशी भाषा में रहता है तथा वही यह भूवलय ग्रन्थ है।२८।

अर्हन्त भगवान से लेकर ९ अक पर्यन्त का अंक ९ तीर्थ स्वरूप है। उनके दर्शन करने से भव्य जीवों को गणित शास्त्र का विनियोग करने की विधि मालूम हो जाती है। उसके मालूम हो जाने पर मोक्ष पद प्राप्त करने का सरल मार्ग भी मिल जाता है।१९।

उत्तम क्षमादि दस धर्म को भव्य जनो का साधन करने का सत्य धर्म है, वही आत्मा का विजयाकुर है। उन्ही दस धर्मो को ध्यान करते समय स्वयं अर्हंतादि नौ पदो की सिद्धि प्राप्त करने मे क्या आश्चर्य है।३०।

ऐसी विजय को प्राप्त करादेने वाला दस क्षमादि धर्म महाव्रत से प्राप्त होता है। दया, दान इत्यादि सब आत्मिक गुणो को प्राप्त कराकर नय और प्रमाण इन दोनो मार्ग को बतलाता है।३१।

सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञान एक है, विशेष रूप से देखा जाये तो पाच प्रकार का है, संख्यात स्वरूप तथा असख्यात स्वरूप भी है। इस रीति से ज्ञान को गणित विधि से प्रसारित कर अ क रूप से बना ले तो ज्ञान साम्राज्य रूपी ध्वज हो जाता है। इस ध्वज को नमिनाथ जिनेन्द्र देव ने फहराया। इसलिए कल्याणकारी हुआ। इसका नाम आनन्ददायक करण सूत्र है। इस करण सूत्र को जिनेन्द्र भगवान ने सिखाया।३२।

यह भूवलय के ज्ञान के वैभव को बतानेवाला है।३३।

समवशरण मे भगवान की दिव्य ध्वनि से निकला हुआ यह भूवलय काव्य श्री निवास काव्य है।३४।

यह काव्य सम्पूर्ण जगत् के लिए आनन्ददायक है।३५।

इस दिव्य काव्य मे किस विषय की कमी है ? अर्थात् किसी की नही।३६।

समस्त मङ्गलरूप भद्रस्वरूप को, यह काव्य दिखाता है।३७।

इस मंगल रूप काव्य णमो अरहंताणं इत्यादि रूप समस्त मन्त्रो को दिखाता है।३८।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से योगियो को शुद्धोपयोग मिल जाता है।३९।

यह भूवलय शास्त्र गणित विद्या का आनन्द साम्राज्य है।४०।

मोक्ष लक्ष्मी से उत्पन्न मंगलमय सौख्य को प्रदान करनेवाला यह भूवलय काव्य है।४१।

अनेक युक्ति से मुक्ति लक्ष्मी से प्राप्त होनेवाले सुख का दिखानेवाला यह काव्य है।४२।

सब शास्त्रों का आदि ग्रन्थ योनिपाहुड है अर्थात् उत्पत्ति स्थान है। उन सब उत्पत्ति स्थानों को दिखानेवाला यह ग्रन्थ है।४३।

गणित की विधि मे सबको क्लेश होता है, यह भूवलय का गणित शास्त्र ऐसा न होकर आनन्ददायक है।४४।

नाट्य शास्त्र मे पटविन्यास एक सूक्ष्म कला है, उस कलामय भाव को गणित शास्त्र मे बताने वाला अर्थात् परमात्मा मे बतलानेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।४५।

गणित शास्त्र और अक शास्त्र ये दोनो अलग अलग हैं, इन सबका स्वरूप दिखानेवाला यह ग्रन्थ है।४६।

समस्त पृथ्वी अर्थात् केवली समुद्घात गत भगवान के शरीर रूपी विश्व को नापने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।४७।

इस भूवलय ग्रन्थ के अध्ययन करने से ज्ञान रूपो आनन्द साम्राज्य की प्राप्ति हो जाती है।४८।

दया धर्म के सूक्ष्मअतिसूक्ष्म से लेकर बृहद पर्यन्त दान देने को अनन्त दान कहते है। उसे बतलानेवाला यह भूवलय है। ४६।

यह अनन्त दान समस्त मानवो की कीर्ति स्वरूप है।५०।

दान के स्वरूप को बतलानेवाला यह ग्रन्थ जैनागम का दर्शन शास्त्र है।५१।

इस पृथ्वी में रहनेवाली समस्त जनता को यह दान क्रमशः आनन्द प्रदान करनेवाला है।५२।

इस रीति से दानमार्ग को चलाने में यह भूवलय ग्रन्थ अद्‌भुत् अचिन्त्य है।५३।

विवेचनः—

भूवलय के दानमार्ग प्रवर्तन का क्रम इस प्रकार है:—

१-आहार २-अभय ३-औषधि तथा ४-शास्त्र इन चारों को मुख्य बताया है। इन चार प्रकार के दानो मे ज्ञान दान की प्रधानता इस अध्याय में रहती है। और ज्ञान अक्षर रूप रहता है। वे ज्ञानात्मक अक्षर यदि लिपि रूप से बन जाय तो उपदेश देने लायक बन जाता है। इसलिए लिपि की उत्पत्ति के क्रम को आचार्य बतला रहे है.—

ब्राह्मी देवी ने अपने पिता श्री आदिनाथ भगवान से पूछा कि हे पिता जी! लावण्यरूपी अक्षर की लिपि कैसी रहती है? ऐसा प्रश्न करने पर भगवान ने कहा कि सुनो बेटी! अब हम भगवान की दिव्य ध्वनि को तुम्हारे नाम से अक्षर ब्राह्मी में कहते हैं।५४।

दिव्य ध्वनि जय घंटे के नाद के समान निकलती है। वह सभी ॐ के अन्तर्गत है। इस दिव्य ध्वनि का आद्यक्षर "अ" से लेकर अन्तिम :: तक ६४ अक्षर है। ५५।

९ अंक की गणना करने से ९ (नव) पद भक्ति मिल जाती है। वही अक्षर का अवयव है। श्रावकों को ६४ अंक से उपदेश देनेवाला नवम बन्धाङ्क जान लेना चाहिए।५६।

ऋषि गण जब ध्यान में मग्न रहते है तब योग की सिद्धि हो जाती और योग की सिद्धि हो जाने पर संसार की समस्त सम्पदाये उपलब्ध हो जाती है। उन समस्त सम्पदाओं को प्राप्त करके हे बेटी ब्राह्मी देवी! ६४ अंक को लेकर तुम सुखी हो जाओ, ऐसा श्री वृषभनाथ भगवान ने अपनी पुत्री से उपदेश रूप में कहा। स्नेह, पूर्ण पिता जो का शुभाशीर्वाद सुनकर ब्राह्मी देवी परम प्रसन्न हुई।५७।

उपर्युक्त ९ अंक किस प्रकार निकलकर आ जाता है, ऐसा अपने पूज्य पिता जी से कुमारी सुन्दरी देवी के प्रश्न करने पर उन्होंने उत्तर दिया, कि ये समस्त एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ और नौ इन अंकों को ।५८।

दान किये हुए देव अपने दाहिने हाथ के अंगूठे के मूल से श्री सुन्दरी देवी के बाये हाथ की अमृतांगुली मे ।५९।

लिखे हुए अंकों द्वारा सुन्दरी देवी ने णमोकार मंत्र को जान लिया। उस विमलांक रेखा के आदि, अन्त और मध्य में रहनेवाले सम, विषम और मध्यम स्थान को भी उसने अपनी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा जान लिया।६०।

इसी रीति से सुन्दरी देवी ने निर्मल आभ्यन्तरिक स्वरूप को भी जान लिया।६१।

इन सभी को क्रम-बद्ध करनेवाला योग है और सुन्दरी देवी ने उसे भी जान लिया।६२।

यह योग सम, विषम, उभय, तथा अनुभयादि विविध भेद से विद्यमान रहता है।६३।

इसी रीति से निर्मल अन्तर की रेखा भी विद्यमान रहती है।६४।

अन्तर मे रहनेवाली सभी रेखाओं को क्रम वद्ध करने के अनेक भाव रहते है।६५।

सम विषमांक भावों को निकालनेवाला है।६६।

अत्यन्त निर्मल अंतर सत्य को बतलानेवाला है।६७।

कर्म वन्द्ध को नाश करने के लिए भागांक को निकालने वाला है।६८।

सम विषमांक गणित को बतलाने वाला है।६९।

हृदय कमल के अन्तर के सत्य को बतलाने वाला है।७०।

कर्मबन्ध को नाश करने के लिए यह द्वार है।७१।

सम विषमांक गणित के द्वारा निकालकर देने वाला है ।७२।

गम्भीरता के साथ अन्तर सत्य को निकालकर देनेवाला है ।७३।

कर्म नाश करने की युक्ति या तरीका बतलानेवाला है ।७४।

सम विषमांक कूट को बतलाने वाला है ।७५।

यमक के अन्तर सत्य को बतलाने वाला है ।७६।

कर्म बध को नाश करनेवाली बिन्दी को निकालकर देनेवाला है ।७७।

सम विपमांक लब्ध को निकालने वाला है ।७८।

श्रम को नाश करनेवाला अतिशय अंकवाला है ।७९।

यह सम्पूर्ण कर्म को नाश करने वाली विद्या है ।८०।

सम शून्य काव्य नामक यह भूवलय है ।८१।

पदाक्षर अक के भाव को लाने वाले अको की विधि को समझानेवाले तथा समस्त प्रकार के द्रव्यागम श्रुति विद्या अंक का यह अंक नामक पद ही मगल पाहुड है ।८२।

नौ पद बद्ध अक्षर विद्या की इच्छा करनेवाले भव्य जीव को शीघ्र ही अतिशय कल्याण मार्ग को कहनेवाले आगम सिद्धान्त के अवयव में रहनेवाले विषय को कहते है ।८३।

चरित्र, में लिखा हुआ सरस्वती देवी के द्वारा वाणी को भगवान ने समझकर अर्हंतदेव पर्याय उसी अक्षर को जो भगवान की केवल ध्वनि के द्वारा निकला है उसी अतिशय अक्षर को हे बेटी ! तुझे मै समझाऊंगा' तू ! सुन । ।८४।

हे बेटी ! ये करुणामय को उत्पन्न करनेवाले अक्षर है ।८५।

हे बेटी ! यह अक्षर शत्रु को नाश करने वाले है ।८६।

हे बेटो ! यह अर्हंत भगवान का अतिशय है ।८७।

हे बेटी ! यह पृथ्वी का मगल रूप काव्य है ।८८।

हे बेटी ! यह करुणामय अक्षर अक है ।८९।

हे बेटो ! यह शत्रु को जीतनेवाला सिद्धान्त है ।९०।

हे बेटी ! यह परमात्मा का अतिशय धवलयश है ।९१।

हे बेटी ! यह पृथ्वी का मंगलमय पाहुड है ।९२।

हे बेटो ! यह करुणामय साम्राज्य है ।९३'

हे बेटो ! यह सम्पूर्ण शत्रु को नाश करनेवाला मंगल है ।९४।

हे बेटी ! यह परमात्मा का भूवलय अक है ।९५।

हे बेटी ! सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवो का काव्य है ।९६।

हे बेटी ! यह गुरु का साम्राज्य है ।९७।

हे बेटी ! यह कर्म रूप शत्रु को जीते हुए महापुरुषों का अक है ।९८।

हे बेटी ! यह परमात्मा का महान गम्भीर अक है ।९९।

हे बेटी ! यह सम्पूर्णपृथ्वी के ऊपर रहने वाले जीवों का सौभाग्य है ।१००।

हे बेटी ! यह अर्हंत भगवान का साम्राज्य है ।१०१।

हे बेटी ! यह शत्रु को जीतकर वश किया हुआ अक है ।१०२।

हे बेटी ! यह भगवान के गम्भीर वचन है ।१०३।

हे बेटी ! यह सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवों के चारित्र की उत्पत्ति का कारण है ।१०४।

हे बेटी ! यह सरस्वती देवी का साम्राज्य है ।१०५।

हे बेटी ! यह कर्म रूपी शत्रु को जीतेनेवाले महान पुरुषों का सिद्धान्त है ।१०६।

हे बेटी ! यह भगवान के द्वारा सम्पूर्ण जीवों को दिया हुआ गम्भीर दान है ।१०७।

हे बेटी ! यह परमात्म नामक सिद्ध भूवलय है ।१०८।

हे बेटी ! यह देव और मनुष्य के द्वारा वन्दनीय भूवलय है ।१०९।

हे बेटी ! यह परमात्म सिद्ध भूवलय है ।११०।

हे बेटी ! यह पंच गुरुओं का भूवलय है ।१११।

हे बेटी ! यह करोडों कोडा कोडी सागर के प्रमाण शलाका, शुचि, उसकी लम्बाई, चौड़ाई, पद इत्यादि इस नवकार मंत्र से आनेवाले और अनेक तरह के अक्षरो के गणित को तथा ढक्का, मृदग आदि के झंकार शब्दादि अक्षरो के अंक आदि तथा योग्य रेखागम, वर्णागम काव्य इत्यादि इस द्रव्यागम से प्राप्त होते है ।११२-११३।

भगवान की वाणी के द्वारा आया हुआ सर्व शब्दागम अंक से निकल-कर आये हुए अक्षर खंडित न होनेवाले काल क्षेत्र के पिंडात्म हमेशा रहते हैं, अर्थात् ये शब्द नित्य तथा हमेशा जीवन्त है ।११४।

ॐ कार के द्वारा आये हुए सभी शब्दागम के अक्षर अंक सर्वत्र सम्पूर्ण शंकाओं का परिहार करनेवाले शंका दोष रहित अंक हैं ।११५।

यह ओम्का अ शब्द भद्र स्वरूप है ।११६।

ओ३म् भी एक अक्षर है ।११७।

सभी अक्षरो में एक ही रूप मे रहनेवाले अक्षर है ।११८।

ओ३म् एक अक्षर ही है स्वर नौ पद है ।११९।

यह ओ३म्कार भद्र तथा मंगलमय है ।१२०।

यह ओ३म् एक अक्षर ही भंग अंक है ।१२१।

इसमें से एक को छुड़ानेवाला अंक है ।१२२।

एक अंक का अवयव ही वर्ण है ।१२३।

यह ओंकार शब्द सर्व मंगलमय है ।१२४।

ओम् अंक ही शुद्धाक्षर है ।१२५।

ओम् को तोड़ने से सभी आ जाते है ।१२६।

ओम् अंक ही योगवाह है ।१२७।

ओंकार ही दिव्यनाद है ।१२८।

ओम् अंक ही परमात्म वाणी है ।१२९।

योगी जन एक ओं को ही भजते हैं ।१३०।

एक अंक ही ६४ रूप होकर ।१३१।

अन्त में अपने आप ही ओंकार रूप हो जाता है ।१३२।

एक अंक ही सिद्ध स्वरूप है ।१३३।

एक में ही सब कुछ है, ऐसा समझो ।१३४।

एक अंक ही २० अंक है ।१३५।

यह ओंकार दूसरा अंक है ।१३६।

एक का भंग करने से ।१३७।

९२ अंक होता है ।१३८।

एक अंक ही भूवलय है ।१३९।

यह एक अंक पाप का नाशक, पुण्य का प्रकाशक, समस्त मल से रहित परम विशुद्ध तथा समस्त सांसारिक तापो को नाश करके अन्त में मोक्ष को बतलानेवाला ओंकार रूप श्री पद नौवां अंक है ।१४०।

उसमें ओंकार मिलने से आदि के १० अंक को प्रशमादि गुण स्थान अतिशय अंक उसमें से धीरे-धीरे ज्ञानाक्षर की उत्पत्ति होती है ।१४१।

आशा अंक—अ इ उ ऋ ऌ ए ए ऐ ओ औ इन राशियों के ९ स्वरों में उस आशा से ह्रस्व दीर्घ तथा प्लुत इन तीनों राशियों से गुणा करने पर गुणनफल २७ होता है ।१४२।

पर्वत के अग्रभाग के समान आ, आ, ई, अरी, ऊ, ॠ, ऋ ॠ, ए—ए—ऐ—ऐ, ओ—ओ, औ—औ इन उपर्युक्त स्वरों को क्रमशः दीर्घ १ २ १ २, १ २ १ २ और प्लुत कहते हैं ।१४३।

इस वृद्धिङ्गत ९ स्वरों को ३ से गुणा करने पर आनेवाला गुणनफल २७ और क् ख् ग् घ् ङ् ये पांच तथा च् छ् ज् झ् ञ् ये पांच, ट् ठ् ड् ढ् ण् इन पांचों को सिद्ध कर त् थ् द् ध् न् प् फ् ब् भ् म् इन पांचों वर्गों को परस्पर में गुणा करने से गुणनफल २५ आता है । पुनः बद्ध य, र्, ल्, व, स, ष, श, ह् तथा सिद्ध किये हुए अं, अः, कः, फः ये चार अंक ।१४४ से १५० तक ।

शुद्ध व्यंजन ३३ हैं ।१५१।

ये चार अंक अयोगवाह हैं । इनको उपर्युक्त व्यंजनों में मिलाने से ३७ अंक होता है १५२-१५३।

बद्धाक्षर ६४ हैं ।१५४।

शुद्धाक्षरांक को ।१५५।

सीधे मिलाकर ६+४=१० होते है ।१५६।

इस संयुक्त १० में से बिन्दी निकाल देने पर १ रह जाता है ।१५७।

यही १० शुद्धांक है ।१५८।

शुद्धांक १ ही अक्षर है ।१५९।

वृद्धि में आदि भंग है ।१६०।

यह बुद्धि के द्वारा उपलब्ध अक है ।१६१।

यह सिद्धांत सागर का अंग है ।१६२।

यह सिद्ध भगवान को दिखानेवाला भंग है ।१६३।

यह शुद्ध गुणाकार का अंग है ।१६४।

यह ऋद्धि को दिखानेवाला भग है ।१६५।

यह सिद्ध ससिद्ध भंग है ।१६६।

यह बुद्धि को प्रकट करनेवाला अनुभग है ।१६७।

यह ऋद्धि को प्रकट करनेवाला अनुभग है ।१६८।

यह सिद्धत्व प्राप्त करने के लिए आदि भंग है ।१६९।

इसको संपूर्ण मिटाने से सिद्ध भगवान का अग रूप है ।१७०।

यह शुद्ध साहित्य नामक भूवलय है ।१७१।

वश किये हुए कर्माटक के आठ रसभंगों के सम्पूर्ण अक्षर रस भाव को मिलाने से प्राप्त यह ७१८ (सात सौ अठारह) भाषा है ।१७२।

अत्यन्त सुन्दर रमणीय आदि के भग सयोग अमल के १ अक्षर को क्रमश. यदि ७ से गुणा करते जायँ तो ६४ विमलांकों की उत्पत्ति होती है, ऐसा समझना चाहिए ।१७३।

श्री सिद्ध को लिखकर उसमे अरहन्त अ को श्री अशरीर सिद्ध भगवान अ और आइरिया के पहले का अ इन तीनो के आ अ, आ को पृथक् पृथक् लिखकर एक मे मिलाने से आ होता है। यह श्रेष्ठ धर्माचरण के आदि मे आ आता है। पुन. आगे उवज्झाया के आदि मे उ आता है। और अन्तिम साधु मुनि के श्रीकार के आदि मे मु और मू से म् आता है। इन सभी को परस्पर मे मिलाने से ओम् बन जाता है। यही ओंकार समस्त प्राणी मात्र को सुख देनेवाला मन्त्र है। १७४-१७५-१७६।

यह कलक रहित जीव शब्द है ।१७७।

यह साकल्य भंग का मूल है ।१७८।

यह साकल्य का सयोग होते ही एक है ।१७९।

यह पराकाष्ठ परब्रह्म का अंक है ।१८०।

यह उस अकलक जीव का तत्त्व है ।१८१।

यह साकल्य भंग का अन्त है ।१८२।

साकल्य मिलाने से सब है ।१८३।

यह पराकष्ट का भग है ।१८४।

अन्त मे सभी मिलकर यह द्रव्यागम है ।१८५।

यह साकल्य भग का मध्य है ।१८६।

यह साकल्य मिलने पर भी भव्य है ।१८७।

यह पराकष्ट परब्रह्म भद्र है ।१८८।

यह आकार से द्रव्य भाव है ।१८९।

यह साकल्य ही ६४ है ।१९०।

यह साकल्य ही शब्दागम का ।१९१।

पराकष्ठ परब्रह्म तत्त्व है ।१९२।

यह साकल्याक चक्र का आदि है ।१९३।

यह साकल्य कर्म से हारी है ।१९४।

यह सकलागम द्रव्य रूप है ।१९५।

यह एकाक सिद्ध भूवलय है ।१९६।

आदि निज शब्द एक ओ३म्कार की विजय रूप है इस विजय को प्राप्त किया परब्रह्म के समान अपने को मानकर अपने अन्दर ही आराधन करनेवाले योगीअन्य अपने को वमूआ २७ स्वरो मे 'ओ' अनि से अन्य शेप पांच अक्षर के उ अन्य रसकूट की आवश्यकता क्या है क्योंकि वह जो एक अक्षर है वही एक है और उसी का अक अर्थात् जो पच परमेष्ठी है वह भी उसी का रूप है और उसी का नाम ओम है जोकि एक अक्षर है। और ओम अक्षर ही इस विश्व मे सम्पूर्ण प्राणियो को इष्ट को प्राप्त कराने वाला है ।१९७-१९८।

रामस्तवादियो को पराजित करके भगवान की दिव्यवाणी के तथा मर्म जाननेवाले सम्यग्ज्ञान के साधन यह ६४ चौसठ अक हैं ।१९९।

जब अक नौ रूप को कहनेवाला नवपद भक्ति की विजय पृथ्वी तलमे प्राप्त होने से ६४ अक इस सम्पूर्ण पृथ्वी मे एक है ।२००।

अभेद दृष्टि से देखा जाय तो अक का अक्षर एक है सम अंक को अलग

किया जाय तो भी एक है। यह कर्माटक कितने आश्चर्य का है? क्या यह सामान्य है? अर्थात् सामान्य नही है।२०१।

कर्म सामान्य रूप से एक है, मूल प्रकृतियों के अनुसार ८ प्रकार का है। उत्तर भेदों के अनुसार कर्म संख्यात भेद वाला है। उन कर्मों को दबा देनेवाले आत्म-प्रयत्न भी उतने हैं। इन सबके बतलानेवाले विश्व के अंक निकल ते है।२०२।

वह विश्व का व्यापी होता है।२०३।

यही जीव का अनन्त गणित है।२०४।

यह जन्म और मरण का अनन्त है।२०५।

भगवान अर्हंत देव के ज्ञान में आया हुआ यह अनन्त है।२०६।

श्री वीर भगवान का जाना हुआ यह अंक है।२०७।

जीवों को संसार में हलन-चलन करानेवाले कर्म हैं।२०८-२०९।

यही जीव राशि का कर्माट है।२१०।

बिना रक्षा के यह अंक है।२११।

जीव को संसार में भ्रमण करानेवाला यह अंक है।२१२।

यह जीव राशि के गणित का अंक है।२१३।

पवित्र जीव को घात करनेवाला यह अंक है।२१४।

भाव कर्मांक रूप यह गणित है।२१५।

जीव को संसार में रुलाने वाला यह गणित है।२१६।

यह सम्पूर्ण जीवों का गणित है।२१७।

पवित्र जीव का ज्ञानांक है।२१८।

भेद की अपेक्षा से अक्षर चौसठ हैं।२१९।

अभेद विवक्षा से एक अंक है।२२०।

श्री भगवान वीर की वाणी नौ अंक रूप है।२२१।

यह विश्व काव्य नामक भूवलय है।२२२।

नवपद भक्ति ही अणुव्रत की आदि है, और जीव जिन-दीक्षा धारण करके नवांक को आठ से, सात से, दोसे, समभाग करने से शून्य रूप में दीखता है।२२३।

मोह के अंक कितने हैं, राग के कितने हैं, ऐसा जानकर वह मोह द्वेष को जब नष्ट कर डालता है तब निरञ्जन अमूर्तिक आत्मा का ज्ञानांक कितना है, यह मालूम होता है।२२४।

तेरहवें गुणस्थान में पहुंचा हुए आत्मा के सारे दर्शनांक, बारहवें गुण स्थान का अंक और सार भूत चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त हुआ चौदहवां अंक कितना संख्यात है।२२५।

पुनः शिव पद को प्राप्त करके सिद्ध लोक मे पहुंचा हुआ सिद्धलोक के निवासी जीव और उनके आठ गुण की व्याप्ति से आये हुए अंक कितने है, इस सम्पूर्ण विषय को बतलाने वाला यह अतिशय नामक धवल भूवलय है। २२६।

कामदेव का हन्ता आगे १४, ३१९ अन्तर के ८,०१९ सम्पूर्ण मिलने से एक को बतलानेवाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है।२२७।

ऋ, ८, ०१९+अंतर १,४३१९=२२,३३८,

अथवा अ-ऋ २,००,५६५+ऋ २२,३३८=२,२२९०३।

बारहवां अध्याय

॥ रसवस्तुत्यागद सम्यमदिम् बन्द । यशसिद्ध काव्य भूवलय ॥१॥
ऋ* षिगळ् अध्यात्म योग साम्राज्यदे । वशवाद श्री भद्ररा शि* ॥ मूरु कुन्दिद कोटियक्षरदन्कद । सारात्म सिद्ध भूवलय ॥२॥
ए* रिव ध्यानाग्नियारय्केयोळु बन्द । शूर दिगम्बरर् नव व* दुवे ॥ सर मागेर्दाग शुद्धत्व सिद्धिय । परमात्मनन्ग भूवलय ॥३॥
व* रद सम्हननवु व्यवहार नयवाद । परिय निश्चय नय म* वसमययद्दि मंगल काव्य । दोदिनिम् बन्द भूवलय ॥४॥
आ* दिय सम्हननवु व्यवहारदसाधने निश्चय नयव ॥ साधिप स* स्रबि ॥ सरुव पुण्योदय हृदिनेन्दु श्रेरिगयु ॥ बरबेंकेन्देनुव भूवलय ॥५॥
ग* र जन्मदाद्यन्तदादिय शुभ कर्म । विरुवष्दु सुखवनु तु*

उरदवरन्ग रक्षरोयु ॥६॥ न्रज नमदन्त्य शरीर ॥७॥ एरडने चरम शरीर ॥८॥
व्रगळ सम्बळ काव्य ॥९॥ उरद सन्मौनजिय बंध ॥१०॥ गुरुव श्री गुरुवर काव्य ॥११॥
अरसराळिद गन्ग वस्रश ॥१२॥ र्रसोत्तिगेय वर मन्त्र ॥१३॥ एरडूवरेय द्वीपदन्द ॥१४॥
ग्रुव गोट्टिगरेल्लरन्द ॥१५॥ अरमनेयोळु पूर्ण ग्रुहुवु ॥१६॥ न्र कुरिगळ अन्दवळिद ॥१७॥
इरुवेगळन्टद सिहियु ॥१८॥ ज्रयोदगलु यव्वनान्ग ॥१९॥ अरसुगळाळ्द कळ्वप्पु ॥२०॥
म्रेतिह अध्यात्म राज्य ॥२१॥ अरवट्टिगेय तवरूरु ॥२२॥ ट्रदन्गदनुभव काव्य ॥२३॥
ष्रबाणगळ तीक्ष्ण म्रुदुल ॥२४॥ अरमने गुरुमनेयोम्दु ॥२५॥

इ* वु 'रिद्धि सिद्धिगे आदिनाथरु' पेळ्द । धव 'अजितर' गद्दुगे' स* वि॥ नव वाहनगळु'एत्तु आनेगळु 'मु'।नवकारस'द्दिनिम् स्याद्वा'॥२६॥
ए* वेळ्वुदवन 'द लाञ्छनदन्तिह' । पावन 'सुद्दिय पेळ्' दव र* उ॥ सावय सर्'व्उदिम्तहहा'[१]'सर्वार्थसा'।रावयवद'धनवाद ॥२७॥
त* रतर 'माञ्ग गलिकद' सर्वकार्यद' । सरद 'आदियलि' सर्व' व* रु॥ अरुह'रु कुदुरेय तन्दु सेविसुवरु । 'अरहन्त सर्व मञ्गलद' ॥२८॥
ई* तेरनादअ 'मङगळमम्[२] हाराडुव' ख्यातिय 'मनव्अनु' न्ते ज* य॥ नूतान् 'कट्टिट्टन्तेनेरदिकपिय'।ख्यात 'लांछनवु' हारुव'द ॥२९॥
रे* णुकादेविय' 'स्यादवादमुद्रेयिम्' तारादि'कट्टिदर् सार'॥ दाण ग* 'सर्व स्ववागिरिसि' [३] द अंक । क्षोणिय अतिशय धवल ॥३०॥

अणुवनु 'स्वस्ति श्रीम' न्त्अ ॥३१॥ त्रनिया 'द्राय राजगुरु' ॥३२॥ तनगे 'भूमण्डला' धिपरु ॥३३॥
इनवम्शद्आ 'चार्यरु' ए ॥३४॥ न्अनगे 'एकत्वभाव' नेय ॥३५॥ इणुकुव अणु'नाभावितरुम्' ॥३६॥
द्अन् 'उभयनम्' समग्ररुम श्री ॥३७॥ अनुदिन 'त्रिगुप्ति गुप्तरुम्च'॥३८॥ य्अनुवन् 'तुष्करिया रहित्' ॥३९॥
आनन्द 'रुम् पञ्च व्र'त ॥४०॥ य्अनुव 'समेतरुम् सप्त' ॥४१॥ र्ण 'तत्व सरोजिनी रा' ज ॥४२॥
अनु 'जहम् सरुम् अष्टमद' द ॥४३॥ प्निय 'भंअनरुम् नवविं' ॥४४॥ ळनवि 'धवाल ब्रह्म चर्या' ॥४५॥
अनुव 'लन्क्रुतरुमू देश' वद ॥४६॥ गनवु 'धर्म समेतरुम द्वा' ॥४७॥ ननेव दशान्ग श्रुत' धरर् ॥४८॥
अनुवु 'पारावाररुम' श्रो ॥४९॥ म्न 'चतुर्दश पूर्वादिगळुम्' ॥५०॥

प* द 'दीप्ति तेजव नात्म चक्रदोळ्' तानु । मिदु 'बेळगुव गुप्ति' ता* वम्॥ अदर 'त्र्यव पालिसुतसुप्तवादात्म'।नुदित'तत्ववसुत्तुतलिह'॥५१॥
च* रिते 'गुप्तिय चक्र कोकवहि'[४]सिर्दाग। वर'णवराशिलेवक' म* द॥ लिर्दवु'दंकगळ तन्नोळगिट्टु'नव नमो'दिरियिरि'दयमृबदुगंध'॥५२॥

छि* ळिलेम्ब 'सुविशालवह तावरेय मे । ट्टे' ळियुत बरुत लिदं प* अद।। वलिय'उतवन्दवरंक दादियकमल्अ'[५]ळेवाग'मणिस्वर्णरजत'।५३।
म* रमद 'पारद गंधकादिय क्षण' निर्मल 'दोळु भस्म' वेंद अ* ळ ।। धर्म 'वागिसुव' नक 'गणनेय हूविना' धर्मा'युर्वेद विद्येगे,म' ।।५४।।
अ* 'णिनव जलजद पंख' [६] म 'चित्तदोळेसे' दन'व सम्पूर्ण।'द र ० सद।। गुणद'क्षरांकद ओत्तुगळोडने कू । डि'नचन्दर'सुव'चित्र विद्ये'।।५५।।

एनलु 'परम जिन समय' ।।५६।। गण 'वार्धिवर्धनरवरु' ।।५७।। इन 'तणपिनसुधाकररुम्' ।।५८।।
ट्ण 'प्रतिक्रमण शास्त्राढ्यर्' ।।५९।। पणसदिरुव 'परीक्षितरु' ।।६०।। उणवण्ण' मतिज्ञान धररुम् ।।६१।।
र्णि से आरम्भरु सूर्उगळम् ।।६२।। सइनलि इष्टार्थवरिदर् ।।६३।। मनद पर्याय अक्षररुम् ।।६४।।
अणु 'पद सम् घात धररुम्' ।।६५।। द्णु 'प्रतिपत्यनाग धररुम्' ।।६६।। मनद् 'अनुयोग श्रुताढ्यर्' ।।६७।।
ओणि 'प्राभृतक प्राभृतकर्' ।।६८।। ळ्णरलु 'प्राबृतकांगर्' ।।६९।। ओणिज 'वस्तु हत्तन्क पूर्वर्' ।।७०।।
ळ्ण 'दश चोद्दश पूर्वर्' ।।७१।। अनुयोग 'जीव समासर्' ।।७२।। ग्ण 'समासवु हत्तिप्पत्तु' ।।७३।।
नणद 'आचार सूत्रकृतर्' ।।७४।। अणि 'स्थान समवायधररु'।।७५।। गणद 'व्याख्याप्रज्ञप्तर्' ।।७६।।
उनद 'ज्ञातृकथा रूपर्' ।।७७।। गन 'उपासकाध्ययनांगर्' ।।७८।। अणु अन्तकृद्दशधररुम्' ।।७९।।
ट्न 'अनुत्तरोपपाद दशर्' ।।८०।। षण 'प्रश्न व्याकरणांकगर्'।।८१।। अणु महा 'विपाक सूत्रांगर्'।।८२।।

भा* ग्यदसद 'य स्वस्तिक वाहनवेरि' । नीग 'दुत्तम पोरेयुवु' ह* अ।। सागलदेमअस्[७]ण व पददंकवु वृद्धि' । नाग'यमहोद्धव' सुविशा' ।।८३।।
य* शदे 'लवहतम्बेळग चउतियचम्' । देसेविन् 'द्रनकिरणद इ* होस 'बेलळदु' प्रवहिपकाव्यवेन्न' य । जस [८] हरुषदोळेरडु' गळ ।।८४।।
स* नुअ 'प्राणिगळोम् दागिर्प तेरदोळु' । घन करिमकरियदु' त त* अ ।। जनर् 'ओरेय द्विधारेय स्याद्वादद'। घनवाद'सतरद परिय' ।।८५।।
ह* अरिसि 'भाविसलद् भुतवल[९]मणिरत्न।वर'मालेआहारादि'य् अ* ल ।। सर 'गळनी व रु'गणितद हत्तु'सिरि'पृक्षगळु कषणदोळु'गे ।।८६।।
इं* वु 'कल्पदिन्दय् तव' द'दोस्दादन्ते'।सवि 'जिन रासन' वद त* अ।। अवु'वृक्षकल्प'(१०)गळगळु'गोचरि'।सवि'वृत्तियोळा हाहारवनुम्' ।।८७।।

अवरु 'हन्नोम्दनग् धररु' ।।८८।। दव 'परिकर्म सूत्ररवरु' ।।८९।। नव 'प्रथमानुयोग धररु' ।।९०।।
इवु 'पूर्वगत चूळिकेगळु' ।।९१।। दवु 'दृष्टिवाददयदुगळु' ।।९२।। अवरोळु 'पूर्वगतदलि' ।।९३।।
ववु 'उत्पाद अ ग्रेणियद' ।।९४।। अवर 'वीर्यानुवाद दलि' ।।९५।। भव'अस्तिनास्ति(प्रवाद)पूर्ववरु' ।।९६।।
यवेयसु 'ज्ञानप्रवादर' ।।९७।। ववरु 'सत्य प्रवादववु' ।।९८।। अविरल 'आत्म प्रवादर्' ।।९९।।
यवरु 'कर्म प्रवाद धरर्' ।।१००।। रनव 'प्रत्याख्यान पूरम्' ।।१०१।। आव 'विद्यानुवाद पूर्वर्' ।।१०२।।
ह यवु'कल्याण वाददवर्'।।१०३।। तिविये 'प्राणावाय पूर्वे' ।।१०४।। राव 'क्रिया विशालवरु' ।।१०५।।
पव 'लोकबिन्दुसार घवर्' ।।१०६।। आवेल्ल'हदिनाल्कु पूर्वर्' ।।१०७।। हवु 'हत्तु हदिनाल्कु एन्दु' ।।१०८।।
अवु 'हदिनेन्दु हन्नेरडु' ।।१०९।। सवु'हन्नेरड् हदिनार् इप्पत्तु' ।।११०।। अवु 'मूवत् हदिनयदु हत्तु' ।।१११।।
दवु 'हत्तु हत्तु हत्तुगळु' ।।११२।। षवि 'अन्ग विरुव वस्तुगळ' ।।११३।। अवरंग 'वस्तु भूवलयर' ।।११४।।

स* अवणानुन 'ड श्री चर्येयोळात्मन' । विवरद 'वनु आचइन' इ* नुडु'।। सविदु'ण्व मुनिगंडभेरुण्ड'ई'। नव 'चिह्न स्याद्वादवप्प'(११)आ।११५।

इ* वु 'वशवल्लद मन कोणनन्तिर्दा । ग'वनु'वशगोळिसिद' ब र्* दुक।। सवणनु'जिनमुद्रे।होसभूवलयदि'नुद । सवि'लांछनवागलु'श्री ।।११६।।
द्* रुशन'वशवाय्तेम्मय सोम्मु'(१२)लुएन्दु ।बरे'दिवदिन्दवत् अ* रिसु।। व'र'जिननाथनु, अवितु हन्दियवेष। धरिसि अवनिगे काव्यगळ' ।।११७।।
ध* 'र्भवनित्त सूकर'नव वाहन' स्रभव पोरेगेम्मम्'[१३]य् अ त्* न ।। गर्भद 'गणनेयिल्लद द्रव्य भृतदक्ष' । गर्भ'रांकद मणिगळ'नु ।।११८।।
व* शवद'रोमरोमदलि'हेणेदु कोन्डिर् प्'सम श्री करडिय् अ' आ* तम।। यशवदु'लांछनक्षणदअमहिमेयम्।यश'तोर्क[११]यक्षदेवरुगळ' ।।११९।।
र* सद 'आयुध वज्र जिन धर्म' दक्षुण्ण' दिशेयलि 'सेवेगागि' भ्* उवि।। गिसि'हुदु' शिक्षे'योळ्रक्षणेयिरुव' । त्र'श लांछन वज्र'यशदे ।।१२०।।

'आशेयादिय एरडरलि' ।।१२१।। सुआशे 'अग्रयणीय वरुस्' ।।१२२।। 'इसेव पूर्वेय हदिनाल्कम्' ।।१२३।।
ह्सनदरलि 'पूर्वान्त' ।।१२४।। असमान 'अपरांतध्रुवरुम्' ।।१२५।। म्सवए' अध्रुव चवनलब्धि'।।१२६।।
असद्रुश 'अद्रुव सम्प्रणधि'।।१२७।। द्इशे 'अर्थ भौमावमाद्य' ।।१२८।। ळ्एसेये 'सर्वार्थ कल्पनिया' ।।१२९।।
एशे 'अतीत ज्ञानधरर्' ।।१३०।। प्सरिसिद् 'अनागत सिद्ध' ।।१३१।। 'उसह सिद्धम् उपाध्याय' ।।१३२।।
ल्सरिसि 'इनितेल्लवुगळम्' ।।१३३।। ओसेयिसिदरु 'सेनगणरु' ।।१३४।। 'दशधर्मद् अचार ग्रन्थ' ।।१३५।।
असिहर 'जिन सम्हितरु' ।।१३६।। य्शद 'भूवलय धवलरु' ।।१३७।। अस् 'महाधवळ प्ररूपर्' ।।१३८।।
लसहश 'जय धवलवरु' ।।१३९।। असम 'विजय धवलवरु' ।।१४०।। व्शद 'सिद्धांत पञ्चधरर्'।।१४१।।
'उसह सेनर वम्श धवलर्' ।।१४२।। भ्सव पूजितर भूवलय ।।१४३।।

क्* वचद 'रक्षणे ईउदु सहसा'(१५)कवि'तुष मष बोधदिन्द'।। नव् अ* 'असि आ उ सावनु वशगोळिसिद'।अवर'वेगवनु'यशदोळु' ।।१४४।।
ऊ* रुत'तोरुव हरिण लांछन वदु' । 'सारि हेसरिसे बह पुण्य 'अ' व्*। 'सार सकल(१६)रसयुतवा'गिरुवु'देल्ल'।दारियलि'ह'सोप्पुगळनु'।।१४५।।
ड्* ळिसुत 'तिन्दु हसनल्लदाडुमुदु' द । 'यश'वनु' बिसुड्उव् अ* टगरम्'।हसदन्'तेपापहरणमाळ्प होसटगर्'।एसेयलु'हदिनेळरंक'(१७)।।१४६।।
ए* रिसि 'गगनवेल्लव सुत्ति बगेयोळ' । गारा' गडगिद् अगणित' न्* ।'सारद 'शब्दराशियदुम् सोगसाद' । नेरद 'गमल भूवलय' ।।१४७।।
हो* दिव्य 'नन्द्यावर्त हगलिनन्ति' । रीदिनवि 'रलेन्न' अन् तु* वेदित 'हृदय'(१८)दे वारणाशियोळेळ'। साध'ने बल वास्देव' ।।१४८।।

उदित 'णाणद राद्धांतर्' ।।१४९।। दधवश 'सकल शास्त्रगळम्' ।।१५०।। नुवद 'सम्पन्नरम् सकल' ।।१५१।।
वेदगे 'विमल केवल णाणा'।।१५२।। अदरअ 'धीश्वररुम्' श्री ।।१५३।। णधर 'त्रिलोक स्वामि दया' ।।१५४।।
अदु 'मूल धर्मदोळु' दित ।।१५५।। र्'दरु पदिष्ट त्रिलोक' ।।१५६।। आदर 'सार लब्धि' गळु ।।१५७।।
क्दिर 'सार चारित्र सार' ।।१५८।। एदु''रु चतुष्टयन्गळोळ' ।।१५९।। ग्दरोळ 'गाद श्रावक र्' ।।१६०।।
इदर 'आचार मोदलाद' ।।१६१।। ध्दरे 'सन्घानि लोकानि' ।।१६२।। स्दवधि 'सूर्य प्रज्ञप्ति' ।।१६३।।
इदु 'युक्ति युक्ति आगमरु' ।।१६४।। द्द 'परमागमवाद' ।।१६५।। अदरलि 'तीर्थकरान्त' ।।१६६।।
र्द 'सन्तति मूल प्रकृति' ।।१६७।। वृदिगे 'उत्तरोत्तर प्रकृति' ।।१६८।। नुद 'वरन्तप्प सज्जनरु' ।।१६९।।
अदुवे 'मय् आरत सम्ज्ञ एन'।।१७०।। स्हश 'ग्रन्थ भूवलयर्' ।।१७१।।

च* रदे 'सारात्म' नु 'नवमांक चक्रि'यु । बरे 'सार मंगल प्ऊ' भ्* अ।।वरव'र्ण कुम्भवाहननु नेरदि'। अरिदु'तुतिसे वाहन मा'[१९]।।१७२।।
कू* रि'णव पदवेल्लगें भद्रकवच' । वर 'वन्तु सबेयद चि'र ऊ* ।।बरेद क 'प्पहमेय्य' सुविशालवादआ । मे'रेव 'य लांछन'कविगे' ।।१७३।।

की॰ रुति'भद्रतेयम् कलिसु'[२०]'व राज्य'। सार'व षट्खण्डव'नु तु॰ ऐं ॥ अरथ्दु'पोरेदरुहन''राज्य मुक्तिगे'। दारि 'हन्नोन्दनेय'नेले ॥१७४॥
द॰ व 'राज्यवनाळ्द चक्रियु पूजिसि'। सवि'दन्त'राज्य वाहन अ॰ नी॥धव'लोत्पलकु'[२१]ळ'कोटिलेक्कदोळिप्प'।नववु'अन्तादिकाव्यव'ला१७५
ह॰ ददे'मीदुव तन्तियनाद'दाटवु।ओदगि'बन्द शंरी'शंख'॥ पद ग॰ र्‍भ'वाहनवेम'गाटदिश्रुत'। सदव 'व नितत सर'[२२] सति ॥१७६॥
अदरलि'तर्क व्याकरणर्' ॥१७७॥ रुदरु छन्दस्सु निघन्टु ॥१७८॥ आद्'अलंकार काव्य धरर्' ॥१७९॥ वदसिन 'नाटकाष्टांगर्'॥१८०॥
अदरिणत'गरिणत ज्योतिष्कर्'॥१८१॥वद्गिद'सकल शास्त्रगळु'॥१८२॥ अदर'विद्यादि सम्पन्नर्'॥१८३॥ नुदियन्ते 'महाअनुभावर्'॥१८४॥
अदरलि'लोकत्रयाग्रर्' ॥१८५॥ द्दि'गारवद विरोधर'॥१८६॥ अदे'सकलमहीमण्डलार्यर्' ॥१८७॥ लुधिय'तार्किक चक्रवर्ति॥१८८॥
अदे'सद्विद्या चतुर्मुखरु' ॥१८९॥ डुद'षट्तर्क विनोदर्' ॥१९०॥ नुद'नय्यामिकव वादिपरु' ॥१९१॥ अदरलि'वय्शेषिकवम्' ॥१९२॥
सुदिय 'भाष्य प्रभाकररु' ॥१९३॥ अदे'मीमाम्सक विद्याधररु'॥१९४॥ कुद् 'सामुद्रिकर भूवलयर'॥१९५॥

क॰ 'रुणोयोळव्वर मन्तरद' सरणिमिम् । अरुहन 'महिमेयिम्' णा॰ णा ॥'धरणेन्द्र पद्म'यरागि'ताव्'परितन्द'वर।हावु'वाहनगळ'लि॥१९६॥
पु॰ रिपरि'चिन्हेयु धरेगे विस्मयकर । वरिग'[२३] ने'म् अन्अिसिस् ह॰ पीठ॥ व'रिद'नेरिद महवीर'जिननायक'हरिव'रवाहनव'जन' ॥१९७॥
पे॰ 'रेल्ल राज्य चिन्हेगे वीररसवेन्दु'। हारि 'मनेय मेलएर्' दो॰ सार'इदहरित्व[२४]पद्ममगळेरडुनूरिप्प'।सारु'त्तय्दरचक्र पद्म'॥१९८॥
आ॰ 'गळ नाल्कु'म् 'सेरिसुत' पद्मगळोम्भय्' सागे । 'नूराय्तुनाल्' षा॰ क॥ ईगल्'कने'पद्मविष् ठरपाद'वि।राग'विजय[२५]'उत्पल'रु॥१९९॥
ह॰ र'पुष् पवाहन देव' श्री 'नमिजिन'। गुरुवि'नुत्पत्ति' यअरु ह॰ सिरि'कालद चिन्हे' सत्पथवनु तोरि'।गुरुवे 'नम्मस् पालिसेम्बे' ॥२००॥
उ॰ सरि'चित्पथ मार्गकयदिसला(२६) मनु'। विष'मथनय्य'नुअम् प॰ द'नु॥वृषभ तीर्थंकर'जिनमुद्रेयोळुतप'।वश'गय्दजिनवृक्षवदन'म्॥२०१॥
द॰ णटण होळेव् अशोकेय रूपेन्नुव । घनवटवृक्षवदअ' र॰ लि॥गुणदरिग[२७]म् श्री'मनसिजमर्दन'।धनद्'अजित जिनेश्वर'रे।२०२
ट॰ वणेय'तनुभारव तपकोड्डिजि । न'व'नाद एळेले बाळे'य' वन या॰ 'गिडदडि 'एन्नुवशोकेयु' । नव'ताम् स्वच्छ [२८] णरभव ॥२०३॥
यं॰ श'दन्तिम देहव शाल्मलि'वर' । वश 'वृक्षद डियोळु बइ' नु॰ दु ॥ वशअ'ट्ट परमात्म शम्भव जिनरिगा' ।यश'वृक्षवे' सुरवन्द्य' ॥२०४॥
आशायुर्वेद विधिज्ञर् ॥२०५॥ 'दृशधर्म योगसार धरर् ॥२०६॥ रसवाद दतिशय भद्रर् ॥२०७॥ आस हृदिनेन्दु दर्शनरु ॥२०८॥
त्स स्थावरजीवहितवर्॥२०९॥वश ब्रह्म विद्या ळक्षणरु॥२१०॥ अशा भूवलय दिग्अरु ॥२११॥ तुसजीवगणनेय चतुरर् ॥२१२॥
रेसेवर स्वच्छाभिप्रायर्॥२१३॥यश राज्य चक्रवर्तिगळु ॥२१४॥आसे शब्दद विद्यागमरु ॥२१५॥ प्सरिप-कन्नाडिनोडेयर्॥२१६॥
छशतद सूत्रांगधररु ॥२१७॥ नुसनसेयळिद सिद्धान्तर्॥२१८॥ पिसुणतेयळिद कन्नडिगं ॥२१९॥ कसवरनाडिनोळ्चलिपर्॥२२०॥
तसविद्य यतिशय कुशलर॥२२१॥ स्सदक गणनेय कुशलर्॥२२२॥पुष्पगच्छदलि भूवलयर्॥२२३॥

को॰ ट्टिय 'वृक्षवदण्ण'(२९) ने'नरवन्द्य'। सादियळिद अभिनन् तु॰ सादिये 'अभिनन्दन मत्तु सुमतियु'। पेटेय 'सरल प्रियन्गु ॥२२४॥
ड॰ गरिणत'वृक्षगळ्' वु 'मरदडियोळु'। सोग 'तपगेय्द वृक् ना॰ ग॥ अग'षगळे'धरणिगे सन्तोष।बगेहित'कारि[३०]दर्शन दोळ्'॥२२५॥
इ॰ वर् 'अगात्मनिरव कन्डिरदर'। सविवर 'दर्शनोत्पद् शं॰ सव 'लिय वृक्ष' हर्षद कुटकि शिरीष'। नव गळेरडम् 'स्पर्शद शो ॥२२६॥
ण॰ वृकेय नरुह(३१)आत्म प्रकाशव पद्म'।नव 'प्रभ जिन,रात्म' ति॰ ळिये॥सिव'सुपार्श्व जिनेन्द्र'स्वात्मसिद्धिनाग।सवि वृक्षषद मूलदि आत्म२२७
इ॰ रे 'चन्द्रप्रभ सुगुणि'(३२)वशगय्दात्मन'। सिरि 'पुष्पदन्त' ष॰ इक्षणव। व'र वृक्ष'होस अक्षवेनेनागभरिणयु'।बरे हस बेल्लवत्त वद् ॥२२८॥

अंतर श्लोक की तीन लाईन यहाँ होनी थीं परन्तु यहां चार लाईन होने से प्रथम अक्षर सर्प की गति से पढ़ने से नहीं निकल सकता है। पाठक लोग

वृ॰ नद'ली वृक्षदडियलि'ह'रसश्'ई। कन'तल जिननज्जा'३३ व ट॰ द ॥ जिन'तपगेय्दु मुत्तुगवेने तुम्बुर'। वन'गिड'दपवर्ग दडियिम्' ॥२२९॥

वु॰ दुरि 'पोद'म्'तपसिगळ ग्रगण्यरु' । सदय 'श्रेयाम्सरु' अ तु॰ ल॥ मुददि'तपसिदशोकवदज्ज्'३४अ'तपिसिद'।षिदु'देहव तेन्दु वृक्ष'।२३०।

दृ॰ रिय'दि बिट्टु'द'अपवर्गवम् वासु' । सिरि'पूज्यर्'सुपवित्र' जि॰ नरु॥सिरिय'पाटलि जम्बूवृक्ष दितपिसिद'।वरदे'विमलनाथ नव'३५९।२३१।

ए॰ ळिरि'मनसिजनम् गेद्दनन्त'रु । शील 'धर्म स्वामि' युक्त त॰ र॥ पाळिय'कोनेगे अश्वत्थवु दधिय'अ' । साल'नुवाद पर्ण दगि' ॥२३२॥

लुळिगि'डदडियिन्दय्दि' ॥२३३॥ कोलु तात'जिनराद'सुप' ॥२३४॥ यल'वित्रद मही३६ अरहम' ॥२३५॥

एलेयु'तराद शान्तियु' क॥२३६॥ एलु'कुन्थु देवरु सुरुचि' ॥२३७॥ वलवो 'रनन्दियु तिलक' ॥२३८॥

ट्ल 'सरदिग्रवृक्ष मूल' ॥२३९॥ यल'दलि तपवगेय् द'रहन्' ॥२४०॥ ललि'तरागिरुव जसा ३७ दर्' ॥२४१॥

वेलदर् 'शनदोळगनरि' ॥२४२॥ ऊलि'त श्री अर मल्लि' ॥२४३॥ भ्लात काद्रि भूवलय ॥२४४॥

व॰ श'दर्शिसिदात्म वृक्षगळु स्पर्श'। हस'मणियतेर मावु शा॰ लि ॥ वश'कम्केलिय हर्षद वृक्षग ।ळ'श'हहो ३८ धरणियोळ मुनिसु' ॥२४५॥

अ॰ निसु 'व्रत नमि देवरु'अरहन्त । गुण 'राद वृक्षगळम्' स॰ बोण'वरेये चम्पक वकुलगळेम्बेर । ड' एाव 'म् परमात्मर व रु' ॥२४६॥

नृ॰ 'क्षवहह् ३९ समवसरणवनु नेमि'। अक्षर'तीर्थंकरर्' न॰ सक्ष'विमल मेषशृङ्ग (गिडद) विमलरमे' रक्षे'योळूर जन्तदि कय्' ॥२४७॥

दे॰ 'वल्य'होन्दिदरममश्रीमन् नेमि'। तावु'जिनरा४०सीमेय'म॰ नु ॥ नोव 'ळिद श्री पार्श्व तीर्थेशनु' । पावेय 'रामणीयकवा' ॥२४८॥

दवन्'द दारु'आ मरद' ॥२४९॥ लवर'डिय सुवर्ण भद्रा' ॥२५०॥ गवरा'चल' शीमेगे सम' ॥२५१॥

नव'मेदवरव ४१ महवीरदेवनु'॥२५२॥ मवतारे'शालोर्वीरुहद' ॥२५३॥ ववएसद'ढि बहळ कर्म ॥२५४॥

न'वनेल्ल केडिसि' वहिसिद' ॥२५५॥ वावे'पावा पुखेद' र ॥२५६॥ द्व'शोकेयु सिहियागि' ॥२५७॥

अवि'हुदलि जस ४२ यक्षराक्ष'॥२५८॥ रव 'स व्यन्तरर शोकवने'॥२५९॥ ववने'ल्ल'साक्षात् आगि' ॥२६०॥

गेवे'निल्लिस व'रक्षेय म' ॥२६१॥ शवेय रगळेल्लवनु अशो'॥२६२॥ 'क् अवेन्दी क्षिसलिललि रुव' ॥२६३॥

तिविध'महि'४३ यु'रसयुतवा' ॥२६४॥ कवि'देल्ल वृक्षदि माले' ।२६५॥ क्वन'गळ'होस घन्टेगळ' ॥२६६॥

तबिद'लन्कार'रसवुक्कि' ॥२६७॥ ववु'बरुव फलावळि बग्गि' ॥२६८॥ रिवि'ह'रसमान विभव नो'॥२६९॥

गेवु'डमम ४४ सोरुव गन्ध'॥२७०॥ रव'द भारद हूवनु'भूरि' ॥२७१॥ ववु 'वय्भवद शाखेगळ' ॥२७२॥

अवु'दारियोळेल्ल भव्य' ॥२७३॥ वुबु आ'त्मरशोकवु हारे' ॥२७४॥ तव'नीरोगिगळ'म् माडे ॥२७५॥

रव'हरम् ४५ तरगळु इप्पत्'।२७६॥ ववु'नालकर हूवम् परमा' ॥२७७॥

ग॰ म आ'त्म वय्द्य शास्त्रदलि'बरेदिह हृदि'। गम'नेन्दु सा' सु॰ विरजाति'॥सम'गेपरममंगलकन्डुन्ड'४६ह'तीक्ष्ण।सम''वागिह स्याद्वाद'॥२७८॥

म॰ न'द बुद्धि य'तीक्ष्णतेयेष्टेम् बुदनु'॥घन'तीक्ष्णवाग' चि॰ रितोडे' ॥ घन 'पुष्यायुर्वेदद'रक्षणे' । तन'योदगुवुदेनन्[४७]चाव॥२७९॥

अ॰ नु'लेक्कवनु नोडिदरु बरु वोम्बत्तु'। जिन'श्रीवीर जिनन' र॰ 'भूव'॥ तनु'लय' साविर एरडु इन्नूरय्वत्' एने 'अक्षर' ईवाग सरि' ॥२८०॥

ह॰ रि'यहुदरिग'४८ अन्तर मूरोम्बत् ओम्बत्। बरे ऐदओन्द म॰ काव्य॥ बरेऐदुमूरोम्बत् सोन्ने योम्दे अंक । सिरि'गुरु' वीरसेन भूवलय।२८१।

समस्त ऋ अक्षरांक १०९३५+ समस्त अन्तराक्षरांक १५,९९३=२६,९२८+समस्त अन्तरान्तर २२५०=२९,१७८

अथवा अ—ऋ २,२२,९०३+ऋ २९,१७८=२५२,०८१ ।

बारहवां अध्याय

बारहवा अक्षर तीसरा 'ऋ' है, इस अध्याय का नाम 'ऋ' अध्याय है। इसमें पच्चीसवे श्लोक तक विशेष विवेचन करेंगे। २६ वे श्लोक से अन्तर काव्य निकल कर आता है, उस काव्य को अलग निकाल कर लिख लिया जाय तो भी उसमे पुनः दूसरा काव्य देखने में आता है। इस गद्य में सबसे पहले वह दिया जाता है। इस गद्य में इस तरह का विषय है कि गुजरात प्रान्त में श्री नेमिनाथ तीर्थंकर और कृष्ण जी एक जगह रहते थे। गुजरात प्रान्त मे एक समय नेमिनाथ और कृष्ण दोनों गुजराती मे बातचीत करते थे। उस समय गुजराती और संस्कृत प्राकृत दोनों मिश्र भाषा मौजूद थी, ऐसा मालूम पड़ता है। उसमे से कुछ विषय यहां नीचे उद्धृत किया जाता है—

१ रिषहादिणम् चिण्हम्, गोवदि, गय, तुरग, वाणरा कोकम्, पउपयम्, णनदवत्तम् अद्धससी, मयर, सो ततीया।

गडम्, महिस, वरहह्हो, साही वज्जणहिरिण भगलाय, तगर कुसुमाय, कलसा, कुम्मुप्पल, सख अहिसिमुहा ॥

अर्थ—वृषभादि २४ चौवीस तीर्थंकरों के चिन्ह वृपभ हाथी, घोड़ा, बन्दर, कोकिल, पक्षी, पद्म, नंद्यावर्त, अर्द्धचन्द्र, मगर, सो ततीय (वृक्ष) भेरुंड पक्षी, भैंष, सुवर, हंस, वज्र, हरिण, मेढ़ा, कमल पुष्प, कलश, मछली, शंख सर्प और सिंह। इन चिन्हों के विषय में जैन ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न मत मालूम पड़ते है। इसके विषय मे आगे चलकर लिखेगे और १३ वे अध्याय से बहुत प्राचीन काल के दिगम्बर जैनचार्यों की परम्परा से पट्टावली के विषय मे यहां एक गद्य अन्तर पद्यों से बहते हुए १४ वे अध्याय के १३० वे पद्य तक चला जाता है। कानड़ी मे कर्णाटक पंप कवि के पहले चत्ताना अर्थात् चतुर्थ स्थान (यह भूवलय के काव्य के सांगत्य नाम का छन्द है) और बिजड़े अर्थात् दो स्थान नामक काव्य लोक-प्रसिद्ध थे। उस बेजड़ नामक काव्य को यहा उद्धृत करते है।

इस अध्याय में मुनियों के संयम का वर्णन किया गया है। ऋषियो के अध्यात्म योग साम्राज्य के वशीभूत जो अनशन अवमौदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये छह बहिरंग तप और प्रायश्चित्त विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, उत्सर्ग और ध्यान ये छह प्रकार के अंतरंग तप है इन दोनो को मिलाकर बारह तप होते है। इन तपों की सामर्थ्य से प्राप्त हुआ यह यश-सिद्ध भूवलय काव्य है।१।

इस अढाई द्वीप में तीन कम नौ करोड़ शूरवीर दिगम्बर महा मुनियों के अन्तरंग की ध्यानाग्नि के द्वारा उत्पन्न यह सारात्म नामक भूवलय ग्रन्थ है। इन तीन कम ९ करोड़ मुनियो की संख्या इस ग्रन्थ में [सत्तादौ अहंता छाम्मव मज्जा] अर्थात् आरम्भ में सात, अंत में आठ और बीच में छै बार नौ हों, अर्थात् आठ करोड़ ८९९९९९९७ इस प्रकार बताई गई है।२।

उत्तम संहनन वालों की जो व्यवहार धर्म की परिपाटी है वह व्यवहार नय है और तद्भव मोक्षगामी के चरम-शरीरी व्यक्तियों ने जो अपनी वज्र-मय हड्डियों के बल से शत्रु का नाश करके प्राप्त की हुई जो शुद्धात्म सिद्धि परमात्म अग है उस अग का नाम ही भूवलय है।३।

पुनः इसमें यह बताया है कि आदि का संहनन व्यवहार नय तथा निश्चय नय का साधन है। निश्चय साधन से साध्य किया हुआ जो मंगल काव्य पढ़ने में आया है बह भूवलय ग्रन्थ है।४।

इस उत्तम नर जन्म के आदि और अन्त के जितने, शुभकर्म हैं यानी जब तक वह पुण्य कर्म मनुष्य के साथ रहने वाला है उतने में ही उनके परिपूर्ण सुख को एकत्र कर देने वाली तथा उस सुखके साथ साथ मोक्ष पद को प्राप्त करा देने वाली ये अठारह श्रेणियां है। उस श्रेणी के अनुसार आत्म सिद्धि को प्राप्त करा देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।

इन अठारह श्रेणियों को अर्थात् ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर तक पढ़ते जाना और नीचे से ऊपर पढ़ते आने मे अठारह श्रेणियों के स्थान मिलते है। जिस तरह भूवलय में अठारह श्रेणी पढ़ने में प्रत्यक्ष मालूम हो जाता है इसी तरह भूवलय ग्रन्थ पढ़ने वालों का राजाधिराज, मंडलीक इत्यादि चक्रवर्ती और तीर्थंकर की अठारह श्रेणियाँ अखण्ड रूप से मिल जाती हैं।५।

इस मार्ग से चलने वाले भव्य जोवों की रक्षा करने वाला यह भूवलय सिद्धान्त है।६।

इस संसार का अन्त करने के लिए अन्तिम मनुष्य जन्म को देने वाला भूवलय है ।७।

दूसरा जन्म ही अंतिम शरीर है ।८।

जैसे नौकर को अपने स्वामी द्वारा महीने मे वेतन मिलता है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ समय समय पर मनुष्य को पुण्य बंध प्राप्त कराने वाला है ।९।

गर्भाधान तथा जन्म से मरण तक सोलह संस्कार होते हैं, उसमे मौजी-बंधन अर्थात् व्रत-संस्कार विधि इत्यादि उत्तम सस्कार है। इन विधियों का उपदेश करने वाले गुरुओ के द्वारा चलाया हुआ यह भूवलय है ।११।

इन अठारह श्रेणियों को साधन किये हुए गंग वश के राजाओ के काव्य हैं। इस गंग वंश के साथी राजा लोग प्रतिदिन भूवलय का अध्ययन करते थे। यह काव्य उनके लिये मंत्र के समान था ।१३।

भूवलय का चक्र बंध ढाई द्वीप के समान है ।१४।

यहां पराक्रमशाली 'गोट्टिग' दूसरा नाम शिवमार चक्रवर्ती थे। यह शिवमार सम्यक्त्व शिरोमणि 'जक्की लक्की अब्बे' के साथ इस भूवलय को आचार्य कुमुदेन्दु से हमेशा सुना करते थे ।१५।

कर्णाटक भाषा मे राज महल को 'अरयने असे' कहते हैं। अरयने अथवा अथाधर ऐसा अर्थ होता है, जब इस राज महलमे गुरु का मठ बन जाता है, तब पूर्ण गृह बन जाता है ।१६।

इस शब्दार्थ को अज्ञानी लोग नहीं जानते ।१७।

भूवलय में जो ज्ञान है, वह बहुत मधुर तथा मनोहर है। मधुर अर्थात् मीठे रस के लिये अनेक चीटियां उसके चारों ओर चाटने के लिये जुट जाती हैं। परन्तु इस ज्ञान रूपी मीठे को कोई भी खाने के लिए [समाप्त करने के लिए] नहीं जुटता।

भूवलय के अध्ययन करने वाले को वृद्धावस्था आने पर भी तरुण अवस्था ही दिखाई देती है। गंग वंश के राजा के साथ आचार्य कुमुदेन्दु का संघ कल्वप्पु तीर्थ अर्थात् श्रवण वेलगुल क्षेत्र में दर्शन के लिए गया था। पुरातन-समय में लक्ष्मण ने गदा दंड के द्वारा अपनेभाई श्री रामचन्द्र जी के दर्शन के लिये एक बडे पहाड़ की शिला पर एक भगवान के आकार की रेखाएं खींची। वे रेखाये बाहुबली की मूर्ति के समान दिखने लगी। तव रामचन्द्र जी ने उसी मूर्ति की आकार रेखा को मूर्ति मान कर दर्शन कर भोजन किया। उस पत्थर पर-रेखा से मूर्ति बनने के कारण उसका नाम 'कल्लु वप्पु' रक्खा था ।२०।

इस अध्यात्म-राज्य के नाम को कुमुदेन्दु आचार्य की उपस्थिति में अर्थात् उन्हीं के समय मे लोग भूल गये थे ।२१।

जिस समय प्रतिवर्ष यात्रा को जाते थे, उस समय सम्पूर्ण राज्य में सम्पूर्ण जनता को रास्ते मे शर्बत, पानी को पिलाने के लिए मार्ग में प्याऊ का प्रबन्ध कर दिया था ।२२।

बाण का अग्र भाग बहुत तीक्ष्ण होता है। उसी प्रकार लक्ष्मण के बाण की तीक्ष्ण अग्र नोक से अब अत्यन्त सुन्दर रूपसे दर्शन होने वाले भव्य तथा अत्यन्त सुन्दर और मनोज्ञ बाहुबली की मूर्ति बन गई ।२४।

ऐसा महत्वशाली कार्य राज महल तथा गुरु का मठ ये दोनों एक रूप होकर कार्य करें तो महत्वशाली कार्य होता है, अन्यथा नही। कुमुदेन्दु आचार्य के अन्यत्र भी कहा है कि—

तिरेय जीवरनेल्ल पालिप जिन धर्म नरर पालिसुव देनरिदे ।
गुरु धर्मदाचार वनुमरिदिह राज्य नरर पालिसु वुदनरिदे ॥

अर्थ:—समस्त पृथ्वी मडल के सब जीवो की रक्षा करने वाला, जैन धर्म मनुष्यो की रक्षा करे उसमे क्या आश्चर्य है? इसी तरह गुरु की जो आज्ञा को पालन करने वाले राजा अपने राज्य का पालन करने मे समर्थ हों तो क्या आश्चर्य है?

इस बात को अपने ध्यान मे रखते हुए राजमहल और गुरु का आश्रम एक ही था ऐसा कहा।

ईहा: अर्थात् ऊपर कहे हुए जो विषय हैं उनकी ऋधि सिद्धि के लिए भगवान ऋषभदेव द्वारा कहा हुआ मुख्य सिंहासन अथवा वाहन बैल व हाथी यह नवकार शब्द के स्यात चिन्हित है अर्थात् ।२६।

लाञ्छन के समान रहनेवाली पवित्र शुद्धता को इस वर्तमान का कहा हुआ अर्थात् इस लांछन का कहा हुआ इस भगवान की महिमा को कहां तक

वर्णन करें। सर्वार्थ सारमय पदार्थ का साध्य कर देनेवाले अर्थात् अनेक प्रकार के वैभव को प्राप्त कर देनेवाले, तथा श्रावकों को यह सारी वस्तु अत्यन्त उपयोगी तथा प्रदान कर देने वाले हैं।२७।

इस प्रकार इन दोनों श्लोकों का अर्थ कहा गया। इन्हीं दोनों श्लोकों को पहचानने के लिए अर्ध विराम डालकर कोष्ठक में बन्द किया है। श्लोक में जहा अंग्रेजी का अंक डाला है वहां एक श्लोक का अर्थ निकलता है। वहां से आगे दूसरा अर्थ निकलता है। इसी प्रकार प्रत्येक श्लोक का अर्थ निकालना चाहिए और आगे भी इसी प्रकार से प्रत्येक अध्याय और प्रत्येक श्लोक में मिलेगा।

प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में उस कार्य के गौरव के अनुसार भिन्न-भिन्न मंगल वस्तु को लाने की परिपाटी है। अर्हंत देव ने समस्त मंगल कार्यों को दो भागों में विभाजित किया है—१ लौकिक मंगल २ अलौकिक मंगल।

अलौकिक मंगल की विवेचना आगे चलकर करेंगे लौकिक मंगल में श्वेत घोड़े को लाकर देखना चाहिए।२८।

श्वेत घोड़े से भी अधिक वेग से भागनेवाले उस मन को अमंगल जैसा माना जाता है। उस अमंगल रूप मन को मंगल रूप में परिवर्तन करने के लिए अत्यन्त वेग से दौड़नेवाले को, अत्यन्त मत्त होकर कूदने वाले चंचल बन्दर को खड़ा कर देखने से अपने चंचल मन को एकाग्र चित्त बनाने के निमित्त इन दोनों के मंगल में लाने का यही प्रयोजन है।२९।

रेणुकादेवी अर्थात् श्री परशुराम की माता स्या द्वाद मुद्रा से अपने मम को बांधती थी। जिस समय उनके पति उनके ऊपर क्रुद्ध हुए थे उस समय रेणुका देवी ने अपने मन को एकानु करके यह चिन्तन किया कि मेरा आत्मा ही मेरा सर्वस्व है यही मेरा सहायक है, उसी समय उनके पुत्र परशुराम के परशु के आघात से उनका प्राणान्त हुआ और उन्होंने उत्तम शुभ गति को प्राप्त किया। अर्थात् देवगति प्राप्त की।

(यह प्रसंग अन्य वैदिक ग्रन्थ में नहीं है)

इस प्रकार अनेक विशेष विषयों को प्रतिपादन करने वाला यह अतिशय भूवलय ग्रन्थ है।३०।

(श्लोक नं० ३१ से ५० तक में सेनगण गुरु-परम्परा का वर्णन आया है। इस विषय का प्रतिपादन व विवेचन ऊपर किया जा चुका है)।

अपने को जब उत्तम पद की प्राप्ति होती है। उस समय मानव के हृदय रूपी चक्र मे चमकने वाले उज्ज्वल ज्योति को कोमल करके त्रिगुप्ति से अपने अन्दर ही अपने आत्मा (हृदय चक्र) को बांधना उस समय आत्मा अपने अन्तरंग के समस्त गुणों में घूमता रहता है। उस समय अनेक तत्व अपने भीतर ही दीखते हैं। उस समय वह आत्मा एक तत्व को देखकर आनन्दित होते हुए दूसरे तत्व में और इसी तरह अनेक तत्व में घूमता रहता है। इसी को स्वजेय में परजेय को देखना कहते हैं। [यह अत्यन्त सुन्दर अध्यात्म—विषय है]।

इस अध्यात्म का अत्यन्त मादक सुगन्ध नवनवोदित, अर्थात् "नयी-नयी उत्पन्न हुई गंध" जैसे नव अंक अपने अन्दर समावेश कर लिए हैं उसी प्रकार इसके भीतर नये नयेवर्ण रूपी चौंसठ अक्षर निकलते हुए तथा न्यूनाधिक होते हुए राशि में सभी अंकों में घूमने का चरित्र अर्थात् बंधन रूप है।५२।

कमल के ऊपर के सूक्ष्म भाग को स्पर्श करते हुए नीचे उतर कर आने वाले, भ्रमर के समान उसी में घूमते समय रत्न, सोना, चांदी का रंग दीखने लगता है।५३।

इस मर्म को समझकर पारा और गंधक के गणित क्रमानुसार भस्म करके धर्मार्थ रूप में इसका उपयोग करना यही पुष्पायुर्वेद का मर्म है।५४।

जलज अर्थात् जल कमल की एक-एक पंखुड़ी को को स्पर्श करके कमल रूप बन गया, उसी प्रकार द्रव्य मन भी है। द्रव्य मन अनेक विषयों से भिन्न-भिन्न होने पर भी एक ही है। उसको एकत्रित करके, जैसे अक्षर को मात्रा और अंक मिलाकर जैसे काव्य रूप बना देते है उसी प्रकार द्रव्य मन को भी बांध दे तो चन्द्रमा के समान वह भीतर का मास पिण्ड धवल-रूप दीखता है। इसका नाम चित्र विद्या है।५५।

(श्लोक नं० ५६ से श्लोक नं० ८२ तक सेनगण का वर्णन आता है)

जैसे नव अंक अपने अन्दर ही वृद्धि को प्राप्त करता है उसी पर संरक्षित भी होता है। इसी तरह होने के कारण ही नव पद भाग्य-शाली कहलाता है,

और यह स्वस्तिक रूप भी है। यदि यह सिद्ध हो जाय तो सदैव अपनी रक्षा कर लेता है।८३।

व्यवहार और निश्चय यह दोनो नय मिश्रित होकर एक ही काव्य मे प्रवाह रूप होकर वृद्धि को प्राप्त होनेवाले चतुर्थी के चन्द्रमा की किरणो के समान, साथ साथ प्रवाह रूप मे आगे बढता जाता है।८४।

मन और प्राण दोनो एक समान रहनेवाले को करिमकर स्वरूप कहते हैं। अर्थात् हाथी और मगर के समान रहनेवाले को कहते हैं। मन और प्राण दोनों एक रूप मे होकर रहनेवाले द्विधारा शस्त्र के समान स्याद्वाद रूप मे दीख पड़ता है। इस प्रकार यह जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे दीख पडता है।

"करी कथचित् मकरी कथचित्, प्रख्यापयज्जैन कथचिदुक्तिम्" अर्थात् एक तरफ हाथी का मुंह और दूसरी तरफ देखा जाय तो मगर का मुंह, इसी का नाम 'कथचित्' है। यह "कथचित्" वाक्य जिनेन्द्र भगवान् का वाक्य है।८५।

कल्प वृक्ष एक क्षण मे जैसे दस प्रकार की वस्तु को एक साथ ही देते है उसी प्रकार पारा और गंधक से बनी हुई रस रूपी वनौषधि अनेक फल एक ही साथ देती है। वैसे ही द्रव्य मन को वद्ध रूप कर दिया जाय तो एक क्षण मे अनेक विद्याओ को साध्य कर देने योग्य बन जाता है। इसी अक्षर से सभी विद्याओ को निकालकर ले सकते है। गोचर वृत्ति से आहार को लेकर अन्त मे मुनि देह च्युत होकर स्वर्ग मे अपने कठ से निकले हुए अमृतमय से प्राप्त होकर आयु के अवसान मे वहां से च्युत होकर इस भरत खड में आर्यकुल में जन्म लिया। उन लोगों (महात्माओं) न इन कल्प विद्याओं को २४ भगवान के वाहन (चिन्हो) को गुण करते हुए आये हुये लब्धांक से अक्षर बनाकर इस विद्या को प्राप्त कर स्वपर हित का साधन कर लेता है।

यहां ऊपर भूवलय के चतुर्थ खड मे आये प्राण वायु पूर्व के प्रसग को उद्धत करते हैं।

"सूत केसरगधकं मृगनवा सारद्रुमं मर्दितम्"

अर्थात् पारा २४, तोला, गंधक १६ तोला, नवसार १० तोला इस प्रकार इसका अर्थ होता है। इसका अर्थ कोई वैद्य ठीक नही कर सकता भूवलय से ही इसका अर्थ ठीक होता है। २४ भगवान के चिन्ह को लिया जाय तो भगवान महावीर का चिन्ह 'सिंह' है इसलिए चौवीस लेना, इस श्लोक को बता दिया। शांतिनाथ भगवान का चिन्ह हरिण होने से गंधक १६ है। शीतल भगवान का चिन्ह 'वृक्ष' होने से नवसार दस तोला है। इस गणित का नाम 'हरशकर गणित' है। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा है।८७।

[श्लोक न० ८८ से श्लोक न० ११४ तक ऊपर कहे अनुसार वर्णन किया जा चुका है।]

दिगम्बर जैनाचार्यों ने बहिरंग में गोचरी वृत्ति पुद्गलमय अन्न ग्रहण करते हैं। और अतरग मे अपनी श्रीचर्या अर्थात् अपनी ज्ञानचर्या में ज्ञान रूपी अन्न को ग्रहण करते है। इसी तरह 'गडवेरुक' अर्थात् दो सिरोंवाला पक्षी भी ग्रहण करता है। [इस पक्षी का चिन्ह मैसूर राज्य का प्रचलित राज्य चिन्ह है)।११५।

गोचरी और श्री चर्य ये जिनके वश नहीं है उनका मन भैंस के समान सुस्त रहता है। उस सुस्त भाव को बतलाने के लिये भैंस के चित्र को लांछन रूप मे बताया गया है।११६।

हमारे अंतरंग मे प्रगट हुई दर्शन शक्ति को लेकर और शास्त्र रूप में बनाकर लिखने का जो कार्य हैं, यह कार्य जिनके अन्दर जिनेन्द्र भगवान होने की शक्ति प्रगट हुई है केवल वे ही इस शास्त्र की रचना कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं। इस बात को बतलाने के लिये सूअर के चिन्ह को यहां दिखाया हैं।११७।

जिस जिनेन्द्र देव ने शूकर चिन्ह को प्राप्त किया है, यदि उस चिन्ह की महिमा को यत्नाचार पूर्वक समझ लें तो वह हमारी रक्षा करके अनेक प्रकार की विद्याओं को प्राप्त करा देता हैं। द्रव्य सूत्र के अक्षर किसी कल्प सूत्र से आये हुए नही है, ये तो अनन्त राशियों से निकले है। प्रत्येक आकाश प्रदेश में अमूर्त और रत्नराशि के समान रहने वाले काल द्रव्य असंख्यात हैं उस असंख्यात राशि के प्रत्येक कालाणु में अनादि कालीन कथन है और अनन्त काल तक ऐसा हो चलता रहेगा। जब एक कालाणु में इतनी शक्ति है तो उन सब शक्तियों को दर्शन करने की शक्ति श्री जिनेन्द्र देव हमें प्रदान करें।११८

रीछ ने अपने शरीर में जिस प्रकार अपने शरीर में सम्पूर्ण बालों को गूंथ लिया है उसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य सूत्र के अक्षरों को कालाणु ने अपने मे समावेश कर लिया है। इस बात को सूचित करने के लिए रीछ के लांछन (चिन्ह) को योगी जनो ने शास्त्र में अंकित किया है। उस अंकित चिन्ह की देवगण पूजा करते है।११६।

जगत में वज्र अत्यन्त बलशाली है। इसमें पारा मिला कर भस्म किए हुए भस्म को शस्त्र के ऊपर लेप किया जाय तो वह शस्त्र सम्पूर्ण आयुधों को जीत लेता है। उसी प्रकार जैन धर्म इन सम्पूर्ण सूक्ष्म विचारों का शिक्षण देते हुए भव्य जीवों की रक्षा करने वाला है। इस विषय को बताने के लिए वज्र लांछन अंकित किया है।१२०।

नोटः—श्लोक नं० १२१ से श्लोक नं० १४३ तक अर्थ लिखा जा चुका है। मूर्ख से मूर्ख अर्थात् अक्षर शून्य को भी जिसको "अ सि आ उ सा" का उच्चारण करना नहीं आता है ऐसे मनुष्यों को भी तुष्माष इस मंत्र को देकर अति वेग से उनकी ज्ञान शक्ति बढ़ाने वाला एक मात्र जैन धर्म ही है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीवों को इनकी शक्ति के अनुसार उपदेश देकर उनके ज्ञान को बढ़ा देता हैं।

तुष्माष, कहने का अभिप्राय यह है कि 'तुषा' ऊपर का छिलका है और 'माष' भीतर की उड़द की दाल है। छिलका अलग है और उसके भीतर की दाल अलग है। उसी प्रकार शरीर अलग है और आत्मा अलग है। यह उपदेश अज्ञानियों के लिए एक महत्व पूर्ण उपदेश है।१४४।

संसारी जीवों के लिए अत्यन्त शील गति से पुण्य बन्ध होना अनिवार्य है। इस हेतु को बतलाने के लिए 'हरिण' लांछन (चिन्ह) अंकित किया गया हैं। जंगल के रास्ते में पेड़ से गिरे हुए कच्चे पत्ते के रस के द्वारा अत्यन्त वेग से दौड़ने वाले चंचल पारे को बाँध दिया जाता है। उसी तीव्र वेग से शरीर के रोग नाश के निमित्त को बतलाने के लिए आरोग्य को शीघ्रातिशीघ्र बढ़ाने के लिए यहाँ 'पादरस' का प्रयोग बतलाया गया है।१४५।

सत्रहवें भंग के गणित में मेढ़ा का दृष्टान्त दिया गया है। वह मेंढ़ा सभी प्रकार के पत्ते को खाकर केवल बकरी के न खाने वाली वस्तु को छोड़ देता हैं।

उसी प्रकार इस जीव को पाप को छोड़कर पुण्य को ग्रहण करना चाहिए।१४६।

यह भूवलय रूपी समस्त अक्षर द्रव्यगमन की राशि लोकाकाश के संपूर्ण प्रदेश में व्याप्त है। जिस प्रकार वह व्याप्त हुआ है उसी प्रकार यह जीवात्मा को भी ज्ञान से जो-जो अक्षर जहाँ-जहाँ है वहां वहां ज्ञान के द्वारा पहुंच कर समझ लेना चाहिए। उसी प्रकार भूवलय चक्र के प्रत्येक प्रकोष्ठ में रहने वाले प्रत्येक अंक ७१८ भाषाओ में रहने वाले समस्त विषयों को स्पर्श करते हुये भिन्न-भिन्न रस का आस्वादन कराता है।१४७।

वाराणसी अर्थात् बनारस मे वासुदेव ने नन्द्यावर्त गणित से उपरोक्त शब्द राशि को समझ लिया था और अन्य दिव्य साधन को भी साध लिया था।१४८।

नोट—श्लोक नं० १४६ से १७१ तक की व्याख्या की जा चुकी है।

नवमांक चक्र में समस्त मंगल प्राभत चौदह पूर्व बड़ा है। उपमा से देखा जाए तो विचित्र चौंसठ वर्ष रूपी कुंभ में समस्त द्वादशांग रूपी अमृत भरा है। संसारी जीवों का सम्पूर्ण दशा उस कुंभ के द्वारा जानी जा सकती है। इस प्रकार करने की शक्ति जिनमें नहीं है वे इस कुंभ की पूजा करें।१७२।

कुंभ भरे हुए समस्त अक्षर नव पदों के अन्तर्गत हैं। अर्हंत सिद्ध आदि नव पद ही रक्षक रूप भद्र कवच है। वह भद्र कवच कभी नाश नहीं होने वाला हैं। इस बात को सूचित करने के लिये ही कछुए का लांछन [चिन्ह] हैं। यह कविजनों की काव्य रचना के लिए महत्व पूर्ण वस्तु हैं।१७३।

राज्य में पहले फैली हुए कीर्ति ही राज्य की भद्रता को सूचित करती हैं। उसी तरह जब जीवों को व्रत प्राप्त होता हैं तो उस समय ११ प्रतिमा अर्थात् श्रावकों के ११ दर्जे अर्थात् श्रावक धर्म रूपी राज प्राप्त होता है। जब श्रावक लोग अपने व्रत में भद्र रूप रहते हैं, वहीं मोक्ष महल में चढ़ने की प्रथम सोपान है। यहां से जीव का स्थानादि षट्खंड आगम रूपी सिद्धान्त राज अर्थात् महाव्रत में समावेश हो जाता हैं।१७४।

कुमुदेन्दु आचार्य के शिष्य, समस्त भारतवर्ष के चक्रवर्ती ने इस भूवलय के अतर्न्गत षटखंड आगम को लेकर करोड़ों की गिनती से गिनते हुए त्रिकाला

था। उसका आदि अन्त का रूप काव्यमय था। अर्थात् पहले श्लोक का अंताक्षर ही श्लोक का प्रथम बन जाता था।१७५।

सरस्वती देवी अपनी उंगलियो से वीणा पर जो टकार का मधुर नाद करती है उस नाद से निकले हुए शब्द रूपी भूवलयो से श्रुतज्ञान को लेकर शिवमार चक्रवर्ती ने पढ़ाया था।१७६।

नोट—१७६ श्लोक से १६५ श्लोक का विवेचन हो चुका।

एक मदारी एक स्थान पर बैठा हुआ था। उसने भग पीकर अग्नि को नीचे फेंक दिया। वह अपनी पोटली मे नाग नागिन दो सर्प लिये बैठा था। भंग पीकर फेकी हुई अग्नि उस पोटली मे जाकर गिर पडी और अन्दर ही अन्दर सुलग गई। तब उस पोटली मे रखे हुए नाग नागिन प्राण को न छोड़ते हुए दोनो आपस मे लिपटे हुए ऊपर उठकर खडे होते हुए अग्नि की जलन के कारण तड़प रहे थे। उस समय उसी मार्ग मे आने वाले पहले भव के पार्श्वनाथ भगवान अपने पूर्व भव मे यतिरूप मे जब आ रहे थे तब इन दोनो नागनागिनियों के मरण समय को देखकर तुरन्त ही वहां पहुंच गए और इनको पंच परमेष्ठियो के नवकार मन्त्र को सुना दिया। कभी किसी भव मे न सुने हुये परम पवित्र इस मन्त्र के शब्द को सुनकर वे दोनो नाग नागिन एकाग्र चित्त से स्थिरता के साथ ऊपर देखते हुएखड़े हुए। तब आकाश मार्ग से धरणेन्द्र और पद्मावती का विमान जा रहा था। वह विमान अत्यन्त वैभव के साथ जा रहा था। उस महिमा की इच्छा रखते हुए निदान बन्धकर उत्तम सुख की प्राप्ति करलेने के मार्ग को छोड़कर भुवन लोक मे जाकर धरणेन्द्र पद्मावती हुए। यहा कई लोग शका करते हैं कि—इस मन्त्र के मन्त्रण से आम टूटकर गिर जाता है क्या ? और बहुत से लोग वाद-विवाद करते हैं। किन्तु यह बात ठीक नही है कि—तत्वार्थ सूत्र मे उमा स्वामी आचार्य ने "ध्यानमन्त्रर्मुहूर्तात् एकाग्र चिन्तानिरोध ध्यान" अर्थात् एक वस्तु पर अंतर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट तक ध्यान रह सकता है। अगर मनुष्य अपने ध्यान को अंतर्मुहूर्त काल तक स्थिर होकर करता है तो वह उतने समय मे केवल ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अब विचार करो कि शरीर को मैं कैसे छोड़ूं ऐसा मन मे आर्त रौद्र कर मरे हुए जीव को दुख में प्राप्त होना तथा नीच गति मे जाकर उत्पन्न होना स्वभाविक है। इसी तरह पंच परमेष्ठि नमस्कार मंत्र को सुनकर शरीर की वेदना को भूलकर समाधिस्थ हुआ उन दोनों जीवों को सद्गति होने में कौनसा आश्चर्य है ? अर्थात् आश्चर्य नहीं हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने अज्ञानी जीवों के कल्याण के लिए केवल अ सि आ उ सा मन्त्र का ही प्रयोग करके अत्यन्त मूर्ख तथा निरक्षर भट्ट जैसे जीवो को भी आयु के अवसान काल मे इन तुष माप या पच परमेष्ठी महा मन्त्र को उन जीवों को देकर अतिम समय समाधि स्थिरता कराके मूर्ख को ज्ञानी बनाकर देव गति प्राप्त करा दिया, यह कितने उपकार की बात है ! क्या जैनागम का महत्व कम है ? अर्थात् नही।

पार्श्वनाथ भगवान को कमठ के द्वारा जब उपसर्ग हुआ तब मातंग सिद्धदायिनी इत्यादि देव, देवियाँ उस उपसग को दूर करने के लिये क्यों नही आए और धरणेन्द्र पद्मावती क्यो आए ? इस प्रश्न का उत्तर ऊपर के विषयों से हल हो चुका है।१६६।

महावीर भगवान के हमारे हृदय में रहने के कारण हमारा मन सिंह के समान पराक्रमी हो गया है इसीलिये हम वीर भगवान के अनुयायी या भक्त है, ऐसा लोग कहते है। अपने हृदय रूपी सिंह को महावीर भगवान को सिंहवाहन कर समर्पण करने के बाद शूर वीर लोग अन्य देवो को क्यो नमस्कार करेंगे ? कभी नही इसीलिये भगवान के सिंहासन का चिन्ह वीरो का चिन्ह है।१६७।

राज चिन्ह को वीर रस प्रधान होने के कारण आज कल भी अपने महल के ऊपर वीर तथा सिंह के ध्वजा लगाते है। इसी कारण से मन रूपी सिंहासन से २२५ कमलों को चक्र रूप बना कर वर्णन किया है।१६८।

चार मुख रूप में रहनेवाले सिंह के सिर पर आये हुये ६०० कमलों के ऊपर संचरण करने वाले भगवन्त के चरण कमल राग विजय के कारण उत्पल पुष्प अर्थात कमल पुष्प के समान दिखता है।१६८।

तीर्थंकर के रहने का समय ही मंगलमय होता है। क्यों कि उनके जन्म होने की लोग प्रतीक्षा करते रहते है। जन्म होने के पश्चात उनके होने वाले अन्य तीन कल्याणक अर्थात तप, ज्ञान तथा मोक्ष मिलकर पञ्च कल्याणक होते

हैं। इसी प्रकार नेमिनाथ भगवान के समय का कथन यहां आया है। इस वर्णन को सुनकर हम अपनी शक्ति के अनुसार उनकी भक्ति करें।१९९-२००।

ऋषभदेव भगवान ने जिस वृक्ष के नीचे खड़े होकर तप किया था उस वृक्ष का नाम जिन वृक्ष है।२०१।

जिस प्रकार बट वृक्ष अपनी शरण में आनेवाले सम्पूर्ण जीवों को अपनी छाया से शीतल कर आश्रय प्रदान करता है उसी प्रकार उसी वृक्ष के नीचे जिनेन्द्र भगवान ने अपनी कामाग्नि को शान्त कर कर्म की निर्जरा करके आत्म रूपी शान्त छाया को प्राप्त किया, इसलिये इसको जिन वृक्ष एवं अशोक वृक्ष भी कहते हैं।२०२।

यह शरीर रेहल के समान आधार भूत है। उसको तपश्चर्या मे उपयोग कर जैसे नई आत्मा को प्राप्त कर शोक रहित होता है, उसी प्रकार अत्यन्त कोमल सात पत्ते वाले केले के वृक्ष के नीचे तप करके सिद्धि प्राप्त करने के कारण उसका नाम अशोक वृक्ष पड़ा। तब उनका नरभव फलीभूत हुआ।२०३।

शालमली वृक्ष के नीचे संभव नाथ तीर्थंकर ने तपस्या की थी इसलिये इसको भी अशोक वृक्ष कहते हैं। यह अशोक वृक्ष देवताओं के द्वारा भी बंदनीय है।२०४।

नोट—श्लोक नं० २०५ से लेकर श्लोक नं० २२३ श्लोकों तक विवेचन हो चुका है।

सूखा हुआ सरल [देवदारू] करोड़ों वृक्षों के गणित और उनके गुणों को जिन्होंने बताया है उन अभिनन्दन और सुमतिनाथ भगवान को नमस्कार करते हैं।२२४।

जिस वृक्ष के पोल अर्थात् तने में सर्प रहता है उस वृक्ष को नागवृक्ष कहते है। उस झाड़ को काटते समय नीचे के हिस्से मात्र को काटकर जब उसमें सर्प दिखाई पड़ जाय तब उस वृक्ष को काटना बद कर देना चाहिए। अगले दिन जब वह सर्प निकलकर दूसरी झाड़ी में चला जाए तब उस वृक्ष को काट देना चाहिए। जहां पेड़ के पोल में सर्प रहता है उसके सिर के भाग की मिट्टी बहुत नरम होती है। वह मिट्टी अनेक दवाइयों के काम मे आती है। यदि सर्प को इस प्रकार न हटाया जाय तो वह सर्प वही चोट करके मर जाता है और वहां की मिट्टी विषमय बन जाती है।२२५।

दोनों नौ-नौ को मिलाने से १८ होता है। कुटकी और शिरीश अर्थात् शीसम इन दोनों वृक्षों की मिट्टी से लेप करने से मनुष्य निराकुल हो जाते हैं। पद्म प्रभु और सुपार्श्व नाथ भगवान ने जिस नाग वृक्ष के नीचे आत्मसिद्धि को प्राप्त की थी उस वृक्ष के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को कुछ रोग की निवृत्ति के लिए संजीवनी औषध रूप में उपयोग किया जाता है।

।२२६। और ।२२७।

बेलपत्र और नागफण इन दोनों वृक्षों के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को भिन्न-भिन्न रोगों के लिए दिव्य औषध रूप मे परिवर्तित करते हैं। उसको चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त जिनेन्द्र भगवान के शिक्षण से अर्थात् गणित के द्वारा समझना चाहिए।२२८।

सुम्बूर वृक्ष अर्थात् बीड़ी बांधने के पत्तों का वृक्ष और पलाश का वृक्ष इन दोनों की मिट्टी भी उपरोक्त विधि के अनुसार निकाल लेनी चाहिए। इसकी विधि शीतलनाथ भगवान के कहे के अनुसार समझनी चाहिए।२२९।

इसी प्रकार तेन्दु वृक्ष और इस वृक्ष के नीचे गिरे हुए पत्तों को मिलाने से महाऔषधि बनती है। इसकी विधि श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के गणित से जाननी चाहिए।२३०।

इसी प्रकार पाटली वृक्ष और जम्बू वृक्ष इन दोनों की मिट्टी से औषधि बनाने की रीति को वासुपूज्य और विमलनाथ तीर्थंकर के गणित से जाननी चाहिए।२३१।

अश्वत्थ और दधिपर्ण इन दोनों वृक्षों के गर्भ से मिट्टी को प्राप्त करने की विधि को अनन्तनाथ और धर्मनाथ तीर्थंकर भगवान के गणित से जाननी चाहिये।२३२।

नन्दी और तिलक इन दोनों वृक्ष की मिट्टी को निकालने की विधि शांतिनाथ और कुंथनाथ भगवान के गणितों से समझनी चाहिए।

आम, ककेली इन दोनों वृक्षों के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को विधि को मुनिसुव्रत और नमिनाथ तीर्थंकर के गणित से समझनी चाहिए।

मेप श्रृङ्ग वृक्ष के गर्भ से प्राप्त मिट्टी से आकाश गमन की सिद्धि होती है। इस विधि को नमिनाथ और नेमिनाथ तीर्थंकरों के गणितो से समझ लेनी चाहिए। २३३ ।२३४।२३५।२३६।२३७।२३८।२३९।२४०।२४१।२४२। ।२४३।२४४।२४५।२४६।२४७।२४८।

सम्मेद पर्वत पर रहने वाले अनेक प्रकार के अशोक वृक्षो को पार्श्वनाथ तीर्थंकर के गणितो से समझना चाहिए।

दारु वृक्ष की जड़ से सुवर्ण अर्थात् सोना बन जाता है। इस विधि को पार्श्वनाथ भगवान् के गणितों से समझनी चाहिए।

इस विधि को न जानने वाले भील और गडरिये लोग अपने भेड़िये के पाँवो मे लोहे की नाल बांधकर सुवर्ण भद्र कूट के पास भेज देते थे। उस जड़ के ऊपर भेड़िये के पांव पड़ने से लोहे की नाल के स्पर्श से पाव मे बंधी हुई नाल सोने की बन जाती थी।

रात मे जब भेडिये घर आते थे तब उनके पावों मे जड़ी हुई नाल को निकाल लेते थे और उसको बेचकर अपने जीवन का निर्वाह कर लेते थे। इसी स्वर्णभद्र कूट से पार्श्वनाथ भगवान मोक्ष गए थे इससे इसका नाम सुवर्ण भद्र कूट पड़ा है। इसलिए इसका नाम सार्थक है।

शालोर्बी वृक्ष से महाऔषधि बन जाती है। इस विधि को श्री महावीर भगवान के गणितो से समझनी चाहिए।

यक्ष-राक्षस और व्यन्तरो के समस्त शोक को निवारण करने के कारण इन सबको अशोक वृक्ष के नाम से पुकारते हैं। यक्ष-राक्षसो के पास विद्या आदि का बल होता था परन्तु आजकल के मनुष्यों को ऋद्धि-सिद्धि विद्यादि प्राप्त होनी असाध्य है। इस कारण कुमुदेन्दु आचार्य ने चौबीस तीर्थंकरों के अथवा ७२ तीर्थंकरों के लांछनो से और तपस्या किये हुए वृक्षो से आरोग्यता आकाश-गमन, लोहादिक को परिवर्तन करने वाले और सुवर्णमय रूप यंत्र (मशीनरी) इत्यादि को पारे के रससे साधन करनेवाले अनेक रसो की विधि को यहां बताया है।

परमात्म जिनेन्द्र भगवान ने वैद्यक शास्त्र मे अठारह हजार मंगल तथा उतने ही पुष्पों को तीक्ष्ण स्याद्वाद बुद्धि से अपने गणित के द्वारा निकालने की विधि बतलाई है।२७८।

मन तथा बुद्धि की तीक्ष्णता के कितने अग हैं ? इस बात को तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा ही गणितो से गुणा करने से पुष्पायुर्वेद का गणिताक देखने मे आ सकता है।२७९।

यदि अनुलोम क्रम को देखा जाए तो इस गुणाकार का पता लग जायगा। उसको यदि आडे से जोड़ दिया जाय तो नौ-नौ आ जायगा। यह वीर भगवान के कथनानुसार २२५० वर्ग मे आता है। इसी विधि के अनुसार यदि कोई गणित देखा जाय तो नौ ही आता है किन्तु उन सभी को यहां नही लेना चाहिए केवल २९५० (दो हजार नौ सौ पचास) के गणित मे ही इसे मानना चाहिए।२८०।

इस अध्याय के २८१ श्लोकों मे १५९९३ अक्षरांक १०९३५ कुल २६९२८ इस प्रकार अकाक्षर आते है। श्री वीरसेन आचार्य द्वारा पहले उपदेश किया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है। आगे अतरंग मे आने वाले ४८ "ऋद्धि-सिद्धगे आदि नाथरू" नाम के श्लोक के प्राकृत और संस्कृत मात्र अर्थ यहां दिया जाता है।

आगे चलकर समयानुसार प्राकृत भगवद्गीता लिखी जायगी। इसके आगे हम पुनः बारहवे अध्याय के अतरग चौबीसवे श्लोक से लेकर २८१ श्लोक तक श्रेणीबद्ध वाक्य से पढते जाएँ तो अन्दर ही अन्दर जंसे कुए के अन्दर से पानी निरन्तर निकालते रहने पर भी पानी कम न होकर बढता रहता है उसी प्रकार भूवलय रूपी कूप में अक्षर रूपी जल न रहने पर भी अक रूपी जल (२७ × २७=७२९) निकालकर यदि बाहर रख दिया जाय तो उससे २४ वां श्लोक रूपी जलकण उपलब्ध हो जाता है। वह इस प्रकार है:—

इनु रिद्धि सिद्धिगे 'आदिनाथरू' पेलद। धर्म अजितर गद्दुगे सार्व॥
नववाहनगलु एत्तु आनेगलुम। नवकार सद्दिनिस्याद्वा॥

इस श्लोक मे "इनु" "पेलदधव" "सविनववाहनगलु" "नवकारस" इन अक्षरों को छोड़कर शेष अक्षरों के अतिरिक्त श्लोक बनते जाते हैं। वह इस प्रकार हैं:—

रिद्धि सिद्धिगे आदिनाथरू अजितर।
गद्दुगे एतु आनेगलु॥

मुद्रिनिस्याद्वा········॥

इसी रीति से २७वें श्लोक से लेने पर भी यह श्लोक पूर्ण हो जाता है।

दत्नांघनदन्तिह ।

सुद्धिय पेलवुदिन्तहहा ॥

छोड़े हुए "इ" यह अक्षर प्राकृत भाषा और "स" अक्षर—भाषा को जाएगा। इस गिनती से चार काव्य बन गये।

रिद्धि सिद्धि में रहनेवाला आद्यक्षर "रि" के अतिरिक्त यदि पढ़े तो 'रिसहादीणं चिरणहम" इत्यादि रूप एक अलग भाषा का काव्य निकल आता है जो ऊपर लिखा जा चुका है। यह श्लोक मूल भूवलय से नहीं पढ़ा जा सकता, किन्तु यदि वहां से निकालकर पढ़ा जाय तो पढ़ सकते हैं, यह चमत्कारिक बात है अर्थात् अद्भुत लीलामयी भगवद्वाणी है।

अब ऋद्धि सिद्धिगे श्लोक से लेकर ४८ श्लोक पर्यन्त अर्थ लिखेंगे—

भूवलय में बुद्धिरिद्धि, बलरिद्धि, औषधिरिद्धि इत्यादि अनेक ऋद्धियों का कथन है। उन सब ऋद्धि की प्राप्ति के लिए अर्थात् सिद्धि के लिए भी आदिनाथ भगवान और श्री अजितनाथ भगवान को आदि में नमस्कार करना चाहिए, उनके वाहन बैल और हाथी से स्याद्वाद का चिन्ह अंकित होता है। ऐसा ग्रन्थकार ने कहा है।१।

अपना अभीष्ट स्वार्थ साधन करना है अर्थात् भूवलय के ६४ अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करना है। उन ६४ अक्षरों का यदि साधन करना हो तो सर्व प्रथम मंगलाचरण होना अनिवार्य है। मंगलाचरण में लौकिक और अलौकिक दो भेद है। लौकिक मंगल में श्वेतछत्र, बालकन्या, श्वेत अश्व, श्वेत सर्षप, पूर्ण कुम्भ इत्यादि दोष रहित वस्तुएं हैं। अब सर्वमंगल के आदि में श्वेत अश्व को खड़ा करना अभीष्ट है।२।

मनुष्य का मन चंचल मर्कट के समान एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष, शाखा से शाखा तथा डाली से डाली पर निरन्तर दौड़ता रहता है। उसको बाँधकर रखना तथा मर्कट को बांधना दोनों समान है। चंचल मन स्याद्वाद रूपी धागे से ही बाँधा जा सकता है। उसके चिन्ह को दिखाने के लिए आचार्य ने मर्कट का उदाहरण दिया है।३।

जब मन की चंचलता रुक जाती है तब आत्म ज्योति का ज्ञान विकसित होने लगता है। और उस विकसित ज्ञान ज्योति को पुनः २ आत्मचक्र घुमाने से काय गुप्ति, वचन गुप्ति तथा मनः गुप्ति की प्राप्ति होती है। तब आत्मा के अन्दर संकोच-विस्तार करने की शक्ति बन्द हो जाती है। उसे गुप्त कहते हैं। उस अवस्था को शब्द द्वारा बतलाने के लिए श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने चक्रवाक पक्षी का लांछन लिया है। यह उपर्युक्त उदाहरण ठीक ही है, क्योंकि भूवलय चक्रबन्ध से ही बन्धा हुआ है।४।

इस भूवलय ग्रन्थ की, महान अक राशि से परिपूर्ण होने पर भी यदि सभी संख्याओं को चक्र में मिला दिया जाय तो, केवल नौ (९) के अन्दर ही गणना कर सकते हैं। इसी रीति से प्रत्येक जीव अनन्त ज्ञान से संयुक्त होने पर ९ के अन्दर ही गर्भित हो जाता है। वह ९ का अंक एक स्थान में ही रहनेवाला है। इसी प्रकार अनन्त गुण भी एक ही जीव में समाविष्ट हो सकते हैं। जिस तरह सूर्योदय होने पर प्रसार किया हुआ कमल अपनी सुगन्धि को फैलाता है, पर रात्रि में सभी को समेट कर अपने अंदर गर्भित कर लेता है, उसी प्रकार प्राप्त की हुई आत्म ज्योति को अपने अंतर्गत करके और भी अधिक शक्ति बढ़ाकर बाहर फैलाने का जो आध्यात्मिक तेज वृद्धिंगत हो जाता है उसे शब्द और चिद्रूप से बतलाने के लिए आचार्य श्री ने जल कमल और ९ अंक का चिन्ह लिया है।५।

रत्न, स्वर्ण, चाँदी, पारा और गन्ध इत्यादि क्रूर लोह तथा पाषाण को क्षण मात्र में भस्म करने की विधि इस भूवलय में—पुष्पायुर्वेद रूपी चौथे खंड में बतलायी गई है। वहां इसी जलकमल और नवमांक गणित को उपयोगी बतलाया गया है।६।

गुप्तित्रय में रहनेवाली आत्मा का चित्त में सम्पूर्ण अक्षरात्मक ६४ ध्वनि को एकमात्र में समावेश करने को विज्ञानमयी विद्या की सिद्धि को देने वाले श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर है। उनका वाहन स्वस्तिक है। इस महान विद्या को शब्द रूप से दिखलाने के लिए आचार्य ने स्वस्तिक का चिन्ह उपयुक्त बताया है।७।

९ का अंक अर्हंत सिद्धादि ९ पद से अंकित है। वह वृद्धि के होने पर

भी केवल ९ ही रहता है। जैसे ९×२=१८ तथा ९×३=२७ होने पर भी इन दो सख्याओ को पृथक पृथक (८+१=९ २+७=९) जोड़ने पर केवल ९ ही होगा। इसका उदाहरण ऊपर भी दिया जा चुका हैं। ९ संख्या में से पहले का १ निकालकर यदि दो को १ मानकर गिनती करें तो आठवी सख्या बन जाती है इसीलिए कुमुदेन्दु आचार्य ने गणना करने के समय मे आठवें चन्द्रप्रभ भगवान को आदि मे लिया है। चन्द्रमा शीतल प्रकाश को प्रकाशित करता है और वह शुक्ल पक्ष की चतुर्थी से बढता जाता है। इसी प्रकार योगी की ज्ञान-किरण भी ८ और ९ इन दोनो अंकों से अर्थात् सम—विषमाक से प्रवाहित होती रहती ह। इस शीतल ज्ञान-गगा प्रवाह को शब्द रूप मे दिखाने के लिए श्री आचार्य जी ने चन्द्रमा का चिन्ह उदाहरण रूप मे लिया है।८।

इस ज्ञान-गगा के प्रवाह मे डूबकर यदि आध्यात्मिक शक्ति को प्राप्त करना हो तो स्याद्वाद का अवलम्बन लेना चाहिए। स्याद्वाद रूपी शास्त्र द्विधार से युक्त है। अर्थात् उस तलवार की १ फल के ऊपर यदि प्रहार करे तो वह स्वपक्ष और परपक्ष दोनों को काटता है। इस तथ्य को शब्द रूप मे बतलाने के लिए आचार्य ने करी मकरी का उदाहरण लिया है। कहा भी है कि:—

"करी कथचिन्मकरी कथचित्प्रख्यापयज्जैन कथचिदुक्तिम्" इसका अर्थ ऊपर आ चुका है।९।

स्वर्ग लोकस्थ कल्पवृक्ष से आकर भूवलय शास्त्र का १० वा अंक १ बनकर मणि रत्न माला आहार आदि ईप्सित पदार्थों को प्रदान करता है। इस बात को शब्द रूप देने के लिए आचार्य ने १० कल्प वृक्षो को चिन्ह रूप में लिया है। अर्थान् वृक्ष का चिन्ह १०वे तीर्थंकर का है।१०।

दिगम्बर जैन मुनि गोचरी वृत्ति से आहार ग्रहण करते हैं। आहार लेने के गोचरी, अश्वचरी, गर्धपचरी (गधाचरी) ऐसे तीन भेद हैं। जिस प्रकार गाय फसल को नष्ट न करके केवल किनारे से खाकर अपनी क्षुधा शान्त करने के बाद भी अन्य जीव जन्तुओ के खाने के लिए रख छोडती है उसी प्रकार ३६ और २८ मूल गुणधारी महाव्रती आचार्य तथा मुनिजन गोचरी वृत्ति से अल्प आहार ग्रहण करके आहार देनेवालो के लिए भी रख छोड़ते हैं।

जिस तरह अश्व फसल के अर्धभाग को खा लेता है, किन्तु उसके खालेने के अनन्तर गाय के खाने के लिए भाग न रहकर केवल गधे के खाने के योग्य ही रहता हैं उसी प्रकार अणुव्रती के आहार ग्रहण करलेने के पश्चात् शेषान्न मुनिजनों के उपयुक्त न रहकर केवल अव्रतियों के लिए ही रहता है।

जिस प्रकार गधा फसल को उखाडकर समूल खा जाता है और उसके खाने के बाद किसी भी जानवर के खाने लायक नही रह जाता उसी प्रकार अव्रती के भोजन कर लेने के पश्चात् शेषान्न किसी त्यागी के योग्य नही रह जाता। इन तीन लक्षणों को क्रमशः गोचरी, अश्वचरी तथा गधाचरी कहते हैं

मुनिजन आहार ग्रहण करते समय अपना लक्ष्य दो प्रकार से रखते है। एक तो शरीर के लिए चावल-रोटी आदि जडान्न ग्रहण करना और दूसरा स्वात्मा के लिए ज्ञानान्न।

यद्यपि उपर्युक्त दो प्रकार के आहारो को मुनिजन ग्रहण करते हैं तथापि शरीर के लिए जडान्न की अपेक्षा नही रखते। क्योकि मुनिजनो की भावना सदा इस प्रकार बनी रहती है कि जब वमन किया हुआ भोजन कुत्ता भी नही खाता तब कल के त्याग किए गए आहार को हम रुचि के साथ कैसे ग्रहण करे? अत वे आहार ग्रहण करने पर भी अरुचि के साथ करते हैं। इसे गोचरी और श्रीचरी दोनों वृत्ति कहते हैं।

इस विषय को बतलाने के लिए आचार्य ने गण्डभेरुण्ड पक्षी का चिन्ह लिया है।११।

यह मन द्रव्य मन और भाव-मन दो प्रकार का है।—एक प्रकार का मन लगातार विषय से विषयान्तर तक चचल मर्कट के समान दौड लगाता रहता है और दूसरा सुसुप्त होकर काहिल भैंसे के समान स्थिर होकर पड़ा रहता है। इस विषय को बतलाने के लिए आचार्य श्री ने भैंसे का चिन्ह लिया है। इन दोनों क्रियाओं से, अर्थात विषय से विषयान्तर तक जाना या सुप्त रह जाना, आत्मा का कल्याण नही हो सकता क्योकि ये दोनो आत्मा के लक्षण नही है। आत्मा का लक्षण सदा ज्ञानदर्शन मे लीन रहना ही है।१२।

जिनेन्द्रदेव जब स्वर्ग से च्युत होकर मातृगर्भ मे अवतरित होते हैं तब हाथी के आकार से मातृमुख द्वारा प्रवेश करके मार्ग में तिष्ठते हैं।

जिनेन्द्रदेव ही सर्व संसार के काव्य हैं। वैदिक धर्म के अंतर्गत भी मुद्रित वेद में ऐसा प्रतिपादन किया गया है कि पाताल मे छिपे हुए भूवलय रूप: वेद को विष्णु रूपी शूकर ने निकाला था। इस दृष्टि से वैदिक धर्म में शूकर का महत्वपूर्ण स्थान है। ।१३।

भूवलय मे ६४ अक्षर रूपी असंख्यात अक्षर है और उतने ही अंक है। उसको बढाने से सख्यात, असंख्यात तथा अनन्त ऐसे तीन रूप बन जाते है। किन्तु यदि उसे घटाया जाय तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होजाता है अर्थात बिन्दीरूप हो जाता है। लोक में यदि एकीकरण न हो तो यह सुविधा नही मिल सकती अर्थात् न तो अनन्त ही हो सकता और न बिन्दी ही। रीछ (भालू) के शरीर में अनेक रोम रहते है। किन्तु उन सभी रोमों का सम्बन्ध प्रत्येक रोम से रहता है अर्थात् एक रोमका दूसरे रोम से अभेद सम्बन्ध है। इसीलिए कुमुदेन्दु आचार्य ने उपर्युक्त विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए भालू का लांछन दिया है।१४।

यक्ष देवों का आयुध वज्र है और वह जैन धर्म की रक्षा करनेवाला सुदृढ़ शस्त्र है। ऐसा होने से शिक्षण के साथ-साथ रक्षण करता है। इस विषय को दिखाने के लिए आचार्य श्री ने वज्र का लांछन दिया है।१५।

तुष-माष कहने मे अ सि आ उ सा मंत्र का वेग से उच्चारण हो जाता है। इस चिन्ह को दिखाने के लिए आचार्य श्री ने हरिण का लांछन दिया है।१६।

सभी पुण्य को अपनाकर केवल १ पाप को त्याग करने को शिक्षा को बतलाने के लिए आचार्य श्री ने यहां बकरी का दृष्टान्त दिया है। क्योंकि बकरी समस्त हरे पत्तों को खाकर १ पत्ते को त्याग देतो है।१७।

शब्दराशि समस्त लोकाकाश मे फैली रहती है। इतना महत्व होने पर भी १ जीव के हृदयान्तराल मे ज्ञान रूप से स्थित रहता है। इस महत्व को बतलाने के लिए नन्द्यावर्त का लांछन दिया गया है।१८।

सातवे बलवासुदेव बनारसी मे आत्म तत्व का चिन्तवन करते समय नवमांक चक्रवर्ती के साथ अपनी दिग्विजय के समय में मंगल निमित्त पूर्ण कुम्भ की स्थापना की थी। पवित्र गगाजल से भरा हुआ उस पवित्र कुम्भ से मंगल होने में आश्चर्य क्या? अर्थात् आश्चर्य नहीं है। इस विषय को सूचित करने के लिए कुमदेन्दु आचार्य ने कुम्भ वाहन को लिया है।१९।

अर्हंत सिद्धादि नौ पद को हमेशा जपने वालों को वह भद्र कवचरूप होकर रक्षा करता है। उस विषय को बतलाने के लिए कछुआ का चिन्ह दिया है इस कछुवे का वर्णन कवि के लिए महत्व का विषय है।२०।

समवशरण में सिंहासन के ऊपर जल-कमल रहता है। तीर्थंकर चक्रवर्ती राज्य करते समय नील कमल वाहन के ऊपर स्थित थे। इसलिए यहां नीलोत्पल चिन्ह को दिया गया है।२१।

भूवलय में आनेवाले अन्तादि (अन्ताक्षरी अर्थात् जिसका अन्तिम अक्षर ही अगले पद्य का प्रारंभिक अक्षर होता है) काव्य हैं। ऐसे श्लोक भूवलय में एक करोड़ से अधिक आते है। गायन कला में परम प्रवीण गायक वीणा की केवल चार तंत्रियों से जिस प्रकार सुमधुर विविध भांति की करोड़ों राग-रागनियों को उत्पन्न करके सर्वजन को मुग्ध करता है उसी प्रकार भूवलय केवल ९ अंकों मे से ही विविध भाषाओं के करोड़ो श्लोकों की रचना करता है। इसलिए यह ६४ ध्वनिशास्त्र है। इसको बतलाने के लिए आचार्य ने शंख का चिन्ह दिया है।२२।

भूवलय काव्य में अनेक बन्ध है। इसके अनेक बन्धौ में एक नागबन्ध भी है। एक लाइन में खण्ड किये हुये तीन २ खण्ड श्लोकों को अन्तर कहते है। उन खण्ड श्लोकों का आद्यअक्षर लेकर यदि लिखते चले जायें तो उससे जो काव्य प्रस्तुत होता है उसे नागबन्ध कहते हैं। इस बन्ध द्वारा गत कालीन नष्ट हुये जैन वैदिक तथा इतर अनेकों ग्रन्थ निकल आते हैं। इसे दिखलाने के लिये सर्पलांछन दिया है।२३।

वीर रस प्रदर्शन के लिये सिंह का चिन्ह सर्वोत्कृष्ट माना गया है। शूर वीर दो प्रकार के होते है। १ राजा और दूसरा दिगम्बर मुनि। इन दोनों के बहुत बड़े पराक्रमी शत्रु हुआ करते हैं। राजा को किसी अन्य राजा के चढ़ाई करने वाले बाह्य शत्रु तथा दिगम्बर मुनि के ज्ञानावरण आदि आठ अन्तरंग कर्म शत्रु लगे रहते है। अन्तरग और बहिरंग दोनों शत्रुओं को सदा पराजित करने की जरूरत है। इन्ही आवश्यकताओं को दिखाने के लिए आचार्य ने सिह लांछन दिया है।२४।

प्रथम अध्याय मे भगवान् के चरण कमल की गणना में जो २२५ (दो सौ पच्चीस) संख्या का एक कमल चक्र बताया गया था उसे यदि चार से

गुणा करे तो कुल ६०० कमल चक्र हो जाते है। इस ६०० को कमल चक्ररूपी बनावे और उन्ही चक्रो से भगवान् के चरण कमलो की गिनती करे तो लब्धाक से यह अध्याय निकल कर आ जायगा। इसे पद्म-विष्टर विजय काव्य कहते हैं।२५।

श्री नमि जिनेन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर अपनी माता के गर्भ मे आने के समय मे उत्पल पुष्प के रूप मे रहे थे। ऐसी भावना भाते हुये यदि उस पुष्प की पूजा करे तो स्वर्गादि सुखो की प्राप्ति हो जाती है।२६।

आदि मन्मथ के पिता श्री ऋषभ तीर्थंकर ने वट वृक्ष के नीचे तपस्या की। इस कारण उसे जिन वृक्ष और शोक निवारक अर्थात् अशोक वृक्ष भी कहते है।२७।

सप्तच्छद अर्थात् ७-७ पत्तो वाला सुन्दर वृक्ष भी कल्प वृक्ष है। इस वृक्ष के नीचे श्री अजित तीर्थंकर ने तप किया था। इसलिये यह भी अशोक वृक्ष है।२८।

शालमलि (सेमर) वृक्ष के नीचे श्री सभवनाथ ने तप धारण किया।२९।

सरल-देवदारु और प्रियगु इन दोनो वृक्षो के नीचे अभिनन्दन व सुमति तीर्थंकर ने तपस्या की थी, इस कारण यह भी अशोक वृक्ष कहलाता है।३०।

सम्यग्दर्शन शास्त्र से आत्मा की पहचान कराने वाला सम्यग्ज्ञान उन दोनो का स्वरूप दिखलाने के लिये कुटकी और सिरीश का चिन्ह बतलाया गया है। इसे भी अशोक वृक्ष कहते है।३१।

नागवृक्ष भी अशोक वृक्ष है। चन्द्र प्रभु जिनेन्द्रदेव ने इसी नाग वृक्ष के नीचे तपस्या करके आत्म-कल्याण किया है।३२।

इसी रीति से नागफणि और कपित्थ (कैथ) ये दोनो भी कल्प वृक्ष हैं।३३।

पलाश अर्थात् तुम्बुर वृक्ष भी अशोक वृक्ष है।३४।

तेन्दु वृक्ष पाटलि, जम्बू (जामुन) भी अशोक वृक्ष है।३५।

अश्वत्थ और दधिपर्ण भी अशोक वृक्ष है।३६।

नन्दी और तिलक भी अशोक वृक्ष है।३७।

आम और ककेलि ये दोनो वृक्ष भी अशोक वृक्ष हैं।३८।

चंपक (चंपा) और बकुल भी अशोक वृक्ष है।३९।

समवशरण की रचना मे मेप शृङ्ग वृक्ष का उपयोग बतलाया है। यह भी अशोक वृक्ष है।४०।

दास वृक्ष को भी अशोक वृक्ष के नाम से पुकारा जाता है।४१।

शालोवीरू अर्थात् शालमली वृक्ष भी अशोक वृक्ष है।४२।

देव मनुष्य इत्यादि जीव राशि के सम्पूर्ण रोग को नाश करने वाले ये सभी वृक्ष चौबीस तीर्थंकरो के तपोभूमि के वृक्ष थे।४३।

इन वृक्षों को ध्वजा घटादि से अलकृत करते हुए यक्ष देवगण चौबीस तीर्थंकरो के स्मरण मे पूजा करते है।४४।

इन वृक्ष के पुष्प जब खिल जाते है तब उसमे से निकलने वाली सुगध की वायुका शरीर से स्पर्श होते ही शरीर के सभी बाह्य रोग नष्ट होते हैं। सुगध के सूंघने से मनके रोग का नाश होता है। ऐसे होने से इस फूलों को पीस कर निकले हुए, पारे के रस से बनाये हुआ रस मणि के उपभोग से आकाश गमन अर्थात् खेचर नामक ऋद्धि प्राप्त होने मे क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ भी आश्चर्य नही है।४५।

इन चौबीस को परमात्म रूप वैद्यक शास्त्र मे और भी अनेक प्रकार के अर्थात् अठारहहजार प्रकारके वृक्षो की जाति बतायी गयी है। इस मगलप्राभृत अध्ययन से गणित शास्त्र के मर्म को जानने वाले ही निकाल सकते हैं।४६।

स्याद्वाद रूपी तलवार की धार तीक्ष्ण है। इसी तरह के तीव्र बुद्धिमान जन बहुत सूक्ष्म विवेचन करके इस भूवलय से पुष्पायुर्वेद गणित निकाल सकते हैं।४७।

जिस संख्या को देखे उससे ९ ही ९ आता है, यह महावीर भगवान् का वाक्य है।

इस अध्याय में २२५० अक्षर हैं।

सस्कृत के अर्थ को लिखते हैं:—

समस्त भूत गण परहित मे रत हो। सम्पूर्ण दोष नाश हो। समस्त शासन को जीतने वाला जैन शासन जयवत हो।

श्रीमत्परम गभीरस्याद्वादामोघ लाञ्छनम्।

जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जैन शासनं ॥

बारहवां अध्याय पूर्ण हुआ।

तेरहवां अध्याय

ळ्* अडदेशद्भ्र 'साधुगळिहरेरइ' । पाडिन 'वरे द्वीषदि' सा ॥ कूडि ध्* वधु 'साधिसुतिहरुम् मोक्ष' । रूडिय 'वनु'ळ्'अ काव्यदलि ॥१॥
ड* गमग 'आदियनादिय कालदिस्' । दोगे 'दिह सर्वं साधुगळि ॥ गे'ग व्* असरिणगेयागे'नमवेम्ब् ओम्[१]धरिसल'। अगणिता'नन्त ज्ञानादि॥२
व* शद 'स्वरूपव परिशुद्धात्म रू' । वशरू 'पवनु वरसर्व् अ*' हसद 'साधुगळ् साधिसुतिरुव' तिशय । वेस 'रु परमन तम्मात्म॥३॥
म्* 'नोळमि [२]यमिगळिवरु महाव्रतगळय् । दनु होन्दि कर्म् अ' ला* स'दोळु'॥मिनुगुतमुनि'गुप्तित्रयवसमनागिन'।मुनि'उप'क्रम'वासकाव्य
स्* रस 'दि पेळिद गमकदोळिरु साधु' । वर गळ्त्' [३]अ 'नवगळेरड' स्* तु॥ स'र साविर जाति शीलव'द'नवर'तर'भेदगळ'ल्ल वरितु'॥५॥
आ* वनु 'सुविशुद्धवादेस् भत्न॥कु' । काविन् अ 'लक्षगळ्वेम् भा'* पावक'अवनु अत्तर गुरणगळन् यो'[४]रि॥त॥वु'तिळिदु पालिसुवर्॥६॥

आवाग 'दर्शनवरिदर् ।७॥ 'ह् आविन भववरिदवरु' ॥८॥ 'अवरभिप्रायवे शब्द' ॥९॥
'स् आविनोळ् कल्पवनरिदर्' ॥१०॥ एवेळ्वे 'नव विद्यागामरु' ॥११॥ व्आगलु 'सिद्धान्तिगळु' ॥१२॥
अवु 'गञ्च मिथ्यात्व ध्वस्तर्'॥१३॥ 'द् आवानलकर्म अ वनरु' ॥१४॥ अवरु 'भेदाभेद नयरु' ॥१५॥
'व्वरेलुनयदे प्रवीरणर्' ॥१६॥ 'अवरष्टानगनिमित्त' कुशलर् ॥१७॥ व्आवाद 'स्तर्म भनवरितर् ॥१८॥
अवरु 'मोहन वशिकरणर् ॥१९॥ यवरु 'आकर्षरण निपुरणर्' ॥२०॥ अवर् 'उच्छाटन बलरु' ॥२१॥
द्वल 'सकल मन्त्र साध्यर् ॥२२॥ ईवरु 'सिद्ध सिद्धार्थर् ॥२३॥ 'ध्वनदन्तिह चक्र बन्धर्' ॥२४॥
'ईव गुरणदे अति प्राज्ञर् ॥२५॥ स्वि 'वन चक्रवर्तिगळु' ॥२६॥ आवाग'तपोवन वाळ्दर्' ॥२७॥
'थ्आवर जीव रक्षकरु' ॥२८॥ 'स्आविर सेन भूवलयर्' ॥२९॥

प* रिद'अयदनेपरमेष्टिगळिळेयोळ॥गि' रिसि'र्दु समाधियोळ् अ' र* गा ॥नर'गात्मसिरियेम्बाहारवकोम्बब॥ल'र्'शालिगलुसाधुगलका'५ ।३०।
ज्* ञान साधने योळात्मध्यान यिडदिह । ज्ञानवन्तरु सिम्ह' ती* र्था॥ आरणतिया'दन्ते ज्ञाने पराक्रम' । ज्ञानस 'बुळ्ळ सम्यमिगळ् ॥३१॥
जु* ळि'उज्ञानादिशक्तियोळ्'वि'रतरक्'[६]उस॥वळि'नानाविधवाद' स्* गुळिगे॥यलि'आहारविट्टरु त॥ुगम्भीर॥दोळिद्दु'र'ज्ञानेगवरविसल॥३२॥
ए्* रनु'अन्नवतिस् बानेयन्तानन्द । 'सिरि स्वाभिमानिग्रळ्ष [७] प* र ॥ सर'दिनवेल्लतिन्दन्नवरात्रिका ॥ल'रिय'दिमन विद्दुमेलव्'अ॥३३॥
रणो* वागम 'रत्रिनन्ते,'आ 'दिनवेल्ल' । रूवा 'गळिसिद श्रुत् अद न्* का'वा'क्षरगळ मनसिट्टु रात्रियोळ्'। श्री वाणि'मेलुवर(दशक्ति ॥३४

वव्रु 'तपोराज्यदवरु' ॥३५॥ अवरतिशय राजराजर् ॥३६॥ क्विदवर् तपचक्रधररु ॥३७॥
न्वमानक पद यतिनिलयर् ॥३८॥ दवरल्लि गुरुकुल चन्द्रर् ॥३९॥ क्वि गुरुकुल समुद्धररणर्॥४०॥
षव मध्यान्ह कळ्पव्रुकुषर् ॥४१॥ रवर् इन्द्र प्रस्थ गद्गेयर् ॥४२॥ ळवळद सिम्हासनवर्गे ॥४३॥
योवनाळि भाषा भाषितरु ॥४४॥ रणोवदोळु कविय मन्ननिपरु ॥४५॥ ववरु चातुर्वर्ण पूरियरु ॥४६॥
टवणोयोळ् हितव पेळ्वरु ॥४७॥ यवेयष्टु कर्मविळ्ळवसु ॥४८॥ भूवलयके ज्ञानि धरर् ॥४९॥
ववरु श्री वृषभसेनार्यर् ॥५०॥ ळवरादि चतुराशीतियरु ॥५१॥ यवररजिके सवनुदरि बुरासुहि ॥५२॥

व्वृरुषभ चक्रेशवरियर् ॥५३॥ कावर् तोमुबत् ओबत् सहस्र ॥५४॥

स॥ रि 'योळोमुदे दारियोळ्' वह 'वेगदि' वर 'व्यक्यवागोड्उवअ' च॥ रर'मुरुगव'दर' व्यक्तित्वके तनुदनुते । सरलवादव्यक्तिगळिवर्॥५५॥

मु॥ नवर् 'उसाधुगळ् अ[९]सद्रुश 'क्रुणेय' । घन'वरपो एनुदे' र ख॥ ॥ तनदे 'नुनुब हसुवदु गरियने मेयु' । वेनु 'वतेरदि परमानुन' ॥५६॥

भु॥ क्तिय अनन 'वगोचरिव्रुत्तियिन्' । व्यक्तदिन् 'दुनुडि' ह न॥ गु 'खु' ॥ शक्तर् 'निरेह व्रुत्तिगळम् [१०] तिरेयोळु' । व्यक्तित्व 'तडेयि ळ्ळदे' ह ॥५७

कु॥ नयव'हरिदाडुववरणाळियन्। ते निल्सनुग वेरसुत चरि ट॥ अ ॥ युविअ'सुवेकानुग विहारिगळ् गुरु'।मुनि'गळयुदनेयसादुगळ अब[११]'॥५८॥

मा॥ नव'भिक्षुगळिवरु सकळ तत्व' । ध्यान'गळनुसाक्षात् ध् अ॥ रिसि । तान्'आगिबेळगुव अक्षरज्ञानिगळ्'।तानुआदित्यननुददिर'॥५९॥

रो॥ पविळ्ळदेर'क्षिप तेजोमूरति' । आमे'यवर्'[१२]उ'रमेयुअ'ननु मु॥ ॥ ई'सुत्तिह सागरननुते गमुभोर'द् । ईसुव'रसमरदोळ् करम'॥६०॥

धमभनुग 'ऐवर अञ्ग ॥६१॥ दइसेरादि 'केसरिसेनर्' ॥६२॥ सिसिदुधरु 'चारुसेन गुरु' ॥६३॥
हसमन 'वज्र चामररु ॥६४॥ नुसुळद 'वज्रसेनगुरु' ॥६५॥ वशगुप्त 'आदत्त सेनर्' ॥६६॥
मसकद 'जळज सेनगुरु' ॥६७॥ नुसेयळिविह 'दत्तसेनर्' ॥६८॥ वेसेव 'विदर्भ सेनवरु' ॥६९॥
तस रक्ष 'नागसेनगुरु' ॥७०॥ रातिगे 'कुन्थुसुनगुरु' ॥७१॥ मुसहर 'धर्म सेनवरु' ॥७२॥
रुषिमद्दर सेनगुरु' ॥७३॥ पसरिप 'जयसेनगुरु' ॥७४॥ ळसदब्र् 'सद्धर्म सेन' ॥७५॥
गसद्रुश चक्र बन्ध गुरु ॥७६॥ यशद 'स्वयभूसेनर् ॥७७॥ मसकविजइ 'कुम्भसेनर' ॥७८॥
नुसहर 'विशासेनवरु' ॥७९॥ मेसेवरु 'भळ्लि सेनगुरु' ॥८०॥ हिसिहिग्गदिह 'सोमसेनर् ॥८१॥
मुस 'वरदत्त मुनीन्द्ररर्' ॥८२॥ एसेव 'स्वेयम् परभारतिषु' ॥८३॥ नुसिरं 'इन्दरभूति विप्रवर ॥८४॥
वशदनादिय 'गुरुवमुश' ॥८५॥ दुशधर्मधर 'सेनवमुश' ॥८६॥ नुसहरर् 'ओमुदारय् दोमुदु ॥८७॥
एसेयुव 'सेन भूवलयर्' ॥८८॥

त॥ नुविन कर्म 'व गेळुवर् समतेयोळ्' । 'धन 'मनुदराचळदम्' च॥ ॥जनुम'ते उपसरग वमरळ कमुपरागि'न चनुवि'हरुम[१३]माह'॥८९॥

हे॥ 'घ 'ननाद चनुद्रमननुते शानुतिय' । गाध् 'रूहनु सार्व' वर नु॥ ॥दुधाधन'चनुद्रम'ख'रु साहस व्रत'। धीधन'गळमणियगुण्य' ॥९०॥

व॥ रिसुत रूहिन मणिगळनुतिहर ह'[१४]अ ।'क्षरवेने नाशवदळि' चि॥ दरि'दक्षरवेमुब परिशुद्ध केवल'। वर'ज्ञान दिरवमु सहने'॥९१॥

अ॥ वनि'यो'ळरुव भूमियतेर अखि'द । नव'समतेयोळोरेवर् अ'[१५] नि॥ अव'मिदुत्राडि'ह 'मणाणिनिम् गेददळु'।अवु'मनेकटटेअदरोळवा'॥९२॥

णि॥ जवि वा'सिप हाविननुतेसदनवनिता'र' ज'रुकट्टिरळळलि' र॥ वा।।निजद'येमुदविल्लदे वासिपरुव'(१६)र।भजिसुत'तिरेयोळगिदद॥९३॥

रु॥ तिरेय मुट्टदलिह सुरुचिरदाका।श' त'दनुते पोरेववरारि'॥ म॥ ति हति'लुलद निरालमबरु सरुबरु' । सततवु 'निर्लेपकरया'(१७)॥९४॥

न्न॥ व'सार्व कालदोळु मोक्षदनुवेषण'।नव'दोर्वियोळिरुव सा ला॥ ॥सवणसा 'धुगळु निर्वाणपदव साधि । मु'वग'त बाळुवरवरस'॥९५॥

धो॥ रणर्हितर्'सर्व साधुनळिगे' । दारियोळ्'नमि' स'ह(१फ)धर्म अ! मु॥ 'व।।सारुतकर्मभूसियोळिह शर्मरु।मूरुकालदोळ् निर्मल'रु॥९६॥

णिरयहोगद्ग्र 'वायुभूति' ॥६७॥ दारिजपदद् 'ग्रग्नि भूति' ॥६८॥ ररसे 'सुधर्मसेनगुरु' ॥६६॥
वीरन् 'ग्रार्यसेदगुरु' ॥१००॥ हर 'मुनुडिपुत्रारव्यगुरु' ॥१०१॥ नूर श्रेष्ट 'मयत्रेइ सेनर्' ॥१०२॥
नर 'ग्रकम्पनसेनगुरु' ॥१०३॥ मरवेवळिद 'ग्रन्धरगुरु' ॥१०४॥ निरयके होगद 'ग्रचलरु' ॥१०५॥
हरुष 'प्रभाव सेनगुरु' ॥१०६॥ 'विरचिसिदरु पाहुडवम्' ॥१०७॥ तिरेय 'केवलव रक्षिसलु' ॥१०८॥
शरदोळक्षरव कटदुवरु ॥१०९॥ यरडने गणधररवरु ॥११०॥ दरदनक भव्यगानक वेदर् ॥१११॥
इरद महाभाषेयरिर्द ॥११२॥ कार्य कारणद सम्बन्धर् ॥११३॥ णिरयद ज्ञान वेळ्दवरु ॥११४॥
ग्रोरण वेद ग्रन्ग धरर् ॥११५॥ म्रणदोळ् हितव माधिपरु ॥११६॥ वारणाशियलि वादिपरु ॥११७॥
हर शिव शन्कर गणितर् ॥११८॥ विरचित कव्य भूवलयर् ॥११९॥

ब॥ ळुव'पद्धतियाद भूवलयद्ग्र'। पालिन्ग्र'कर्म भूमिय् ग्र' र् ध ॥'पालिसिर(१९)वर'ई'शुद्ध चयतन्य' द।विलसित लक्षण परम्' ॥१२०॥
हु रुष'निजात्म तत्वरुचि' य 'परम'रु। वरद' सम्यग्दर्शान' व ॥सर'द वर्तनेयिर्प परमात्म दर्शना'। दरदा'चारन्(२०) 'हवणि'॥१२१॥
तु णि'सि कोळळु तलिन्द्रियवर्गवेललव'। गुण'ग्रवरु तम्मा' ली ढदलि॥विनुता'त्मनोळ तन्दु समतेयोळविकार'।जन'दानन्द मयरागि'॥१२२॥
त मगल्लि'सुविशालवह तन्नन्दव'।क्र'मा[२१]सर्व साधुउवु' क ग्रालिसिर्। दमल'भेद ज्ञानदिन्दलि सर्वं'रा।समल'रागादिगळेम्ब'॥१२३॥
र वर 'गर्वद परभाव सम्भन्ध'वे। सवि'वळिसुवसर्'व'व रु ॥ ग्रवर'क्रियेयु सम्यग्ज्ञानम्[२२] मनसिज। सवन'मर्ददनरी निश्च'॥१२४॥
ग्र वनि'यज्ञान दनुभवदोळगाचरि। प'व'चिनुमयतत्वद्ग्र त नियं॥ नवद्'भ्यास ज्ञानाचारकोनेयादि'।सवि'यरिवाचार ग्रा[२३]'तानु'॥१२५॥

ग्रवनरिदिह'सेनगणरु' ॥१२६॥ गवनिये 'तानेम्ब गुरुगळ्' ॥१२७॥ नवदन्क'भुवलयवेळ्दर् ॥१२८॥
'भवदनत्यभवव तोर्दवरु ॥१२९॥ ळुवदनक 'नाल्कुमन्गलरु' ॥१३०॥ गवियुकयलासदोळ् व्रषभम् ॥१३१॥
मवरोळ् ग्रजितरु सम्मेद ॥१३२॥ एवेळ्वे शम्भवं ग्रललि ॥१३३॥ लावभिननादनरल्ले ॥१३४॥
कवि वन्द्यसुमतियर् ग्रल्ले ॥१३५॥ सवण पद्मप्रभरल्ले ॥१३६॥ टेवु सिरिसुपार्शवरु ग्रललि ॥१३७॥
नव चन्द्रप्रभ पुष्पदन्तर् ॥१३८॥ दुवदे शीतलुरु श्रीयाम्सर् ॥१३९॥ नव चम्पेयोळ् वासुपूज्यर् ॥१४०॥
एवेयग्र नदिय मध्यदलि ॥१४१॥ यवेयमुच्चद विमलरल्ले ॥१४२॥ सोवुख्य ग्रनन्त धर्म जिनर् ॥१४३॥
नव शान्ति कुन्थु ग्ररल्ले ॥१४४॥ नेव मल्लि मुनिसुव्रतललि ॥१४५॥ दव नमि सम्मेद नेमि ॥१४६॥
द्वरूरल्य पावान्तवीरर् ॥१४७॥ निव स्वर्ण भद्रदोळ् पार्श्वर् ॥१४८॥

क विवन्ध्यरिवरु 'शुद्धात्म भावनेयिन्द। ग्रवनिय तोरेयु नि रव्हतिय॥सवियागि'हुट्टिसिदा'द स्वाभावि।'क'व'दश्रीनिकेतनदति'यम्॥१४९॥
ग्रो विद :सुखदनुभूतियु ताने' स। तीवि'सम्यक्त्वचारितरि ह पावन व'न् (२४)सुमंद सम्यक चारित्र'। तीदिर 'दोळगे निरमलव' ॥१५०॥
ड गव'रत्नयिरु'तिरु'व कर्मव हरिप'। नगदे'निश्चय चारित् श रूव॥ग्रोगेद'राकार धर्मवपरिपालिसुवउ'[२५]ग्रगणित'वारिज'दूग्रारय्॥१५१॥

तेरहवां अध्याय

भारतवर्ष अढाई द्वीप मे है। इस प्रदेश मे जितने भी साधु गण है वे सभी मोक्षमार्ग के साधन मे सलग्न रहते है। भारत के मध्य प्रदेश मे "लाड़" नामक एक देश है। उस देश मे साधु परमेष्ठी आगमानुसार अतिशय तपस्या करके ऋद्धि के द्वारा अपने आत्मिक बल की वृद्धि करते रहते है। उन समस्त साधुओ का कथन इस तेरहवे अध्याय मे करेगे, ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य प्रतिज्ञा करते है ।१।

प्रकाशमान आत्मज्योति के प्रभाव से आदिकाल अर्थात् ऋषभनाथ भगवान् से अथवा अनादिकाल अर्थात् ऋषभनाथ भगवान् से भी बहुत पहले से इन समस्त साधुओ ने (तीन कम नौ करोड मुनियो ने) इस शरीर रूपी कारागृह से आत्म-ज्योति को प्रगट करके मोक्ष पद को प्राप्त किया है। अत उन सभी को हमारा नमस्कार है। क्योकि इस प्रकार नमस्कार करने मात्र से गणित मे न आनेवाले अनन्तज्ञानादि गुणो की प्राप्ति होती है ।२।

विवेचन:—मूल भूवलय के उपर्युक्त दो कानडी श्लोको मे से साधुगलिहरेरडूवरेद्वीपदि ... इत्यादि रूप और एक कानडी पद्य निकलता है। उन ४८ कानड़ी पद्यो के मिल जाने से एक दूसरा और अध्याय बन जाता है। वह अध्याय अन्य स्थान मे दिया गया है। उस अध्याय मे अनेक भाषाये निकलती हैं। किन्तु उन भाषाओ को यहा नही दिया है। यही क्रम अगले अध्यायो मे भी चालू रहेगा।

वे साधु जन अपने आत्मस्वरूप मे रत रहकर परिशुद्धात्म-स्वरूप को साधन करते हुए सर्व साधु अर्थात् पाचवे परमेष्ठी होकर परम अतिशय रूप से परमात्मा के सदृश होने की सद्भावना सदा करते रहते है ।३।

वे साधु पचमहाव्रतो को निर्दोष रूप से पालन करते हुए क्रमानुगत आत्मिकोन्नति मार्ग मे सदा अग्रसर रहते है। मन, वचन और काय गुप्तियो के धारक होते हुए उपवास अर्थात् आत्मा के समीप मे वास करते रहते हैं। साधुओ के गुणों के कथन करनेवाली विधि को उपक्रम काव्य कहते है। यही श्री भूवलय का उपक्रमाधिकार है ।४।

उनके तपश्चरण को देखकर सब आश्चर्य-चकित हो जाते है, किन्तु वे उस कठोर तपस्या को सरलता से सिद्ध कर लेते है। ९+९=१८००० [अठारह हजार] प्रकार के शील को धारण करके तथा उसके आभ्यन्तर भेद को भी जानकर परिशुद्ध रूप से निरतिचार पूर्वक पालन करनेवाले अपने शिष्यो को भी इसी प्रकार शील की रक्षा करने के लिए सदा उपदेश देते है ।५।

अठारह हजार शीलो के अन्तर्गत चौरासी लाख भेद हो जाते है। उनको उत्तरगुण कहते है। इनमे एक गुण भी कम न हो, इस प्रकार पालन करनेवाले को साधुपरमेष्ठी कहते है ।६।

ये साधु समस्त दर्शन शास्त्रो के प्रकाण्ड वेत्ता होते हैं ।७।

ये साधु सर्प के भव भवान्तरों को अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा जान लेते है (सर्प-शब्द से समस्त तिर्यंच प्राणियो को ग्रहण किया गया है) ।८।

उनके मन मे जो अनायास ही शब्द उत्पन्न होते है वही शब्द शास्त्रों का मूल हो जाता है ।९।

आम के वृक्ष मे जो फूल (बौर) द्वारा रासायनिक क्रिया से गगनगामिनी विद्या सिद्ध होती है उस विद्या के ये साधुजन पूर्णरूप से ज्ञाता हैं। उस विद्या का नाम अनल्पकल्प है ।१०।

ये साधु नौ (९) अकरूपी भूवलय विद्या के पूर्ण-ज्ञाता है, अतः इनकी अगाध महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जाय ।११।

इन साधुओ का प्रत्येक शब्द सिद्धान्त से परिपूर्ण रहता है। अर्थात् इनके प्रत्येक वचन सिद्धान्त के कथानक ही होते है ।१२।

इनके एक ही शब्द के केवल श्रवण मात्र से मिथ्यात्वकर्मों का नाश हो जाता है, तो उनका पूर्ण उपदेश सुनने से क्या होगा ? ।१३।

उनके दर्शन मात्र करने से कर्मरूपी समस्त वनो का नाश हो जाता है ।१४।

भेद और अभेदरूपी दो प्रकार के नय होते है। उन दोनो नयो मे ये साधुपरमेष्ठी निष्णात है ।१५।

ये साधु नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत इन सात नयों में परम प्रवीण है ।१६।

ये साधु ज्योतिष विद्या के अष्टांगनिमित्तज्ञान में अत्यन्त कुशल होते हैं ।१७।

ये साधु वादी-प्रतिवादी की विद्या को स्तम्भन करने में बहुत चतुर है अथवा भूत प्रेतादि ग्रहगणों को भी स्तम्भन करने वाले हैं ।१८।

इन साधुओं ने मोहन, वशीकरण आदि विद्याओं में अत्यन्त प्रवीणता प्राप्त की है अथवा बन्ध करनेवाले को मोहन करके अपनी ओर आकर्षित करके उन्हें अपना शिष्य बनाने में भो ये निपुण हैं ।१६।

ग्रहादि को आकर्षण करने में भी ये अत्यन्त निपुण है ।२०।

और ग्रहादि का उच्चाटन करने मे भी ये अत्यन्त समर्थ है ।२१।

और समस्त मन्त्रों को साध्य करने में ये अत्यन्त निपुण है ।२२।

समस्त अर्थ को सिद्ध करनेवाले इस साधु परमेष्ठी को सिद्ध भगवान भी कहते है ।२३।

भूवलय में जैसा चक्रबन्ध है उसी रीति से आत्मिकगुणों के चक्ररूपी बन्ध में पवन के समान घूमने वाला है ।२४।

ये साधु दान देने में अत्यन्त प्राज्ञ है और संसार में सभी लोगों के द्वारा दान दिलाने में बड़े विलक्षण है ।२५।

जंगलों में समस्त जीवों के बीच चक्रवर्ती सिह है और उसमे रहने वाले तपस्वी जन उस सिह से भी पूज्य है; किन्तु सिह और उन समस्त साधुओं से भी सेव्य ये पंचपरमेष्ठी हैं ।२६।

ये साधु गण सर्वदा तपोवन रूपी साम्राज्य का पालन करने वाले हैं अर्थात् स्थावर आदि समस्त जीवों की रक्षा करने वाले है ।२७-२८।

हजारों वर्षों से हजारों मुनि इस भूवलय ग्रन्थ का उपदेश देते हुये इसे लिखते आये है ।२६।

उसी जंगल मे ये साधु जन मनुष्य तिर्यञ्च और देवों को उपदेश देते हुये अपने आत्मावलोकन में लीन रहते थे और ज्ञान दर्शनादि अनन्त गुणों का उपयोग रूपी आहार आत्मा को देते हुये जंगलों में विचरण किया करते थे । अतः वे आत्मिक बलशाली थे । इन मुनियों को जंगल में आनेवाले राजाधिराज बड़ी भक्ति भाव से आहार देते थे । अतः ये आत्मिक बल के साथ २ शारीरिकादि से भी बलशाली थे ।३०।

अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग ज्ञान से विभूषित होते हुये ये महात्मा आत्मध्यान से कदापि नही विचलित होते थे । ऐसे ज्ञानी साधु परमेष्ठी उस जंगल में सिंहतीर्थ नामक पवित्र स्थान में तपस्या करते थे । इन पंचपरमेष्ठियों की आज्ञा पाते ही जंगल मे रहने वाले सभी साधु घनघोर तप करने के लिये तैयार हो जाते थे और उस तप को करके प्रखर ज्ञान को प्राप्त कर लेते थे । इस प्रकार समस्त तपस्वी उस सिंहतीर्थं तपोभूमि मे अत्यन्त घन घोर तप करके अपने आत्मबल को बढ़ाने बाले थे ।३१।

ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानादि शक्तियों के धारी होने पर भी वे साधु ज्ञान मद से सर्वथा रहित रहते थे । ऐसे परमेष्ठियों के कर-पात्र में दिए हुए आहार को देखकर वे इस प्रकार विचार करके ग्रहण करते थे कि यह सात्विक आहार निर्मल ज्ञान की उन्नति करने वाला नहीं है, यह केवल जड़ शरीर को ही पुष्टि करने वाला है और आत्मा के द्वारा उत्पन्न हुआ ज्ञानामृत ब्राह्मण अन्न से आत्मा को पुष्टि करने वाला है । जड़ शरीर और आत्मा को भिन्न रूप समझकर पुद्गल अन्न पुद्गल को आत्म स्वरूप से उत्पन्न अन्न आत्मा को अर्पण करने वाले महापुरुषो को आहार देने का शुभ-समागम अत्यन्त पुण्योदय से ही प्राप्त होता है, अन्यथा नही ।३२।

जिस प्रकार गजराज बड़े गौरव के साथ दिए हुए भोजन को गंभीरता पूर्वक ग्रहण करता है उसी प्रकार ये साधु गंभीर मुद्रा से खड़े होकर आत्मोन्नति के लिए आहार ग्रहण करते है, आहार के लोभसे नहीं । इसीलिए रात्रि में ध्यान करने पर इनकी आध्यात्मिकता अद्भुत रूप से चमकने लगती है ।३३।

नो आगम निक्षेप दृष्टि से ये साधु परमेष्ठी ऋषभ के समान भद्रतापूर्वक मन से द्वादशाङ्ग श्रुत का चितन करने लगते है । तब अक्षर ज्ञान उत्पन्न हो जाता है । अक्षर के अर्थ का वर्णन पहले किया जा चुका है । अतः वही अक्षर ज्ञान रात्रि के समय उन साधुओं के हृदय-कमल में अनक्षर रूप बन जाता है ।३४।

इस तपस्या में निश्चल भाव से ये साधु परमेष्ठी रत रहने के कारण तपो राज्य के स्वामी कहलाते है ।३५।

ाधु परमेष्ठी अतिशय गुणो के राजराजेश्वर है ।३६।

जिस प्रकार पट्खण्ड पृथ्वी को जीत लेने पर चक्रवर्ती पद चक्री को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जीव स्थानादि पट्खण्ड अपने मस्तिष्क मे धारण करने के कारण और तपोराज्य मे परमोत्कृष्ट होने से तप चक्रवर्ती कहलाते हैं ।३७।

इन साधु परमेष्ठियो ने नवमाक पद से सिद्ध की हुई द्वादशाग वाणी अर्थात् भूवलय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।३८।

ये साधु परमेष्ठी समस्त गुरुकुल के अज्ञानान्धकार को नाश करने वाले चन्द्रमा के समान हैं ।३९।

इस गुरुकुल मे जो कवि गण रहते है उनका उद्धार करने वाले साधु परमेष्ठी है ।४०।

इन गुरुकुलो मे सिहासन पर विराजमान होकर राजाधिराजो से सेव्य अनेक गुरु विद्यमान थे। वह इन्द्रप्रस्थ से लेकर महाराष्ट्र तामिल और कर्णाटक देश मे प्रख्यात अनेक गुरुपीठो को स्थापित किया था। इस गुरुकुल के मुनि सघ मे समस्त भव्य जीव समावेश होकर अपने जीवन को फलीभूत बनाने के लिए आत्म-साधन का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे।

इसलिए इन्हे देश-देशो से आये हुए श्रीमान् तथा धीमान् सभी व्यक्तियो ने मध्यान्ह कल्प वृक्ष अर्थात् अन्न दान देनेवाले कल्प वृक्ष से नामाभिधान किया था ।४१।

देहली राजधानी को पहले इन्द्र प्रस्थ कहते थे। आकाश गमन ऋद्धि से आकर इस सेन गण वाले मुनियो द्वारा जैन धर्म को प्रभावना होती थी ।४२।

प्राचीन कालीन चक्रवर्तियो का राजसिंहासन नवरत्नो से निर्मित था और इन चक्रवर्तियों ने इन परम पूज्य मुनीश्वरो को प्रवाल मणि का सिंहासन बनवा कर प्रदान किया था और वे सदा उस सिंहासन को नमस्कार किया करते थे ।४३।

इन मुनिराजों की ख्याति सुनकर ग्रीक देशीय जनता आकर इनके धर्मोपदेश का श्रवण, पूजन आदि करते थे अत ये यवनी भाषा मे वार्तालाप करते हुए अनेक यावनी ग्रन्थो की रचना भी करते थे ।४४।

इन आचार्यो के साथ वार्तालाप करते समय इनके पास बैठे हुए अन्य कविगण भी वीतराग से प्रभावित हो जाते थे और उस प्रभाव को देखकर ये आचार्य इसे विशेप रूप से गौरव प्रदान करते थे ।४५।

इन महात्माओ ने ब्रह्मक्षत्रियादि चारो वर्णों के हितार्थ अपनी अनुपम क्रियाओ से सस्कार किया था ।४६।

ये मुनिराज एक ही समय मे उपदेश भी देते थे और शास्त्र लेखन कार्य भी करते थे ।४७।

यव मात्र भी कर्म का वध ये नही करते थे ।४८।

ये साधु समस्त विश्व को शान्ति प्रदान करने वाले थे। अर्थात् समस्त भूमडल को सुख-शान्ति देने वाले थे ।४९।

इन मुनिराजो के आदि पुरुष श्री वृषभदेव तीर्थंकर के प्रथम गणधर श्री वृषभसेनाचार्य थे ।५०।

वृषभसेनाचार्य से लेकर चौराशी गणधर इन साधु परमेष्ठियों के आदि पुरुष थे ।५१।

चतु सघ मे ऋषि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका ये चार प्रकार के भेद होते है। उन वृषभसेनाचार्य के समय मे सौन्दरी देवी और ब्राह्मी देवी ये दोनो आर्यिकाये थी। इन्ही दोनो त्यागी देवियो का सर्व प्रथम स्थान त्यागी महिलाओ मे था ।५२।

इन दोनो आदि देवियो ने सर्व प्रथम श्री भूवलय का आख्यान आदि तीर्थंकर श्री आदि-प्रभू से भरत चक्रवर्ती तथा गोम्मट देव के साथ सुना था। यद्यपि यह बात हम ऊपर कह चुके है, तथापि प्रसगवश यहा हमने इगित कर दिया ।५३।

इन्ही ब्राह्मी और सुन्दरी देवी से लेकर आचार्य श्री कुमुदेन्दु पर्यन्त ९९९९९ गणनीय आर्यिकाये थी ।५४।

यह सब चतु सघ सुरल रेखा अर्थात् महाव्रत के मार्ग से ही विचरण करता हुआ संयम पूर्वक अनियत विहार करता था। इनके साथ चलने वाले वहुत बडे-बडे शक्तिशाली व्यक्ति भी पीछे पड जाते थे। उन साधुओं की गति इतने वेग से होती थी कि मृग और हरिण की चाल भी इनके सामने फीकी

प्रतीत होती थी। इतने वेग से गमन करने पर भी वे जरा भी थकित न होकर श्रावकों को मार्ग में चलते २ उपदेशामृत भी पिलाते जाते थे।५५।

इन साधु परमेष्ठियो के असदृश करुणा होती है। इनका दयाभाव मानवों तक ही सीमित नही बल्कि समस्त जीव मात्र से रहता है। ये पूर्वोपार्जित तप के प्रभाव से दया घन बन गये। घन का अर्थ समस्त आत्म प्रदेशों मे दया भाव अखंड रूप से व्याप्त हो जाना है। जिस प्रकार गाय फसल को समूल नष्ट न करके केवल छाल को खाकर सन्तुष्ट हो जाती हैं तथा उसके बदले में अत्यन्त मधुर, पौष्टिक एवं समस्त जन कल्याणकारी पय प्रदान करती है उसी प्रकार नवधा भक्ति पूर्वक श्रावको के द्वारा दिये गये नीरस आहार को साधु जन ग्रहण करके सन्तुष्ट हो जाते है तथा उसके बदले उन्हें ज्ञानामृत प्राप्त हो जाता है जो कि स्व-पर कल्याणकारी होता है।५६।

इस ससार में प्राय: सभी लोग एकान्त में भोजन ग्रहण करते है किन्तु साधुओ के लिये अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई एकान्त स्थान कही भी नही है। अतः वे गोचरी वृत्ति से सर्व समक्ष आहार ग्रहण करते हैं। इस प्रकार का ग्रहण किया हुआ आहार निरीह वृत्ति कहलाता है। इन साधुजनों को आभ्यन्तरिक ज्ञानामृत आहार परम प्रिय होने के कारण पौद्गलिक जडान्न आहार ग्रहण करते समय यह पता ही नही चलता कि "हम आहार ग्रहण कर रहे है।" क्योकि इनका लक्ष्य केवल आत्मा की ओर ही प्रतिक्षण रहा करता है। ध्यानाध्ययन में किसी प्रकार की कोई वाधा न हो, इस कारण ये मुनिराज प्रमाण से कम अर्थात् अर्द्ध पेट अवमौदर्य वृत्ति से आहार ग्रहण करके तपोवन को गमन कर जाते है।५७।

ये साधु जन कुनय (दुर्नय) का छेदन-भेदन (नाश) करके अनेकान्तवाद धर्म का प्रचार करते हुये किसी का आश्रय न लेकर पवन के समान स्वच्छन्द होकर अकेले विहार करते रहते है। अनेकान्त धर्म का अर्थ अखिल विश्व कल्याणकारी धर्म है। ऐसा सदुपदेश देने वाले इन साधु परमेष्ठियों को पांचवाँ परमेष्ठी कहते है।५८।

ये साधु परमेष्ठी मानव रूपी भिक्षु है। भिक्षु शब्द के दो भेद हैं:—

१ ला आहार, वस्त्र तथा वसतिका आदि के याचक और दूसरा ज्ञान पिपासु। ज्ञान पिपासु भिक्षु समस्त तत्त्वों की कामना करते हुये गुरु के उपदेश से अथवा अपने शुभ व शुद्ध ध्यान से अभीष्ट पद प्राप्त कर लेते है।

इन तत्त्वान्वेषी साधुओं के आत्मिक ज्ञान का प्रकाश सूर्य के समान अत्यन्त प्रतिभा शाली होता है। और जब ये महात्मा ध्यान में मग्न हो जाते है तब इनकी आत्मा के अन्दर ज्ञान की किरणे धवल रूप से झलकने लगती है।५९।

ये साधु शिष्यों की रक्षा करते समय किसी प्रकार का रंचमात्र भी रोष नही करते। इनका स्वरूप सदा तेज पुंज से पूरित रहा करता हैं। जिस प्रकार सागर समस्त पृथ्वी को चारो ओर से घेरकर रक्षा करता रहता है उसी प्रकार ये साधु परमेष्ठी समस्त शिष्य वर्गो को अपने ज्ञान रूपी दुर्ग के द्वारा सुरक्षित रखकर आत्मोन्नति के मार्ग की प्रतीक्षा करते रहते है। और ऐसा करते हुये भी अनादि कालीन अपनी आत्मा के साथ बधे हुए कर्मो के साथ सामना करके विजय प्राप्त करते रहते है।६०।

पांचो परमेष्ठियो में ये साधु परमेष्ठी पाँचवे है। आचार्य कुमुदेन्दु ने वृषभ सेनादि ८४ के बाद गौतम गणधर तक और उनके समय से अपने समय तक सभी आचार्यो ने भूवलय के अंग ज्ञान की पद्धति किन २ आचार्यो में थी इत्यादि का निरूपण करते हुये दूसरा नाम केशरीसेन तीसरा नाम चारुसेन आदि क्रम से बज्रचामर, वज्रसेन, बज्रचामर, वां अदत्तसेन, जलसेन, दत्तसेन, विदर्भ सेन नागसेन, कुन्थुसेन धर्मसेन, मन्दर सेन, जै सेन सद्धर्म सेन, चक्रबध, स्वयंभू सेन, कुंभसेन, विशाल सेन, मल्लि सेन, सोमसेन, वरदत्त मुनीन्द्र, स्वयं प्रभारती, इन्द्रभूति, विप्रवर, गुरुवंश, सेनवंश इत्यादि १५६१ मुनीश्वर सेनगण मे भूवलय के ज्ञाता साधु-परमेष्ठी थे। ६१ से लेकर ८८ तक श्लोक पूर्ण हुआ।

विवेचन:—यह आचार्य परम्परा मूलसंघ के आचार्यो की होती हुई इतिहास से पूर्व काल से लेकर आई हुई मालूम पड़ती है। इस सम्बन्ध में हम अन्वेषण करते हुये महान् महान् इतिहासज्ञो से वार्तालाप किये। तो उस वार्ता-

लाप का भाव यह निकला कि ये १५६१ मुनि आचार्य कुमुदेन्दु के ही समकालीन महा मेधावी, आचार्य के ही शिष्य थे। इन सब के साथ आचार्य कुमुदेन्दु विहार करके मार्ग मे समस्त आचार्यों को गणित पद्धति सिखलाते हुये रापस्त भूवलय ग्रन्थ की रचना चक्रवध क्रमानुसार सभी आचार्यो से करवाये। १६२×६४=१०३६८ अर्थात् श्रीमद् भगवद् गीता के १६२ श्लोक को भूवलय के ६४ अक्षरो से गुणा कर दिया जाय तो एक भाषा अर्थात् गीर्वाण भाषा मे ऋग्वेद बन जाता है। इस प्रकार की विधि से आचार्य श्री कुमुदेन्दु ने अपने एक शिष्य को उपदेश दिया। तो उस मेधावी शिष्य ने एक ही रात्रि मे उपर्युक्त अंकों की रचना चक्रबध रूप मे करके दिखा दिया। इसी रीति से दूसरे शिष्य को १६२×५४=वही १०३६८ अंको का उपदेश देकर कहा कि अच्छा तुम अपनी बुद्धि के अनुसार बनाओ। गुरु देव की आज्ञा पाते ही दूसरे शिष्य ने भी फल स्वरूप श्री वेद व्यास महर्षि विरचित महाभारत अर्थात् वयाख्यान तथा उसके अन्तर्गत पाँच भाषाओ मे श्री मद्भगवद् गीता के अको को चक्रबंध रूप में शीघ्र ही बनाकर श्री गुरु के सम्मुख लाकर प्रस्तुत किया। इसी रीति से १५६१ महामेधावी मुनि शिष्यो को रचना के लिये दे देने से सभी ऋषियों ने एक ही दिन मे महान् अद्भुत भूवलय ग्रन्थ को विरचित करके गुरु को प्रदान कर दिया। तब कुमुदेन्दु मुनि ने समस्त मेधावी महर्षियो की वाक्-शक्ति को एकत्रित करके अपने दिव्य ज्ञान से अन्तर्मुहूर्त्त मे इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की। वह चक्रबन्ध १६००० संख्या परिमित है।

अपने अपने कर्मानुसार मानव पर्याय प्राप्त होती है ऐसा सोचकर तपोवन में तपस्या करते समय मुनिराज मेरु पर्वत के समान अकम्प (निश्चल) रहते हैं। तथा अपने आत्मिक गुणो को विकसित करते हुये मोहकर्म को जीत लेते हैं।८६।

जिस प्रकार रात्रि मे चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनी के द्वारा स्वयं प्रशान्त रहकर समस्त जीवो के सताप को हर लेता है उसी प्रकार साधु जन सिंह विक्रीडितादि महान महान व्रतों द्वारा स्वयं प्रशान्त रहकर अन्य जीवों को भी शान्ति प्रदान करते है। अतः उनकी बुद्धि रूपी संपत्ति सदा चमकती रहती है।९०।

दीप्तिमान नव रत्नो को एक ही आभरण में यदि जड दिया जाय तो उनकी पृथक पृथक प्रभा एकत्रित होकर अनुपम प्रकाश देती है इसी प्रकार ज्ञान की विभिन्न किरणो को श्री कुमुदेन्दु आचार्य के १५६१ शिष्यों ने ग्रहण किया और कुमुदेन्दु आचार्य ने उन ज्ञान किरणो कोएकत्रित करके इस भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ का रूप दिया जिसमे कि विश्व का समस्त ज्ञान निहित है।

क्षर नाम नश्वर का है और अक्षर नाम अविनश्वर का है। जिस प्रकार केवल ज्ञान अक्षर (अविनश्वर) है सी प्रकार भूवलय का अकात्मक ज्ञान अक्षर (अविनश्वर) है।९१।

जिस प्रकार भूमि के अन्तरग बहिरग रूप मे पदार्थो को धारण करने रूप सहन शक्ति विद्यमान है उसी प्रकार मुनियो के अन्तरग-बहिरंग समता भावो मे अनुपम सहनशक्ति विद्यमान रहती है। उस परम समतामय मुनिराजों के द्वारा इस भूवलय की रचना हुई है।९२।

जिस प्रकार अनियत घूमने फिरने वाला सर्प यदि किसी के घर मे आ जावे तो उसके विषमय दन्त उखाड देने पर वह किसी को कुछ भी वाधा नही दे पाता उसी प्रकार अनियत स्थान और बसितका मे विहार करने वाले योगी जन विषय-वासनाओ के विष को दूर कर देने के कारण किसी भी प्राणी के लिए अहित कारक नही होते।९३।

जिस प्रकार भूमि को छिन्न-भिन्न करने पर भी भूमिगत आकाश छिन्न-भिन्न नही हुआ करता उसी प्रकार साधु गण शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर भी अपने अनुपम समता मय भावो मे स्वावलम्बन रूप से अपने गुणों द्वारा आत्मा को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखते है। ऐसे मुनिराजो के द्वारा इस भूवलय का निर्माण हुआ।९४।

वे मुनिराज सदा सर्वदा केवल मोक्ष मार्ग के अन्वेषण मे ही तत्पर रहते है। तपस्या मे शालवृक्ष के समान कायोत्सर्ग मे खड़े होकर वे मुनिराज निश्चल भाव से तप करते है।९५।

ऐसे साधु परमेष्ठी इस कर्म भूमि मे रहने पर भी संपूर्ण कर्मो से रहित होते है। और मार्ग मे विहार करते समय राजा-रक के द्वारा नमस्कार किये

जाने पर समदर्शी होने के कारण किसी के साथ लेश मात्र भी राग द्वेष नही करते।

उत्कृष्ट कुल में उत्पन्न हुये साधु जन वर्णनातीत है। अतः उन्हे ऊँच नीच कुल के चाहे जो भी नमस्कार करे उन सबको वे समान समझते थे। इस प्रकार तीनों कालों मे इन साधुओ का चरित्र परम निर्मल रहता है।९६।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधु श्री कुमुदेन्दु मुनि के संघ में थे। वे भी सेनगण के अन्तर्गत ही थे। ये सभी मुनि नरकादि दुर्गतियो का नाश करनेवाले थे। इनका वर्णन निम्न प्रकार है:—

वायुभूति कमल पुष्प के समान सुशोभित चरण है जिसके ऐसे अग्नि भूति, भूमि को छोड़कर अधर मार्ग गामी सुधर्म सेन, वीरता के साथ तप करने वाले आर्य सेन, गणनायक मुंडी पुत्र, मानव कुल के उद्धारक मैत्रेय सेन नरो मे श्रेष्ठ अकम्पन सेन, स्मरण शक्ति के धारक अन्ध्र सेन गुरु, नरकादि दु.खो से मुक्त अचल-सेन, शिष्यों को सदा हर्षित करने वाले प्रभाव सेन मुनि इन समस्त मुनियों ने पाहुड ग्रन्थ की रचना की है।

प्रश्न—पाहुड ग्रन्थ की रचना क्यो की गई ?

उत्तर—केवल ज्ञान तथा मोक्ष मार्ग को सुरक्षित रखने के लिये इस पाहुड ग्रन्थ की रचना की गई। इन मुनियो के वाग्बाण से ही शब्दो की रचना हो जाती थी। अतः जनता इन्हे दूसरे गणधर के नाम से संबोधित करती थी।

उस उस काल के धारणा शक्ति के अनुसार गणित पद्धति के द्वारा अङ्गज्ञान से वेद को लेकर वे साधु ग्रन्थों की रचना करते थे। अर्थात् मन्त्र का द्रष्टार्थ तत्तत्कालीन महाभाषाओ के वे साधु जन ज्ञाता थे और कार्य कारण का सम्बन्ध भलीभाति जानते थे। नरक गति से आये हुए समस्त जीवों को ज्ञान प्रदान करते हुए वे मुनिराज पुन: नरक बन्ध करने से बचा लेते थे। वे समस्त मुनिराज चारो वेद तथा द्वादशांग वाणी के पूर्ण ज्ञाता थे तथा आयु के अवसान काल में स्व-पर हित करनेवाले थे। उस प्राचीन समय से बनारस नगर में वाद-विवाद करके यथार्थ तत्व निर्णय करने के लिए एक सभा की स्थापना की गई थी। उस सभा मे इन्ही मुनीश्वरो ने जाकर शास्त्रार्थ करके आत्मसिद्धि द्वारा प्रकाश डालकर मानवो को कल्याण का मार्ग निर्दिष्ट किया था।

इस रीति से बनारस में वाद-विवाद करते रहने से जैनियों के आठव तीर्थंकर चन्द्रप्रभु तथा शैवों के चन्द्रशेखर भगवान् एक ही होने से "हरशिवशंकर गणित" ऐसी उपाधि इन मुनीश्वरों को उपलब्ध हुई थी। इसी गणित शास्त्र के द्वारा भूवलय ग्रन्थ की रचना तथा स्वाध्याय करने के कारण इन्हें "भूवलयर" नाम से भी पुकारते थे।९७ से १९९ तक श्लोक पूर्ण हुआ।

भूवलय की रचना मे "पाहुड" वस्तु "पद्धति" इत्यादि अनेक उदाहरण है। ये कर्मभूमि के अर्द्ध प्रदेश मे रहनेवाले जीवों को उपदेश देने के लिए सांगत्य नामक छन्द में पद्धति ग्रन्थ की रचना करते थे। उस ग्रन्थ में विविध भाषाओं में शुद्ध चैतन्य विलसित लक्षण-स्वरूप परमात्मा का ही वर्णन अर्थात् अध्यात्म विषय ही प्रधान था।१२०।

वे महात्मा सदा परमात्मा के समान सन्तोष धारण करके आत्मतत्त्व रुचि से परिपूर्ण रहते है और सम्यग्दर्शन का प्रचार करते हुए दर्शनाचार से सुशोभित रहते है।१२१।

उन महर्षियों के मन मे कदाचित् किसी प्रकार की यदि कामना उत्पन्न हो जाती थी तो वे तत्काल ही उसे शमन करके उस कामना के विषय को जन्म पर्यन्त के लिए त्याग देते थे और अपने चित्त को एकाग्र करके समताभाव पूर्वक आत्मतत्त्व मे मग्न होकर आनन्दमय हो जाया करते थे।१२२।

तब उन महात्माओ का विश्व व्यापक ज्ञान आत्मोन्नति के साथ साथ अलोकाकाश पर्यन्त फैलता जाता था। और प्रकाश के फैल जाने पर भेद विज्ञान स्वयमेव झलकने लगता था। तथा शुभाशुभ रागादि समस्त विकल्प परभावो से मुक्त हो जाता था।१२३।

जब आत्मा के साथ परभाव का सम्बन्ध उत्पन्न होता है तब संसार बन्ध का कारण बन जाता है। किन्तु अपने निज स्वभाव मे रहनेवाले उपर्युक्त साधुओं के ऊपर लेशमात्र भी परभाव नही पड़ता था। संघ मे रहनेवाले समस्त साधु सरल, समदर्शी एव वीतरागता पूर्ण थे। अतः परस्पर मे आध्यात्मिक रस का ही लेन-देन था व्यावहारिक नही। सभी साधु निश्चय नय के आराधक थे,१२४।

कदाचित् इस पृथ्वी सम्बन्धी वार्तालाप करने का अवसर यदि आक-

स्मिक रूप से आ जाता था तो वे साधुजन तेरहवे गुणस्थान के अन्त मे आने-वाले चार केवली समुद्घातो का पृथ्वी सम्बन्धो आत्म प्रदेश को ही विचारते हुए इस पृथ्वी मे रहनेवाली पौद्गलिक शक्ति का चिन्तवन करते हुए आत्मा का अवलोकन करते रहते थे। अत सदाकाल संघ सुरक्षित रूप से विहार करता था। इसका नाम ज्ञानाचार था।१२५।

समवशरण मे लक्ष्मी मण्डप (गन्ध कुटी) होती है। उसमे भगवान विराजमान होते है। उसके समीप चारो ओर बारह कोष्ठक (कोठे) होते हैं, जिनमे से पहले कोष्ठक मे मुनिराज विराजमान रहते हैं। इसी के अनुसार परम्परा से लक्ष्मी सेन गण नाम प्रचलित हुआ। अत उपर्युक्त समस्त आचार्य लक्ष्मीसेन गणवाले मुनिराज कहलाते है।१२६।

गौतमादि गणधरो से लेकर उपर्युक्त सभी आचार्य दिव्य ध्वनि से सुने हुए समस्त द्वादशांग रचना के क्रम को नौ (९) अंको के अन्दर गर्भित करनेवाली विद्या मे परम प्रवीण थे अर्थात् भूवलय सिद्धान्त शास्त्र के ज्ञानी थे।१२७-१२८।

अनादिकाल से लेकर उन आचार्यो तक समस्त जीवो के समस्त भवो को जानकर आगामी काल में कौन-कौन से जीव मोक्ष पद को प्राप्त करेंगे यह भी बतलाकर वे आचार्य सभी का उद्धार करते थे।१२९।

ये साधु परमेष्ठी अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारो के मंगलस्वरूप है। इसका प्राकृत रूप इस प्रकार है—"अरहन्त मगल, सिद्धमंगलं, साहुमंगल, केवलीपण्णत्तो धम्मोमगलम्" ।१३०।

विवेचन—अब श्री कुमुदेन्दु आचार्य जो उपर्युक्त साधु परमेष्ठियो को चौबीस तीर्थंकरों का स्वरूप मानकर २४ तीर्थंकरो का निरूपण करते हुए उनके निर्वाण पद प्राप्त स्थानों का वर्णन करते है।

कैलासगिरि से श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर मुक्ति पद प्राप्त किए भगवान् से श्री ऋषभदेव सर्व प्रथम तीर्थंकर तथा भूवलय ग्रन्थ के आदि सृष्टि कर्त्ता थे।१३१।

इसके बाद दूसरे तीर्थंकर के अन्तराल काल मे धर्म धीरे घटता चला गया। और एक बार पूर्ण रूप से नष्ट सा हो गया था। तब दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान् ने इस भरतखंड मे अवतार लेकर धर्म का उत्थान किया तथा सम्मेद शिखर से मुक्ति पद प्राप्त कर लिया।१३२।

एक तीर्थंकर से लेकर दूसरे तीर्थंकर तक अर्थात् श्री सम्भव, श्री अभिनन्दन, श्री सुमिति, श्री पद्मप्रभ श्री सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ श्री पुष्पदन्त, श्री शीतल, श्री श्रेयांस, इन सभी तर्थंकरो ने श्री सम्मेदशिखर पर्वत से मुक्ति प्राप्त को थी। इनमे से आठवे तोर्थंकर श्रो चन्द्रप्रभु भगवान श्री कुमुदेन्दु आचार्य के इष्ट देव थे, क्योकि यह आठवा अंक ६४ अक्षरो का मूल है।१३३ से लेकर १३९ तक।

चम्पापुर नगर मे श्री वासुपूज्य तीर्थंकर नदी के ऊपर अधर [यवाग्र भाग] से मुक्ति पधारे।१४०-१४१।

तत्पश्चात् श्री सम्मेदशिखर पर्वत के ऊपर श्री विमलनाथ, श्री अनन्त नाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शान्तिनाथ, श्री कुन्थुनाथ, श्री अर्हनाथ, श्री मल्लिनाथ मुनि सुव्रतनाथ, श्री नमिनाथ इन सभी तीर्थंकरो ने श्री सम्मेदशिखर गिरि से मुक्तिपद प्राप्त की थी। और श्री नेमिनाथ भगवान् ने।१४२-१४६।

ऊर्जयन्त गिरि [गिरिनार—जूनागढ], पावापुर सरोवर के मध्य भाग से श्री महावीर भगवान् तथा श्री सम्मेद शिखर जी के स्वर्ण भद्र टोक से श्री पार्श्वनाथ भगवान् मुक्त हुए थे।१४७-१४८।

विवेचन—श्री पार्श्वनाथ का नाम पहले आकर श्री महावीर भगवान् का नाम बाद मे आना चाहिए था पर ऊपर विपरीत क्रम क्यो दिया गया ?

इस प्रश्न का अगले खंड मे स्पष्टीकरण करते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य लिखते हैं कि श्री सम्मेदशिखरजी का स्वर्णभद्र कूट [भगवान् पार्श्वनाथ का मुक्त स्थान] सबसे अधिक उन्नत है अतएव वहां पहुंचकर दर्शन करना बहुत कठिन है। [इस समय तो चढने के लिए सीढिया बन जाने के कारण मार्ग कुछ सुगम बन गया है किन्तु प्राचीन काल मे सीढियों के अभाव से वहाँ पहुंचना अत्यन्त कठिन था] उस कूट के ऊपर पहले लोहे को सुवर्ण रूप में परिणत कर देनेवाली जड़ी-बूटियां होती थी, अतः सुवर्ण के अभिलाषी बकरी पालनेवाले गणेरिये बकरियो के खुरो मे लोहे की खुर चढाकर इसी कूट के ऊपर उन्हे चरने के लिए भेज दिया करते थे जिससे कि वे घास-पत्ती चरती-

चरतों उन जड़ी बूटियो पर जब अपनी खुर रखती थी तब उनके लोहे के खुर सोने के बन जाया करते थे। इस कारण इस कूट का नाम स्वर्ण भद्र प्रख्यात हुआ और इसी कारण भगवान पार्श्वनाथ का नाम ग्रंथकार ने अन्त में दिया है।

इन सभी तीर्थंकरों ने शुद्धात्म भावना से इस पृथ्वी और शरीर के मोह को छोड़कर निवृत्ति मार्गको अंगीकार करके उस अध्यात्म के आनन्द से उत्पन्न हुए स्वाभाविक आत्मिक ऐश्वर्य के समान रहनेवाले मोक्ष पद को प्राप्त किया है। अतः इन तीर्थंकरों को जगत के सभी कवि नमस्कार करते है।१४९।

ये जिस सुख के अनुभव में रहते हैं वही सुख सम्यक्त्व चारित्र कहलाता है। उस पवित्र चारित्र के मर्म को अपने अन्दर पूर्णतया भरे रहने के कारण उनको परम शुद्ध निर्मल जीव द्रव्य कहते है। इस तरह निर्मल वर्तना मे रहनेवाले तीर्थंकर भगवान के निश्चय चारित्र मे लीन होने के कारण शेष बचे हुए अघाति कर्म स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। हमारे समान उन लोगों को शारीरिक तप करने की जरूरत नही पडती और न उन्हें हमारे समान किसी व्यवहार धर्म को पालन करने की आवश्यकता रहती। इसलिए वे समवशरण मे सिंहासन पर रहनेवाले कमल पुष्प को स्पर्श न करते हुए चार अंगुल अधर रहते हैं।१५०-१५१।

जैसे कमल पत्र के ऊपर रहनेवाली पानी की बूंद कमल पत्र को स्पर्श नही करती तथा पानी मे तैरती हुई मछली के समान कमल पत्र के ऊपर पड़ी हुई पानी की बूंदें तैरती रहती हैं उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान भी समवसरणादि पर द्रव्य मे मोहित न होते हुए अपने सारभूत आत्म द्रव्य में ही लीन रहते हैं। समवसरण मे देव मानवादि समस्त भव्य जीव राशि विद्यमान होने पर भी वे परस्पर मे अभिमान तथा रागद्वेष न करते हुए स्वपर कल्याण की साधना में मग्न रहते हैं।१५२।

क्रमवर्ती ज्ञान को निरोध करते हुए अक्रम अर्थात् अनक्षरात्मक सभी की इच्छाओं को एकीकरण करके सम्पूर्ण ज्ञान को एक साथ निर्वाह करते हुए तीर्थंकर परमदेव समस्त ससारी भव्य जीवों को अपने अमृतमय बाणी के द्वारा उद्धार करते हैं। इस क्रम से समस्तजीव एक साथ अपने अपने अनाद्यनंत स्वरूप को जानकर छोड़ देते हैं।१५३।

इस तरह आत्म भावना मे ही लीन होते हुए तीर्थंकर परमदेव नवमांक महिमा के साथ जगत के तीनों लोकों का पूर्णरूप से निर्वाह करते हुए तथा आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को भीतर से उमडकर बाहर आनेके समान तपस्या को करते हुए और उसी तरह भव्य जनो को भी आचरण करने का उपदेश तथा आदेश करते हुए उत्तम तप में सभी भव्य जीवो को तृप्त करते हुए जगत को आश्चर्य चकित करते हुए उनके मनको विशाल करते हुए सम्पूर्ण जीव समान हैं, ऐसी प्रेरणा करते हुए आचार सार में कहे हुए तपश्चर्या के मर्म को अनुग्रह कराते हुए ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, और तपाचारादि इन पांच आचार को जनता में स्थापना कराते हुए सामायिक प्रति क्रमणादि क्रियाओं को करते समय शक्ति को न छिपाते हुए आचरण करना चाहिए। इस प्रकार उपदेश करती हुए तीनों संध्याकाल में दैवसिक रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिकसंवत्सरादिक केसमय मे अर्हंत सिद्ध चौबीस तीर्थंकरादि गुणों के समान अपने आत्मा के अन्दर अनुकरण करते हुए, गुणस्तव, वस्तु स्तव, रूपस्तव इत्यादि गुणों की भावना करने का उपदेश देते है। १५४ से १६६ तक।

पर वस्तु को भूलकर समस्त शुद्ध जीव के समान मेरी आत्मा इसी तरह परिशुद्ध है, ऐसी भावना करते हुए निश्चय चारित्र में अपनी शक्ति को वैभवशाली समझकर महान वैभव संपन्न पांच चारित्र आराधना अर्थात् सिद्धांत मार्ग के अद्भुत और अनुपम ज्ञानाराधना दर्शनाराधना चारित्राराधना, तपाराधना, और वीर्याराधनादि का अत्यन्त वर्णन के साथ उपदेश करते हुए रथ के कलश के समान रहनेवाले अपने आत्मस्वरूप के निश्चय स्थान अर्थात् सिद्धात्म स्वरूप नाम के एक ही सांचे में ढले हुए शुद्ध सोने की प्रतिमा के समान स्वसमय सार के बल से निश्चय नयाबलंबन रूप शुद्ध जीब बन जाता है। तब उनको चिरंजीवि, भद्र, शिव, सौख्य, शिव, मंग और मंगल स्वरूप कहते है। १७२ से १८२ तक।

नवजात बच्चे के स्वास चलते रहे तो वह जिन्दा रहेगा ऐसा कहने के अनुसार सम्यक्त्व के अभिमुख जोव को मोक्ष में जाकर जन्म लिया, ऐसा समझना चाहिए। तब यह जीवात्मा स्वयं स्वयंभू अर्थात् स्वतन्त्र होता है, ऐसा समझना चाहिए। तब करनेवाले जितने भी कार्य है वे सभी विज्ञान मय होते हैं और समस्त पृथ्वी के सार को समझकर ग्रहण कर लेता है। वह संसार

के सुख को अनुभव करने पर भी आत्म समाधि मे लीन होकर धर्म साम्राज्य का अधिपति होता है ।१८३।

वीतरागत्व का निश्चय भाव मे परिणाम करनेवाले वे साधु परमेष्ठी आत्मसमाधि रूपी समुद्र मे तैरते हुए समस्त कर्मों को नाश करते हुए, सम्पूर्ण नयोंके विषयो को जानते हुए अपने आत्मा मे लीन रहनेवाले आत्मा मे तीनो काल मे ससार मे महोन्नत स्थान को प्राप्त होते है । ऐसे योगिराज हमेशा जयवत रहें ।१८४।

आसिन्न भव्य को उत्पन्न शुद्धात्म प्राप्ति की होनेवाली आशा उनके जय के कारण होती है हमारे विजय को देखकर भी तू संसार की विषयवासनाओ को नही छोडता ? परम पवित्र सर्वसाधु परमेष्ठियो के पवित्र पुण्य चरणों में अपने उपयोग को लगाकर अगर तू पूजा करते तो तुम्हे उन समस्त आचरणो का मार्ग तथा निर्भर भक्ति आ जाती । इसलिए आप मन वचन और काय से पच परमेष्ठियो के पवित्र चरणो की निर्भर भक्ति से आराधना करो ।१८५।

समस्त द्वादशाग वाणी के मर्म को जानकर उस मार्ग से तू श्रम रहित चलते हुए आने से पचपरमेष्ठियो को नमस्कार करना, स्तुति करना, स्मरण करना, इत्यादि क्रम को कहे जाने वाले नवमाक गणित से बद्ध होकर रहने वाले को श्री भूवलय से आप समझकर उस मार्ग की प्राप्ति कर लो ।१८६।

मोक्ष दूसरे के वास्ते नही है इसलिए वह अन्य किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नही हो सकती । तीर्थंकर भगवान भी अपने हाथ से पकडकर अपने साथ मोक्ष को ले जानेवाले नही है ।

वे भी हमारे समान कठिन तपश्चर्या करके अपने कर्मो की निर्जरा करके मोक्ष की प्राप्ति कर लिए हैं । इसी तरह हम लोगो को भी अपने स्वार्थ को सिद्ध कर लेना चाहिये । स्वार्थ का अर्थ अन्य जनों के द्वारा अनुभव करने वाली वस्तु की अपेक्षा करके अनुभव करना है । यह स्वार्थ वैसा नही है । क्योंकि इससे किसी को किंचिद् मात्र भी हानि नही पहुंचती । मोक्ष सुख का स्वार्थ सिद्ध करने का हक सभी को है । समस्त अज्ञानताओं को नष्ट करके हितरूप में तल्लीन होना शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति है ।१८७।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी निर्मल जल ही तीर्थ है और उस तीर्थ मे यदि एक बार जीव गोते लगा ले तो वह शीघ्रातिशीघ्र ससार सागर से पार हो जाता है । वह तीर्थ अन्यान्य क्रोधादिरूप तरङ्गो से वचाकर अनन्त चतुष्टयरूप आत्मिक सपत्ति को प्राप्त करने वाला वज्र वृषभनाराच-सहनन शरीर की प्राप्ति कराके उस जन्म मे मुक्ति स्थान मे पहुंचा देता है,' ऐसा श्री साधु परमेष्ठी उपदेश देते है ।१८८।

ये साधु परमेष्ठी इहलोक, परलोक, अत्राण, अगुप्ति, आगन्तुक आदि सात भयो से मुक्त होने के कारण परम पराक्रमी होते हैं । इस प्रकार सात भयो से रहित रहने के कारण उन साधु परमेष्ठियो का मुख-कमल प्रसन्नता से परिपूर्ण रहता है । मोक्ष स्थान मे सदा प्रसन्नता-पूर्वक रहना ही जीव का नैसर्गिक स्वभाव है । ससारावस्था मे रहने वाले सभी जीवो के शरीर मे खड २ रूप से शरीर के अन्दर छिद्र रहते है, पर मुक्तावस्था मे ऐसा नही रहता । क्योंकि वहा पर जीव अखड घनस्वरूप मे रहता है । किसी के सम्पर्क मे न रहने से अखड स्वरूप रहना शुद्ध वस्तु का स्वभाव ही है । मुक्ति मे सदा काल जीव आत्मा से उत्पन्न हुये आनन्द मे तल्लीन रहता है । वे महापराक्रमी सिद्ध जीव चैतन्यस्वरूप से रहते है और सत्य स्वरूप हैं । उस दुर्लभ सुख मे रहने वाले सिद्ध परमेष्ठियो को सर्वसाधु परमेष्ठी अपना सर्वस्व मानकर सदा काल यानी अविरल रूप से भक्ति पूर्वक मनन करते है । ये ऋषिगण उन सिद्ध परमेष्ठियो के पद प्राप्ति के निमित्त त्रिकाल असाधारण भक्ति करते रहने से वह पद प्राप्त कर लेते हैं ।

इस ससार मे वे साधुगण सविकल्प रूप से दीख पडने पर भी अपनी आत्मसमाधि सिद्धि का महान् साधन सचय करते है । वह सामग्री परम दया, सत्य आदि वास्तविक सामग्री है । उन सामग्रियो से जब ग्रन्थ रचना करने के लिये बैठ जाते है तब आत्मस्वरूप तथा अखिल विश्व के समस्त पदार्थ स्फटिक के समान झलकने लगते है । इस काल मे श्री धरसेन आचार्य ने पात्र परमेष्ठियो की भक्ति से निकल कर आने वाले अक्षरो और अंको से जिस काव्य की रचना की है वह प्राकृत, सस्कृत तथा कन्नड इन तीनो भाषाओ से मिश्रित अर्द्धभाषा कहलाती है । इस रीति से उन्होंने जो साढे तीन (३½) भाषा की रचना की है वह "पद्धति" नामक छन्द कहलाता है । इस प्रकार रचा हुआ ग्रन्थ भी इस

भूवलय मे गर्भित है। दिशारूपी वस्त्र और करपात्र आहार ग्रहण करने वाले साधुओं द्वारा अनादि काल से सपादन किया हुआ ग्रन्थसार इस भूवलय में गर्भित है। उसमे से एक ग्रन्थ का नाम "पंच परमेष्ठी बोल्लि" है। यहां तक १६६ से लेकर २१२ श्लोक तक पूर्ण हुआ।

विवेचन—आजकल "पंच परमेष्ठी बोल्लि" नामक कानड़ी भाषा में जो ग्रन्थ मिल रहा है वह प्राचीन कर्णाटक भाषामें होने पर भी दशवीं शताव्दी से पीछे का है, प्राकृत भाषा मे मगलाचरण के प्रथम श्लोक को देखकर अजैन विद्वान इस भूवलय ग्रन्थ को दशवी शताब्दी के बाद का कहते है। किन्तु ऐसा नहीं है; क्योंकि भूवलय सिद्धान्त रचित पांच परमेष्ठियों का 'बोल्लि' नामक पद्धति ग्रन्थ साढ़े तीन भाषा में होने से श्री कुमुदेन्दु आचार्य के पूर्व किसी महान् आचार्य द्वारा रचित है। उसका स्पष्टीकरण अगले श्लोक में किया गया है। इस पृथ्वी मे रहने वाली समस्त वस्तुओं का अर्थात् जीवादि षड् द्रव्यो का कथन सर्व प्रथम भगवान् की वाणी से निष्पन्न हुआ है। उस कथन को लेकर पूर्वाचार्यो ने अपने अद्भुत ज्ञान से "पंच परमेष्ठी बोल्लि" पद्धति नामक ग्रन्थ की रचना की हैं। वह ग्रन्थ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्वसाधुओं के यश का गुणगान करने के कारण पद्धति नामक छन्द से प्रख्यात था।२१३।

उस पंच परमेष्ठो को बोल्लि मे अनेक प्रकार के न्याय ग्रन्थ, लक्षण ग्रन्थ इत्यादि विविध भांति के अतिशय संपन्न ग्रन्थ बारह हजार कानड़ी श्लोक और कई हजार श्लोक के अन्य ग्रन्थ संमिलित हैं। ये सभी ग्रन्थ भूवलय के समान ही सातिशय निष्पन्न हुये है।२१४।

इस प्रकार नवमांक बद्ध क्रमानुसार बंधे हुए सभी को नय मार्ग बतलाने-वाले इस पांच परमेष्ठियो के गुणगान रूप काव्य को भक्ति-भाव से जितना ही अधिक स्वाध्याय करें उतना ही अधिक उनका आत्मा गुणवान बन जायगा और परम्परा से अभ्युदय सौख्य १८ तथा नयः श्रेयस समस्त सुख विना इच्छा के ही स्वयमेव मिल जायगा। इस प्रकार उत्कृष्ट फल प्रदान करने वाला समस्त संसार का सार स्वरूप भूवलयान्तर्गत यह पंच परमेष्ठी का बोल्लि रूप ग्रन्थ है।२१५।

इस भूवलय के अन्तर्गत पंच परमेष्ठि का बोल्लि सूत्र संक्षेप रूप में भी निकलेगा और विस्तार रूप में भी निकलेगा। इस मंगल प्राभृत नामक ग्रन्थ में जो २४ (चौबीस) तीर्थकरों का वर्णन है वही पंचपरमेष्ठी अर्थात् अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधु का गुण वर्णनात्मक है। और वही पंचपरमेष्ठियों के बोल्लि का विषय है।२१६।

सूत्र रूप में जो पंचपरमेष्ठी का बोल्लि है वह बीजाक्षररूप होने से मन्त्र रूप है और मन्त्राक्षर तो बोजाक्षर बनते ही है। चक अक्षर में अनन्त गुण हैं। इसलिये उस अक्षर को केवल ज्ञान कहते हैं। भारतीय संस्कृति में नमः शिवाय तथा अ सि आ उ सा ये दोनों पंचाक्षर बीज मन्त्र है। बुद्धि ऋद्धि के आठ भेद है। उनमें एक बीज बुद्धि नामक महान् अतिशय-शालिनी बुद्धि भी है। द्वादशांग वाणी के असंख्यात अक्षरों मे से केवल एक ही अक्षर का नाम कहने से समस्त द्वादशांग, (ग्यारह अंग तथा चौहद पूर्व आदि) का ज्ञान हो जाना बीज बुद्धि नामक ऋद्धि है। ऋद्धि का अर्थ आध्यात्मिक ऐश्वर्य है। चौदह पूर्वों में अग्रायणी नामक एक पूर्व है। उसका नाम वैदिक सम्प्रदायान्तर्गत ऋग्वेदादि ग्रन्थों में भी दिया गया हैं, किन्तु वह नष्ट हो गया है, ऐसी वैदिकों की मान्यता है।

उस अग्रायणी पूर्व से 'पंचपरमेष्ठी बोल्लि' नामक १२ हजार श्लोक परिमित एक कनड़ी ग्रन्थ निकलता है। उस ग्रन्थ मे पचपरमेष्ठियों का समस्त गुण वर्णन है, मृत्यु के समय भी यदि उन गुणों का स्मरण किया जावे तो आत्म-शुद्धि होती है। तथा भगवान के १००८ नाम भी उसमें अन्तर्गत है उस १००८ को जोड़ देने से (१+०+ ०+८=९) ९ नौ आ जाता है। नव पद आ जाने से यह ग्रन्थ भगवान महावीर की वाणी के अनुसार द्वादशांग के अन्तर्गत है। २१७ से २२६ तक।

सौराष्ट्र में श्री भूतबली आचार्य ने सबसे पहले नवम अंक पद्धति से 'पञ्च परमेष्ठि वोल्लि' ग्रन्थ रचना की थी उस ग्रन्थ को गणित पद्धति द्वारा निकालने की विधि ११२ के वर्गमूल से मिलती है। ११२ को आड़े रूप से जोड़ने पर (१+१+२=४) ४ आता है, उस चार अंक का अभिप्राय जिन वाणी, जिनधर्म, जिनचैत्य और चैत्यालय है। उस ४ अंक को पंच परमेष्ठी के

५ अंक से जोडने पर (४+५=९) ९ अंक आ जाता है जोकि नवपद (पच परमेष्ठी जिन वाणी आदि ९ देवता) का सूचक है।

आचार्य कुमुदेन्दु सूचित करते है कि उनके समय मे 'पच परमेष्ठी बोल्लि' ग्रन्थ लुप्त था, वह अब गणित पद्धति से प्राप्त हो गया है हमने उसको 'पद्धति' नाम दिया है। 'पद्धति' चौदह पूर्वो के अन्तर्भूत है अत हम उस पद्धति नामक ग्रन्थ को नमस्कार करते हैं। यह कविजनों के लिए महान अद्भुत विषय है अत. प्रत्येक विद्वान को इसका अध्ययन करना चाहिए।२२७ से २४७ तक।

अब श्री कुमुदेन्दु आचार्य इस तेरहवे अध्याय को संक्षिप्त करते हुए कहते हैं—इस भूवलय के इसअध्याय का अध्ययन करनेवाले भव्यजन सर्वार्थसिद्धि विमान मे अहमिन्द्रो के साथ ३३ सागरोपम दीर्घ सुखमय जोवन व्यतीत करते हैं।२४८।

सर्वार्थसिद्धि में इन्द्र सेवक, आदि का भेदभाव नहीं है, वहां के देव अपनी आयु पर्यन्त निरन्तर सुख अनुभव करते है। उस सर्वार्थसिद्धि के समान कर्माट [कर्नाटक] भाषा तथा जनपदवासी जनता सुखी है। इस देश मे हजारो दिगम्बर मुनियों का विहार तथा सिद्धान्त प्रचार होने से इस देशवासी यश-कीर्ति नाम कर्म का बन्ध किया करते हैं, अयश.कीर्ति प्रकृति का बन्ध किसी के नही होता। प्राचीन समय मे श्री बाहुबली ने यहा राज्य शासन किया था।
।२४९-२५०।

अपने मस्तक मे कोहेनूर के समान अमूल्य रत्न जड़ित किरीट को धारण किये हुए अमोघवर्ष चक्रवर्ती ने गुरु श्री कुमुदेन्दु आचार्य के चरणरज को अपने मस्तक पर धारण किया था। इनके शासनकाल मे इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई थी।२५१।

विवेचन—क्रिश्चन शक ६८० के लगभग समस्त भरतखण्ड को जीतकर हिमवान् पर्वत मे कर्णाटक राज्य चिन्ह की ध्वजा को राजा अमोघवर्ष ने फहराया था। उसी समय मे इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई थी इस प्रसग मे उनको धवल, जयधवल, विजय धवल, महाधवल और अतिशयधवल की बिरुधावली प्रदान की गई थी। गंग वश के प्रथम शिवमार नामक यह धर्मात्मा सदा सर्वदा इस सिद्धान्त शास्त्र का उपदेश सुनते समय वह सम्यक्त्व शिरोमणि हुकार साथ सुनते हुए अत्यत मुग्ध होते थे इसी कारण से उन्हे 'शैगोट्ट' अर्थात् सुननेवाला विशेषण दिया गया था। उपर्युक्त शैगोट्ट शब्द कर्णाटक भाषा मे है इसका दूसरा नाम 'गोट्टिका' भी था इसका अर्थ श्री जिनेन्द्र भगवान की वाणी को सुननेवाला है। कर्नाटक भाषा मे श्री जिनेन्द्र देव को "गोरव, गरुव," इत्यादि अनेक नामो से पुकारते थे। आजकल भी ईश्वर को वैदिक सम्प्रदाय मे "गोरव" कहने की प्रथा प्रचलित है। इनकी राजधानी नन्दीदुर्ग, के निकट "मरणे" नामक एक ग्राम है जोकि पहले राजधानी थी। आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान "मरणे" नामक ग्राम को "मान्य खेट" नाम से मानकर हैदराबाद के अन्तर्गत समझते है। इसी के निकट "शीतकल्लु" नामक एक बहुत प्राचीन ग्राम है। जिसमे गंग राजा के द्वारा अनेक शिल्प कलाओं से निर्मित एक जिन मन्दिर है। प्राचीन काल में जो "मण्णे" नाम था वह छोटा-सा देहात बन गया है।

एक वार महान् वैभवशाली "प्रथम गोट्टिग शिवमार" जब हाथी के ऊपर बैठकर आ रहा था तब उसने एक हजार पांच सौ (१५००) शिष्यों के साथ अर्थात् संघ सहित दूर से आते हुए श्री कुमुदेन्दु आ[illegible] को देखा। उस समय वर्षा होने के कारण पृथ्वी पर कीचड हो गई थो। अत "गोट्टिग शिवमार" हाथी से शीघ्र उतर कर नगे पैरो से आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनके चरण समीप जाकर।

उसने मुनिराज के चरणों मे मस्तक झुकाकर नमस्कार किया वैसे ही उसके मस्तक मे धारण किये हुए रत्न जड़ित किरीट मे मुनिराज के पैरो की धूलि लग गई जिससे कि रत्न का प्रकाश फीका पड़ गया। कुमुदेन्दु आचार्य श्री तो अपने सघ सहित विहार कर गये और राजा लौटकर अपनी राज सभा मे जाकर सिहासन पर विराजमान हो गया। नित्य प्रति राजसभा मे बैठते समय मस्तक मे लगी हुई रत्न की प्रभा चमकती थी, किन्तु आज धूलि लगने के कारण उसकी चमक न दीख पड़ी। तब सभसदों ने मन्त्री को इशारा किया कि राजा के मस्तक मे लगे हुए मुकुट के रत्न पर धूलि लगी है अतः उसे कपड़े से साफ करदो। तब मन्त्री राजा के पीछे खड़ा होकर उसे

साफ करने का मौका देखने लगा। अकस्मात् राजा की दृष्टि मन्त्री के ऊपर पड़ी तब उन्होंने पूछा कि तुम यहाँ क्यों खड़े हो ? मन्त्री ने उत्तर दिया कि आपके किरीट में लगी हुई धूलि को साफ करने के लिए खड़ा हूं जिससे कि रत्न की चमक दीख पड़े। राजा ने उत्तर में कहा कि हम अपने श्री गुरु के चरण रज को कदापि नहीं हटाने देंगे, क्योंकि यह रत्न से भी अधिक मूल्यवान है। इसलिए मैने अपने गुरु की धूल को जान बूझकर रखलिया है। इस प्रकार कहते हुए उस किरीट पर लगी हुई धूलि को हाथ लगाकर अपनी आंखो मे लगा लिया। गुरु देव के प्रति राजा की भक्ति तथा उसकी महिमा अनुपम अद्भुत थी। उस गुरु की दृष्टि भी तो देखिये कि वे अपने शिष्य "शैगोट्ट शिवमार" की कीर्ति संसार मे फैलाने तथा चिरस्थायी रखने के उद्देश्य से आई हुई पांचों विरुदावलियों के नाम से धवल, जयधवल, महाधवल, विजय-धवल, तथा अतिशय धवल रूप श्री भूवलय का नाम रख दिया। यह गुरु की अत्यन्त कृपा है, ऐसे गुरु शिष्य का शुभ सम्मागम महान पुण्य से प्राप्त होता है।

इस तेरहवे अध्याय के अन्तर काव्य में १५६८४ अक्षर है और श्रेणी-वद्ध काव्य में ९४७७ अक्षर है। ये सब कर्नाटक देशीय जनता के महान् पुण्योदय से प्राप्त हुए हैं।२५२।

इस तेरहवें अध्याय के अन्तरान्तर काव्य में इसक अतिरिक्त ४८ श्लोक और निकल आते हैं। शूरवीर वृत्ति से तप करनेवाले दिगम्बर जैन मुनि "अक्षम्रक्ष" प्रकार से जिस प्रकार आहार ग्रहण करते है और उस समय अक्षय रूप पंचाश्चर्य वृष्टि होती है उसी प्रकार इसके अन्तरान्तर काव्य में इसके अलावा एक और अध्याय निकल आ जाता हैं, जिसमें कि २१६९ अक्षरांक हैं। इस रीति से कवल एक ही अध्याय में ३ अध्याय बन जाते है।२५२।

विवेचन:—दिगम्बर जैन मुनि गोचरीवृत्ति, भ्रामरी वृत्ति तथा अक्षम्रक्ष इन तीन वृत्तियों से आहार ग्रहण करते हैं। इनमे से गोचरी वृत्ति का विवेचन पहले कर चुके है। पर शेष दो वृत्तियों का विवरण नीचे दिया जाता है।

भ्रामरी वृत्ति:—जिस प्रकार भ्रमर कमल पुष्प के ऊपर बैठ कर उसमें किसी प्रकार की हानि न करके रस को चूसता है और कमल ज्यों का त्यों सुरक्षित रहता है उसी प्रकार दिगम्बर जैन साधु श्रावकों को किसी प्रकार का भी कष्ट न हो, इस अभिप्राय से शान्त भाव-पूर्वक आहार ग्रहण किया करते हैं। इसे भ्रामरी वृत्ति कहते है।

अक्षम्रक्ष वृत्ति:—तेलरहित धुरेवाली बैलगाडी की गति सुचारु रूपसे नहीं चलती तथा कभी २ उसके टूट जाने का भी प्रसंग आ जाता है, अतः उसको ठीक तरह से चलाने के लिये जिस प्रकार तेल दिया जाता है उसी प्रकार साधु जन शरीर का पालन-पोषण करने के लिये नही, बल्कि ध्यान, अध्ययन तथा तप के साधन-भूत शरीर की केवल रक्षा मात्र के उद्देश्य से अल्पाहार ग्रहण करते हैं। इस वृत्ति से आहार ग्रहण करना अक्षम्रक्ष वृत्ति कहलाती है।

इस काव्य के अन्तर्गत २४७ २४६, २४५ और २४४, २४३, २४२ इस क्रमानुसार तीन २ श्लोकों को प्रत्येक में यदि पढ़ते जायँ तो इसी भूवलय के प्रथम अध्याय के ६ वें श्लोकके दूसरे चरणसे प्रथमाक्षर को लेकर क्रमानुसार "क्रमदोलगेरडु काल्नूर" इत्यादि रूप काव्य दुबारा उपलब्ध हो जाता है। यह विषय पुनरुक्त तथा अक्षय काव्य है। यदि इस ग्रन्थ का कोई पत्र नष्ट हो जाय तो नागवद्ध प्रणाली से पढ़ने पर पूर्ण हो जाता है। लु ९४७७+अन्तर १५६८४+अन्तरान्तर २१६९=२७६३० अथवा अ से ऋ तक २५२०८१+ल २७६३०=२७९७११ अक्षरांक होते है।

इस अध्याय के आद्यअक्षरसे प्राकृत भाषा निकल आती है। जिसका अर्थ इस प्रकार है—

भारत देश में लाड नामक देश है, लाड शब्द भाषा-वाचक भी है और देशवाचक भी है। लाड भाषा अनेक जातीया है, उस लाड देश में श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न शंभुकुमार, अनिरुद्ध इत्यादि ७२ करोड़ मुनि लोग दीक्षा लेकर ऊर्जयन्तके शिखर अर्थात् पर्वत पर तप करते हुए एक-एक समयमे सात सौ-सात सौ मुनि गण ने कर्म को क्षय करके सिद्ध पद प्राप्त किया इस तेरहवें अध्याय के २७ वें श्लोक से लेकर ऊपर से नीचे तक पढ़ते जांय तो संस्कृत श्लोक निकलता है उस श्लोक का अर्थ निम्न प्रकार है:—

अर्थ—इस सिद्धांत ग्रन्थ को धवल, जय धवल, विजय धवल, महा-

धवल और अतिशय धवल, इन पाच खण्डों के रूप मे विभाग किया गया है। यह भारती भारत माता की शुचि और निर्मल कीर्ति रूप है। इन पाच खण्डो से आने वाला ज्ञान रूपी किरण विश्व के समस्त पदार्थों को अर्थात् षट् द्रव्य को निःशेष रूप से जैसे सूर्य की किरणों मे अर्थात् प्रकाश मे रक्खे हुए पदार्थ स्पष्ट रूप से देखने मे आते हैं, उसी तरह समस्त भूवलय से पदार्थ स्पष्ट रूप से देखने मे आते है। इसलिये इन पाच धवल रूप भूवलयग्रन्थ को मैं नमस्कार करता हूं।

अतरधिकार—नीचे दिये जाने वाले 'साधुगलिहरेरडु वदे द्रोपदि साधि सुतिहरु मोक्ष वनु" इत्यादि रूप श्लोक के अध्याय मे 'साधयन्ति ज्ञानादिशक्तिभिर्मोक्षमिति' इत्यादि रूप श्लोक और अन्तिम अक्षर से ओमित्येक्षर ब्रह्म इत्यादि रूप भगवद् गीता के श्लोक निकलते है। इस अध्याय को यहा क्रम से दिया गया है।

साधुगळिहरेरडूवरेद्रौपदि । साधिसुतिहरुमोक्षवनु ॥
आदियनादिय कालदिंदिह्सर्व । साधुगळिगे नमवेंब्अर्मो ॥१॥
धरिसलनंत ज्ञानादि स्वरूपव । परिशुद्धात्मरूपवनु ॥
वरसर्व साधुगळ् साधिसुतिरुवरु । परमन तम्मात्मनोळमि ॥२॥
अमिगळिववन्दु महाव्रतगळय्दनुहोंदि । क्रमदोळि सर्वसाधु गळ्त॥
समनागिउपवासदिपेळ्द । गमकदोळिहरुसाधु गळ्व ॥३॥
नवगळेरडर साविर जातिशीलव । नवर भेदगळेल्लवरितु ॥
सुविशुद्धवादेंभत्नाल्कुलक्षगळेम्ब अवनुउत्तर गुणगळन् यो ॥४॥
तिळिदु पालिसुव रेंटनेपरमेष्ठिग । ळिळेयोळ गिडु समाधि ॥
योळगात्म सिरि येंबआहारवकोंब । बलशालिगळु साधुगळ्का ॥५॥
ज्ञान साधनेयोळात्मध्यानविडदिह । ज्ञानवन्तरु सिंहदन्ते ॥
शाने पराक्रम बुळ्ळ संयमिगळु । ज्ञानावि शक्तियोळ् रतरक् ॥६॥
नानाविधवाद आहार विट्टरु । तानुगंभीरदोळिद्दु ॥
शाने गौरविसल् अन्नवर्तिबानेयन् । तानन्दवाभिमानिगळ्व ॥७॥

लांगूलचालन मधश्चरणावघात, भूमोनिपत्य वदनोदरदर्शनं च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु, धीरंविलोकयति चादुशनेश्च भुंक्ते ॥
दिवेल्लतिदन्नवरात्रिकालदि । मनविट्टु मेल्त्र यत्तिनन्ते ॥
दिनवेल्लगळिसिद श्रुतदंकाक्षरगळ । मनसिद्दु रात्रियोळ्मेलुवर् ॥८॥
शक्तियोळोंदे दारियोळ् वेगदि । व्यक्तवागोडुव मृगव ।
व्यक्तित्वकेपदन्ते सरलवाद । व्यक्तिवागळिवर साधुगळ्अ ॥९॥
करुणेय वरवो एं देन्नुव हसुवदु । गरियननेमेयुवतेरदि ॥
परमान्नव गोचरि वृत्तियिंदु । डिरुव नीरिह्यवृत्तिगळम् ॥१०॥
तिरियोळ् तडेयिल्लदे हरिदाडुव । वरगाळियन्ते निस्सग ।
वेरसुतचेरिसुवेकांगविहारिगळ् । गुरुगळेदने यसाधुगळअब् ॥११॥
विभिक्षुगळिवरुसकल तत्वगळनु । साक्षात्तागि बेळगु ॥
अक्षर ज्ञानिगळादित्यु नंदादि । रक्षिप ततो मूर्तियवर् ।१२।
रमेय सुत्तिह सागरदन्तें गंभीर । समरदोळ् कूर्मंवगेलवर् ॥
सरतेयोळ् मदराचलदन्ते उपसर्ग । वररलकंपुरुगिहरुम् ।१३।
मोहननाद चंद्रमनन्ते शान्तिय । रुहनु सर्व चन्द्रमरु ॥
साहसव्रतगळ मणियनु धरसुत । रुहिन मणिगळंतिहरह् ।१४।
क्षरवेनेनाशवदळिदक्षरवेंब । परिशुद्ध केवल ज्ञान ॥
दिरुवनुसहनेयोळिरुव भूमियतेर । अरिवसमतेयोळेरेवर्अ ।१५।
मिदुमाडिमन्निंनि गेद्दलुमनेकट्टे । अदरोळ्वासिपहात्रिनन्ते ॥
सदनवनितरु कहिरललिलये । मुदविल्लदे वासिपरुव् ।१६।
तिरियोळगिद्दरु तिरुहमुह दळिह । सुरचिरदाकाशदन्ते ॥
पोरेववरारिल्लद । निरालंबरु संरवरुनिर्लेप करया ॥१७॥
सर्वकालदोळु मोक्षदन्वेषण । दूर्वियोळिरुव साधुगळु ॥
निर्वाणपदवसाधिसुत बाळुवर्व । सर्वसाधु गळ्गेनमिह ।१८।

धम व सारुत कम भूमियोळिह । शर्म रु मूरुकालदोळु ॥
निर्मलपद्धति याद भूवलयद । कर्म भूमियद्ध पालिसिर ।१९।
वर शुद्ध चैतन्य विलसितलक्षण । परम निजात्म तत्वरुचि ॥
परम सम्यग्दर्शन दवर्तनेयिर्प । परमात्म दर्शन चारन् ।२०।
हबनिसि कोळ्ळुर्तालिद्रिय वर्गवेळ्ळवा । अवरु तम्मोळ तंदु ॥
समतेयोळ अविकार दानंद मयरणर्ग। सुविशाल वाहतन्नंदवमा।२१।
सर्व साधुवु भेद ज्ञान दिदलि । सर्व रागादि गळेव ॥
गवर्द परभाव संबधगोळिसुव । सवरे क्रिये सम्यग्ज्ञानं ।२२।
मनसिज मर्दनरी निश्चय ज्ञान । दनुभवदोळगाचपं ॥
चिनुमय तत्वदभ्यास ज्ञानाचार । कोनेयादियारेवाचार ।२३।
तानु शुद्धात्म भावनेयिंद हुट्टिसि । दानन्द स्वभाविकद ॥
श्रीनिकेतनंदति सुखदनुभूतियु । ताने सम्यक् नवचारित्रन् ॥२४॥
मर्मद समयक् चारित्र दोळगे । निर्मलववर्तनविरुव ॥
कर्म व हरिपनिश्चय चारित्राचार । धर्म वपरिपालिसुवउ ।२५।
वारिज पत्र दोळिरुव नीरिन करण । वारिज दोळु वर्तिपन्ते ॥
सारात्म द्रव्य दोळिर्दु पर द्रव्य । दारैकेयनिरोधि सुतुस ॥२६॥
सर्व समस्त इच्चेगळ निरोधदि । निर्वहिसुतलात्ममनु ॥
सर्वनिजात्म भावनेयनुष्ठानव । निर्वहिसुवदे तपम ॥२७
रसयुत दह उत्तम तदल्लि । वशवर्ति गोळिसुत मनव ॥
असदृश वार्गिरिसिपुदे निश्चय । दसमान तपदाचार ॥२८॥
वरदर्शनाचार वादनाल्कुगळोळु । मरसदे शक्तियोळ भजिप ॥
परमात्म परियनाराधिसुवुदु ताने । परिशुद्धवीर्याचारन् ॥२९॥
भूरि वैभवयुतवागिरु वी ऐदु । चारित्राराधनेगळनु ॥
सार पंचाचार वेनुवसिद्धांतद । भूरि वेभवद भूवलयद ॥३०॥

तेरिन कलशविद्दन्ते तम्मात्मन । साररत्नत्रयात्मकद ॥
कारण समयसारद बलदिंदलि । सेरिसुवुदु निश्चयम ॥३१॥
सुट्टु भद्रशिव सोक्ख मंगलववु । हुट्टिपनिश्चयवदनु ॥
हुट्टिसे कार्यवु समयद सारवु । हुट्टि वहुदुसमाधिवया ॥३२॥
धर्म साम्राज्यद श्री वीतरागद । निर्मलात्मन समाधियोळु ।
कर्म संहारव माडुतेनिंदिर्प शर्मरु सर्वसाधुगळु ॥३३॥
यातके संसारदाशेय बिडुभव्य । पूतर पुण्य पादगळ ॥
नीति मार्गद निर्भर भक्ति यिनीनु । मातुमनसुकायदत्य ॥३४॥
नमिसु स्मरिसु कोंडाडु स्तोत्र दोलेंब । क्रमव भू लय पेळुवदु ।
श्रमविल्लदे सिद्धांतद मार्गवहोंदे । निनगे तप्पदु मुक्ति पदज ।३५।
तीर्थकररंते नन्नात्मनिहनु । स्वार्थवागलु शद्ध ज्ञान ॥
व्यर्थद ज्ञानव केडिसि रत्नत्रय । तीर्थनन्य अंतरंगन् ॥३६॥
लिळियादनन्त चतुष्टय रूपनु । बनित पंचम भाव युतनु ॥
कलिसप्त भयविर्पमुक्त स्वरूपनु । चलुव अखंड त्वरूपदे ॥३७॥
नित्य निजानंदैक चिद्रूपनु । सत्य परात्पर सुखरु ॥
सत्यरु सर्व साधुगळें दरियुत । अत्यंत भक्तियिं नमिपे ।३८॥
रुषिगळ नवर पद प्राप्तीयागलें । ससमान भक्तियिं भजिसे ॥
वशवहुदेल्लरगे सविकल्परूपद । सुसाधि सिद्ध साधनस ॥३९॥
करुणेय गुरुगळ वर पद भक्तियिं । बरुव् अक्षरांक काव्यवनु ॥
विरचिसि प्राकृत संस्कृत कन्नड । वेरसि पद्धति ग्रन्थदया ॥४०॥
तिरियोळगिरुव समस्त वस्तुव पेळ्व, । अरहन्तरादियादैदु ॥
परमेष्ठिगळबोलिलय पद्धतियोळु । विरचिसिहरु बोल्लिदति ।४१।
न्यायादि लक्षण ग्रन्थवनोळगोन्डु । आयहन्नेरडु साविरद ॥
श्रेयोमार्ग श्लोक गळिन्द कट्टिद । श्रेय ऐवर काव्यवप ॥४२॥

यारेष्टु जपसिदरष्टु सत्फलवोव । सारसर्वस्व वि ऐदु ॥
सेरिदर्हत्सिद्धाचार्य पाठक । साररु सर्वसाधु गळर ॥४३॥
तप्पदे भूवलय वोकादि मंगल । इप्पत्नाल्वर मन्त्र ॥
वप्पुवपंचाक्षर अ सि आ इ सा । विप्पसालक्षर काव्यवमा ॥४४॥
साविरदेंटु नामगळनु कूडलु । पावन वाद वोम्बत्तु ॥
सावाग जीवर कावुदेन्नुव काव्य । श्री वीर पेळ्द भूवलयम् ॥४५॥
धरियो ळोम्बत्तुगळ विस्तरिसलु । बरु वकनु रहन्नेरडु ॥
परिशुद्ध वदमत्त कूडळु नाल्कु । वरधर्म शास्त्र विम्ब ग्रहगळ् ॥४६॥
वशवाद पंचाक्षर दोळगी नाल्कु । होसेयलु नव देवतेया ॥
होसशास्त्र विदतदु कोट्ट भूवलयद । होस पद्धितिगेरगुवेति ॥४७॥
हर्ष वर्द्धनमप्प काव्य ओम्बत्तारु । स्पर्श नोळोन्देरडेम्ब ॥
स्पर्शमणि गळ दादोम्बत्तंकके । हर्षदोळ रगुवेनिन्दुम् ॥४८॥

अर्थ—मध्य लोक के अन्तर्गत ढाई द्वीप मे मुक्ति मार्ग की साधना करने वाले आत्मकल्याण मे निरत जो तीन कम नौ करोड़ मुनिगण अनादि (परम्परा) काल से विहार करते है उनको मै मन वचन काय की शुद्धि के साथ नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अर्थ—अपने ज्ञानादिक अनन्त गुणो को भूलकर तथा शरीर आदि पर-द्रव्य को अपना मानकर यह आत्मा अनादि काल से ससार मे भ्रमण कर रहा है। जब इस आत्माके आसन्न भव्यता-प्रगट होती है तब यह अपने हृदयमे प्रथम श्री जिनेन्द्र देव को स्थापित कर लेता है ॥२॥

अर्थ—संयमी साधु पांच महाव्रत तथा तीन गुप्तियो को समान रूप स पालन करते है, उपवास यानी-आत्मा के समीप रहने के उपक्रम के मार्ग से (उपेत्य वसति, इति उपवास.) कहे हुए विधान के क्रम से साधु १८ हजार प्रकार के शीलों तथा ८४ लाख उत्तर गुणो को समझकर पालन करते है। वे पांचवे परमेष्ठी साधु हमारे (साधारण जनता के) देखने मे तो पृथ्वी पर चलते हैं, बैठते है, भोजन करते हैं, परन्तु यथार्थ में वे चलते हुए बैठते हुए तथा भोजन करते हुए भी आत्मसमाधि मे लीन रहते हैं। वे अन्न का भोजन करते हुये भी ज्ञान-अमृत अन्नका ही भोजन करते हैं ऐसा समझना चाहिए। आत्मसमाधिमे लीन रहने वाले उन साधु परमेष्ठियो पर चाहे जैसे भयानक कष्टदायक उपसर्ग आवे किन्तु वे आत्म-ध्यान से च्युत (स्खलित) नही होते, आत्म-ध्यान मे लगे रहते है। जिस तरह सिंह भयानक बाधाए आने पर भी पीछे नही हटता, आगे ही बढता जाता है, इसी तरह वे सिंह-वृत्ति वाले साधु विघ्न-बाधाओं के द्वारा आत्म-ध्यान से पीछे न हटकर आगे बढते जाते हैं ॥३-४-५-६॥

अर्थ—जिस तरह गौरवशाली स्वाभिमानी गजराज (हाथी) के सामने यदि चावलो का ढेर, गुड की भेली तथा नारियल की कच्ची गिरी खाने के लिये रख दी जावे तो वह लोलुपी होकर उसे खाता नही, गम्भीर मुद्रा में खड़ा रहता है, जब उसका स्वामी उसके दाँत, सूंड तथा मस्तक पर प्रेम का हाथ फेरकर थपथपी देता है, भोजन करने की प्रेरणा करता है तब वह बडी गभीरता के साथ भोजन करता है। उसी प्रकार गौरवशाली स्वाभिमानी साधु लोलुपता से भोजन नही करते, वे बडी नि.स्पृहता के साथ भक्ति सहित ठीक विधि मिलने पर शुद्ध आहार ग्रहण करते है ॥७॥

यानी—कुत्ता अपने भोजनदाता के सामने आकर पूंछ हिलाता है, अपने पैरो को पटकता है, जमीन पर लेट कर अपना पेट और मुख दिखलाता है, ऐसी चाटुकारी (चापलूसी) करने पर उसको भोजन मिलता है किन्तु हाथी ऐसी चापलूसी करके भोजन नही करता वह तो धीर होकर देखता है और अपने स्वामी द्वारा चाटुकारी किये जाने पर भोजन करता है।

महाव्रती साधु भी भोजन के लिये लोलुपता प्रगट नही करते, न किसी से भोजन मांगते हैं, न खाने के लिये कुछ संकेत करते हैं, उन्हे तो जब कोई व्यक्ति भक्ति तथा श्रद्धा के साथ भोजन करने की प्रार्थना करता है तब वे बड़ी नि.स्पृहता और गम्भीरता के साथ अपनी विधि के अनुसार भोजन करते हैं।

अर्थ—जिस तरह गाय दिन मे वन मे जाकर घास चरती है, और रात को घर आकर बैठकर जुगाली (चरी हुई घास का रोथ) करती है, इसी प्रकार साधु दिन में जो शास्त्र पढकर ज्ञान प्राप्त करते हैं, रात्रि के समय उस ज्ञान का खूब मनन करते है, उस ज्ञान अमृत का आत्म-ध्यान द्वारा पान करते हैं॥८॥

अर्थ—जिस तरह भोला हिरण अपने पराक्रम और वेग से दौड़ता है उसी तरह साधु भी मन वचन काय की सरलता के साथ विचरण करते है। जिस तरह हरे भरे खेत जिस में कि गेहूं, आदि अन्न अपने बालि [भुट्टे] से बाहर नही आ पाये, है कोई गाय छोड़ दी जावे तो वह उस धान्य की बालि (भुट्टे) को हानि न पहुंचाती हुई, केवल उस खेत की घास को खाती है, इसी प्रकार साधु गोचरी वृत्ति से, भोजन कराने वाले दाता को रंच मात्र भी कष्ट या हानि न पहुंचाते हुए सादा नीरस शुद्ध भोजन करके अपना उदर पूर्ण करते है ॥१०॥

अर्थ—इस अनन्त आकाश में जिस प्रकार वायु अपने साथ अन्य किसी भी पदार्थ को न लेकर सर्वत्र घूमती है, उसी प्रकार साधु निःसंग होकर सर्वत्र विहार करते है ॥११॥

अर्थ—आचार्य उपाध्याय साधु परमेष्ठी अपने दिव्य ज्ञान से त्रिलोकवर्ती त्रिकालीन पदार्थों को जानकर समस्त जीवों को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए विचरण किया करते हे ॥१२॥

अर्थ—जिस तरह समुद्र पृथ्वी को घेर कर सुरक्षित रखता है इसी तरह अपने हितमय उपदेश से ससारी जीवों को घेर कर साधु उनकी रक्षा करते हुए स्वयं कर्म शत्रुओं के साथ युद्ध करके कर्मो पर विजय प्राप्त करते है। जिस प्रकार सुमेरु पर्वत वज्रपात तथा झंझावात (भयानक आंधी) से चलायमान न होकर निश्चल रहता है उसी तरह साधु महान भयानक उपद्रवों के आ जाने पर भी अपने आत्मध्यान से चलायमान न होकर अचल बने रहते है ॥१३॥

अर्थ—जिस तरह ग्रीष्म ऋतु में भयानक तीक्ष्ण गर्मी से सन्तप्त मनुष्य को रात्रि का पूर्ण चन्द्रमा शान्ति प्रदान करता है, इसी प्रकार संसार दुख मे सन्तप्त संसारी जीवों को साधु परमेष्ठी अपने हितमित प्रिय उपदेश से शान्ति प्रदान करते है। वे साधु अपने हृदय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी रत्नत्रय की माला धारण करते है और वे रत्नत्रय को ही अपना शरीर समझते हे यानी शरीर आदि पर-पदार्थो पर ममता नही करते ॥१४॥

अर्थ—'क्षर' का अर्थ 'विनाश' है, अत "अक्षर" का अर्थ "अविनाशो" है। केवल ज्ञान अविनाशी है अत. उसे 'अक्षर' भी कहते है। बहिरग मे जो 'अ इ' आदि ६४ अक्षर है वे भी जगतवर्ती समस्त जीवों को कर्मभार से हलका करके अविनाशी बनाने वाले है। इन ६४ अक्षरों से भूवलय का निर्माण हुआ है। इस भूवलय से ज्ञान प्राप्त करके साधु परमेष्ठी अपने उपदेश द्वारा समस्त जीवो का कर्मभार हलका करते है ॥१५॥

विवेचन—भूवलय के इस तीसरे अध्याय के प्रथम श्लोक से १५ वे श्लोक तक के अन्तिम अक्षरों को मिलाकर प्रचलित भगवद्गीता के ८ वें अध्याय के १३वे श्लोक का 'ओमित्येकाक्षर ब्रह्म' यह चरण निकल आता है। तथा इसके आगे १६वे श्लोक से २९ वे श्लोकों के अन्तिम अक्षरों को मिला-कर गीता के उक्त चरण से आगे का द्वितीय चरण "व्याहरन्मामनुस्मरन्" निकल आता है। इसी प्रकार आगे भी भगवद्गीता के श्लोक निकलते है। उस गीता के अन्तर्गत 'ऋषि मंडल' स्तोत्र निकलता है। उस गीता के श्लोकों के अन्तिम अक्षरों को एकत्र किया जावे तो 'तत्वार्थसूत्र' के सूत्र बन जाते हैं।

अर्थ—जिस तरह दीमक अपने मुख मे मिट्टी के कण ले लेकर बांबी तैयार करती है, पर उस बांबी में आकर सर्प रहने लगता है फिर कुछ समय के बाद वह सर्प उस बांबी से मोह छोड़ कर वहां से निकल अन्यत्र रहने लगता है। इसी प्रकार साधु गृहस्थों द्वारा बनवाई गई अनियत वसतिका (मठ-धर्म-शाला) में आकर कुछ समय के लिए ठहर जाते है और कुछ समय पीछे उस वसतिका से निकलकर निर्मोह रूप से अन्यत्र बिहार कर जाते है।१६।

अर्थ—जिस प्रकार पृथ्वी के ऊपर का आकाश दूर से (क्षितिज पर) पृथ्वी को छूता हुआ-सा दिखाई देता है किन्तु वास्तव मे आकाश पृथ्वी आदि किसी पदार्थ को छूता नही है, निर्लेप निराधार रहता है। इसी प्रकार साधु अपनी आत्मा मे निमग्न रहते है, संसार के किसी पदार्थ का स्पर्श नही करते, आकाश के समान निर्लेप, निरावलम्ब रहते हैं।१७।

अर्थ—साधु परमेष्ठी को सदा मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा रहती है और वे सदा मोक्ष की साधना मे लगे रहते है। उन साधु परमेष्ठी को हमारा नमस्कार है।१८।

अर्थ—वे साधु द्विज वर्ण के होते है, कर्मभूमि में बिहार करते है, दुर्गुणों से अछूते यानी निर्मल रहते है तथा कर्मभूमि की जनता को पद्धति ग्रन्थ भूवलय का उपदेश देते रहते है।१९।

अर्थ—वे साधु श्रेष्ठ होने से 'परमेष्ठी' कहलाते है, विशुद्ध चैतन्य ज्योति

को प्रज्वलित करते है, अपने आत्मतत्व मे ही रुचि करते है, इस आत्मतत्व रुचि को ही सम्यग्दर्शन कहा जाता है। सम्यग्दर्शन को निर्मल रीति से आचरण करना दर्शनाचार है। साधु परमेष्ठी सदा दर्शनाचार मे रत रहते है।२०।

अर्थ—पाचो इन्द्रियो के इष्ट अनिष्ट विपयो मे राग द्वेष भावना को त्यागकर साधु परमेष्ठी इन्द्रियो को आत्म-मुख करलेते है तथा समस्त पदार्थों मे समता भाव रखते है। वे किसी भी प्रकार का विकार नही आने देते। आनन्द से सदा आत्म-आराधना मे लगे रहते हैं।२१।

अर्थ—वे साधु अपने भेद विज्ञान द्वारा आत्मा को शरीर से भिन्न अनुभव करते है। तथा ऐसा समझते हैं कि राग द्वेप से उत्पन्न कर्म द्वारा शरीर बना है और यह पर भाव का सम्बन्ध कराने वाला है। ऐसा समझकर वे शरीर से ममता छोडकर आत्मा मे ही रुचि करते है।२२।

अर्थ—मन्मथ (कामदेव) का मथन करनेवाले साधु परमेष्ठी अतरग तथा बहिरंग का मर्म समझते है और बहिरग पदार्थो को हेय (त्यागने योग्य) समझकर अपने चित्स्वरूप आत्मा को ही अपना समझते हैं। इस प्रकार ज्ञानाचार के परिपालक साधु परमेष्ठी है।२३।

अर्थ—अपने आत्म-अनुभव से प्राप्त हुए अनुपम सुख को प्राप्त करने वाले साधु पृथ्वी आदि पदार्थो से मोह ममता नही करते। इस निवृत्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द अनुभव के साथ 'मै मुक्त हूँ' ऐसा अनुभव करते है। उस साधु की शुद्ध प्रवृत्ति ही समयक्चारित्र है, ऐसा समझना चाहिए।२४।

अर्थ—इसी निर्मल सम्यक् चारित्र का आचरण करनेवाले, तथा कर्मो का नाश करने की शक्ति रखनेवाले, निश्चय चारित्र को ही धर्म समझने वाले साधु परमेष्ठी क्या इस जगत मे धन्य नही है? अर्थात् वे धन्य हैं।२५।

अर्थ—जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पड़ी हुई जल की बून्दे कमल के पत्ते को न छूकर इधर-उधर होती रहती हैं। इसी तरह साधु ससार मे विचरण करते हुए भी समस्त वाह्य पदार्थों से निर्लेप रहकर स्व-आत्मा मे निमग्न रहते हैं।२६।

अर्थ—समस्त इच्छाओ को रोककर आत्माधीन करनेवाले, और अपने आत्मा को परमात्मा स्वरूप भावना करनेवाले तथा उसी के अनुष्ठान को ही परम तप समझनेवाले साधु परमेष्ठी है।२७।

अर्थ—आत्मा के उत्तम गुण उत्तम तप से प्रगट होते है। आध्यात्मिक गुण जैसे-जैसे प्रगट होते जाते है, तैसे-तैसे चित्त आनन्द से भरता जाता है। उस आनन्द को वढाते जाना ही श्रेष्ठ तपाचार है।२८।

अर्थ—दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार तथा तपाचार इन चारो आराधनाओ मे रत रहनेवाले, आत्म-आराधक साधु की आत्म दृढता को परिशुद्ध वीर्याचार कहते है।२९।

अर्थ—परम वैभवशाली चारित्राचार को ही विद्वान लोग 'पंचाचार' कहते है। उस पचाचार का प्रतिपादन करनेवाला यह भूवलय है।३०।

अर्थ—जिस प्रकार मदिर के शिखर पर तीन कलश होते है उसी प्रकार आत्मा के शिखर पर रत्नत्रय रूप तीन कलश है इसी को कारण समयसार कहा गया है। इसी कारण समयसार से निश्चय समयसार प्राप्त होता है। निश्चय समयसार का ही दूसरा शुद्ध आत्मा है, ऐसा समझना चाहिए।३१।

अर्थ—सुष्ठु, भद्र, शिव, सौख्य ये मगल के पर्यायवाची नाम है। उस मगल को उत्तम करने का निश्चय आत्मा मे [illegible] होना ही कार्य समय सार है और वही कार्य समय सार साधु परमेष्ठी [illegible] माधि को देने वाला है।३२।

अर्थ—धर्म साम्राज्य, वीतरगता तथा निर्मल समाधि मे एवं कर्मो का विनाश करने के लिए तत्पर हुए श्रमण को ही साधु परमेष्ठी कहते है।३३।

अर्थ—हे भव्य जीव! संसार से तुझे क्या प्रयोजन है, इसे छोड़। तू पवित्र साधु परमेष्ठी के चरणो का मन वचन काय से सेवन कर। इसी से तुझे अविनाशी सुख अनन्त काल के लिए प्राप्त होगा।३४।

अर्थ—हे भव्य जीव! तू साधु परमेष्ठी को नमस्कार कर उनको हृदय मे रखकर स्मरण कर, उनकी स्तुति कर, तथा उनकी प्रशसा कर। इस प्रकार क्रम को बतलानेवाले भूवलय सिद्धान्त के प्रतिपादित मार्ग को यदि तू ग्रहण करेगा तो तुझसे मुक्ति पद दूर नही है।३५।

अर्थ—हे भव्य जीव! जिस तरह अर्हंत तीर्थङ्कर का परिशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरूप आत्मा है वैसा ही आत्मा मेरा भी है। वह परिशुद्ध ज्ञान व्यर्थ

अज्ञान को दूर करनेवाला है। अतः सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मेरा आत्मा ही तीर्थ है और वही अंतरंग सार है ।३६।

अर्थ—जिस तरह कीचड़ मिट्टी आदि से रहित जल निर्मल होता है उसी तरह मेरा आत्मा अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य स्वरूप निर्मल (कर्म मल रहित) है। वही पंचम गति रूप है और वही आत्म स्वरूप सप्त भयों का विनाश करके अखण्ड अक्षय मोक्ष सुख को देने वाला है ।३७।

अर्थ—नित्य, निजानन्द, चित्स्वरूप मोक्ष सुख की प्राप्ति में जो सदा रत रहते हैं 'तुम इसी सुख को आराधना करो' इस प्रकार भव्य जीवों को जो सदा प्रेरणा करते रहते हैं, ऐसे साधु परमेष्ठी का ही तुम सदा ध्यान करो, आराधना करो और पूजा करो ।३८।

अर्थ—'वेही महर्षि हैं, उनके पद हमको प्राप्त हो।' ऐसी भक्ति भावना से आराधना करनेवाले आराधक को सविकल्प समाधि की सिद्धि होती है ।३९।

अर्थ—दया धर्म के उपदेशक तथा संस्थापक पंच परमेष्ठी की भक्ति से आनेवाले अक्षर-अंक काव्य को प्राकृत संस्कृत कानड़ी में गर्भित यह भूवलय ग्रन्थ है। यही भूवलय दयामय रूप है ।४०।

अर्थ—इस संसार में रहनेवाले समस्त वस्तुओं को कहनेवाले अर्हंतादि पंच परमेष्ठियों के वोल्लि नामक ग्रन्थ की रचना श्री भूवलय पद्धति के क्रमानुसार अतिशय रूप से पूर्वाचार्य ने की है। उस ग्रन्थ में न्याय लक्षणादि ग्रन्थों को गर्भित करके उसे सातिशय बनाया गया है। उस ग्रन्थ में १२००० श्लोक हैं। वे श्लोक परम्परा से अभ्युदयकारक तथा निःश्रेयस मोक्ष मार्ग की चरम सीमा तक पहुंचाने वाले हैं। उसमें केवल पंच परमेष्ठियों के ही विषय है ।४२।

अर्थ—इस काव्य की आराधना या इसका स्वाध्याय जितने भी भव्य जीव करेंगे उन सबको यह उत्तमोत्तम फल प्रदान करनेवाला है। इसलिए [illegible] में [illegible] त सिद्धाचार्य उपाध्याय तथा सर्वसाधु के मिलाने से उभयानुपूर्वी कथन प्रकट हो जाता है ।४३।

अर्थ—इसे नियम पूर्वक यदि गुणा करके देखा जाय तो भूवलय के आदि में मंगल रूप २४ तीर्थङ्करों के मन्त्र अ सि आ उ सा इस पंचाक्षर मे गर्भित हैं। इस प्रकार पंक्तियों द्वारा अक्षरों से परिपूर्ण काव्य ही पंच, परमेष्ठो का "वोल्लि" है ।४४।

अर्थ—भगवान के १००८ नामों की यदि आड़ा करके परस्पर में मिला दिया जाय तो ९ अंक आता है और वही ९ अंक संसार में जन्म-मरण करनेवाले जीवों को संसार सागर से पार लगाकर अभीष्ट स्थान में पहुंचा देने वाला है, यह भूवलय का कथन है ।४५।

अर्थ—इस प्रपंच में ९ अक रूपी विस्त[illegible] य को श्री भगवान महावीर स्वामी के कथनानुसार यदि गणित [illegible] से देखा जाय अर्थात् १००८÷९=११२ हो जाता है और इसी ११२ [illegible] सीधा करके यदि जोड़े तो इस योग से प्राप्त ४ अंकों में से ३ हो जाता है। इन्हीं चारों के आधार पर क्रमशः १ धर्म, २ रा शास्त्र ३ रा अर्हद्बिम्ब और ४ था देवालय है। इस दृष्टि से अंक को विभक्त किया गया है ।४६।

उपर्युक्त पंचाक्षर का अर्थ पंच परमेष्ठी वाचक है। और उस पंच परमेष्ठी मे ऊपर के ४ को मिला देने से ९ देवता हो जाते हैं। इस तरह क्रम से ९ अंक के साथ ९ देवताओं के स्वरूप को बतलाने वाले इस भूवलय अर्थात् पच परमेष्ठी के नूतन "वोल्लि" पद्धति को मैं नमस्कार करता हूं ।४७।

अर्थ—हर्ष वर्द्धन नामक काव्य में ९६१२ अंक हैं। स्पर्श मणि के समान इन्ही अंकों को यदि आड़ा मिला दिया जाय तो सब ९ अंक को मैं सहर्ष मन, वचन काय पूर्वक नमस्कार करता हूं और पंच परमेष्ठी आदि सर्व साधुओ को मैं नमस्कार करता हूँ।

वे सर्व सा[illegible] किस प्रकार हैं ? तो "साधयन्ति ज्ञानादि शक्तिभिर्मोक्ष" इति साधवः। समतां वा सर्वभूतेष, ध्यायन्तीति निरुक्ति न्यायादिति सावव: ।

।४८।

चौदहवां अध्याय

ळु* स्वर काव्यदनन्त तीर्थन्कर । ह्रस्वल्लद् अ 'ळु' स्* वरवु । सुस्वरविदनन्त गणनेय अतिशय । द स्वरदञ्ग भूवलय ।।१।।
वि* 'नमि नेमियुपार्श्वजिनरत्नत्रयर्'इगे । धनभक्तिय् 'उ' इ* ति 'विमल' ।। तनि'वकुलशरुन्गदारुक्रमदव्रुक्ष' । घन 'मूलदोळु' सिभमुवामि ।।२।।
स* 'तपगेय्दिद्द'स'क्रमदभूवलयके' । हितदि'नमिप्ओ[१]मन द* ओष' ।। युत'केसिद्धान्तदशास्त्रवुतनुविगे' । हित'प्राणावाय'वनार्यु ।।३।।
न्* 'दनुपम वचनद दोषके शब्दव । 'तद 'रधन सिद्धान्त् अ' धा* रि ।। अदन 'वनरुहिम्(२)श्रीवर्धमानजि'।वद'नेन्द्रन'वामृञाजर्ष ।।४।।
तु* स'वाणियसेविसिगवतमऋषियु' । यशद'भूवलयादिसिद्धान्' ना* ।। सूस'तगळय्दकेकावेम्बहन्एरड् । ससमा'नग्अ[३] वन्नु' तिरहयसद ।।५।।

दाशर 'व्रुषभसेन' वर्ये ।।६।। गअशवणि 'ब्राम्हि सवनदरियुता ।।७।। असुवन्नु ''मोक्षदोळ्तोर्दान्' ।।८।।
र्सवसतु ग्रन्थदोळ्' दयेय ।।९।। तिसहस्र 'सूत्रानकम् अरु, पि ।।१०।। गुसुगुटद्दु 'वन्गवन् अरितु' ।।११।।
दशघर्मदादियवरन्क ।।१२।। केसरिल्लदतिशय पन्नीर् ।।१३।। पोसदउपवासद कर्मा ।।१४।।
नशवळिविह 'यश' दआणि ।।१५।। मुसल 'व मुट्टदयश' स ।।१६।। कुसुळदे 'पाळुडग्रन्थन्' ।।१७।।
लस 'द्रव्यवनेल्ल वरिग ।।१८।। गसवणि 'अणियोगद्दार' म् ।।१९।। ळेसरुदारु 'द्रवयानक्' ।।२०।।
मसद्रुश 'गणितवनध' दय ।।२१।। कसर्वळिसुत बाळव' अनक' क् ।।२२।। यशवेल्ल 'बळ सिरुव' तत् ।।२३।।
'भूसुरराधिप' यशवा ।।२४।। 'वश्वर 'तियागदन्का फ ।।२५।। लशदन्कदोळु 'बनद्' फला ।।२६।।
'यशदन्क वेरडागुव' नि ।।२७।। व्शवद 'तिशयद विद्या' अच ।।२८।। काशाव्यापिय 'वलयानक' ।।२९।।

जि* तवन्नु 'पेळेमुन्दकेश्रुतकेवलि । शत 'गळुजिनवाणियअन्नु' म्* नुतवा 'हदिनाल्कु घन पूर्वेगळलि' हितदि 'कट्टिरिसिरदा' रतेय ।।३०।।
ण* व'पूर्वेयोळ जनर'वर'जीवनकौस्दु । सवि'पूर्वेक[४]र्म'द को* ळु ।। रव'णीयवादोम्दुप्राणावायद' ।सवि'क्रमदोळु'धीविनुनो ।।३१।।
व* नु'वनु'हदिभूरुकोटि'य'क्रमवादसि' । धनरा'द्घानतलेककद'लि र्* जिन'पददलिश्रमहारियायुर्वेद । वन् अ(५)धर्मसाम्राज्यमनयस् ।।३२।।
रि* द् धीय 'वादोवेददन्कवु कर्म' । सद्य्य 'जाड्यगळ कोल्लु, त* 'वु ।। दु' द्दद 'निर्मलवइ मध्यमुमद' । सद् 'दिन्दलि' तारचहि ।।३३।।
न्* र रोळु'शर्मरुगुणिसिदक्षरदश्' [६] अ । वर'मालेय सोन्नेग' ना* ।। सर'ळारन्कदहिन्देसालिनोळ्नाल्नाल्कय् । देरडम्मेलेसोन्नेयुसो' ।।३४।।

दा र 'न्ने एन्टेरडयुदु नूलन्ते बन्' । दार'दरडोम्देरड् आ' [७] द* अ ।। शारदे'नालगुगेलोपहच्चुवअक्ष' । नूरा 'र' णायारिदन्इ ।।३५।।
(२१२५२८००२५४४००००००-प्रा.दअन्क) कर पात्र दान श्रेयाम्स् अर ।।३६।। यन्रवनद्य श्री बरमुहदवत ।।३७।।
विरेदान सुरीन्द्र सेनव् ।।३८।। मरळलु इन्दर नक्ष्त्र्या ।।३९।। लारन्क पद्म सेनवनी ।।४०।।

यरस सोमसेनणुसुवूरती ॥४१॥ नूरश्रेष्ट महेन्द्र् सुरमे ॥४२॥ सोरमेयय सोमसेनन्रुपा ॥४३॥
नेरेयोधुषय मित्र भूपर् ॥४४॥ गिरियगूरद पुनर्नसुथ ॥४५॥ सेरेयळिव सव्नन्दर करुनि ॥४६॥
भारतजयदत्तसवर्णिश् ॥४७॥ ळ्रद् विशाखद्दत सुरुचि ॥४८॥ दोरे धन्य सेन सुरनुत ॥४९॥
नुरद सुमित्र धर्ममितरम् ॥५०॥ बेरे महाजित नन्दि सम ॥५१॥ सर व्रुषभर्ध दत्त ॥५२॥
वरसेन धन्य सेन गणमु ॥५३॥ मरेय सुकूळर सरनुत् ॥५४॥ सरुवरिप्पत्नाल्कु दात ॥५५॥

अ* दु'वयद्यसालनकसरदपादरसपो' । कद'लागदनतदग्र' अ* रळद ॥ विध'हूविनिन्दरेदागलीलेयिनदिषदु' । विध'छदरगळुन्(८)मतवशश॥५६॥
म* न यशवागिग्रोन्दरोळोनदकेॾेरे।य'नल'देहोसपुटदोळु भ' न* ॥ घनिर 'समवागि कुसुमायुर् वेदद महि।मे' न 'यसारुवग्रस'सियसप् ॥५७॥
रा* शिस'दरुशकावयभूवलयग्र'(९)वु'नित्य' । आशेय'व वनविते' ते* ॥ लेसिन् 'तुवीर्यरक्षणोभाळ पग्रक्षरान' ईशन 'कद सिद्धरापसृन ॥५८॥
सु* 'रसदरक्ष' णोकाव्यदोळ न दुभे । ष'रव'जमषट्धा'सूत्र॥ य* र'बजरिद्धियक्षयव्प्राणरक्षणो।य अ'र'ल[१०]रसपवक्वा'थासम् ॥५९॥
र* ववा 'गलु पुष्पद रसदिन दहो ।स, व'सिद्धरसवादनत ए' ॥ स* वणने 'होस वयद्दय दानद फलदिन्दा'। सवना'त मगेहोस'तिन शासु ॥६०॥

दग्रवनु आदिमनु 'भरत' म् ॥६१॥ उवश्रोतरु सिरि 'सत्य भग्राव' सु ॥६२॥ ववणस ' सत्य वीर्य' नउस् का ॥६३॥
अवरोळु सवि'मित्रभाव' सु ॥६४॥ नवनुम् ई सिरि 'मित्रवईर्या' ॥६५॥ लुव वसृशग्र 'धर्मवीर्य' वग्रना ॥६६॥
ववरोळु 'दानग्रवीर्य,वग्रना ॥६७॥ नग्रव श्रोतरु अव 'मघव वीर्यम् ॥६८॥ गेविवर 'वोद्ध ग्र वीर्य ग्रा' नक ॥६९॥
कविवनद्य'सीमग्रनद्ग्रर'रग्रवर् ॥७०॥ नग्रवग्रश्रोतरु 'त्रिपिष्ट'सधर्म ॥७१॥ विविधभग्रकृति'द्विपिष्टग्रा'वनण॥७२॥
मवने 'स्वयम् भू' भूभुजनुम् ॥७३॥ लावण्य 'पुरुष् ग्रोत्तम' नग्रेन ॥७४॥ गवरोळु 'पुरुषवरग्र' वग्रया ॥७५॥
पाव्ग्रन'पुउनडरीकग्र' चग्रस ॥७६॥ लिवियर 'दग्रत्तवग्रर् ग्र' ग्रवनुम ॥७७॥ गवियग्रोग 'कुनालग्र' रसरस ॥७८॥
ळ्वरोळुसिरि'नारायण'नउस् ॥७९॥ चवन 'सुभ ग्रौम' 'ग्रजितनजयग्रन ॥८०॥ लवरोळउ 'उग्रस एसग्र' वया ॥८१॥
मवविव'ग्रजइतग्रसएनग्र' रग्रस ॥८२॥ कविवनद्य ग्र 'श्रेणिकग्रनरप' स ॥८३॥

व* र'देहप्राप्तबागुवद्ग्र'(११)नु'धूळिधू । सरितवागिह मुनिदेह ' ॥ सि* र'दधूळिनस्पर्शनवागेहाळाद' । नरनिगे 'मह महग्रा' तनक ॥८४॥
नु* वेद'व्याधियरिद्धिगे' सवि 'हेळुव' । सवि 'रामव्षधर्धिम' (१२) द* ।। ग्रवर्'तम्मबागिय'सवि'एनजलुगुळलु'कविद्'उम्मुवसेचने'व ॥८५॥
द* वर्'यिनदनसमव्याधिगळेल्लउपशम' । द 'वप्पुदु' नव दा* 'हेसमे, ॥ नव'क्ष वेळव्षधर धियर'[१३]ल्लिकनुगुव । बेवरिनिमुह्दुव
इ* नि 'दिन्द कोनेगालद रोगवडगे'श्री । 'जिन मुनिगळ रिद्धियद न* घन'झल्ग्रौषवि'रिद्धि'एनुवराग।म'न'कोविदरसा(१४)लीले'व॥८७॥ मल' यो ॥८६॥
दा* रि 'यिम् किविदनतनासिककरणिन' । सारमेय् 'मालेगळिम् बन् त* ॥ सोरि'दमलदिम् 'हाळागेसकलरो' । गारागे'गदरिद्धि '॥
ग्रार् म रु देश 'कवशल' र् वश) ॥८९॥

दर 'शीतलर्उ' 'माळ्अव् अ' स ॥९२॥ यर 'देश' 'वासुउपूज्य' व्अर् ॥९३॥ द्र 'विमलाननत् अ' स्अर्उव ॥९४॥
रुरु 'धर्म्अ मल्लि नम् इ' न्क ॥९५॥ ह्अरु 'म् उनिसुव्र्अत्अ' अवेर् ॥९६॥ मूरु'एळुजन्अर्'अन्गद्व्अ'रम ॥९७॥
लररु 'वीररु नेम्रि 'विदेह अ' वफ ॥९८॥ यरु 'शान्ति कुन्थ्उ अर्अ' वल ॥९९॥ म्रर् 'कुरुज्आन्ग्अण'द्अरह्अत् ॥१००॥
वर 'देश' द्उत्तरव् 'स् अरया ॥१०१॥ मूरि 'वलयद् अवर अर्इग ॥१०२॥ तिरुगदिह्अरु'भूवअलयव्अनु'म् ॥१०३॥
दरुशिसल्आ 'देशद्पद्अ' प् ॥१०४॥ भरत देशद सिरिय्अ व्अरा ॥१०५॥ क्रुनाड अतिशयद् कुरु हु ॥१०६॥
'परुषदकणि' यदुसरस् ॥१०७॥ वर 'वय्राग्यवुसतत् ॥१०८॥ 'नरर सव्भाग्य भूवलया' ॥१०९॥

ध॥ वर्'आगेपेळुमलव्षधर्धिय सम्' (१५) सवियद्'लालित्य'त्व् अ॥ गे ॥ सवि'काव्यनालगेयिन्द'लि'बरुवन्ते' । अवु 'सालादमल मूतरादि ग्' ॥११०॥

उ॥ ग् 'अळपालेल्ल दिव्यवषधवप्पदे । ह' गल'दहेलुच्चे विष्टा' प्॥ ॥ 'ष'ग'धर्धिनम्'(१६)आगे'तनुविनस्पर्शदगाळि । यु'गुळि 'सोकलु' अ 'तनुविन्अ' ॥१११॥

द॥ णिद'व्याधिगलेल्लकोनेयागिनीरोग' । दनु'वागुवरिद्धिय ज' र॥ ॥ ह 'नन सर्वव्षधर्धि स्ना' [१७] यु 'मनवसोम्कि । द' न 'कालकूटवम्रुतवम्' ॥११२॥

अ॥ दु 'वप्प जिनमयदन्तिर्प रिद्धि मु-। नि' द 'यमुखवसार्द' सि॥ विष' ॥ वदु 'वम्रुतवदागे तनुआस्याविषर् [illegible] सि' (१८) दवर [illegible] ष्द्' वि ॥११

क्॥ विद 'इ बोळलुविषव' द 'म्रुत सार' । स 'वागुव रिद्धियदु सेरिद' सविय् 'अ मुनियद्रुष्टियुविष वम्रुतसा । खेद्रुष्टविषर्धि ३॥ भ' [१९] वनच् ॥११४॥

इ॥ दु 'चित्रविचत्रवादव्षधरुधिगळ्' । इद 'एनदुहत्रके' ध॥ र 'बनदु' ॥ अदु'सारिरुवचित्रवल्लियेमोदलाद' । अदर 'मूलिकेगळस् स्' पुक् ॥११५॥

देदकल, अम्रुतवदुविष ॥११६॥ मृदवळियुव 'सोप्पिनरुणा' ॥११७॥ रिद्धिगे बरुवदु सरह ॥११८॥
गदुकिन तिरुळवु 'केपळक' ॥११९॥ ओदळु 'मादलदगिड' ॥१२०॥ 'वदन ्सके वसमुगुळु' स ॥१२१॥
रदरलि 'दनत दुर्मल' न ॥१२२॥ रोधन 'कर्णकुन्डल' वज् ॥१२३॥ 'ढददनक गणदे' य सकदञ् ॥१२४॥
'नूदलिसुव हूवनरे' ए ॥१२५॥ 'ढददक्षर' गुणवरिय ॥१२६॥ 'उदय के तिरुगुव पवुम' ॥१२७॥
रद 'रेलेयदु हविनरस्' ॥१२८॥ 'पद्मावति देविय अणिमा' ॥१२९॥ र्ददनक 'रसमणि' यदुभि ॥१३०॥
इदरलि 'देवेन्द्र यति' हि ॥१३१॥ सद 'जिनदत्त गेयदनु' पा ॥१३२॥ आदर 'लक्किय मर' पा ॥१३३॥
-- -- घं' वस ॥१३५॥ यदु 'प्राणावाय रस' मा ॥१३६॥

विध 'वय्द्वदनंगकोविद' न् ।१३७।। 'सदनद त्यागिगळगवनि' ।।१३८।।
ल्* दद 'त्रिसि ग्रन्थके तनु ताम् (२०)तन्क्षण । हदिनेन्दुसम्रा व्* इरश्लोक' ।। स 'द सूत्र वय्द्यान्कदक्रम'वि 'दि चित्रि ।
सि' ह हदिनेन्दु साविर' व ।।१३९।।
ए* रिसि'जातियउत्तमहूविनिम्'।सा'रसगो[२१]रसवनु हू' ।। पारदव् अ* हूविनिम् मर्दिसि पुट' । दारय 'विट्टु 'होस रस' र् ।।१४०।।
स्* वणनु 'घुटिकेय कट्टि' द 'रससिद्धि' । रवि 'यागेसिद्धान्त' द क्* षा । ख'रसायनहोसकल पसूत्रवय्द्यवद् [२२] सु'वशगोळि
सिदश्री' शयति ।।१४१।।
आ* नुव 'समन्तभद्राचार्यऋषियुप्रा' । णद'णावायदिन्द्अ' स्* शी । लणवेन्दु'होसेदकाव्यवुचरकादिगळ'णिय'रियदअसद्रुश'तु ।।१४२।।
सवण'वय्द्यागमक्रु(२३)ल्लितायुर्वेद' । सवन'वेल्लवु'सवि ओ* दु। अवु 'हुट्टितिल् लिन्दइळ यवरेल ल'रासवि'विल् लिन् दबळेसुत'स् ।१४३।

दव्रुषभाजितानव्तकु ।।१४४।। नव अभिनन्दन र्एल्ल ।।१४५।। केववर् अयोध्या पुरक् ।।१४६।।
तव शम्भव श्रावस्तियष।।१४७।। रबिनीतापुर सुमतिवय ।।१४८।। ब्व पद्मप्रभ पुरसुक् ।।१४९।।
दव कव्शम्भिय पुररु ।।१५०।। वव पार्श्व सुपार्श्व रवित।।१५१।। णु वाराणशि एन्देने काशिम्।।१५२।।
पवि चन्द्रप्रभ चन्द्र पूरदो।।१५३।। वव सिरि पुष्पदन्त जिनष।।१५४।। नव पद काकन्दिपुरम् ।।१५५।।
न्व शीतल भद्रिळा पुर्प्।।१५६।। द्व श्रेयाम्स सिम्हपुर ।।१५७।। उ वासु पूज्य चम्पापुरप।।१५८।।
केविमल कव्शल्य पुरश् ।।१५९।। अव धर्म रत्नपुर दय ।।१६०।। त्व शांति कुन्थु अर वरदद्।।१६१।।
आवरु हस्तिनापुर सदभि।।१६२।। व्व मल्लि नमि मिथिलेयवर्।।१६३।। रव मुनिसुव्रत कुशाग्र पुरज्।।१६४।।
ह् वनवे नेमि द्वारावति एन् ।।१६५।। अववीर कुण्डलपुर आ ।।१६६।। स्वरेल्ल जन्म भूवलय आ ।।१६७।।

अ* वरोळ'जीव हिम्सेय सेरिसि तन्द। ख' व 'ळर काव्यके धिह् का' ना* ।।नव 'स(२४)लेलेयायुर्वेद शब्दव'। सिव'भगवन्त सालिनेम्'ना।।१६८
म्* नद'प्राणावाय शीलवेन्दर जीव' । वनु 'रक्षेयेन्दोरेदिरे' द्* मा । नवनद'पालिस बेडवे दयेने'(२५)र। नवम'कलित जीवर'र्।१६९।।
मे* लेन्दु 'काय्व कलियदवर कोल्व । वलवन्त चरकन' वय्द य* मतम्'। सोले 'अमगेलुतलहिम्सायुर्वेदव'। साएम्'रक्षिय बलवे'न्द१७०।।
द्* नद'प्राणावायवदि[२६]थावरजीवा।र'नव'कोलुवुदरिन्दलेतूआ'।।न* नु 'वु पापव होन्दुवरेम् बावीर'। जिन 'वाणिय नेनेयदे'तान् ।।१७१।।
ए* रिद 'हिम्सेयभावनेगिहुदु धिह् । कारने[२७]करुणेय् सर्व् अ' न्* ।। नेरिद 'जीवर मेलिरबेकु दो'। दा 'रेयुवुदागव्षधर् ध् इ'आ।१७२।।

उरुहिद् कर्म 'वम्श' दोरेवश ।।१७३।। न्र श्रेष्ट 'ओम्देरळमूरु' व ।।१७४।। वर'नालकय्दार् एन्ट् ओम्बत्अ।।१७५।।
तर 'हत्तु हन् ओम्द् हन्एरळ'शु ।।१७६।। द्र 'हदिमूर् हदिनालकवरा' ।।१७७।। धारे 'हत् ओवत् इप्पत् ओम्दन्'।।१७८।।
न्रराज वम्श इक्ष्वाकु स् ।।१७९।। सिरि पार्श्वर सुपार्श्व उग्रउर ।।१८०।। धर्म शान्तियु कुन्थु अरह् ।।१८१।।
द्रुशिसे 'कुरुवम् शदवरु' ।।१८२।। मरळि इप्पत् अनक वरद ।।१८३।। विरचित हरिवम्श हरुशअ ।।१८४।।
रुरु वर्धमान रिरुव च ।।१८५।। अरहन्त नाथ वम्शजय् अ ।।१८६।। य्रसुगळलि नेमि हरिव ।।१८७।।
लरयदा कूडलयुदु वर स् ।।१८८।। भ्रतद राजवम्श ए ।।१८९।। उरिद धर्म पालिपन ।।१९०।।
वर राज जिनवम्श वरस य् ।।१९१।। यरडर अवसर्पिण् हुन्डओ ।।१९२।। व्र व्रउषभादि वीरांतर् ।।१९३।।
कारण कार्य भूवलयर् उ ।।१९४।।

ग्* रुवरिग् 'इरुवेन्दु सिद्ध समन्त भद्' । रु 'राय्न च' रि त* रण ।। के' रगि 'नमिसिदरहुदि (२८) ख्याति पूजा ला । भ' र
'दाशेयिम् चरका' भ ।।१९५।।
इ* दि 'दि नूतन ग्रन्थ कर्तारर प्रीतियिम्' । विधि 'हि सेय पोरे' स* 'य '।तर'रसवि ये

ह॰ रुष 'दायुर्वेद जल[३१]पूर्वार्जित'। वरव'तपीडन रोग'॥तख न॰ वेल्लव सार्वजनिकरेल्ल । क' र 'ळेदु 'निर्वाण सुखव' इ ॥१९९॥
रे॰ गि 'साधिसेरेन्दु पेळ्दुदम् सार्वन्गे' । बेगादि 'सुखसिद्धिय ह॰ ज'[३२]वेगदि'जयिसिरि कर्महिम्सेय'। नग'मार्गविजय' वरेत॥२००।

धगुरुणर 'तन्दे' ये वरद् अवन् ॥२०१॥ दगुखिसे 'नाभिराज् अ' वअस ॥२०२॥ यगरिसे 'जितशत्रु' नुरुपम ॥२०३॥
मगुळलु शरीरवि 'जित् आर् ई'॥२०४॥ सिगुरि 'सम्बरर्' 'मेघरथर्अ' ॥२०५॥ वग धारणर् 'सुप्रअतइष्ठ' ॥२०६॥
सगुरु 'सेन सुग्रीव् अ' कव्य ॥२०७॥ दग 'धरुढरथ विमलवाहनर्'स ॥२०८॥ वगेदरु 'वासु पुउज्य' रुसक ॥२०९॥
मग'क्रुत वर्म'सिरिवर् अह् अ॥२१०॥ शघरव 'सिम्हसेन' वरद् अव् ॥२११॥ दग 'भानु विश्वअ' सएनवन् ॥२१२॥
सगधरर् 'शूरसेनअ' वरअत् ॥२१३॥ अगुरु 'सुदर्शन' विज्अयए ॥२१४॥ दगरुवु सिरि 'कुमभवर्अ' यय॥२१५॥
वगण 'सुमित्र विजयअ' वअस् ॥२१६॥ रग 'सुमुद्र विजय राज' वरव्अ॥२१७॥ लग 'विश्वसेन''सिद्धार्थ अ'र्॥२१८॥
एगरिपर् 'पितृरुकुल' रुज्येव् ॥२१९॥ गगनदोळ् निलुव 'भूवलय् आ' ॥२२०॥

णि॰ ज सिद्धियपुदु रसद' वि 'जयवागे' । द्विज 'देह लोहगळअ' स॰ व। भज'सव्भाग्यदजयलाभहुदेल्ल'। सज'ससाम[३३]यज्ञदपशुहिम'२२१
व॰ र 'से अज्ञ रायुर्वेद अज्ञर मारिय । ब'र 'लि' ज्ञर् 'यम सुज्ञ' इ॰ रुमा॥ प'र'वन्दरिदुत्यागवमाडि'नरने।सरियो'अज्ञतेयमपरिह'ब॥२२२॥
वा॰ 'रिकुम(३४)पाप पुण्यगळ विवेचने'। दारि'यिन्दिर्दु पाप्अमअ' द॰ अ॥आर 'र्गवु हिम्सेयेन्दु' रे 'आपत्तुम'सेरलु'बहुदेन्दु विद्दु'न॥२२३॥
ण॰ वद् अ 'अहिमसेय श्रो पद्धतियवय् । दुयवनम(३५) देवरु' म धा॰ व॥ सिव'गुरु शात्र'व'शरणेन्दु नवुत'सविय 'नोवुग ठकलिय'बुध ।२२४
ग॰ म 'लु बरलु नावु पुण्यायुर्वेद' द । स 'मर्व पेळि सावुह् उ' न॰ सम 'ट्टडगुव तेरच [३६]नमतवरेल्लरेगे'।गम'कलिसुवे वदरिम'न२२५
य॰ श द सम्मोददिन्दलि बन्दु हेम्मेय' । रस 'स्वर्णवादम' त॰ 'र' लु॥ह'सबादवनेममिसव्व्यवसाधिसि'।पस'रिमो[३७]भारतदे'व २२६
आ॰ 'शद भाग्यव अहिमसेय सारुव' । ईशनअ 'हूपिनवयद्युअ' ओ॰ आ' सार समग्रहव' द 'नु श्री पूज्यपा। दा' सा'चार्यसार' वस् ।२२७

अशर ताथियो 'मरुवम् थि ॥२२८॥ दश 'विजया' के सुषेणा' नूता ॥२२९॥ दशेयोळोम्देरळ् मूरु अनक अन ॥२३०॥
इ 'सिद्धार्था' मङगला देवि'नअ ॥२३१॥ नृष 'सुषोमा प्रुथ्वि' नालकयदहो ॥२३२॥ गयदारेळेन्दु'लक्ष्म ॥२३३॥
रस 'जयरामा सुननदात् ॥२३४॥ आशा 'नन्दा विजयामम् अ' ॥२३५॥ नष अोम्बत् हत्तु हन अो ॥२३६॥
यश द्वादश 'जयश्यामह' ॥२३७॥ मश हद्रिमूरनक विहत्व ॥२३८॥ मश 'लक्ष्मिमति सुनरभा' पा ॥२३९॥
डश चतुरदश हुणणिमे प ॥२४०॥ अशद 'ऐरा सिरिकान्त देविम्' ॥२४१॥ तसे हदिनार हदिनेळ् अनक ॥२४२॥
एसे 'मित्रसेन प्रजावति'यर् ॥२४३॥ रस 'सोमा वरपिला' विन्तु ॥२४४॥ पशे शिव ब्राम्हिला' अमम ॥२४५॥
पसे 'प्रिय कारिण हदिनेन्टादिव ॥२४६॥ इ सिरिप्पत् नालकु भूवलय ॥२४७॥

ण॰ व 'कल्याण कारक वर्[३८]षिदुगतव'। अवु'षिधु सम्राध्धव् सु' नो॰ कवइ 'त्रद हदवननरितु भूवल । य' वरनक ॥२४८॥
अ॰ स 'दारियम्सिद्धरस दिनदोदगिसि'।होस'काव्य कविनि[३९]तरु' व॰ रस'वदु मङ्गलमयसिद्धरस काव्य'। हुसियद'अरुहनागमग'सि ॥२४९॥
मु॰ रनुथ बरेदका [व्यव]केळि हिम्सेय' । सर्वथा 'त्यजिसिदि' न ता॰ गे॥परवव'सरुवसम्पदवेल्लतरुव(४०)।निर्मल मनवचनवु'ता ॥२५०॥
ओ॰ स 'काय त्रिकरण(मर्म)शुद्धिय जिनवयदय'। शम्कादि 'नेन्दुतू च॰ 'र'॥हम्मम् 'कोनेगिप्पत्एळन् ८।वरुव'श्री।निमम'भूवलयकेघन'व२५१
त॰ नुमन वचन शुद्धिगळ 'भक्ति यिनदे'ना । जिनगे 'रगुवेनु (४१)' चि॰ रका॥ ललनमस्कारदे बरुव कय्युगिदिह। मनदर्थियतिशय बसय॥२५२।
ए॰ नेरवे चरकमहर्षिय हिम्सेय। सानुरागदिनिव आरिसिह। जाण र॰ अमोघवर्षानकन सळयोळु । क्षोणिय सर्वज्ञ मतदिम ॥२५३॥
सि पारवतीशन गणितदे बह वयदय । दवनियोळ् पेळुव अ॰ दर॥ विवरसमनवयदअनतरदओनदोनबत्। सविमूरय्दोन्दु अक्षरय॥२५४
म॰ रललु हत्तुसाविरदिन तूरारु[एरळनूरारु]बरुवनक विद्ये ई'लू' म॰ सरुवज्ञनेरिदहदिनालसुगुणस्थान।अरहंत[गुरुपरनपरेयाद'ळ'अन्वद]भूवलयद

चौदहवां अध्याय

स्वर अक्षरों में कु १४ वां अक्षर है। इसी अक्षर का नाम आचार्य ने इस १४ वें अध्याय को दिया है, १४ वे तीर्थङ्कर श्री अनन्तनाथ भगवान हैं। वे अनन्त फल को देने वाले होने के कारण अतिशय धवल रूप भूवलय ग्रन्थ में स्वर अक्षर के दीर्घाक को १४ मानकर अंग ज्ञान को अनन्त रूप गणित से लेकर गणना करते हुए ग्रन्थ की रचना की गई है। इन्ही अनन्तनाथ भगवान को वैदिकों ने अनन्त पद्म नाभ भी कहा है। वह अनन्त पद्म नाभ श्री कृष्ण रूप पर्यायसे जन्म लेकर कुरुक्षेत्र मे दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करने के इच्छुक अर्जुन को कर्तव्य कर्म का बोध, करानेवाली गीता का उपदेश भूवलय के ढग से दिया था। उसका नाम श्री मद्भगवद् गीता पांच भाषाओं में अन्यत्र अलभ्य काव्य इसी अध्याय के अन्तरान्तर श्लोक मे "नमः श्री वर्धमानाय" इत्यादि रूप कानडी श्लोक के अन्तिम दो अक्षरों से निकल आता है। इस अध्याय के अन्त में जैसा है उसी प्रकार से हम प्रतिपादन करेगे। वहां "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" से लेकर भगवद्गीता प्रारम्भ होगी। आजकल प्रचलित भगवद्गीता से परे और विशिष्ट कला से निष्पन्न वह संस्कृत साहित्य अपूर्व है ।१।

यह भगवद् गीता पांच भाषाओं में है। पहले की पुरु गीता है। पुरुजिन अर्थात् ऋषभदेव के समय मे उनकी दोनों रानियों के दो भाइयों का नाम विनमि और नमिनाथ था। उन दोनों राजाओं ने अयोध्या के पार्श्ववर्ती नगरों में राज्य किया था। उनके राज्य शासन काल में विज्ञान की सिद्धि के लिए बकुल (सुमन) शृंग देवदारु इत्यादि वृक्षों का उपयोग किया जाता था। वे दोनों राजा विविध भांति की विद्याओं में प्रवीण होने के कारण विद्याधर स्वरूप ही थे। और विविध विद्याओं को सिद्ध करने के लिए इन्ही वृक्षों के फूलों के रस से रसायन तैयार कर लेते थे। इसी के दूसरे कानड़ी श्लोक के अन्तिम मे "इन्द्रियाणा हिचरता' नामक संस्कृत श्लोक के अन्त मे "मिवाम्भसि" है। इस वैज्ञानिक महत्व को रखनेवाले से बढ़कर अपूर्व पूर्व ग्रन्थो के मिलने से यह अनन्त गुणात्मक काव्य है। इस कारण श्री अनन्तनाथ भगवान का स्मरण किया गया है ।२।

सक्रम से निर्मोही होकर निर्मल तपस्या करनेवालों को इस भूवलय ग्रन्थ में छिपी हुई अनेक अद्भुत विद्याओं की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ को सभी को भक्ति भाव से नमस्कार करना चाहिए। मन में जब विकल्प उत्पन्न होते है तब सिद्धांत शास्त्रों का यथार्थ रूप से अर्थ नहीं हो पाता। मन की स्थिरता तभी प्राप्त होतो है कि जब प्राणावाय पूर्वक ज्ञान से शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहता है और तभी तपस्या करने की भी अनुकूलता रहती है। इसीलिए आर्यजन त्रिकरण शुद्धि को सबसे पहले प्राप्त कर लेते थे ।३।

विवेचनः—इस तीसरे श्लोक के मध्य में अन्तरान्तर का एक श्लोक समाप्त होता हैं। उसके अन्त में "नमिप् ओ" शब्द है, जिसका अर्थ कानड़ी भाषा में नमस्कार करेगे ऐसा होता हैं। [illegible] श्री भगवद्गीता के ओमित्येकाक्षर का प्रथमाक्षर हो जाता है। वहां ओ अक्षर ऋग्वेद का गायत्री मन्त्र रूप में रहनेवाले 'ओंतत्सवितुर्बरेण्य के लिए प्रथमाक्षर हो जाता है। इसी प्रकार आगे भी अनेक भाषाओं मे कभी आदि में व कभी अन्त में ओ मिलेगा; पर वह हमें ज्ञात नही है। इस पद्धति से तीन आनुपूर्वी को ग्रहण करना। इसका विवरण इस प्रकार हैः—

पहले-पहले अक्षर या अंक को लेकर आगे-आगे बढ़ना आनुपूर्वी (पूर्वं अनु इति अनुपूर्वं, अनुपूर्वस्य भावः आनुपूर्वी) है। जिसका अभिप्राय 'क्रमशः प्रवृत्ति' है।

आनुपूर्वी के तीन भेद हैं १—पूर्वानुपूर्वी, २—पश्चादानुपूर्वी, ३—यत्रतत्रानुपूर्वी। जो बांयी ओर से प्रारम्भ होकर दाहिनी ओर क्रम चलता है वह पूर्वानुपूर्वी है जैसे कि अक्षरों के लिखने की पद्धति है। अथवा १-२-३-४-५ आदि अंकों को क्रम से लिखा जाना जो क्रम दाहिनी ओर से प्रारम्भ होकर बांयी ओर उलटा चलता है जिसको वामगति भी कहते हे, वह पश्चादानुपूर्वी है, जैसे कि गणित में इकाई दहाई सैकड़ा हजार आदि लिखने की पद्धति है इसी कारण कहा गया है 'अङ्कानां वामतोगतिः' यानी—अकों की पद्धति अक्षरों

से उलटी है। जहां कहा से क्रम प्रारम्भ करके आगे बढना यत्रतत्रानुपूर्वी है जैसे ४, १, ३, २ आदि।

आधुनिक गणित पद्धति केवल पश्चादानुपूर्वी से प्रचलित है। अतः वह अधूरा है, यदि तीनो आनुपूर्वियो को लेकर वह प्रवृत्त होता तो पूर्ण बन जाता। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय सिद्धान्य मे तीनो आनुपूर्वियो को अपनाया है इसी कारण उन्होंने भूवलय द्वारा ससार के समस्त विषय और समस्त भाषाओ को उसमें गर्भित कर दिया है।

पूर्वानुपूर्वी पद्धति से भूवलय मे जैन सिद्धान्त प्रगट होता है, पश्चादानुपूर्वी से भूवलय मे जैनेतर मान्यता वाले ग्रन्थ प्रगट होते है। यत्रतत्रानुपूर्वी से भूवलय मे अनेक विभिन्न विषय प्रगट होते हैं।

किसी भी विषयका विवेचन करने के लिए प्रथम ही अक्षर पद्धति का आश्रय लिया जाता है किन्तु अक्षर पद्धति से विशाल विवरण पूर्ण तरह से प्रगट नही हो पाता, तव अंक पद्धति का सहारा लेना पडता है। अको द्वारा अक्षरों की अपेक्षा बहुत अधिक विषय प्रगट किया जा सकता है। परन्तु जब और भी अधिक विशाल विषय को अंक बतलाने मे असमर्थ हो जाते है तब रेखा पद्धति का आश्रय लेना पडता है।

भूवलय मे तीनों पद्धतियो को अपनाया गया है इसी कारण भूवलय द्वारा समस्त विषय प्रगट हो जाता है।

महान मेधावी विद्वान रेखा-पद्धति से विषय विवेचन कर सकते हैं। उससे कम बुद्धिमान विद्वान अको द्वारा विवेचन करते हैं। उससे भी कम प्रतिभाशाली विद्वान अक्षरो के द्वारा ही विषय विवेचन कर सकते हैं। इसी क्रम से वर्णों से भी केवल ज्ञान के समस्त विषयों के ज्ञाता महात्मा थे। वह अवधि ज्ञान का विषय है। आगे इन सभी विषयों को श्री कुमुदेन्दु आचार्य विस्तृत रूप से बतलायेगे।३।

संसार मे रहनेवाले सभी जीवों के वचन में कुछ न कुछ दोष रहता है। उस दोष को मिटाने के लिए विद्वज्जन शब्द शास्त्र की रचना करते हैं, किन्तु फिर भी उनकी विद्वत्ता केवल एक ही भाषा के लिए सीमित रहती हैं। ठीक भी है। जो विषय स्वयं समझ मे न आवे वह गलत मालूम होना स्वाभाविक ही होता है। केवल एक ही भाषा मे शुद्ध रूप से यदि वाक्य रचना करली जाय तो भी उस भाषा मे रहनेवाले श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र देव के केवल ज्ञान मे झलकनेवाली समस्त भाषाओ को एक साथ शुद्ध वाक्य रचना करनेवाले जीव इस काल में नही हैं। और इस अवसर्पिणी काल में आगे भी नही होंगे, ऐसा प्रतीत होता है।४।

भगवान महावीर के दिव्य वाणी मे इस प्रकार झलकी हुई दिव्यध्वनि को चौथे मनः पर्ययज्ञानधारी ऋग्वेदादिचतुर्वेद पारङ्गत ब्रह्मज्ञान के सीमांतीत पदो में विराजित ब्राह्मणोत्तमों ने अवधारण करके भूवलय नामक अंगज्ञान को ग्रन्थों में गुंथित किया। अर्थात् सर्वभाषामयी, सर्वविषयमयी तथा सर्व कलामयी इन तीनो रहस्यमयी विद्याओं को भेद विज्ञान रूप महान गुणों से युक्त होकर सिद्धान्त ग्रन्थो मे गुंथित कर दिया। उसका विस्तार रूप कथन ही यह भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ है।५।

विवेचन.—श्री भगवद्गीता मे अनादि कालीन समस्त भगवद्वाणी को मिला देने की असाधारण शक्ति विद्यमान है। श्रीमऋषि वैदिक सम्प्रदाय के प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण वृषभसेन गणधर से लेकर अपने समय तक समस्त भगवद्वाणी रूप पुरुगीता, नेमिगीता, कृष्णगीता (भगवद्गीता) और महावीर गीता इन चार गीताओ की रचना की थी और भविष्य वाणी रूपी आचार्य श्री कुमुदेन्दु की गीता का भी वर्णन सक्षेप-रूप से किया था। उसके उदाहरण को इसी अध्याय के कानडी मूल श्लोको के अन्तिम अक्षर से देख सकते हैं। ऋषभसेन गणधर ने भी इसी क्रम से अतीतकालीन समस्त भगवद् वाणी की रचना की थी और उसी वाणी को श्री आदिनाथ स्वामी ने ब्राह्मी देवी के नाम से अक्षर रूप तथा सुन्दरी देवी के नाम से अंक रूप प्रकट किया इसका जोकि विवेचन पहले कर चुके हैं इस समय भूवलय मे दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार उपदेश करके वे सभी गणधर परमेष्ठी ने क्षणिक शरीर को त्यागकर चिरस्थायी शाश्वत सुख को प्राप्त कर लिया। इन सभी ग्रन्थों को अंग ज्ञान परिपाटी से वस्तु नामक छन्द कहते हैं। ३००० सूत्राङ्कों के ज्ञाता

मधुर, मिष्ट एवं सर्वजन हितकारी होते है। दयाधर्म का प्रचार ही इन समस्त ग्रन्थों का उद्देश्य है तथा इसमें उत्तम क्षमा, मार्दव आर्जवादि दशधर्मों का ही अतिशय वर्णन है।

जिस प्रकार अन्य जलों में कुछ न कुछ गदः (कीचड़) रहता है पर सुगंधित जल में किसी भी प्रकार का किंचिद्मात्र भी गर्दा नही रहता, उसी प्रकार अन्य धर्मों में कुछ न कुछ दुर्गुण पाये जाते है, परन्तु परमेष्ठी प्रतिपादित दश धर्मों में किसी भी प्रकार की मलिनता नही पाई जाती ॥६ लेकर १३ श्लोक॥

विवेचनः—इस अन्तर श्लोक के २६ वे श्लोक से लेकर ६ वें श्लोक तक यदि आ जायँ तो प्रथम अध्याय मे कथित, कमलों का वर्णन पुन रुक्ति से आता है। उसमें सात कमल पुष्पों से सुगन्धित जल (गुलाब जल) तैयार कर लेते थे, ऐसा अर्थ निष्पन्न होता है। यह काव्य रचना की अतिशय महिमा है।

दशधर्मों को पालने वाले प्रोषधोपवासी मुनि होते हैं। उपवास शब्द का अर्थ—"उप समीपे वसतीत्युपवासः" अर्थात् आत्मा के समीप में वास करना उपवास है। और इसी प्रकार के उपवासी मुनिराज अविनाशी ग्रन्थों की रचना करके शाश्वत् यश को प्राप्त कर लिया करते थे। वे महात्मा सदा अपने गुरु गणधर परमेष्ठियों के साथ निर्भय विचरण करते रहते थे। इसी लिये इन्हें किसी प्रकार के शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता नही पड़ती थी। वे महात्मा पाहुड़ (प्राभृत) ग्रन्थ की रचना करने मे बड़े बुद्धिमान है। इतना ही नहीं, बल्कि वे अनियोग द्वार नामक ग्रन्थ की रचना करने में भी परम प्रवीण है। वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान में गम्य होने वाले जीवादि षड्द्रव्यों को गणित-बन्ध में बाँधकर अङ्कज्ञान में मिलाने वाले गणितागमज्ञ और अक-शास्त्रज्ञ होते है। विविध वस्तु अथवा शब्द को देख तथा जानकर उनकी वाह्याभ्यन्तरिक समस्त कलाओं को तत्काल ही व्याख्यान करने में कुशल होने से तत्तकालीन समस्त विद्वान् ब्राह्मण उनके यशों का गुणगान करते थे। यह अद्भुत् ज्ञान साधारण जनता को सहज में नहीं मिल सकता। छोटे अक को लेकर गुणाकार क्रिया से बड़ा अंक बनाने के बाद उन सबको ९ अंक में एकत्रित करके उसके फलों को दिखलाने वाला सबसे जघन्यांक २ है सर्वोत्कृष्टांक ९ है तथा उसके अन्दर रहकर अतिशय विद्या को प्रदा- करने लाने वाले ये मुनिराज है। उन्ही के द्वारा विरचित यह भूवलय काव्य है। ॥१३-२९॥

६४ अक्षरों की जो वर्गित संवर्जित राशि आती है उन समस्त अंकों का ज्ञान जिस महानुभाव को रहता है उन्हें श्रुत केवली कहते हैं। और वैदिक मतानुयायी मंत्र-द्रष्टा कहते है। मंत्र-द्रष्टा वे ही होते हैं जो कि ११ अङ्ग तथा १४ पूर्व से निष्पन्न समस्त वेद ज्ञान को अंक भाषा में निकालने में समर्थ होते है। ऐसे समर्थ मुनि श्री महावीर भगवान् से लेकर श्री कुमुदेन्दु आचार्य पर्यन्त एक सौ (१००) थे। ये समस्त मुनि सदा स्व-पर कल्याण में संलग्न रहते थे ॥३०॥

१४ पूर्वों में प्रथम के ९ पूर्व को निकाल कर शेष ५ पूर्वों में विश्व के समस्त जीवों के जीवन-निर्वाह करने के लिये वैद्यक, मंत्र, तन्त्र, यन्त्र, रसवाद, ज्योतिष तथा काम शास्त्र आदि प्रकट होते है। उन सभी विद्याओं में गूढ़ातिगूढ़ रहस्य छिपा रहता है। उसमें रमणीय शरीर—विज्ञान को बतलाने वाला, प्राणावाय (आयुर्वेद) एक महान् शास्त्र निकलता है जो कि चौथे खंड में विस्तार रूप वर्णित है ॥३१॥

विवेचन—प्राणावाय पूर्व मे १०,००००० कानड़ी श्लोक हैं। उन श्लोकों में पृथक पृथक भाषा के अनेक लक्षकोटि श्लोक निकल कर आ जाते हैं। उसका अंक नीचे दिया गया है।

महा महिमावान आयुर्वेद शास्त्र भूवलय तृतीय खंड सूत्रावतार से भी निकलकर आ जाता है। वह सूत्रावतार नामक तृतीय खंड दूसरे श्रुतावतार खंड से भी निकल कर आ जाता है। वहश्रुतावतार नामक दूसरा खंड इस मंगल प्राभृत नामक प्रथम खंड के ५९ वे अध्याय के अन्तिम अक्षर से लेकर यदि ऊपर पढते चले जायँ तो यथावत् निकल कर आ जाता है।

यही क्रम आगे भी चालू रहेगा। अर्थात् पाँचवां खंड विजय धवल ग्रन्थ चौथे खण्ड के प्राणावाय पूर्वक नामक खण्ड में यथा तथा निकल कर आ जाता है। इसी क्रम से आगे चलकर यदि ९ वें खण्ड तक पहुंच जायँ तो अन्तिम मंगल प्राभृत रूप नववें खण्ड तक एक ऐसी चमत्कारिक काव्य रचना है जिससे

पढा जा सकता है जो कि कि श्रुतकेवलियो के साक्षात् मूर्त स्वरूप है ।

हाथी के ऊपर रक्खी हुई अम्बारी को स्याही (इङ्क) से पूर्ण करके उस स्याही से जितने प्रमाण मे ग्रन्थ लिखा जा सकता है उसे प्राचीन काल मे एक पूर्व कहा जाता था,, आधुनिक वैज्ञानिको के मन मे यह बात नही आती थी। उनका तर्क था कि इतनी विशालता एक पूर्व की नही हो सकती; किन्तु जब उनके सामने अद्भुत् भूवलय शास्त्र तथा उसके अन्तर्गत प्रामाणिक गणित शास्त्र प्रस्तुत हुआ तब सभी को पूर्ण रूप से विश्वास हो गया और श्रद्धा पूर्वक लोग इसका स्वाध्याय करने लगे। इतना ही नही इसकी मान्यता इतनी अधिक बढ गई हैं कि यह ग्रन्थराज राजभवन, राष्ट्रपति भवन तथा विश्व विद्यालयो (यूनिवर्सिटीज) के सरस्वती भवनो (लाइब्रे रियो) मे विराजमान होकर सभी को स्वाध्याय करने के लिए सरकार से मान्यता मिल गई है और भारत सरकार की विधान सभा तथा मैसूर प्रान्त की विधान सभा मे इसकी चर्चा बडे जोरो से चल रही है।

इस प्राणावाय पूर्व मे १३०००००००० (तेरह करोड) पद है। और एक पद मे १६३४८३०७८८८ अक्षर होते है। १३०००००००० को यदि उपर्युक्त अङ्क से गुणा करे तो जितना अंक प्रमाण होगा उतनी अंक प्रमाण प्राणावाय पूर्व का अक होगा। यह सैद्धान्तिक गणना का क्रम है। भूवलय का क्रमाक अलावा है, क्योकि ३ आनुपूर्वियो की पृथक् पृथक् गणना होने से अक बढ गया है। अर्थात् तेरह करोड×तेरह करोड=जो [illegible] आता है उस अंक को उपर्युक्त ग्यारह अक×ग्यारह अक=जो अक आत[illegible] उससे गुणा करने से आने वाला लब्धाक प्रमाण सपूर्ण आयुर्वेद शास्त्र बन ज[illegible] ।

विवेचन.—पद शब्द का अर्थ तीन प्रकार क[illegible]—

१-अर्थपद, २-प्रमाण पद और ३-मध्यम प[illegible] अथवा अनादि सिद्धान्त पद०। अर्थ पद मे केवल अर्थाववोध यदि हो गया तो वस ठीक है। वहाँ पर अन्य व्याकरण तथा गणितादि लक्षणो की आवश्यकता नही पडती। प्रमाण पद में अनुष्टुप् आदि छदों के एक चरण मे आठ आदि नियत अक्षर होते हैं। [भूवलय मे इससे व्यतिरेक क्रम है] सभी व्यावहारिक विद्वानो ने इन दोनो पदो का प्रयोग व्यवहार में रखकर तीसरे को छोड़ दिया है क्योंकि अनादि सिद्धान्त पद का अर्थ दुरूह होने से इसे छोड देना पड़ा। अनादि सिद्धान्त पद के एक में रहने वाले ग्यारह अंक प्रमाण अक्षरो के समूह को कौन ध्यान रखने मे समर्थ हो सकता है ? अर्थात् इस काल मे कोई भी नही क्योकि यह श्रुतकेवली गम्य है।

ऋद्धिधारी मुनियो को इस क्रम प्राप्त वेद ज्ञान के अक को अक्रमवर्ती ज्ञान से समझ कर निर्मल रूप मध्यम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उन्ही मुनियो के द्वारा विरचित होने से यह भूवलय ग्रन्थराज महा महिमा सपन्न होकर पुण्य पुरुषो के दर्शन तथा स्वाध्याय के लिये प्रकट हुआ ॥३२-३३॥

विद्वानो ने माला के समान इन अको को गुणाकार करते हुये एक विशिष्ट विधि से प्राणावाय पूर्व नामक ग्रन्थ से अंको द्वारा अक्षरो को बनाकर दिव्यौषधियों को जान लिया था। वह समस्ताक छह वार शून्य और सरलमार्ग से चार, चार, पाँच, दो बिन्दी, बिन्दी, [illegible] एक, दो अर्थात् २१ हजार कोडा कोडी २५ कोटा कोटि, द.

आठ सौ करोड़ पच्चीस लाख [illegible] अक प्रमाण होता है। उसको अंक संदृष्टि से दें तो २१२५२८[illegible]०००० अंक प्रमाण होता है।

प्राणावाय पूर्व द्वादशाग के अन्तर्गत [illegible] उपर्युक्त अंक प्रमाण अक्षरमय है, उसमे वैद्यक विषय विद्यमान [illegible] चरक सुश्रुत वाग्भट्ट को वृद्धत्रय कहते है वह वृद्धत्रय ग्रन्थ अथर्ववेद से प्रगट हुआ है, ऐसी वैदिक विद्वानो की मान्यता है। किन्तु यह वात ठीक प्रतीत नही होती क्योकि अथर्ववेद छोटा है उसमे से वृद्धत्रय जैसे विशाल ग्रन्थ प्रगट नही हो सकते। किन्तु भूवलय ग्रन्थ का निर्माण ६४ अक्षरो को विविध रूप भगो से ९२ अंक प्रमाण अक्षरो से हुआ है अत भूवलय से सव भाषाये और सर्व विषय करोड़ों श्लोको मे प्रगट होते हैं। इसलिए भूवलय से समस्त वैद्यक विषय स्वतन्त्र रूप से प्रगट होता है। उसका उदाहरण यह है—

श्रीमद् भल्लातकाद्रिवसतिजिनमुनिसूतवादेरसाब्जम्,
'ग्रन्थार्थं' लाञ्छनाक्ष घटपुटरचनानाशतातीतसूलम् ॥
हेमदुर्वर्णसूत्रागमविधिगणित सर्वलोकोपकारं,
पञ्चास्य लाजनाग्निभसितगुणाकरं भद्रसूरिः समन्तः ॥

यह वैद्यक विषयक श्लोक ग्रन्थ किसी ग्रन्थ मे उपलब्ध नही होता, केवल भूवलय ग्रन्थ में ही मिलता है।

यदि शारदा देवी साक्षात् प्रकट होकर अपने वरद हस्तों से स्वयं जिह्वा का संस्कार करें तो उपर्युक्त अंकों का प्रामाणिक शास्त्र सिद्ध हो सकता है। करपात्र में अर्थात् मुनि आदि सत्पात्रो को आहार औषधादिक दान देनेवाले उत्तम दाताओं को यह प्राणावाय पूर्व शास्त्र मालूम हो जाता है। इस काल तक अर्थात् श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है उनके नाम निर्दिष्ट करेंगे।

दानी श्रेयांस	ब्रह्मदत्त
सुन्दर सेन	इन्द्र
नक्षत्रार्या	पद्मसेन
सोमसेन	सुव्रती
महेन्द्र	सोमसेन
पुष्यमित्र	पुनर्वसु
सौन्दर	जयदत्त
विशाखदत्त	धन्यसेन
सुमित्र	धर्ममित्र
महाजितनन्दि	वृषभवर्द्धनदत्त
वरसेन (धन्य सेन)	सुकूल रस
धन्यसेन	वर्द्धनदत्त

इन सभी राजाओं ने आहार आदि ४ प्रकार के दान को सत्पात्रों को देकर अतिशय पुण्य बंध करके तुष्टि, पुष्टि, श्रद्धा, भक्ति, अलुब्धता, शान्ति तथा अक्रोध इन सात गुणों से युक्त उत्तम दातृपद प्राप्त किया था।३६-५५।

इसी भूवलय के चौथे खंड प्राणावाय पूर्व में १८००० फूलों से समस्त आयुर्वेदिक शास्त्रों की रचना इसलिए की गई कि वृक्षों की जड़, पत्ते, छिलका तथा फूलों के तोड़ने से एकेन्द्रिय जीवों का घात होता है। किन्तु महाव्रती मुनिराज एकेन्द्रिय जीवों का भी वध नहीं करते। ऐसी अवस्था में व्याधिग्रस्त जीवों के रोग निवारणार्थ वैद्यक शास्त्रों की रचना कैसे हो सकती है?

जिन मुनियों ने जो ग्रन्थ रचना की है वह अंग परम्परा का अनुसरण करती हुई की है। अतः वैद्यक शास्त्रों का निर्माण करते हुए आचार्यों ने जिन औषधियों के उपयोग की सूचना की है उसमें अहिंसा धर्म की प्रमुखता रखते हुए वस्तुतत्व का निरूपण मात्र किया है। अतः उसमें कोई बाधा उपस्थित नही होती।

यदि इस वैद्यक शास्त्र का निषेध किया होता तो १४ पूर्व में प्राणावाय पूर्व को भगवान जिनेन्द्र देव निरूपण ही नही करते। इस ग्रन्थ को किसी मनुष्य ने तो लिखा नहीं। यह साक्षात जिनेन्द्र देव की वाणी से ही प्रकट हुआ है। अतः इसका स्वरूप जैसा है वैसा लिखने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है। भगवान जिनेन्द्र देव अपनी कल्पना से कुछ नहीं कहते, किन्तु वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा ही उन्होंने निरूपण किया है। इसमें किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं आती आयुर्वेदिक में वेद, राक्षसायुर्वेद, तथा समस्त जीवायुर्वेद गर्भित है। राक्षसायुर्वेद में मांस आदि अभक्ष्य पदार्थ मिश्रित हैं। जिनका सेवन करने से सिद्ध शुद्ध पारा, स्वर्ण तथा लोहादिक भस्मों से तैयार की औषधियां लागू नही होतीं। क्योंकि अशुद्ध परमाणुओं से रचित अशुद्ध शरीर के लिए अशुद्ध औषधियां लाभदायक होती हैं। माँस, मदिरा, मधु, मल मूत्रादि के द्वारा तैयार की गई औषधियां अशुद्ध होती है। और ये अशुद्ध औषधियां अनादिकाल से यथावत् रूप से प्रचलन में आने के कारण अपने यथार्थ नामानुसार हैं। उनको प्रयोग मे लेना या न लेना बुद्धिमानों का कार्य है।

धर्म मार्ग में प्रवर्त्तन वृत्ति करनेवाले जीवों को हिंसादि पांचों पापों को त्याग देना चाहिए। अतः उनके लिए यह अशुद्ध औषधियाँ उपयुक्त नही होती। उनके लिए विशुद्ध रसायन सूक्ष्माति सूक्ष्म प्रमाण अर्थात् सुई के अग्र भाग प्रमाण मात्र भी सिद्धौषधियाँ कुष्ठ, क्षयादि असाध्य रोगों को समूल नष्ट करके अमोघ फल देती है तथा वृद्ध मनुष्यों की काया पलट कर तरुण बनाने में पूर्ण सफल होती हैं इसका विस्तृत विवेचन प्राणावाय पूर्वक नाम चतुर्थ

खड मे किया जायगा । उपर्युक्त चौवीस दातारो ने आहार, औषधि, शास्त्र अभय इन चार प्रकार के दान सत्पात्रो को देकर त्रिकालवर्ती जीवो के कल्याणार्थ लोकोपकारी इस विशुद्ध आयुर्वेदिक शास्त्र को स्थायी रक्खा । उनका यह कार्य अत्यन्त श्लाघनीय है ।३६ ५५।

उपर्युक्त प्राणावाय पूर्वक जो अक है उतने ही अंक प्रमाण एक तोले परिशुद्ध भस्म बनाये हुए पारे मे छिद्र हो जाते हैं । छिद्र सहित वह पारा परस्पर मे पुन नही मिलता । इसी पारे मे यदि फूलो के रस से मर्दन करके अग्निपुट मे पकाया जाय तो वह रत्न के समान प्रतिभाशाली विशुद्ध रसमणि बन जाती है । उस मणि को वज्र खेचरी घुटिका, रत्नत्रय औषधि, वसन्त कुसुमाकर इत्यादि अनेक नामो से पुकारते हैं । इन मणियो को पृथक् पृथक् रूप से यदि अपने हाथ मे रखले तो आकाशगमन जलगमन इत्यादि अनेक सिद्धिया उपलब्ध हो जाती है । यह सब पुष्पो से बन जाता है न कि वृक्षो की छाल आदि एकेन्द्रिय जीवो के घातक पदार्थो से ।५६।

विवेचन—आचार्य श्री कहते है कि जिस प्रकार भूवलय ग्रन्थ राज की रचना गणित शास्त्र की पद्धति से की गई है उसी प्रकार सयोग भग से (Permeetesletion and comlicaciol),

वसन्त कुसुमाकरादि रसो के सयोग से विविध भाति की रासायनिक औषधियां प्राप्त की जा सकती है । जब केवल एक औषधि मे महान गुण विद्यमान है तो सयोग भंग विधि से समस्त सिद्धौषधि को एकत्रित करने पर कितना गुण होगा, सो वर्णनातीत है ।

१८ हजार पुष्पायुर्वेद के अनुसार फूल निकलने से पहले वृक्षो की कली तोड़कर उन कलियो का अर्क पृथक्-पृथक् निकाल कर पारे के साथ उस रस मे पुट देते थे, तब वह पाद रस मणि तैयार होता था ।५७।

उस पुष्पायुर्वेद की औषधि राशियो को कहनेवाला यह भूवलय है ।५८।

उस पुष्पायुर्वेद के अनुसार तैयार की गई रस मणि सेवन करने से वीर्य-स्तम्भन होता है, वृद्ध अवस्था यौवन अवस्था मे परिणत हो जाती है, उसके सेवन से अकाल मृत्यु नही होती, शरीर सुदृढ हो जाता है ।५८।

इस सुरसरक्षण काव्य मे ऋद्धि, क्षय नाश, प्राण रक्षा, यश, (कान्ति) स्तम्भन, पाचन आदि आठ सूत्रो द्वारा औषधियो का वर्णन है ।५९।

उस रस मणि को सेवन करने मात्र से नवीन जन्म के समान नवीन कायाकल्प हो जाता है । तथा उस रस मणि सेवन से आत्मा मे अनेक कलायें प्रगट होती हैं ।६०।

इस रसमणि को सबसे प्रथम भरत चक्रवर्ती ने सेवन किया ।६१।

इस पृथ्वो के वही पुरुषोत्तम थे ।६२।

वे हो सत्य वीर्य शाली थे ।६३।

वे सदा शत्रु मित्र को समान समझते थे । ६४ ।

इस कारण वे साम्राज्य ऐश्वर्य के अधिपति बन गये थे ।

वे ही मर्मज्ञ तथा धर्मवीर थे ।६६।

वे ही दानवीर थे ।६७।

वे ही धर्म श्रोताओ मे प्रमुख थे ।६८।

वे ही शूरवीर योद्धा थे ।६९।

वे कवियों द्वारा बन्दनीय तथा स्तुत्य [illegible] थे ।

वे नवीन धर्म प्रिय श्रोता कहलाते थे ।७१।

अनेक प्रकार की भक्तियो तथा विनयों से युक्त थे ।७२।

वे स्वयं-सम्राट कहलाते थे ।७३।

वे लावण्य पुरुषोत्तम कहे जाते थे ।७४

समस्त पुरुषों मे श्रेष्ठ शरीर धारक थे ।७५।

वे पावन पुण्डरीक थे ।७६।

दान के प्रभाव से नवीन फल प्राप्त करने वाले थे ।७७।

इसी पकार योग धारण करने वा राजा कुणाल था ।७८।

ऐश्वर्य मे नारायण के समान थे ।७९।

उस औषधि के चबाने से सुभौम चक्रवर्ती के समान तेजस्वी हो जाते हैं ।८०।

उग्रता मे वे भुजग के समान थे ।८१।

पृथ्वी का अज्ञान दूर करनेवाले थे ।८२।

इस तरह भगवान महावीर के समवशरण राजा श्रेणिक था ।८३।

प्राप्त किया श्रेष्ठ मुनि का यह देह यानी इस मुनि का शरीर तप या संयम के द्वारा तपते हुए धूलि से लिप्त हुये इस शरीर की धूलि को अपने शरीर से स्पर्श करने से रोग से जंरित हुआ शरीर एक निरोग बनकर कामदेव के समान तथा तरुण युवक के समान बन जाता है ।८४। 4

अत्यन्त पुराने तथा असाध्य रोग के नाश 7 4 के लिए अत्यन्त उत्तम मीठी राम वर्ण औषधि से युक्त ऋद्धि धारी मुनि 3 की लार तथा भूठन को सेवन करने से तथा थूक सेवन करने से संसारी 6 मानव प्राणी के सर्व-व्याधियां नाश होती है । उस मुनि को क्षल्ल औषधि ऋद्धि कहते है ।

जिस मुनि के शरीर के पसीना को हमारे शरीर को स्पर्श करने मात्र से पुरानी व्याधियां का उपशम होकर नवीन कांतिमाय सुन्दर काया बन जाती है तथा गर्व के साथ अपने को यह बतलाता है मै काम देव हूं अहंकार को उत्पन्न करने योग्य शरीर प्राप्त कर देने वाली यह क्षल्लोषधि ऋद्धि धारी मुनि के पसीना का ही महत्व है ।८५ ८६।

आदि से लेकर अन्त तक रोग को नाश करनेवाले, श्री जिन मुनि के ऋद्धि के शरीर की एक मल कण के अणु को लेकर अपने शरीर को लगाने मात्र से जो आदि अन्त का रोग नष्ट होता है ऐसे ऋद्धि को विद्वज्जन जल्लौषधि कहते हैं ।८७।

जिन यति के कान, आंख, नाक, दन्त के मल छूने मात्र से शरीर के समस्त रोग नष्ट हो जाते है, वह मलौषधि ऋद्धि है ।८८।

वे साधु पुष्पदन्त भगवान को प्राप्त हुए हैं ।८९।

वे पार्श्वद्वय (सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ) को प्राप्त हुए है ।९०।

वे गुण की अपेक्षा गणनातीत—अनन्तनाथ को प्राप्त हुए है ।९१।

वे समस्त जीवों को संसार ताप से शीतल करनेवाले शीतलनाथ भगवान को प्राप्त हुए है ।९२।

समस्त विश्व से पूज्य वासुपूज्य भगवान हैं ।९३।

वे विमलनाथ अनन्तनाथ को प्राप्त हुए हैं ।९४।

धर्मनाथ मल्लिनाथ ये ९ तीर्थंकर अंक हैं ।९५।

इसी अंक के मुनि सुव्रतनाथ हैं ।९६।

सात तीर्थंकर अंग है 4 अधिकतर विहार करनेवाले हैं।९७।

वीरनाथ और नेमिनाथ 5 विदेह देश में ।९८।

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ का कुरुजाङ्गल देश बलय विहार क्षेत्र है ।९९–१००।

समस्त तीर्थंकरों का विहार क्षेत्र आर्यावर्त या आर्यवलय रहा है ।१०१-१०२।

इस प्रकार तीर्थंकरों के विहार का यह (आर्यावर्त) भूवलय है ।१०३।

इस भूवलय में कहा हुआ यह देश सूचक रत्न (पद्य) है ।१०४।

यह भरत क्षेत्र का वैभव है ।१०५। 30 28

यह कुरु देश का अतिशय रूप कुरु ९ 45

ये देश सरस हैं तथा पारस, पारा आदि देनेवाले हैं ।१०७।

ये देश महान पुरुषों के उत्प 1 7 30 7 राग्य उत्पन्न कराकर मुक्ति को प्राप्त करानेवाले हैं ।१०८ 1 1 45 47

यह भूवलय मनुष्य के सौ 3 55 1 1 56 ला है ।१०९।

जिन ऋषियों की जिह्वा (जीभ) पर आया हुआ कड़वा, नीरस पदार्थ भी मधुर (मीठा) रसमय परिणत हो जाता है, वह मधुस्रावी ऋद्धि है । उनके शरीर का मल भी मधुर हो जाता है ।११०।

जिन ऋषियों का थूक, विष्ठा तथा मूत्र पृथ्वी पर पड़ा हुआ सूख जाता है उस सूखे हुए मल मूत्र की वायु के छूने मात्र से अन्य जीवों के रोग दूर हो जाते है, यह विडौषधि ऋद्धि है ।१११।

जिन ऋषियों के शरीर को छूकर बहने वाली वायु के स्पर्श मात्र से समस्त मानव पशु पक्षियों के समस्त रोग दूर हो जाते हैं, तथा कालकूट विष का प्रभाव भी नष्ट हो जाता है वह जलौषधि है ।११२।

जिन ऋषियों के मुख से निकली हुई लार के द्वारा रोगियों का विष दूर

हो जावे वह आस्यविष नामक ऋद्धि है ।११३।

जिन मुनियो की दृष्टि (देखने) द्वारा दूसरो का विष दूर हो जावे वह दृष्टि विष ऋद्धि है ।१४४।

ऐसे ऋद्धिधारक मुनि जिस बनमे रहते हैं उनके प्रभाव से उस बनकी वनस्पतियो (वृक्ष, वेल, पौधे आदि) के फल फूल, पत्ते, जड, छाल आदि भी महान गुणकारी एव रोगनाशक हो जाते है ।११५।

उन वतस्पतियो के स्पर्श हो जाने से विष भी अमृत हो जाता है ।११६।

श्रीजिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार उन वृक्षो के पत्र मद (नशा मूर्छा) दूर करने वाले होते है ।११७।

ऋद्धियों के उपयोग मे आने वाले सरल वृक्ष ।११८।

तिरुड़ वृक्ष मादल (बिजौरा), वृक्ष की कली के अर्क से दातो का मल दूर हो जाता है ।११९-१२२।

इनके फूलो को कुण्डल की तरह कान मे लगाने से कान वज्र समान दृढ बन जाते है ।१२३।

उन पुष्पो को सूंघने से नाक के रोग नष्ट हो जाते हैं ।१२४।

उन पुष्पो मे अनेक गुण हैं ।१२५।

इन समस्त पुष्पो को जानना [illegible]

सूर्य के उदय होने पर खिल [illegible] पदम है ।१२७।

इत्यादिक पुष्प पदमावती देवी को [illegible] २८।

राजा जिनदत्त इन पुष्पो को पदमावती [illegible] मने चढाता था ।१२९।

राजा जिनदत्त उन पुष्पो का पदमावती देवी के शिर पर विराजमान भगवान पार्श्वनाथ के चरणो पर चढाता था । भगवान पार्श्वनाथ के चरणों के तथा पदमावती देवी के शिर के स्पर्श से वे पुष्प प्रभावशाली हो जाते थे । उन पुष्पो के रस से श्री देवेन्द्र यति ने महान चमत्कार दिखाया तथा वह रस देवेन्द्र यति ने राजा जिनदत्त को दिया । राजा जिनदत्त ने उस रस से अनुपम फल प्राप्त किया । उस रस को पैरो के तलुओ मे लगाने से योजनो तक शीघ्र चले जाने की शक्ति आ जाती थी । इसी कारण इसका नाम पाद रस ऋद्धि है । इसका नाम प्राणावाय रस भी है । इसको विद्वान जानते है । यह त्यागियो के आश्रम से प्रगट हुआ है ।१३०-१३८।

इस प्रकार १८ हजार श्लोको द्वारा इस भूवलय मे १८ हजार पुष्पो के प्रभाव को प्रगट करनेवाले पुष्पायुर्वेद की रचना हुई है ।१३९।

अठारह हजार जाति के उत्तम फूलो से निचोड़ कर निकले हुए पुष्प रसको पारद के पुष्पो से मर्दन करके पुट मे रखकर नवीन रस की घुटिका को बाधकर उस पुट को फूकने के बाद रस सिद्धि तैयार होती है । तब यही रसायन नवीन कल्पसूत्र वैद्याग [illegible] आयुर्वेद कहला [illegible] है ।१४०-१४१।

यह आयुर्वेद श्री स[illegible] ऋषि द्वारा [illegible]भूत किया गया प्राणावाय पूर्व के द्वारा निक[illegible] [illegible]श्य काव्य है । और यह काव्य चरकादिक की सम[illegible] अर्थात् यह असदृश्य काव्य है । इसको श्रवण वैद्यागम कहते है । [illegible] आगम अत्यन्त ललित आयुर्वेद है और यह श्रवणो के द्वारा निर्माण [illegible]यन्त रुचिकर है तथा ससार के प्राणिमात्र का उपाकारी और [illegible] है । इसलिए भव्य जीवों को रूचि पूर्वक पढकर के इस वैद्याग [illegible] [illegible]र्वेद कृति के अनुसार इस औषधि को अगर जीव ग्रहण [illegible] उभय लोक सुखदायक आत्म हित साधन करने योग्य [illegible] है ।१४२-१४३।

इसका स्पष्टी करण श्री [illegible] स्वयं करते हुए लिखा है कि इस आयुर्वेद का नाम अहिंसा [illegible] अहिंसा पुष्पायुर्वेद की परिपाटी ऋषियो तथा श्री तीर्थंकर [illegible] द्वारा निर्मित होकर परम्परा से चलती आयी है । इस चौदहवे [illegible] में पुष्पायुर्वेद विधि को चरकादि ऋषि ने समझने वाले विधि [illegible] को श्री देवेन्द्रयति और अमोघ वर्ष राजा को श्री समन्त [illegible] रूप मे बताये गये पुष्पायुर्वेद विधि का इस अध्याय मे निरूपण किया गया है ।

अहिंसा मय आयुर्वेद के निर्माण कर्ता पुरुषों के उत्पत्ति स्थान तथा उनके नगरों के नाम—

ऋषभनाथ, अजितनाथ, अनन्तनाथ ।१४४।

अभिनन्दन इन चारों का जन्म स्थान अयोध्या नगरी है ।१४५-१४६।

शम्भवनाथ का श्रावस्ती है ।१४७।

सुमतिनाथ का विनिता पुरी है ।१४८।

श्री पद्म प्रभ भगवान का कौशाम्बी नगरी 1 109 48 ।१५०।

श्री भगवान पार्श्वनाथ तथा सुपार्श्वनाथ 0 7 43 मि बाराणसी है ।१५१-१५२।

30 3

श्री चन्द्रप्रभ भगवान की जन्म मि 30 56 १५

श्री पुष्पदन्त भगवान की जन्म 4 1 4 है १५४-१५५।

शीतलनाथ भगवान की जन्म भूमि भ... पुरी है ।१५६।

श्रेयांसनाथ भगवान की जन्म भूमि सिंहपुरी है ।१५७।

श्री वासुपूजय भगवान की जन्म भूमि चम्पापुरी है ।१५८।

श्री विमलनाथ तीर्थंकर की जन्म नगरी कौशलपुर है ।१५९।

श्री धर्मनाथ भगवान की रत्नपुरी है ।१६०।

श्री शान्ति, कुंथुनाथ, और अरहनाथ की जन्म नगरी हस्तिनापुर है । ।१६१ 28 1

श्री मल्लिनाथ नमिनाथ को नगरी मिथिलापुरी है ।१६३।

श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर की जन्म नगरी कुशाग्र पुरी है ।१६४।

श्री नेमिनाथ तीर्थंकर की जन्म नगरी द्वारावती है ।१६५।

श्री भगवान महावीर तीर्थंकर की जन्म नगरी कुण्डल पुर है ।१६६।

इन तर्थंकरों का जहां-जहां जन्म है उनका जन्म ही यह भूवलय ग्रन्थ है ।१६७।

यह भूवलय ग्रन्थ सम्पूर्ण विश्व के प्राणी मात्र का हित करने वाला है । यह भूवलय सम्पूर्ण संयम तप शक्ति त्याग इत्यादि परिश्रम से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने के बाद श्री तीर्थंकर परम देवके मुखारबिंद से निकला हुआ है ।इस अहिंसामय भूवलय के अन्तर्गत निकले हुए अठारह हजार श्लोक पुष्पायुर्वेद के हैं । और यह आयुर्वेद सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने के लिए दया

इस तरह अनादि काल की परम्परा से चले आये हुए अहिंसामय आयुर्वेद में दुष्टों ने अपना स्वार्थ ... करने के लिए इस आयुर्वेद में जीव हिंसा की पुष्टि करके रचना किया ... लो के काव्य को धिक्कार है ।१६८।

अत्यन्त सुन्दर इस आयु... 54 45 ... आयु तथा शरीर मन वचन इन तीनों बलों को बढ़ाने वाला है । 7 आयुर्वेद शिव तथा क्रम बद्ध श्री चौबीस भगवान की परिपाटी से 114 53 ... के द्वारा उत्पन्न होकर आया हुआ प्राणवाय नामक शीलगुण है 56 55 54 ... है । यह जीव हमेशा अपने स्वरूप से भिन्न होकर किसी 1 1 45 में ... जा ...ता । जीव के अन्दर आने वाले तथा जीव को घात करने 4 4 3 ...ओं को दूर कर जीव के स्वरूप की रक्षा करना या अन्य ... 53 5 अशुभ परिणति से बचना इस शील अर्थात् जीवात्मा का स्वरूप 30 28

इस श्लोक में प्राणवाय शील का अर्थ 45 या या जीव की रक्षा कर दिया है । जिस आयुर्वेद शास्त्र में ज... विधि न हो या जीव हिंसा की पुष्टि जिसमें हो व 1 7 30 7 की रक्षा किस प्रकार कर सकता है ? आयुर्वेद ... 1 1 45 47 ... दया करना है यह दया धर्म मानव के द्वार 53 55 1 1 56 45 इस मानव का कर्तव्य सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर द... (करना बतला दि... हुआ 57 क्या प्रत्येक मानव को दया धर्म का पालन नही क... ...हिए ? अवश्य ...रना चाहिए । और नौमांक अर्थात् नौ अंक ही ... दया है और यही जीवका स्वरूप है ।१६९।

जिस आयुर्वेद में एक जीव को मार कर दूसरे जीव की रक्षा करने वाले विधान का प्रतिपादन किया गया है तथा जिसमें चरक ऋषि के आयुर्वेद अर्थात् वैद्यागम को खण्ड कर अहिसा आयुर्वेद का प्रति पादन किया है वह अहिंसात्मक आयुर्वेद है ।१७०।

प्राणावाय से स्थावरादि जीवों की हिंसा करने से ही आयुर्वेद की औषधि तैयार होती है अन्यथा नहीं क्योंकि जैन दर्शन में श्री भगवान महावीर ने सम्पूर्ण प्राणी मात्र की रक्षा करना प्राणो मात्र का कर्तव्य बतलाया है । परन्तु आयुर्वेद की रचना प्राणावाय के बिना अर्थात् प्राणी के वायु को घात

इस प्राणावाय आयुर्वेद को औषधि तैयार करने के लिए जीवरक्षा करना बहुत अनिवार्य है। क्योंकि इसमे पाप का बध नही होता। परन्तु अपनी कल्पना के द्वारा कल्पित हिंसामय ग्रन्थ की रचना करके क्रूर राक्षस के समान प्रकृति के मनुष्यों ने इस ग्रन्थ की रचना करके प्रचलित किया है।

इस तरह हिंसामय ग्रन्थ की रचना करने का कारण यह हुआ कि। भगवान महावीर स्वामी की अहिंसामय वाणी को तथा हिंसा और अहिंसा के भाव को ठीक न समझने के कारण तथा इनकी भावना पहले से ही हिंसामय होने के समान तीव्र चढी हुई थी। इसलिए इन दुष्ट तथा क्रूर [illegible] के द्वारा विरचित इस पाप तथा हिंसामय आयुर्वेद ग्रन्थ को धिकार हो ऐसा श्री दिगम्बर जैनाचार्य [illegible]न्दु कहते हैं।१७१।

[illegible]से पहले किसी भी मत का आगम, शास्त्र, आयुर्वेद या [illegible] इत्यादि [illegible] भी शास्त्र हो उन सभी ग्रन्थो मे सबसे पहले [illegible] दया [illegible] सम्पूर्ण जीवो के प्रति करुणा भाव अवश्य होना चाहिए [illegible]योंकि जहा [illegible]यो के प्रति दया [illegible] करुणा भावना निरूपण न हो वह कभी भी आयुर्वेद [illegible] आगम नही कहा जा सकता। इसलिए सदा जीवों की रक्षा करने की [illegible] रखना ही तप है और इसी के द्वारा रस ऋद्धि अर्थात् [illegible] ऋद्धि [illegible] होती है।१७२-१७३।

विशेषार्थ—इस भगवा[illegible] से निकली हुई दिव्य ध्वनि के प्राणावाय पूर्व [illegible] नि[illegible]य [illegible] ग्रन्थ मे किसी जीव की हिंसा नही है। महावीर [illegible] [illegible]न्दु आचार्य तक जितने भी यहां व्रतधारी दिगम्बर [illegible] मने [illegible]नादि कालीन भगवान वीतराग की परम्परा से भ[illegible] अनुशासन के अनुसार थे और भगवान महावीर से [illegible] तक जितने भी व्रती दिगम्बर मुनि थे वे सभी भगवान महावीर के अनुयायी थे। इसीलिए १८००० हजार जाति के पुष्पो [illegible] वैद्यक ग्रन्थ का निर्माण किया गया था। यहां पर यह प्रश्न उठता है कि वृक्ष की जड, पत्ता और छाल इत्यादि न लेकर केवल पुष्प को ही क्यो लिया ?

उत्तर—रसायन औषधिया केवल पुष्पो से ही तैयार होती है। इसलिए वृक्ष की जड आदि को यहां ग्रहण नही किया गया है। रसायन औषधि का विधान केवल पुष्पों से ही होता है। इसलिए केवल पुष्पों का ही यहां वर्णन किया गया है।

प्राणावायु के बारे में कहा भी है कि—

"प्राणापानस्समानस्य दानव्यानस्समानग:"

इत्यादि दश वायु की [illegible] लेनी पड़ती है। किन्तु जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे प्राण आदि वायु की जरूरत नही पड़ती अनेक वस्तुओं से मिश्रित होने पर भी उनकी वाणी [illegible] स्पष्ट रीति से प्रतिपादित होता है।

इस प्रकार जो औषधि [illegible] ऋद्धि [illegible] भव्य मानव को प्राप्त हुई है, उनको स्पर्श करने [illegible] पर [illegible] लगा हुआ कर्म वश तत्काल नष्ट होता है।१७[illegible]

इस ऋद्धि को प्राप्त [illegible] ।१७४।

४-५-६-८-९।१७५।

१०-११-१२।१७६।

१३-१४-१९-२१। ये राजवंश [illegible] थे। ७७-१७९।

श्री पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ [illegible] धर्म शान्ति नाथ और कुंथुनाथ अरहनाथ, ये कुरु वंश [illegible] ८२।

बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ हरिवंश [illegible] हुए हैं। श्री वर्द्धमान नाथ वंश के हैं।१८३ से १८६।

श्री नेमिनाथ हरिवंश के हैं।१८७।

ये पाचो वंश हरिवंश (इक्ष्वाकु वंश, [illegible]वंश, हरिवंश, उग्रवंश, और नाथ वंश) भारत के प्रमुख राजवंश [illegible] इनमे धर्म परम्परा चली आई है और इस वंश को दूसरो के [illegible] प्रभाव रहा है।१८८ से १९१।

भगवान आदिनाथ [illegible] महावीर तक चले आये हुए हुण्डाव-सर्पिणी काल [illegible] यह [illegible] ग्रन्थ कार्य कारण रूप है। यानी—तीर्थंकर की वाणी कारण रूप और भूवलय कार्य रूप है।१९२ से १९४।

यह भूवलय ग्रन्थ किसी अल्पज्ञ का कल्पित नही है, बल्कि सर्वज्ञ तीर्थंकरो की दिव्य ध्वनि से इसका प्रादुर्भाव हुआ है। भगवान महावीर के

अनन्तर श्री समन्तभद्र, पूज्य पाद आदि आचार्यों की गुरु पर 45 ... वलय ग्रन्थ का समस्त विषय श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक चला आ 1 3 । ये समस्त आचार्य भगवान महावीर के अनुयायी थे । इन आचार्यों ने 58 रचना किसी ख्याति, लाभ, पूजा ... की भावना से नहीं का इनका उद्देश ...-पर-कल्याण तथा आध्यात्मिक विकास 1 1 55 ... ही रहा है 54 109 ।

श्री समन्तभद्र, श्री 56 16 ... 1 7 1 48 ... कल्याण के लिए रस-सिद्धि आदि का विधान अपने 55 56 7 43 ... दि ने उनका आदर, आभार न मानते हुए अपनी ख्याति 16 30 3 4 ... के ग्रन्थों का अनुकरण करके ग्रन्थ रचना की है।१९६ 55 4 30 56 47

१८ हजार पुष्पों का रस 45 54 1 43 47 ... अन्य बर्तन 1 में उसे रखकर उसका मुख बन्द 7 43 47 1 ... वह 55 नवीन रस सिद्ध होता है । इस रस सिद्धि के ... ही श्री 54 5 94 ...ज्य-पाद आचार्य ने वैद्यागम कल्प सूत्र की रचना की है । श्री ... आचार्य कहते हैं श्री समन्तभद्र आचार्य ने प्राणावाय द्वारा जो वैद्यागम 59 ... की ... श्री वह अदृश्य होने के कारण रस सिद्धि विधान 56 आ... नहीं हुआ तब उन चरक आदि परम्परा 53 60 3 54 त्य... ...लिपत रचना की तथा आयुर्वेद ग्रन्थ रचना चरक आ... 1 28 1 हुए ... सिद्ध कर ... और उस रसायन मे जीव हिंसा का 59 4 13 ऐं ... वान करने 4 ... लों को आचार्य धिक्कारते है प्राणावाय 7 38 47 की ... रूप आयुर्वेद तीर्थंकरों की वाणी से प्रगट हुआ 53 59 ... आदि ... त्रस जीवों की हिंसा द्वारा रस औषधि विधान किया है उन ... ...यों की प्राण रक्षा रूप प्राणावाय या आयुर्वेद कैसे माना जा सकता है।१९७।

उन वृक्षों की कलियों (फूल की अविकसित अवस्था) को तोड़ कर अथवा वृक्ष से गिरी हुई कलियों को एकत्र करके जल मे डालकर उन्हे खिलाते हैं, फिर उन कलियों का रस निकालकर उस रस से अतिशय प्रभावशाली रस औषधि तैयार होती है, जोकि इन्द्र को भी दुर्लभ है । गृहस्थ स्थावर जीव हिंसा का त्यागी नहीं है, अत: वह वृक्षों से फूल की कलियों को तोड़कर रसायन तैयार कर सकता है । दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवों का संकल्प से घात करना गृहस्थ के लिए त्याज्य हिंसा है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।१९८।

उस रसायन की स्वल्पमात्रा भी सेवन करने से मनुष्य के महान तथा जीर्ण रोग नष्ट हो जाते है । स्वस्थ शरीर द्वारा मनुष्य तपश्चर्या आदि करके स्वर्गादि के सांसारिक सुख प्राप्त ... लेता है और अन्त में अपने स्वस्थ शरीर द्वारा कर्म-क्षय करके मोक्ष ... 42 ... ता है ।१९९।

ऐसे प्रभावशाली 56 54 45 113 ... आयुर्वेद प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त करना चाहिए जिससे वह स्व 3 7 114 करके मनुष्य इस लोक परलोक मे सुख प्राप्त कर सके । आयुर्वेद स 13 53 ... दोषों को नष्ट करके औष-धियों के गुणों से शारीरिक बल 56 55 54 ... करने वाला है ऐसे जयशील आयुर्वेद को सबसे प्रथम कर्म 1 1 45 में राजा नाभि राय के पुत्र भगवान ऋषभनाथ ने अपने पुत्रों ... २०२।

54 4 4 3

प्राणानुवाद पूर्व के रू 56 41 53 5 1 ... आद क्रमशः राजा जिन शत्रु के पुत्र भगवान अजि... .40 53 30 28 1 ... भगवान शम्भव नाथ ने, राजा संवर के तनय ... मेघप्रभ के पुत्र भगवान सुमतिनाथ ने, नृपतिध... 3 54 52 45 1 ...र ने, सुप्रतिष्ठ राजा के पुत्र श्री सुपार्श्व नाथ 1 1 7 30 7 के पुत्र भगवान ...प्रभ ने, सुग्रीव राजा के पुत्र 45 1 1 45 47 राजा के पुत्र श्री शीतलनाथ तीर्थंकर ने, विष्णुनरेन्द्र 53 55 1 1 56 45 ..., वसुपूज्य राजा के पुत्र भगवान वासु... 7 1 57 24 7 ...न विमलनाथ ने, श्री सिंहसेन के पुत्र भगवान 6 52 7 42 52 56 के आत्मज श्री धर्मनाथ तीर्थंकर ने राजा 54 46 1 54 3 ...न्तनाथ ने, सूर्यसेन राजा के पुत्र भगवान कुन्थु 16 42 6 53 ... भगवान अरनाथ ने, राजा कुम्भ के पुत्र भगव... ...मित्र के पुत्र श्री मुनि सुव्रत नाथ तीर्थंकर ने, विजय 60 42 ... 55 35 ...मनाथ ने, रजा समुद्र विजय के पुत्र भगवान नेमिनाथ ने, श्री अश्वसेन राजा के पुत्र भगवान पार्श्व नाथ ने और राजा सिद्धार्थ के पुत्र भगवान महावीर ने अर्हन्त पद पाकर उसी आयुर्वेद का उपदेश समवशरण द्वारा भूवलय (भूमण्डल) मे अपनी दिव्यध्वनि द्वारा दिया इस प्रकार इसको पितृ कुल भूवलय कहते है ।२०३ से २२० तक।

पितृकुल परम्परा से चले आये प्राणावाय आयुर्वेद से गर्भित भूवलय का स्वाध्याय करनेवाले व्यक्ति अपना शरीर निरोग करके परमार्थ की सिद्धि कर

	7	54	24	54	☆ 4	54	16	30	3	33	4	1	30	☆☆ 53	28	43	4	56	45	33	4	22	★★ 42	60	1		
	1	53	4	28	1	47	13	48	60	45	40	52	45	47	4	59	1	1	1	45	60	1	1	45	42		
जैन सिद्धान्त श्री	52	42	3	58	1	22	1	47	44	1	1	1	1	54	4	54	44	1	1	4	54	13	1	1	52		
भूवलय श्रुतावतार	16 [125]	28	54	40	45	54	1	7 [121]	1	59	45	52 [126]	1	52	1	59	54	54	59	1	56	58	54	4	1		
	47	16	1	1	1	13	54	59	30	24	1	33	54	34	1	52 [128]	1	1	30	1	4	24	47	54	16	1	4
	52 [122]	53	30	43	1	43	4	1	1 [18]	13	13	4 [127]	78	56	1	53	30	30 [11]	45	43	52 [170]	4	1	8	56	13	52 [129]
	52	24	1	30	1	45	13	45	1	24	47	47	1	56	56	54	4	1	7	1	56	59	4	1	1	4	1
	43	54	1	45	1	22	4	56	1	7	1	54	1	1	1	42	30	53	4	1	54 [171]	55	52	54	45	54	54
	1	40	1	30	1	59	1	59	16 [123]	45	1	54	54	7	1	1	16 [37]	45	54	1	9	52 [172]	54	1	3	52	45
	7	4	47	18	★ 4	1	51	7	56	55	4	59	7	☆★ 43	1	1	52	1	1	54	3 [136]	3	★ 1	54	53	48	7
	56	1	4 [121]	52	54	1	30	4	54	1	1	45	3	30	1	45	1	55	1	56	45	28	34	1	4	60	56
	45	59 [32]	1	1	47	1	43	30	13	28	56	59	1	6	53	1	52	1	1	1	47	1 [133]	57	54	1	54	46
	16	54	1	1	47	1	4	1	7	1	1	48	1	54	1	47	3	6	60	1	1	4	1	52	1	1	54
	1	47	31	18	53	45	59	45	54	53	57	3	60	(1)	52	43	43	57	45	53	43	59	7	56	24	1	24
	1	54	59	1	3	4	4	16	48	4	3	56	1	42	7	7	4	1	4	45	4 [134]	56	1 [135]	42	48	1	4
	1	1	54	51	33	55	50	13	53	57	42	16	45	4	47	56	47	47	7	46	1	45	18	54	30	59	46
	1	1	1	1	55	1	1	3	46	3	52 [118]	3	55	1	52	4	1	7	59	53	1	59	1	44	4	45	50
	46	58	54	16	54	30	59	7	42	54	4	54	1	36 [6]	30	3	56	35	4	54	1	56	42	13	4	1	1
	1	1	1	54	★★ 43	1	16	3	1	1	54	54	56	★ 4	45	55	59	3	7	24	59	1	★ 1	24	44	1	1 [139]
	45	53	1	54	59	47	54	45	56	1	1	1	7	1	1	4	42	57	46	1	43	59	60	4 [138]	54	52	59
	56	60	1	1	47	1	1	1	1	45	55	59	45	56	40	3	45 [110]	59	54	27	16	5	52	1	1	3	1
	1	57	1	1	45	43	56	54	4	55	7	1	1	16	56	1	1	1	46	54	47	3	30	54	31	53	1
	6	53	60	1	7	45 [120]	60	45	52	47	54	42	28	7	40	53	30	16	43	1	43	3	1	47	42	47	1
	4	1	30	54	1	4	1	1	7	1	47	52	47	3	6	24	47	1	46	53	59	30	1	1	24 [140]	47	1 [137]
	40	47	57	54	30	57	45	45	42	4	4	16	56	56	1	1	1	1	1	1	47	59	52	1	1	54	45
	4	16	3	3	1	1	47	1	1	56	45	1	3	57	53	1	3	59	1	1	1	1	54	52	1	4	54
	53	43	56	53	58	1	54	54	57	7	56	56	3	1	47	1	18	7	54	54	53	7	35	56	59	1	43

SARWARTHA SIDDHI SANGHA, BANGALORE-DELHI.

45	33	6	7	★ 1	13	37	4	30	54	40	54	4	★ 1	1	55	56	59	56	6	55	1	16	60	1	54	51
24	42	59	7	1	35	59	47	1 [159]	7	1	43	54	30	1	7	7 [163]	7	37	1	53	1	4	57	4	1	9
4	16	54	28	1	4	3	45	30	45	48	24	4	45	42	47	48	60	56	6	48	54	1	54	28	4	1
[160] 56	1	59	45	42	57	47	1	43	3	60	4	1	7	1	1	3	18 [164]	42	16 [165]	54	56	16 [166]	47	33	54	9
52	1	7	7	1	1	54	43	1	1	13	55	4	56	47	1	30	54	30	4	7	30	1	1 [167]	45	51	1
45	56	54	45	43	56	7	47	1 [152]	[161] 1	54	43	1	47	56	54	48	47	59	30	13	56	53	47	1	52	1
1	3	3	4	4	59	47	56	4	6	6	47	3	1	1	1	47	30	16	1	7	1	16	1 [168]	1	52	4
[158] 1	56	54	54	1	3	18	59	47	54	47	59	56	57	47	3	7	4 [162]	59	54	55	4	53	54	1	54	28
45	4	1	54	54	45	4	3	45	1	1	1	7	53	59	54	55	1	4	1	56	1	56	47	1	47	4
51	52	59	1	★★ 40	4	1	1	45	7	16	54	1	40	9	56	54	16	1	1	7	54	★ 3	16	52	1	1
1	4 [155]	30	43	54	52	54	1	1	[144] 56	1	43	54	1	22	54	1	45	53	59	1	53	45	1	43	52	53
55	3	1 [153]	18	1	1	28	33	43	1	48	2	43	52	1	57	43	56	1	52	59	1	59	47	1	42	1
52	30	45	59	42	47	54	4	53	45	4	54	1	54	7	7	47	5	1	1	3	4	1	57	7	42	54
47	1	1	4 [154]	3	4	1	1	7	1	13	1	45	(1)	57	45	1 [143]	48	28	52	52	53	7	45	1	1	45
45	54	43	53	56	46	57	55	1	48	1	56	1 [141]	55	4	46	55	43	1	48	1	56	52	28	60	1	47
59	7	42	4 [155]	1	4	1	45	47	1	56	1	45	4	59	1 [142]	24	4	7	49	1	1	1	53	54	1	42
1	7	52	30	54	59	54	1	1	43	1	56	1	54	24	54	54	54	45	28	43	46	4	3	1	1	48
48	9	3	1	46	1	47	56	54	7	54	52	2	54	1	59	2	16	7	47	47	56	1	45	48	1	52
1	7	7 [152]	56	★ 45	1	52 [150]	45	4 [151]	61	42	54	30	53	53	28	53	46	28	9	56	33	★★ 56	1	51	56	45
54	53	1	45	35	1	1	54	43	7	4	1	56	55	24	55	4	3	4	1	9	59	56	1	1	1	16
4	42	4	1	59	53	4	38	4	47	45	9	1	55	1	59	28	54	56	18	1	4	52	54	57	52	59
7	54	4	3	16	30	22	38	54	1	51	1	54	56	45	1	1	45	60	30	28	1	43	1	1	4	4
18	47	56	54	1	28	1	4	30	45	55	[146] 47	9	4	53	[148] 43	52	54	30	1	54	24	53	53	52	53	47
1	1	1	58	4	28	30	1	1	9	38	51	59	1	47	4	3	54	30	33	30	1	1	1	4	1	1
54	40	7	59	47	54	59	28	[149] 54	58	7	4	55	1	57	60	1	52	5	1	45	38	59	4	56	51	30
						2																53	4	52	1	

1	30	45	52	43	54	4	34	3	54	56	45	1	4	56	53	37	60	47	46	1	30	1	50			
37	4	1	43	3	54	33	29	42	7	37	54	52	1	1	3	1	3	24	30	37	7	3	1			
24	53	1	43	30	1	28	1	1	24	1	1	43	30	28	56	53	48	37	1	28	55	42	7	3		
2	28	37	1	48	1	44	59	53	59	54	1	3	1	3	4	1	51	28	1	1	1	18	37	4	24	1
1	56	30	4	56	43	4	4	42	1	43	54	45	42	30	4	3	7	30	54	53	60	47	54	59	52	52
3	1	48	1	1	53	54	37	53	4	1	1	18	37	54	53	42	48	4	1	1	1	4	1	7	1	37
34	48	30	59	3	1	1	1	56	56	54	42	1	4	3	3	53	30	30	45	49	53	30	45	42	1	43
36	37	7	52	54	59	61	52	1	1	1	52	3	53	54	4	37	52	48	48	3	37	3	6	30	4	37
1	56	1	4	2	1	1	53	3	52	4	56	1	42	54	4	1	30	7	43	1	55	1	52	46	1	4
42	45	3	30	30	1	56	1	55	1	50	1	55	4	52	51	9	43	43	53	47	52	34	1	45	1	59
9	42	37	56	45	1	52	1	1	59	51	9	53	1	29	1	56	1	4	60	1	28	54	1	42	52	7
4	1	45	3	42	1	37	1	18	1	1	48	1	42	1	52	1	50	54	42	1	3	30	1	1	45	55
59	16	42	37	54	1	43	60	54	54	53	52	1	43	1	1	30	1	1	59	60	37	56	38	1	1	1
40	7	7	28	52	43	45	48	1	1	1	1	33	(43)	54	60	1	55	52	52	3	9	38	60	1	24	30
30	4	1	1	4	1	1	52	4	56	28	43	9	4	24	1	53	4	1	48	54	1	3	42	52	37	1
46	53	37	52	30	52	3	4	37	7	1	47	1	45	45	54	1	52	6	1	30	52	1	42	43	42	42
16	9	4	37	1	42	40	3	45	13	54	45	47	18	33	3	57	56	1	37	1	37	3	52	42	3	55
51	4	3	52	1	7	57	54	45	22	45	1	28	47	1	45	1	1	17	43	1	43	24	1	42	1	45
1	55	1	3	45	1	42	52	1	56	1	1	59	57	1	54	56	52	10	37	59	1	59	42	60	24	37
18	43	45	56	52	3	1	40	48	54	37	1	56	59	5	52	52	1	1	4	30	43	16	3	45	7	30
7	47	1	4	42	47	7	4	52	52	53	1	3	54	4	1	1	1	45	37	52	37	59	24	59	54	52
1	53	1	1	1	60	43	3	54	1	59	59	57	55	56	48	59	1	1	1	42	5	52	52	3	4	3
4	37	45	40	3	47	45	57	54	18	7	1	1	1	1	41	56	57	42	4	42	1	1	43	56	37	51
4	52	1	48	1	4	1	3	56	40	53	50	53	60	40	3	4	28	43	37	42	52	43	52	1	1	3
7	52	1	54	37	56	43	1	45	9	1	1	1	1	45	43	3	47	59	1	1	1	1	30	43	46	24
37	55	1	4	1	1	47	1	30	42	60	57	56	1	1	56	1	51	42	46	33	30	37	1	45	52	52
1	59	16	45	37	4	55	1	1	4	1	52	55	7	1	48	4	4	4	4	30	1	52	4	1	9	42